

ओ३म्

वेद-ज्योति

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री. विश्व-वेद-परिषद्
सी ८१७ महानगर, लखनऊ. उ.प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१
❀ विशेषांक-सहित वार्षिक- मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

वर्ष ७, अंक १०, इष [आश्विन] २०४० वि०
अक्टूबर १९८३ ई०. मानव-वेद-सृष्टि-संवत १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९

ब्राह्मण-ग्रन्थ-परिचय 3 (वेद में नरबलि नहीं)



महात्मा गान्धी

जन्म २ अक्टूबर १८६९, बलिदान ३० जन. १९४८
सभी गान्धी जी के उपदेशों का पालन करें।

गायत्री, गुरु मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्र चोदयात् ॥

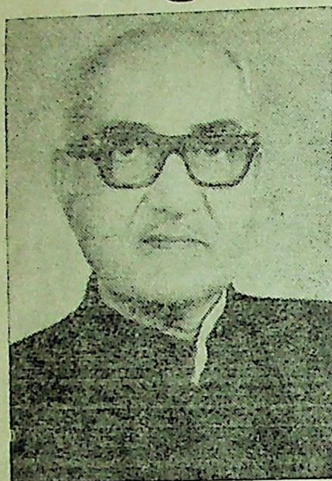
(यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र ३)

शब्दार्थ— ओम्—रक्षक परमेश्वर, भूः—प्राण, भुवः—दुःख-नाशक, स्वः—सुख-स्वरूप है। तत्—उस, सवितुः— प्रेरक, उत्पादक, देवस्य— सुखद, प्रकाशक, गतियुक्त के, वरेण्यम्— वरण-योग्य, श्रेष्ठ पाप-निवारक, भर्गः— तेज को, धीमहि— धारण करें, हम उसका ध्यान करें, यः— जो (सविता) नः -- हमारी, धियः-- बुद्धियों और कर्मों को, प्र चोदयात्-- अच्छे प्रकार से प्रेरित करे ॥

ओंकार प्रभु तेरा नाम गुण गाये संसार तमाम।
प्राणरूप प्राणोंसे प्यारा दूर दुखोंका करनेहारा।
सुखस्वरूप सुखों का दाता अन्त न कोई तेरा पाता।
सारे जगको पैदा करता सबसे उत्तम पाप का हर्ता।
हे ईश्वर हम तुझ को ध्यायें पापकर्म के पास न जायें।
बुद्धिकरो हमसबकी उज्ज्वल जीवनहोवे सबका निर्मल।

— श्री अमरनाथ, फरीदाबाद

शुनःशेप कथा का वैज्ञानिक रहस्य



ले० प० वीरसेन वेदश्रमी
अध्यक्ष विश्ववेद परिषद्
वेदसदन, महारानी पथ; इन्दौर म.प्र.

ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ३३ खण्ड में १३ रोहित और शुनःशेप की कथा आती है। लौकिक इतिहास माननेसे उसमें कई शङ्काएँ होती हैं। यदि प्राकृतिक विज्ञान मानें तो उसमें वैज्ञानिक रहस्य प्रतीत होताहै।

मरुद्गण हरिश्चन्द्र हैं

वेद में 'हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः' (ऋ ९.६६.२६) में हरि(सूर्य) और चन्द्र की क्रियाशीलता वाली वायु को हरिश्चन्द्र बताया है। यह रक्षक होने से राजा है।

हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित है अर्थात् वायु से लाल बादल उत्पन्न होते हैं। ये नार-द (जल देनेवाले) अन्तरिक्ष के परामर्श से वरुण (जल के अधिपति समुद्र) के कारण से उत्पन्न होते हैं।

वरुण ने राजा से कहा कि तुम्हें पुत्र को मेरेलिए देना होगा अर्थात् मेघ बरसकर समुद्रमें ही आयेंगे।

रोहित न बरसने वाला अपरिपक्व बादल है अतः वरुण(समुद) के बार बार कहने पर भी उसे न मिल सका। इससे हरिश्चन्द्र का जलोदर होगया अर्थात् वायु के उदर में (अन्दर) जल भर गया।

रोहित का वन में भटकना

सूर्य-रश्मियों के तेज के कारण लाल, न बरसने वाला मेघ आकाश के वन(जल) में घूमता रहता है।

रोहितको हरिश्चन्द्रके पास जाने से इन्द्र रोकता है। यह इन्द्र अन्तरिक्षस्थ विद्युत् है।

रोहितद्वारा बलि केलिए अन्य की खोज की गई। तब अजीगर्त मिला जो अपनी पत्नीसे परामर्श कर रोहित के बदले में अपने मध्यम पुत्र शुनःशेप को बलि देने के लिए उद्यत हुआ।

अजीगर्त कौन है ?

अजीगर्त अजगर (अहि) है। साँप के समान घूमने वाले, वर्षा के लिए अति नीचे झुके हुए मेघ ही अजीगर्त हैं। उनसे तीन प्रकार की वायु उत्पन्न होती है यही उसके निम्नलिखित तीन पुत्र हैं—

१. शुनो लांगूल

शुनः नाम वायु का है। चातुर्मास्य यज्ञोंमें वायुके लिए किया जाने वाला यज्ञ 'शुनासीर' कहाता है। मेघों के ऊपर की ओर गति वाली वायु शुनोलांगूल है। शुनो (कुत्ते की) लांगूल (दुम) के समान यह ऊपरको टेढ़ी उठी रहती है और ऊपर ही रहती है।

२. शुनः पुच्छ

कुत्तेकी पूँछ के समान दूसरी वायु नीचे के स्तर में गति करती है, नीचे ही झुकी रहती है।

३. शुनः शेप

मेघों के मध्य में जब पोल हो जाती है तो कुत्ते के लिङ्गके समान जो वायु ऊपरसे नीचेकी ओर प्रलम्ब, सूचिका, दण्ड या जलधारा के सदृश मध्य में प्रवेश करती है वह मेघों का मध्यम पुत्र शुनःशेप है।

रोहित (मेघ) के साथ शुनःशेप (वायु) वरुण (समुद्र)के पास पहुँचती है और वृष्टियज्ञ होता है। हरिश्चन्द्र (मरुद् गण) जलोदर से और शुनःशेप (वायु)बन्धन से मुक्त हो गये, स्वच्छन्द चलने लगे।

यज्ञ करानेवाले ऋषि प्राण है,'प्राणा ऋषयः' श. ७.२.१.५। जमदग्नि आग्नेय, वशिष्ठ सौम्य, विश्वामित्र मध्यस्थ प्राण हैं। ये ही प्राण-उदान-व्यान हैं।

ये ही शरीर में इळा-पिङ्गला-सुषुम्णा नाड़ी के प्राण हैं। ये ही वृष्टि-यज्ञ के ब्रह्मा-होता-अध्वर्यु हैं। शरीर तथा अन्तरिक्ष में इनका यज्ञ चलता रहता है। इन्हीं से विश्व को जीवन प्राप्त होता रहता है॥



शुनःशेप का आख्यान, वेद में नरबलि नहीं

यद्यपि १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में कुछ यूरोपीय पादरियों ने भारत आकर संस्कृत भाषा और साहित्य को जानने का प्रयत्न किया तथापि वेदों के सम्बन्ध में कार्य १९ वीं शताब्दी से आरम्भ हुआ।

इससे पूर्व पादरी राबर्टो डि नाबिली ने नकली यजुर्वेद बनाकर भारतीयों और पाश्चात्यों को खूब ठगा। पादरी कालगेट ने वेद को जानने में अपनी शक्ति लगायी और हेनरी टामस कोलब्रुक ने वेदों पर ट्रैक्ट लिखकर वेदाध्ययन आरम्भ किया।

गत दो सौ वर्षों में सौ से अधिक पाश्चात्य जनों ने वेदों पर परिश्रम किया है जिनमें लगभग बीस ने तो पूरा ही जीवन अर्पण कर दिया।

इनमें अधिकांश ने वेदों की निन्दा ही की जिस का आधार उन्हें सायण, महीधर, उवट आदि के भाष्य मिल गये। फिर क्या था, निश्चिन्तता से वेदों पर आक्षेप किये जाने लगे।

यूगेन बरनूफ पैरिस में कालेज-डि-फ्रांस में वेद के प्रोफेसर थे। उनके शिष्यों में मैक्समूलर, राथ, गोल्डस्टकर आदि ने वेदों पर बड़ा तीक्ष्ण आक्रमण किया। विलसन, म्यूर, मेकडानल्ड, वेबर, ग्रिफिथ आदि ने भी वेदों पर बहुत चोट की।

मैक्समूलर महर्षि दयानन्द के समकालीन थे। इन्होंने सायणके आधार पर पशुओं और मनुष्यों का भी बलिदान माना और यहाँ तक कहा कि वेदों में अधिकतर बच्चों के से विचार हैं।

महर्षि कृत ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका को पढ़कर उनके अन्तिम काल के विचारों में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ था अतः उनकी अन्तिम रचनाओं में वेदों के प्रशंसक उद्गार भी मिलते हैं।

नर-बलि की चर्चा बायबिल और कुरान में पायी जाती है। ईसाई विद्वानों ने वेदोंमें भी इसे मानना चाहा। ऐतरेय में शुनःशेप के इतिहास को देख कर उन्होंने भारतको भी नरबलि-देनेवाला जंगली सिद्ध करने का यत्न किया। निम्न लिखित विद्वानों के ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि इस विषय में इन्होंने वेदों पर कैसा तीक्ष्ण प्रहार किया है—

१. विलसन (ऋग्वेद प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६०)
२. मोनियर विलियम्स(इंडियन विज़डम पृ.२८)
३. म्यूर (ओरि. सं. टेक्स्ट खंड १ पृष्ठ ४०३-७)
४. मैक्समूलर (संस्कृत लिटरेचर)
५. हार्डविक (क्राइस्ट ऐंड अदर मास्टर)
६. मैकडोनल्ड (वैदिक रिलीजन पृ. ४३.८८-९०)
७. मारिस फिलिप्स (टीचिंग्स आफ़ दि वेदाज़ रिलीजन आफ़ इंडिया आदि)
८. रोसेन ९. गोल्डस्टुकर १०. रोथ ११. हम्बोल्ट १२. वेस्टर गार्ड १३. हौग १४. वेबर १५. बार्थ

शुनःशेप-कथा का आधार ऋ. १.२४.१२,१३ और पाँचवें मंडल के दूसरे सूक्त का मन्त्र ७—ये ३ मन्त्र (पृष्ठ १४५,१४९) बताये जाते हैं। सत्य अर्थ न समझने के कारण ही यह भ्रान्ति हुई है। कुछ अन्तर के साथ यह कथा वाल्मीकि रामायण बाल कांड इकसठ-बासठ अध्याय, महाभारत; श्रीमद् भागवत स्कन्ध९ अध्याय ७ में भी आयी है। संकेत रूपमें मनुस्मृति (दशम अध्यायका एक सौ पाँचवाँ श्लोक), विष्णु पुराण, निरुक्त (३.४) तथा श्री शंकराचार्य के वेदान्त-भाष्य में उद्धृत है। किन्तु मुख्य आधार ऐतरेय, पञ्चिका ७, अध्याय ३ (पृष्ठ १४३ से १५० तक)है जिससे नरबलि सिद्ध करते हैं।

भारत के श्री राजेन्द्रलाल मित्र ने भी उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुए अपने इण्डो-आर्यन्स नामक ग्रन्थ के ह्यूमन सैक्रीफाइस शीर्षक अध्याय में लिखा है—

यदि मैं कह सकता कि वेद के अनुसार मनुष्य का बलिदान नहीं होता था तो अति प्रसन्न होता, किन्तु क्या करूं, इतिहास के विपरीत ऐसा नहीं कह सकता।

कह कैसे सकते? जब पाश्चात्यों के दास बन

गये तो सत्य रहस्य कैसे प्रकट कर पाते ?

❀ पाश्चात्य विद्वानों के हेत्वाभास ❀

१. यदि इसे रूपक मानें तो कथा फीकी पढ़ जायगी।

२. यदि यह बात भयंकर न मानें तो कथा का कुछ अर्थ नहीं रहता।

३. यदि पुत्र-वध का संकल्प न होता तो पिता के द्वारा उसका टालना व्यर्थ था और यूप में बाँध कर उसे छोड़ क्यों नहीं दिया ?

४. रोहित का पिता के घर से भागना और सौ गायें देकर शुनःशेप का मोल लेना बताता है कि उसका वध अवश्य किया जाना था।

पाश्चात्यों का समाधान

१. रूपक अलङ्कार के मानने से कथा फीकी नहीं पड़ती, प्रत्युत और अधिक चमत्कारपूर्ण तथा मनोरंजक हो जाती है।

२. यह कथा वेद-मन्त्र के आधार पर लिखी गयी है अतः इसको वेदानुकूल ही होना चाहिए। जिन ३ ऋचाओं में शुनःशेप शब्द आया है वहाँ कहीं नर-मेध का वर्णन नहीं, अतः इस कथा में भी उसका वर्णन नहीं होना चाहिए। अब जो वर्णन मिलता है उसका भाव अवश्य आलङ्कारिक होना चाहिए अतः इस कथा में नर-बलि-रूपी भयङ्कर बात न मानने पर भी कथा का अभिप्रात सार्थक है।

३ वरुण के लिए पुत्रकी बलि देने का अभिप्राय पुत्र को ईश्वर, धर्म, विद्या-प्रचार के लिए और मेघ जल का समुद्र के लिए अर्पण करना है, पुत्र-वध नहीं। टालने से अभिप्राय उसके परिपक्व होने की प्रतीक्षा है। यह बताना भी है कि मनुष्य अपना शुभ सङ्कल्प स्वार्थ में फँस कर भूल जाता है। विचारणीय यह है कि हरिश्चन्द्र ऐसे पुत्र से क्यों सन्तुष्ट हो और उसके लिए देवाराधन क्यों करे जिसे जन्म लेते ही देवता के लिए मारना पड़े। ऐसे पुत्रसे क्या लाभ था ? अतः पुत्र की बलि का अर्थ उसका वध नहीं प्रत्युत उसे शुभ कर्मों में नियुक्त करना है।

४. रोहित के घर से भागने का अभिप्राय यह है कि परिपक्वता केलिए संचरण आवश्यक है। यह भी बताना है कि जब मनुष्य प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता तो उसे मिली हुई वस्तु से भी वंचित होना पड़ता है। रोहित (बल, रक्त, क्षात्रधर्म, मेघ) का संचरण —चलता रहना आवश्यक है। बालक को कम से कम ६ वर्ष की आयु तक भ्रमण अवश्यक है पुस्तकों का बोझ उसपर लादना उचित नहीं।

कथा-सम्बन्धी मत

❀ यास्काचार्य निरुक्त (३.४) में ❀

स्त्रीणां दान-विक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः। पुंसोऽपीत्येके शौनःशेपे दर्शनात्।

अर्थात् स्त्री का दान-विक्रय-त्याग होता है, पुरुष का नहीं। कोई कहते हैं कि ये पुरुष के भी होते हैं जैसा कि शुनःशेप की कथा में दिखाया है

यहाँ यास्क ने ऐतरेय की ओर संकेत किया है, ऋग्वेद की ओर नहीं। दान उत्तरदायित्व सौंपना है जैसे कन्यादान। विक्रय आवश्यक वस्तुएँ लेना और त्याग स्वपदार्थ को छोड़ना है,जैसे भूखे अजीगर्त ने किया। इनका वेद-मन्त्रों में वर्णन नहीं।

महर्षि मनुने (मनुस्मृति अ. दस श्लोक १०५ में) लिखा हैं—

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीककारमाचरन्॥

श्री शङ्कराचार्य ने इस श्लोक को वेदान्त-भाष्य में उद्धृत किया है। भूखा अजीगर्त पुत्र को बलि (ज्ञानार्थ त्याग) के लिए तैयार हुआ। भूख का उपाय करते हुए वह पाप से लिप्त नहीं हुआ (चोरी आदि नही की। यह आपद्धर्म बताया कि अकाल में चाहे पुत्र त्यागना पड़े किन्तु पाप न करे। यह ऐतरेय की कल्पित कथा को ध्यान में रखकर कहा, इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह सत्य घटना है।

श्री रमेशचन्द्र दत्त ऋग्वेद १।२४ की टिप्पणी में लिखते हैं—

...किन्तु ऐतरेय, रामायण, भागवत मनुस्मृति, विष्णुपुराण—ये सब ऋग्वेद के बहुत पश्चात् बने हैं।...ऋग्वेद के किसी स्थान में नरबलि का स्पष्ट

देने की कोई स्पष्ट कथा नहीं है। अतएव रोसेन विवेचना करते हैं कि ऋग्वेद-रचना के समय नर-बलि-प्रथा नहीं थी।...ऋग्वेद के समय नरबलि-प्रथा थी-यह हमें ज्ञात नहीं होता। क्योंकि जिस ग्रन्थ में सोम-घृत-अभिषव की कथा सहस्रों बार आयी है उसमें यदि यह उस समय प्रचलित होती तो इसका विशेष उल्लेख क्यों नहीं है?

मैक्समूलर यद्यपि वैदिक समय में नरबलि होने के समर्थनमें सर्वथा सन्देहयुक्त हैं तथापि ऐतरेय के आधार पर उन्होंने प्राचीन आर्यों को जंगली सिद्ध किया है।

मौरिस फिलिप्स ने बड़ी क्रूर दृष्टि से वेदों की आलोचना की है तथापि अपने 'दि टीचिंग्स आफ् दि वेदाज़' में पृष्ठ संख्या २०० पर लिखा है कि वेद में यद्यपि नरमेध का मानना कदाचित् उचित न होगा और इसे अलङ्कार माना जा सकता है, किन्तु ऐतरेय नरमेध की सभी बातें प्रस्तुत करता है।

अब इनसे प्रश्न यह है कि यदि ऋग्वेद में आलङ्कारिक वर्णन है तो उसके ब्राह्मण ऐतरेय में क्यों नहीं? क्या आपकी समझ में न आने से, अथवा आपके पक्षपात और हठपूर्वक नरबलि सिद्ध करने के आग्रह-पूर्ण दृष्टिकोण से? वस्तुत: ऐतरेयकी कथा भी आलंकारिक आख्यान है; वास्तविक धटना नहीं।

❀ भ्रम में पड़ने के कारण ❀

१: वेद के अर्थों को ठीक से न समझना।
२. ऐतरेय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का आशय न समझना।
३. भारतकी जंगली जातियोंमें नरबलिका पाया जाना।
४. तान्त्रिक ग्रन्थों में नर-बलि का वर्णन।
५. वेद-विरोधियों का पक्षपात, हठ और दुराग्रह।
६. महीधर आदि तान्त्रिक भाष्यकारों के भाष्य।

वरुण का पाश क्या है?

ऋग्वेद १.२४.१५ में वरुण के पाश का वर्णन है। (पृष्ठ १४५) यह यजुर्वेद अ. बारह का बारहवाँ मन्त्र भी है। वरुण का पाश परमात्मा के न्याय का बन्धन है। यह किसीको बाँधने के लिऐ रस्सी का जाल नहीं। उत्तम, मध्यम, अधम पाश आत्मा, मन, शरीर के दु:ख तथा आत्मिक दैविक भौतिक ताप ही हैं।

अथर्व वेद ४.१६.६ में ११ पाशों का वर्णन है—

ये ते पाशा वरुण सप्त सप्त
त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्त:।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तम्
य: सत्यवादी अति तं सृजन्तु॥

हे वरुण, आपके जो उत्तम-मध्यम-अधम भेद से ३ प्रकार के और फिर पाँच ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि —ये ×७ प्रकारके = इक्कीस हिंसक पाशहैं वे असत्यवादी को छिन्न-भिन्न करें और सत्यवादी को मुक्त करें।

इसी आधार पर शतपथ और कात्यायन श्रौतसूत्रके विनियोग को देखनेसे विदित होगा कि किस प्रकार इस का नाटक दिखाया है। यज्ञकर्ता अपने गले में इक्कीस दाने का आभूषण और ६ रस्सियोंका शिक्यपाश धारण करता है। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और १ अन्त:करण— ये ६ रस्सियाँ हैं। उदुत्तमम्...मन्त्र पढ़कर गलेसे दोनों पाश निकाल दिये जाते हैं। क्या यहाँ भी यजमान का वध करने के लिए ऋत्विज उपस्थित है? यदि नहीं तो शुन:शेप के पाश भी वध के लिए नहीं माने जा सकते।

विवाह संस्कार में भी वरुण-पाश का वर्णन है—

प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वाबध्नात् सविता सुशेव:।

कहीं पर वधूकी कमर में एक डोरी बाँध दी जाती है और कहीं पर उसके बालों को कई डोरों से बांधा जाता है। फिर पति इस मन्त्र को पढ़कर उन्हें खोलता है। संस्कारविधि के अनुसार वह एकान्त में जाकर वधू के बँधे हुऐ केशों को खोलता है। वह कहता है—

मैं तुझे वरुणके उस पाशसे छुड़ाता हूं जिससे सविता ने तुझे बाँधा था।

यहाँ पर परमात्मा ने वधू का वध करने के लिए उसे वरुण के पाश से नहीं बांधा था जिससे पति उसे छुड़ाए। किन्तु अभिप्राय यह है कि कौमार्य अवस्था में पिता के घर में जो बन्धन थे उनसे वधू को वर छुड़ाता है।

वृष्टि-विज्ञान में वरुण जल का अधिपति. पृथ्वी और आकाश का समुद्र तथा आक्सीजन है और उसके पाश जल-बन्धन अनेक तरह के मेघ हैं। उनमें बँधा जल उन्हें छिन्न-भिन्न कर देता है तब वे मुक्त हो कर बरसने लगते हैं।

शुनःशेप-कथा का रहस्य, ४ अर्थों का बोधक चित्र

ऐतरेय ब्राह्मण ने वेदके भाव को अलङ्काररूप में नाटक के समान दिखलाया है। रहस्य समझने के लिए कथा में आये शब्दों को यौगिक तथा पारिभाषिक मानकर उनका अर्थ व्याकरण, निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार समझ लेना आवश्यक है —

शब्द	आध्यात्मिक अर्थ (ईश्वरीय),	शरीरविज्ञान	राजनीति-विज्ञान	भौतिक वृष्टि-विज्ञान
१. हरिश्चन्द्र	सूर्य-चन्द्र-गुणयुक्त जीव	तेजस्वी शरीर	प्रतापी सौम्य राजा	सूर्य-चन्द्र से उत्पन्न मरुद्गण
२. पर्वत-नारद	तर्क-वितर्क	वैद्य-चिकित्सक	परामर्शदाता	जल-प्रदाता विद्वान्
३. सौ पत्नियां	सौ वर्ष की आयु	...	प्रजा के सैकड़ों मनुष्य	सैकड़ों जल-धाराएँ
४. पुत्र	शुभ कर्म	दुःख-रक्षक बल	प्रजा-रक्षक शक्ति	दुःख-रक्षक वर्षक मेघ
५ वरुण	परमात्मा, आचार्य	कर्माधिपति ईश्वर	जलसेनापति, न्यायाधीश	जलस्वामी समुद्र, आक्सीजन
६. रोहित	वृद्धि-कारक बल	लाल रक्त	क्षात्र धर्म	ऊर्ध्वमुखी अवपक लाल मेघ
७. उदर-रोग	स्वार्थ	जलोदर, पेट का विकार	धन-सञ्चय, कर वृद्धि	जल का संचय
८. अजीगर्त	सदा नवीन तृष्णा	अजीर्ण रोग	भूखी, गड्ढेमें गिरी जनता	अधोमुखी बरसाऊ मेघ
९. शुनःशेप	मध्यम प्राण, अल्पज्ञ जीव	निन्द्य भोग	साधारण मध्यम वर्ग	पृथ्वीको आनेवाली सीधी वायु
१०. गौएँ	वेद-वाणियाँ	इन्द्रियाँ सूर्य की किरणें	गौएँ आदि पशु, भूमि	सूर्य की किरणें
११. पाश बन्धन-	काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-चिन्ता		पराधीनता दासता	आकाश में रुके मेघ
१२. यज्ञ	योग, समाधि	हवन, प्रकृति-चिकित्सा	युद्ध-यज्ञ, सभा समिति	वर्षा-यज्ञ जल की प्राप्ति
१३. बलि	समर्पण	त्याग, अन्न	देश पर बलिदान	जनता के लिए जल-अर्पण
१४. ऋत्विज विश्वामित्र	ईश्वर,	सोषुम्न प्राण आँख	सबका मित्र अर्थ-मन्त्री	सृष्टि का मध्य प्राण, होता
१५. ,, जमदग्नि	वेद-ज्ञान,	कान इळा में प्राण	गृह-रक्षा-मन्त्री	आग्नेय जठराग्नि, अध्वर्यु
१६. ,, वसिष्ठ	मन	घ्राण पिंगला में सौम्य उदान	प्रधानमन्त्री गुप्तचर विभाग	हाइड्रोजन उदान ब्रह्मा
१७. ,, अयास्य	मुख	नाभि-मध्यगत समान प्राण	कर-गृहीता गृह-विभाग	सृष्टि का प्राण उद्गाता
१८. प्रजापति	परमात्मा यज्ञ,	इन्द्रिय-स्वामी मन	राष्ट्र-पति	यज्ञ वायु
१९. अग्नि	मुख जिह्वा	शरीर का ताप जठराग्नि	नेता राज्यपाल संसद्-अध्यक्ष	अग्नि-तत्त्व
२०. सविता	प्रेरक विद्वान्	नेत्र प्रेरक अहंकार	विद्वान् आचार्य	सूर्य
२१ विश्वेदेवाः	समस्त दिव्य गुण	सब इन्द्रियाँ	सब विद्वान् सदस्य	सब प्राकृतिक शक्तियाँ
२२. इन्द्र	मन	जीवात्मा	न्यायाधीश	विद्युत्
२३. अश्विद्वय	अध्यापक-उपदेशक	प्राण-अपान	सभापति-सेनापति	हाइड्रोजन-आक्सीजन
२४. उषा	बुद्धि	उषाकाल	सभा-समिति	उषा तथा आगे मध्याह्न काल

❀ ब्राह्मणवर्णित शुनःशेप नाटक से शिक्षाएँ ❀

राजसूय यज्ञमें यह नाटक करना पड़ता है। इस से अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं—

१. पापी बद्ध होता है और शुभकर्मोंसे मुक्त होता है।

२. वरुण के समान मनुष्य बार बार प्रेरणा करे।

३. ईश्वरका न्याय टालनेवाले को भी नहीं छोड़ता।

४. निन्दित नामोंका भी मनुष्य पर प्रभाव होता है।

५. बृहदारण्यक में मध्यम प्राण को शिशु बताया है— अयं वाव शिशुः योऽयं मध्यमः प्राणः। इसे वश में करने से आत्मा को शान्ति मिलती है।

६. बालकों को ६ वर्षतक स्वतन्त्र रखकर फिर कड़े अनुशासन में रखकर विद्या पढ़ानी चाहिए।

शुनःशेप एकांकी नाटक के ४ दृश्य

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के सिद्धान्त को काल्पनिक नाटक के रूप में मनोरजक बनाकर प्रस्तुत करते हैं — यह पहले लिखा जा चुका है। प्रस्तुत शुनःशेप नाटज के ४ दृश्यों का सार निम्न प्रकार है—

प्रथम दृश्य– मिथ्याभाषी हरिश्चन्द्र पर वरुण का न्यायपाश गिरता है, वह उदररोग से पीड़ित हो ईश्वरीय दण्ड भोगता है। पुत्र रोहित जंगलमें भागता है।

द्वितीय दृश्य– रोहित के स्थानपर शुनःशेपकी दर्शक टकटकी लगाकर देख रहे हैं। उसका पिता अनुशासन में रखता चाहता है। सब आश्चर्यचकित हैं, किन्तु पापी शुनःशेप अन्तःकरण से ईश्वर के निकट पहुंचता है और पश्चात्ताप करता है। धीरे-धीरे एकएक करके उसके तीनों पाश टूट टूट कर गिरने लगते हैं। वह मुक्त हो जाता है।

तृतीय दृश्य–अब शुनःशेप विश्वमित्र का पुत्र बनकर बड़े ऋषियों के साथ यज्ञ करवाता है।

इससे बढ़कर और क्या प्रतिष्ठा हो सकती है?

चतुर्थ दृश्य– दण्ड भोगने के पश्चात् हरिश्चन्द्र रोग मुक्त हो सुखी हो जाता है।

कैसा सुन्दर, आदर्श वैदिक सिद्धान्तों का पोषक, अनेक रसों से परिपूर्ण, शिक्षाप्रद नाटक है।

कथा के ४ भाव

❀ १. आध्यात्मिक भाव ❀

जीवात्मा सौ वर्ष की आयु नियत होने पर भी जब शुभ कर्म नहीं कर पाता, तो तर्क वितर्क करता है। उस समय उसकी प्रार्थना पर परमात्मा उसे शारीरिक बल देता है, किन्तु वह उसे ईश्वर-भक्ति में न लगाकर स्वार्थ में फँस जाता है। शारीरिक बल की रक्षा करते हुए, वह भोग-विलास में मग्न विषयग्रस्त मध्यम प्राण को इन्द्रियों की सहायता से वेदमन्त्रों के द्वारा, परमेश्वर के लिए समर्पित करने को प्रस्तुत होता है। मध्यम प्राण इन्द्रियों, मन, जीवात्मा और अन्त में बुद्धिका आश्रय लेकर समस्त दिव्य गुणों के साथ, परमेश्वर की शरण में जाकर सफलता प्राप्त करता है और साधकजीवात्मा का शारीरिक बल परमेश्वर की प्राप्ति में सहायक होता है। वह समस्त रोगों तथा दुःखों से मुक्त हो जाता है।

❀ २. शरीर-सम्बन्धी भाव ❀

१०० वर्ष की नियत आयु वाला तेजस्वी, कान्तियुक्त शरीर भी दुःख-निवारक बल के अभाव में ईश्वर की भक्तिके लिए नवीन रक्त प्राप्त करके भी जब उसका सदुपयोग नहीं करता, तब जलोदर आदि पेट के विकारों से ग्रस्त हो जाता है। अपने शुद्ध रक्त की रक्षा के लिए वह सूर्य-किरणों का आश्रय लेकर, अजीर्ण रोग से उत्पन्न बिषय भोगेच्छा को त्याग देता है और इन्द्रियों को वश में रखकर यज्ञ, सूर्य, जल, विद्युत्, प्राणायाम, उषा-काल तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियों की सहायता से जठराग्नि को ठीक (सम) रखते हुए वह परमेश्वर की भक्ति में सहायक होता है।

❀ ३. राजनीति-विज्ञान सम्बन्धी भाव ❀

प्रतापी और सौम्य राजा सैकड़ों मनुष्यों का पति होकर भी प्रजारक्षक शक्ति (क्षात्रधर्म) के अभावमें दुःखी होकर परामर्शदाताओं से परामर्श लेकर परमेश्वर की कृपा से शक्ति प्राप्त करता हैं, किन्तु फिर उस शक्तिको परमेश्वर के आदेशों का पालन करनेमें न लगाकर करवृद्धि द्वारा धनसंचय आदि में मग्न हो जाता है। किन्तु उसे जब ध्यान दिलाया जाता है तो वह भूख-प्यास से पीड़ित मध्यवर्ग की जनता को गौओं आदि धनका लालच देकर युद्ध आदि में अत्याचार पूर्वक नियुक्त करता है और उसमें अपने समस्त विभागों की सहायता लेता है। उत्पीड़ित जनता अपने राष्ट्रपति, प्रधान-मन्त्री, आचार्य, न्यायाधीश, सभापति, सेनापति आदि से प्रार्थना कर अन्त में सभा-समिति की सहायता से उत्पीड़न से मुक्त होती है, स्वयमेव परमेश्वर की आराधना में तत्पर होती है, और राजा भी संतापों चिन्ताओं, स्वार्थ से रहित होकर सुखी होता है।

❀ ४. भौतिक वैज्ञानिक भाव ❀

हरिश्चन्द्र (सूर्यचन्द्र से क्रियाशील) मरुद्गण(वायु-समूह) सैकड़ों सूक्ष्म जलधाराओं के होने पर भी पुत्र (वर्षक मेघ)को नहीं पाता। नारद(जलदाता विद्वान्) के बताये उपाय से वह वरुण (जल के स्वामी समुद्र) से रोहित(लाल रंग के अपक्व, अवर्षक ऊर्ध्वमुखी मेघ) को प्राप्त करता है। रोहित बादल अपरिपक्व होने से बरस कर वरुण (समुद्र) के अर्पित न हो सका, इधर-उधर आन्तरिक्ष के जलरूपी वन में भागता रहा, मरुद्गण को जलोदर हो गया [अर्थात् जल उसके अन्दर ही जमा हो गया]। इन्द्र [अन्तरिक्ष विद्युत्] रोहित मेघ को बरसने से रोकता है। रोहित मेघ अपने बदले अजीगर्त [बरसाऊ अति नीचे झुके अजगर के समान अधोमुखी] मेघ के ३ पुत्रों [वायु की तीन गतियों] में शुनोलांगूल [वायु की ऊपर की गति] शुनःशेप [वायु की मध्य में स्पर्शवाली गति] शुनोपुच्छ [वायु की नीचे के स्तर में गति] इनमें से शुनःशेप को बलि [बरसने] के लिए वेदि[वर्षण परिस्थितियों] में प्रयुक्त करता है और उसके साथ वरुण [समुद्र] से मिल जाता है। इस वृष्टि के ४ ऋत्विज हैं —

विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ और अयास्य। चारों अन्तरिक्षस्थ प्राण हैं।

शतपथ में ७.२.१.५ में प्राणा ऋषयः कहा है। ये ऋषि शरीर तथा सृष्टि के भी प्राण हैं।

शुनःशेप (मध्यस्थ वायु) ने प्रजापति, अग्नि,सविता वरुण, विश्वेदेवाः, इन्द्र,अश्वि (हाइड्रोजन-आक्सीजन) और उषा की शक्तियों का सम्पर्क कर मोक्ष (जल वर्षण से छुटकारा) पाया और विश्वामित्र (मध्यस्थ प्राण) की गोद में आश्रय लिया। उसके ५० पुत्रों (शक्तियों)को भाई (साथी)बनाया। अजीगर्त मेघ से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया।

यजुर्वेद में नरबलि

कुछ पाश्चात्यों ने यजुर्वेद के पुरुषमेध प्रकरण में पुरुषों की बलि दी जानी सिद्ध करने का दुःसाहस किया है। उनका आधार वाममार्गी महीधर और उवट का भाष्य है। सर्वमेध प्रकरण में जहाँ समस्त प्रकार के पशुओं, पक्षियों आदि का वर्णन करके विभिन्न विरूप मनुष्योंकी प्रदर्शनी का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है वहाँ 'आलम्भन' शब्द (अच्छे प्रकार प्राप्त करना) का अनर्थ (बलिदान) करके तान्त्रिक महीधर ने भयंकर बीभत्स कसाईखाने का दृश्य उपस्थित कर दिया,जिसमें पशुओंके साथ साथ उन बेचारे कुरूप मनुष्यों के बलिदान की भी व्यवस्था करने में उसे संकोच न हुआ। मन्त्र का भाव यह है कि राजा बहुत छोटे (बौने), बहुत लम्बे, बहुत गोरे, बहुत काले बहुत बाल वाले आदि विचित्र आकार-प्रकार के नरों का लभन(अच्छा उपयोग)करे किन्तु वाममार्गियों तथा तदनुवर्ती पाश्चात्य विद्वानों ने अर्थ किया कि उनका वध करे। [यजुर्वेद अध्याय ३० मन्त्र २२]

यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय [पुरुषाध्याय] तथा ऋ. के पुरुषसूक्त [१०.९०]के पन्द्रहवें मन्त्रमें देवों[प्राणों-इन्द्रियों] के यज्ञ [आध्यात्मिक उपासना] का वर्णन निम्नलिखित रूप से किया गया है, इसमें भी पाश्चात्य विद्वानों को नरबलि की गन्ध आती है—

सप्तास्यासन् परिधयस् त्रिःसप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषम् पशुम्॥

अर्थ— इस आध्यात्मिक यज्ञ की गायत्री आदि ७ प्रकार के छन्द ७ परिधियाँ हैं और इक्कीस समिधाएँ बनायी जाती हैं[प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार, पांच-पांच सूक्ष्म भूत, स्थूल भूत, ज्ञानेन्द्रियाँ,सत्त्व, रजस्, तमस्] जब यज्ञ का विस्तार करते हुए देवों [प्राणों-इन्द्रियों] ने द्रष्टा परमात्मा को हृदय में धारण किया।

इस मन्त्र के अन्तिम अंश का 'पशु के समान पुरुष को वधके लिए बांधा' अर्थ करने का हास्यास्पद प्रयत्न किया गया है, जो किसी प्रकार भी प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में किसी देव के आगे नर बलि दिये जाने का कहीं भी वर्णन नहीं है। जहाँ कहीं नरमेध शब्द है, वहाँ उनका अभिप्राय (१) परमेश्वर के बताये नियमों के पालनार्थ मनुष्य का आत्मसमर्पण, (२) दुष्टों के विरुद्ध युद्ध करने में मनुष्यों का आत्मत्याग और[३]जब मनुष्य मर जाये, तब उसके शरीर का विधि पूर्वक दाह कर अन्त्येष्टि संस्कार करना आदि ही है।

—❀—

ब

भ

म

य

र

व

महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्वाण शताब्दी अजमेर

३ से ६ नवम्बर १९८३ तक सम्पन्न होगी, साथ में ६ अक्टूबर से ६ नवम्बर तक चतुर्वेदपारायण यज्ञ होगा यज्ञ दोनों समय प्रातः सायं हुआ करेगा। यज्ञों की समय-सारिणी निम्नांकित प्रकार होगी—

ऋग्वेद	६ से १८ अक्टूबर तक	१३ दिन	सामवेद	२३ से २५ अक्टूबर तक	३ दिन
यजुर्वेद	१९ से २२ अक्टूबर तक	४ दिन	अथर्ववेद	२६ अक्टू. से ६ नवम्बर तक	१२ दिन

यज्ञ के पश्चात् २०-२५ मिनट विद्वानों के वेद-प्रवचन निर्दिष्ट विषय पर होंगे। सभी सम्मिलित हों। ३ नव. को उद्घाटन, ओ३म् पताकोत्तोलन, वेद-सम्मेलन, ४ नव. को मुख्य समारोह, ६ नव को शोभा-यात्रा —ओमानन्द सरस्वती, अध्यक्ष, श्रीकरण शारदा, मन्त्री, दयानन्द वानप्रस्थ, अध्यक्ष यज्ञ, निर्वाण-शताब्दी।

विश्ववेदपरिषद् की वार्षिक बैठक और वेदगोष्ठी

३,५ नवम्बर १९८३ को मध्याह्न १ बजे से ऋषि उद्यान अजमेर में होगी। सभी सदस्य कृपया सम्मिलित हों।

— वीरसेन वेदश्रमी, अध्यक्ष —वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, मन्त्री

कार्यालय विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ।

पुस्तक समालोचना

❀ प्राचीन भारत में विज्ञान ❀

लेखक— श्री सुख लाल धनी, आई.ए.एस; चंडीगढ़
प्रकाशक— दिव्य-दृष्टि प्रकाशन, ७५४, सैक्टर ८ पंचकूला (हरियाणा) १३४१०८, मूल्य ६०)

विद्वान् लेखक के 'सृष्टि-विकास का मन्वन्तर-सिद्धान्त' का यह परिवर्धित द्वितीय संस्करण है। इसके दो खंड हैं—'प्राचीन भारत में विज्ञान' और 'आधुनिक विज्ञानकी पृष्ठभूमि में'। इसमें पुराणोंका अनुशीलन, वैज्ञानिक वर्णन प्रशंसनीय तथा पठनीय है।

किन्तु राम, कृष्णआदि को ऐतिहासिक न मानना खटकता है। मनुष्य की उत्पत्ति वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भमें मानना स्वीकार्य नहीं हो सकता। मन्वन्तर सिद्धान्त को इस शताब्दी में सबसे पहले प्रचारित करनेवाले ऋषि दयानन्द का उल्लेख नहीं किया। उनके तथा ज्योतिषके अनुसार स्वायम्भुव के आरंभ में ही मनुष्य की उत्पत्ति हुइ। मनु शब्द और 'मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्'यही सिद्ध करता है। पृ. ११२ पर सृष्टिसंवत्को कल्पित बताना मान्य नहीं हो सकता।

मनु की वर्णव्यवस्था को अवैज्ञानिक बताना भी उचित नहीं। गुण-कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था पूर्णतः वैज्ञानिक और वेदानुकूल है। वर्तमान जन्म-जातियाँ अवश्य अवैज्ञानिक हैं। इसी प्रकार मनु के विधान को अप्रासंगिक और निरर्थक बताना उचित नहीं।

पृष्ठ ३३ पर टि. में 'ऋचः'... मन्त्र भूल से यजु. का छप गया है जब कि वह अथर्ववेद का है। उसमें आये पुराण शब्द का अर्थ वर्तमान १८ पुराण करना भी अशुद्ध है। वेद के समय इन पुराणोंका जन्म ही नहीं हुआ था। अतः वहाँ पर पुराण का अर्थ सृष्टि का वर्णन है जो पुराना होने परभी नया रहता है। पृ. ७९पर ॐ की ध्वनि को ईश्वर बताना अयुक्त है॥

जिज्ञासु सरलतम संस्कृत

प्रचार समिति; लखनऊ शाखा का चतुर्थ दीक्षान्त १९-६-८३ को डा० सरला शुक्ला एम. ए. हिन्दी विभागाध्यक्ष वि. वि. लखनऊ के सभापतित्वमें हुआ जिसमें दीक्षान्त भाषण डा. अवध विहारी लाल ने दिया। आचार्य धर्मानन्दशास्त्री ने स्नातकों को उपदेश दिया और श्री रमेशचन्द्र शर्मा, निदेशक, उ. प्र. राज संग्रहालय ने अनुशासनोपदेश दिया।

श्री राधेमोहन, प्रधान आ. स. चौक प्र० एवं मन्त्री उ.प्र. समिति ने वार्षिक विवरण सुनाया।

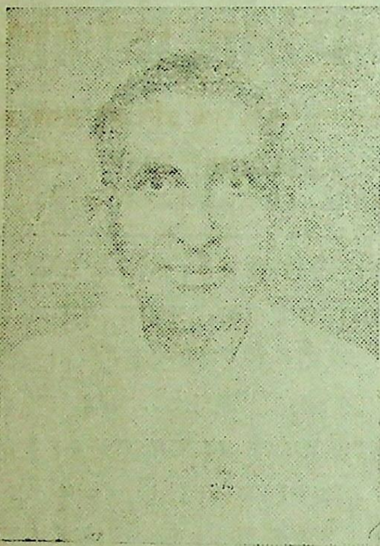


शाखा समाचार

परिषद्की चंडीगढ़, ज्वालापुर जयपुर, दिल्ली रायपुर, रेवाड़ी, कलकत्ता, बम्बई आदि शाखाओंमें प्रत्येक पूर्णिमा को विशेष यज्ञ तथा वेद-गोष्ठी हुई।

चंडीगढ़ में वेदगोष्ठी

शाखा-मन्त्री पं० आशुराम आर्य



चैत्र-पूर्णिमा-गोष्ठी आर्यसमाज से. २२ में की गयी। वैशाख की गोष्ठी आ. स. से. २३ में सम्पन्न हुई। ज्येष्ठ-पूर्णिमा-गोष्ठी श्री रिसालसिंह के घरपर हुई, २५-६-८३ को सभी आर्यसमाजों की सार्वजनिक सभा में जालन्धर के प्रताप-कार्यालय में हुए बम-विस्फोट की घोर निन्दा करते हुए कर्मचारी श्री केवल कृष्ण, इन्द्रेश की मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट किया गया। श्री वीरेन्द्र के बच जाने पर ईश्वर को धन्यवाद दिया गया।

पंजाब में बढ़ती हुई लाकानूनी पर गहरी चिन्ता व दुःख प्रकट करते हुए पंजाब व केन्द्र की सरकारों से इस के विरुद्ध कठोर पग उठाने का अनुरोध किया गया।

वेद की परीक्षाएँ

वेद-विश्वविद्यालय की बसन्त-पंचमी पर होने-वाली चारों वेदों, संस्कृत, व्याकरण, पौरोहित्य आदि की विशारद, भूषण, रत्न उपाधि वाली परीक्षाएँ माघ पूर्णिमा को होंगी। पाठविधि पूर्ववत् है। शुल्क ५) में प्रश्नपत्र पाकर, उत्तर भेजिए और सुन्दर प्रमाणपत्र लीजिए।

शोक-समाचार

निम्नलिखित सज्जनोंके निधन पर शोक व्यक्त है—

१. श्री हरपाल शास्त्री (भसीसा)पन्तनगर १०-४-८३
२. श्रीमती कपूरी देवी(पत्नी शंकरलाल)आगरा १७-४
३. प्रो.रामसिंह, प्रधान भारतीय हिन्दूसभा दिल्ली २-६
४. पं० गोपाल शास्त्री दर्शनकेसरी, वाराणसी ७-६
५.श्रीहरिशरणशास्त्री(डा गणेशदत्त मेरठ के पिता) ,,
६. श्री विद्याभास्कर शास्त्री (दिल्ली-देहरादून) १०-६
७. कविराज योगेन्द्र पाल शास्त्री, हरिद्वार १६-६
८.श्रीमती सावित्रीदेवी(पत्नी प्रो. वेदव्यास)दिल्ली१७-६
९. श्री हंसराज शर्मा भजनोपदेशक. दिल्ली ,,
१०. डा० युद्धवीर सिंह [८६ वर्ष] दिल्ली ,,
११. श्री लालमन आर्य [शिरड़ा-हिसार-बैंगलूर] २०-६
१२. श्री केवलकृष्ण अलोग [जालन्धर] २४-६
१३. श्री घनश्यामदास बिड़ला [दिल्ली,लन्दन]

दयानन्दभक्तों से अपील

महर्षि की देहान्त-स्थली पर विशाल अन्तरराष्ट्रीय स्मारक बनरहा है। प्रत्येक आर्य अपने परिवारकी ओर से अधिक से अधिक, पर कमसे कम ५) रु. प्रति सदस्य योगदान भेजकर पुण्य का भागी बने। काम चालू है। आर्यो, यह बन्द न होने पाये। निवेदक—
भूदेव शास्त्री,मन्त्री दयानन्द स्मारक न्यास,अजमेर

प्रेषक—प्रकाशक वेदज्योति, आदर्श प्रेस,
सी ८१७ महानगर. लखनऊ उ. प्र. २२६००६

ग्राहक-संख्या १३२८
सेवायाम् श्री पुस्तकालयाध्यक्ष
P.O. गुरुकुल कांगड़ी

ओ३म्

वेद-ज्योति

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व-वेद-परिषद्,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ, उ.प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१
❀ विशेषांक-सहित वार्षिक- मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

वर्ष ७] ऊर्ज [कार्तिक] संवत् २०४० [अंक ११

नवम्बर १९८३ ई०, मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९



[महर्षि दयानन्द सरस्वती

जन्म १८२४ ई० निर्वाण दीपावली १८८३ ई०

निर्वाण-शताब्दी दीपावली २०४० वि., ४-११-१९८३

विषय-सूची

यज्ञों का वर्णन

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

वैसे तो सभी श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ हैं। पाँच महायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ (ओम्, गायत्री का जप तथा संध्या), देवयज्ञ पितृयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव) और अतिथियज्ञ सभी यज्ञ हैं। जिस कर्म में देवों की पूजा (विद्वानों का सत्कार और प्राकृतिक शक्तियों का यथोचित उपयोग) हो, संगतिकरण और दान हो वह 'यज' धातु से बना यज्ञ है। इस तरह ज्ञानयज्ञ, उपासनायज्ञ, योगयज्ञ, दान यज्ञ, संग्रामयज्ञ, सृष्टियज्ञ, जपयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ आदि अनेक प्रकारके यज्ञ हैं। किन्तु यहाँपर उन द्रव्ययज्ञों का वर्णन किया जायगा जो ब्राह्मणग्रन्थों में तथा श्रौतसूत्रों में अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त वेदोंके अनुसार क्रियमाण काम्यकर्म हैं, इनको कर्मकांड कहा जाता हैं और ये देवयज्ञ के अन्तर्गत आते हैं।

मानव-सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने वेदों का प्रकाश करते हुए इन यज्ञों के करने का उपदेश दिया—

अग्निमीळे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥

[ऋ० म० १ सू० १ म० १]

इस मन्त्र में यज्ञ के मुख्य तत्त्व 'अग्नि' की स्तुति (गुणवर्णन) करते हुए यज्ञ के चारों मुख्य ऋत्विजों का भी वर्णन किया गया है—

१. पुरोहित = अग्रणी ब्रह्मा चतुर्वेदी व अथर्ववेदी
२. यज्ञ का देव = अध्वर्यु। यजुर्वेदी
३. ऋत्विज् = उद्गाता—सामवेदी।
४. होता = होता—ऋग्वेदी।

साथ ही रत्नधातम = यजमान का भी वर्णन है।

यह इस मन्त्र का याज्ञिक अर्थ है। वैसे इस मन्त्र में आध्यात्मिक अर्थ अग्नि = परमात्मा का, आधिभौतिक दृष्टिसे अग्रणी नेता विद्वान्का तथा आधिदैविक दृष्टि से भौतिक अग्नि का भी प्रतिपादन और गुणवर्णन किया गया है।

यजुर्वेद के प्रथम मन्त्रमें 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे'के द्वारा यज्ञ को परमात्मा ने सबसे श्रेष्ठ काम बतायाहै। यही व्याख्या शतपथ ब्राह्मणमें याज्ञवल्क्य ने की है—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'। सामवेद के प्रथम मन्त्र में अग्नि = परमात्मा और यज्ञ की अग्नि का आह्वान करके हव्य-दान का वर्णन किया गया है—

अग्ने आयाहि वीतये, गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥

इस मन्त्र में होता ऋत्विज् का बर्हि = आसन पर बैठना प्रतिपादित किया गया है।

अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र में २१ प्रकार के यज्ञों का वर्णन किया गया है—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति, विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥

अर्थात् जो ३×७ = २१ यज्ञ अनेक रूपों को धारण किये हुए सर्वत्र व्याप्त हैं, उनके बल को वेदवाणी का पालक स्वामी परमात्मा मुझे सदा धारण कराये।

गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थ (पू १.१२) में बताया गया गया कि ऋग्वेदमें 'त्रिवृतं सप्ततन्तुम्' कहकर २१ प्रकार की यज्ञ संस्था का निर्देश किया गया है—

इमं नो अग्ने उपयज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्त-तन्तुम्। [ऋ० १०.१२४.१]

अग्निर्यज्ञं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्॥ [ऋ १०.५२.४]

गोपथ ब्राह्मण [पूर्वार्ध ५,२३] में इन यज्ञों के नाम निम्न लिखित दिये गये हैं—

सायं प्रातर्होमौ स्थालीपाको नवश्च यः।
बलिश्च पितृयज्ञश्च अष्टकाः सप्तमः पशुः॥
अग्न्याधेयम् अग्निहोत्रम् पौर्णमास्यामावास्ये।
नवेष्टि चातुर्मास्यानि पशुबन्धोऽत्र सप्तमः॥
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमः उक्थ्यः षोडशिमांस्ततः।
वाजपेयोऽतिरात्रश्चाप्तोर्यामात्र सप्तमः॥
सप्त सुत्याः सप्तच पाकयज्ञाः हविर्यज्ञा सप्त तथैकविंशतिः॥

अर्थात् सात पाकयज्ञ हैं जिसमें पका हुआ मिष्ठान्न डाला जाता है—

१. प्रातः होम २. सायं होम ३. नवीन स्थालीपाक ४. बलिवैश्वदेव (भूतयज्ञ) ५. पितृयज्ञ ६. अष्टका और ७. पशुयाग (अशिक्षितों को शिक्षित करना)।

सात हविर्यज्ञ हैं जिनमें पुरोडाश आदि ४ प्रकारकी सामग्रीका प्रयोग किया जाता है। (शेष पृष्ठ १६ पर)

ओ३म

वेद-ज्योति

वर्ष ७] ऊर्ज सं. २०४०, नवम्बर १९८३ [अंक ११

जीवन यज्ञमय बनाकर मृत्यु को जीतो

मृत्योः पदम् योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरम् दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियासः ॥
(ऋग्वेद १०. १८. २, अथर्ववेद १२. २. ३०)

हे मनुष्यो, जब तुम मृत्यु के पैर को ढकेलते हुए चलोगे तो तुम लम्बी आयु को धारण करनेवाले तथा सन्तान और धन से तृप्त होओगे तुम शुद्ध, एतदर्थ अन्दर से पवित्र और यज्ञमय जीवन वाले हो जाओ।

पैर को यदि मृत्यु के तुम ठेलते आगे बढ़ोगे,
दीर्घ आयु, प्रजा, अतुल धन-धान्य से परितृप्त होगे।
कार्य तुम कोई न कोई विश्व में मौलिक करोगे,
और निज अस्तित्व को सार्थक बना करके रहोगे।

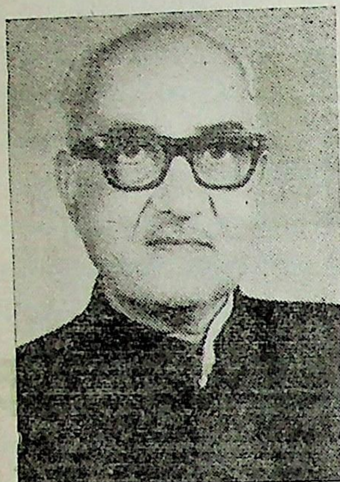
निरुद्देश्य विचर रहे क्यों ?

फिर उठो, यह घोषणा करदो कि मृत्युंजय तुम्हीं हो,
यज्ञमय जीवन बनाकर बन गये अक्षय तुम्हीं हो।
बाह्य-आभ्यन्तर सभी विधि शुद्धता में लय तुम्हीं हो,
सृष्टि और प्रलय न बाहर, सृष्टि और प्रलय तुम्हीं हो

किन्तु आज ठहर रहे क्यों ?।

— श्री जगन्नाथ प्रसाद

यज्ञ से तूफान, बाढ़, सूखा आदि पर नियन्त्रण



लेखक-- प० वीरसेन वेदश्रमी

अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्

वेदसदन, महारानी पथ, इन्दौर म. प्र.

१. समस्याओं का समाधान विज्ञान से संभव--

विश्व की विविध समस्याओं का हल विज्ञान द्वाराही संभव है। आज विज्ञानका साम्राज्य प्रत्येक क्षेत्र में है। प्राचीन काल में वेद के याज्ञिक और आध्यात्मिक विज्ञानके द्वारा हमारे वैज्ञानिक ऋषि मुनि विश्व की समस्याओं को हल करते थे। याज्ञिक विज्ञान में भौतिक और आध्या-त्मिक दोनों का सम्मिश्रण है।

२. विज्ञान पर आधिपत्य भेद से प्रभाव—

१९वीं सदी में पाश्चात्य देशों में उत्पन्न भौतिक विज्ञान उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होता गया और उसमें अब अत्यन्त तीव्र गति से प्रगति हो रही है। यदि विज्ञान देवों के अधिकार में रहता है तो उस से सबका पालन-पोषण तथा रक्षण होता है, जन समाज में सात्त्विक बुद्धि का उदय होता है, सर्वत्र सुख-शांति की वृद्धि होती है। यदि विज्ञान असुरों के हाथ में आ जाता है, तो राजसी वृत्ति, भोग विलास, ऐश्वर्य तथा स्वार्थ भावों की वृद्धि होती है और यदि विज्ञान राक्षसों के अधिकार में आ जाता है तो तामसी वृत्तियों की वृद्धि तथा विनाशक कार्यों में शक्ति लग जाती है।

३. प्राकृतिक उपद्रवों की वृद्धि --

आज हमारे भूमण्डल के अनेक देशों में अवर्षण [सूखा], अतिवृष्टि बाढ़ आदि द्वारा विनाश या आँधी, तूफान; चक्रवात आदि द्वारा विनाशक लीलाएँ बढ़ रहीं हैं। ये दैवी उत्पात हैं – प्रकृति-जन्य हैं। इन प्रकोपों से बचने का उपाय जानने की आज प्रमुख समस्या बन गई हैं। पहले ऐसे प्रकोप क्वचित् ही जीवन में देखे एवं सुने जाते थे- परन्तु अब तो प्रति वर्ष ही होने लगे हैं।

४. विषमता से प्राकृतिक विपत्तियाँ--

भूमि पोलीहोगी तो धँसेगी ही, जलका बाँध यदि टूटेगा तो नीचे की ओर ही वेग से बहेगा। वायु-मण्डल में यदि कहीं दबाव कम होगा तो आस-पास के मण्डल की हवायें उसको भरने के लिए तीव्र वेगसे दौड़ेंगी और आँधी तूफानका रूप धारण कर लेंगी। पृथ्वी समता का प्रयत्न करती है। जल, अग्नि और वायु भी समता का प्रयत्न करते हैं। विषमता से ही तीव्र हलचल और आंदोलन पैदा होता है और वही प्रकोप में प्रकट होता है।

५. पर्यावरण में समता से शांति --

पृथ्वी के धरातल से ऊपर के विशाल अन्तरिक्ष के क्षेत्र में जो खाली क्षेत्रदीख रहा है उसमें अनेक सूक्ष्म जल के और अनेक प्रकार के घनत्व के वायव्य रूपमें पदार्थ, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम रूपमें विद्यमान हैं। यह अन्तरिक्षका विशाल, अदृष्ट, सूक्ष्म प्रवाही पदार्थों का समुद्र विभिन्न प्रकार के ताप और शीत के प्रभाव से अनेक स्तरों में ऊपर नीचे तथा पृथ्वी के समानान्तर स्तरों में विभक्त होता रहता है और गति भी करता रहता है। अहोरात्र की नियमित गतिसे शीत एवं ताप की भी नियमित गति होती रहती है। इससे अंतरिक्ष या पर्यावरण के क्षेत्र के तत्त्वोंमें समता रहने से शांति बनी रहती है और दैवी प्रकोप आदि उत्पन्न नहीं होते हैं।

६. मानव द्वारा पर्यावरण-प्रदूषण में वृद्धि--

मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए औद्योगिक तथा युद्धात्मक विनाशक प्रयत्नों की प्रतिस्पर्धा से पर्यावरण को, अन्तरिक्ष के विशाल क्षेत्र को क्षुब्ध और असन्तुलित कर दिया है एवं विषम बना दिया है, जिसके परिणाम-स्वरूप आंधी-तूफान-अतिवृष्टि-अनावृष्टि दृष्टि गोचर होते है। वेद ने स्पष्ट कहा-

द्यां मा लेखीः अन्तरिक्षं मा हिंसीः (य. ५.४३)

अर्थात् द्यौ और अन्तरिक्ष के विशाल क्षेत्रको मत विकृत करो अर्थात् उनकी समताकी स्थितिको नष्ट मत करो। यदि द्यौ-अन्तरिक्ष के तत्त्वों के चयन-क्रम में हमारे प्रदूषण-कार्योंसे विषमता उत्पन्न होगी तो उसको सम बनानेके लिए प्रतिक्रिया रूपमें तीव्र क्षोभयुक्त गति,विनाश,उपद्रव और प्राकृतिक उत्पात होंगे ! अतः 'द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः' य.३६.१७ अर्थात् द्यौ-अन्तरिक्ष के विशाल पर्यावरण को शान्त स्थिर तथा अनुकूल रखने का प्रयत्न करना होगा।

। ७. पर्यावरण क्षेत्रमें ७ विनाशक मरुद्गण--

पर्यावरण के उपद्रवों में प्रधान रूप से वायु तत्त्व है और इसके सहायक अन्तरिक्षस्थ विद्युत् तत्त्व की सक्रियता तथा सौर-मण्डल का प्रभाव है वैदिक विज्ञान के अनुसार इन क्षेत्रों में ४९ प्रकार के वात या मरुद्गण निर्मित होते हैं। इनमें यदि विषमता, रिक्तता, खालीपन, कम दबाव का क्षेत्र उत्पन्न होता है तो ७ प्रकारके विनाशक भयङ्कर वात उत्पन्न होते हैं जिनके नाम वेद में निम्न प्रकार बताये गये हैं--

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च सासह्वांश्च अभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा। (यजु. अ. ३९.७)

१. उग्र-- प्रचण्ड तेज गति वाला। २. भीम-- अत्यन्त भयानक। ३. ध्वान्त- शब्द करने वाला। ४. धुनि- अत्यन्त कम्पायमान करनेवाला। ५. सासह्वान्- तोड़फोड़ करनेवाला, वृक्षादि उखाड़नेवाला ६. अभियुग्वा- टक्कर मारनेवाला और ७.विक्षिपः- एक स्थान के पदार्थोंको दूर फेंकनेवाला- ये ७ वात विनाशक कृत्य के उत्पादक हैं। इनकी विनाशक शक्ति को नष्ट करने की सामर्थ्य यज्ञ में है अतः इन केलिए स्वाहा द्वारा आहुति प्रदान करने का विधान वेदने किया,जिससे विषमता नष्ट होकर शान्ति हो।

८ पर्यावरण-शान्ति में यज्ञ की उपयोगिता-

यज्ञ द्वारा आहुतियाँ देने से एक विशेष प्रकारका घनत्वपूर्ण वायुमण्डल या पर्यावरण उत्तरोत्तर विस्तृत रूप में निर्मित होता जाता है और आँधी तूफान के आकर्षणकी क्षमता शिथिल होती जाती है तथा उस के वेग में शान्ति स्थापित होती जाती है। वेद ने द्यौ और अन्तरिक्ष के पर्यावरण की विषमता-पूर्त्यर्थ--

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्। (यजुर्वेद ५.२८)

बताया कि घी के सूक्ष्म वाष्प-कणों से द्यौ और अन्तरिक्षका पर्यावरण भरदेना चाहिए, इसके लिए

वायवे स्वाहा, अन्तरिक्षाय स्वाहा, दिवे स्वाहा, दिग्भ्यः स्वाहा। (यजुर्वेद २२.२६-२७)

अर्थात् अन्तरिक्ष, द्यौ, दिशा-उपदिशाओं में यज्ञ की स्वाहापूर्वक ध्वनि एवं आहुतियों के सूक्ष्म वाष्पीकरण के द्वारा रिक्तता को भर देना चाहिए। इस से आंधी तूफान आदि उत्तरोत्तर शान्त होंगे।

९. यज्ञ से मरुद्गणों में सामर्थ्य-वृद्धि-

४९ प्रकार के मरुद्गणों में ४२ अच्छे हैं। उनकी सामर्थ्य को प्रभावित करने के लिए वेद ने कहा-

मरुतश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। (यजुर्वेद १८.१७)

अर्थात् यज्ञ के द्वारा पर्यावरणके सूक्ष्म पदार्थों में आहुति के पदार्थों का मेल होगा और शान्ति देनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होगी तथा वे विनाशक सप्त मरुद्गणों से संघर्ष करके सन्तुलन बनानेमें सहायता देंगे। जैसे तालाब में चारों ओर से बँधे हुए जल में शान्ति होती है, प्रवाह नहीं होता, तथा उस में किसी दिशासे पानीकी निकासी करनेपर ही प्रवाह चलता है वैसे ही वायु-मण्डल में चारों ओर का दबाव बने रहने से वायु का वेग शान्त रहता है। अतः यज्ञ वातोपद्रव-शान्ति के लिए आवश्यक है तथा यह सप्त उपद्रवी मरुतोंको भी शान्त कर तूफानोंसे बचाता है।

१०. समुद्री तूफानों से रक्षार्थ यज्ञ --

प्रायः विनाशकारी तूफान समुद्र के किसी केन्द्र-स्थान से उत्पन्न होकर पृथ्वी के वायु-मण्डल के कम दबावके क्षेत्रे की ओर अग्रसर होते हैं। ऐसी स्थिति में अपने रक्षण के लिए वेद ने स्पष्ट कहा--

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अप्रतिधृष्याय

त्वा वाताय स्वाहा अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥ (यजु ३८.७)

अर्थात् समुद्री वायु, जल-भरी गतिमान् वायु; अत्यन्त बलवान् रौद्र वायु, जो वायु रोकनेमें असमर्थ प्रतीत होती है ऐसी आँधी-तूफानोंवाली वायु, रक्षाकर्ता वायु, क्लेश-निवारक वायु— इन सब के लिए आहुति प्रदान करो। इस प्रकार वेद ने समुद्रों से उत्पन्न वायुओं के लिए यज्ञ द्वारा आहुति का विधान वायु-मडल में घनत्व उत्पन्न करके उन के प्रचण्ड आक्रमण के शमन का उपाय बताया है

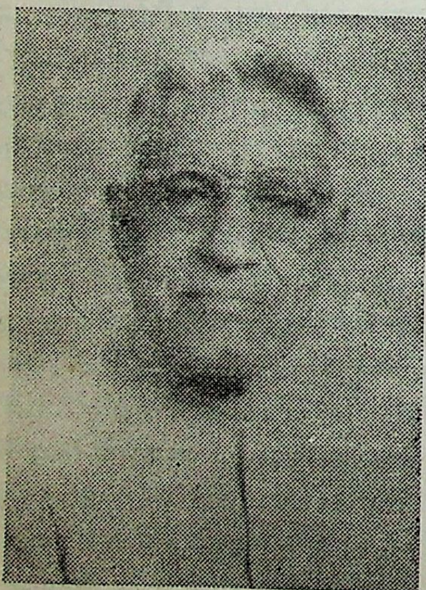
११. आहुति-द्रव्य के गुण-विज्ञान से सफलता–

यज्ञ के आहुति-विज्ञान को समझने के लिए द्रव्यों के गुण का ज्ञान परम आवश्यक है। वात-रोधक द्रव्यों की आहुतियों के सहयोग से अन्तरिक्षस्थ वात-उपद्रव शान्त होंगे। अतिवृष्टि को रोकने के लिए समुद्री पर्जन्य-वात के घनत्व को विरल एवं विच्छिन्न करने वाले तत्त्वों की यज्ञ में आहुतियाँ देनी चाहिए। इससे अतिवृष्टि का स्तम्भन होगा और बाढ़ की समस्यापर नियन्त्रण होगा। अवर्षण अर्थात् सूखे की स्थिति में यज्ञाग्नि में जल को आकर्षण करने वाले, मेघ को बनाने एवं वर्षाने वाले तथा समुद्री पर्जन्य-वात को आकृष्ट करने वाले पदार्थों की आहुतियाँ देनेसे मेघ बनेंगे और वृष्टि होगी तथा सूखे की समस्या हल होगी।

१२. प्रयोगार्थ यज्ञ-स्थानों का चयन—

जब समुद्री तूफान उठने की और उसकी गति व दिशा की घोषणा ऋतु-पर्यवेक्षण-शाला से प्राप्त हो तो उस मार्ग के दोनों तरफ ५०-५० और ७५-७५ किलोमीटर के अंतर से ४-४ यज्ञकेन्द्र स्थापित कर यज्ञ आरम्भ करने चाहिए। इन यज्ञ-केन्द्रों का प्रसारण क्षेत्र ६० अंश कोण विस्तृत क्षेत्र के आधार पर करना चाहिए। मानसून या तूफानके भूमि पर प्रवेश-सीमा के दोनों ओर के मार्ग में यज्ञ करना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ करने से समुद्री तूफानों का वेग भंग होगा। विनाशक आँधी, तूफान तथा अतिवृष्टि से रक्षा होगी॥

वेदों में सृष्टि-यज्ञ के आख्यान



लेखक— प० बिहारीलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ

यह सृष्टि एक दम इस रूपमें नहीं आ गयी वैज्ञानिकों का कहना है कि यह भूपिण्ड वाष्प रूप में, फिर ठोस उष्ण गोल पिंडों के रूप में, फिर प्राणियों के रहने योग्य अनुष्ण रूप में आया।

इस सिद्धान्त के साथ वैदिक धर्म के संघर्ष का कोई अवसर नहीं आता, क्योंकि वैदिक धर्म 'कुन फै कुन' [खुदा ने कहा— 'हाँ', बस सृष्टि हो गयी (मुस्लिम मत]का माननेवाला नहीं, और न ईसाई मत के समान सृष्टि-निर्माण का काल केवल ६ दिन ही बताता है

हाँ, वैदिकधर्म वर्तमान विज्ञानका पूरक अवश्य है। यह संसार किसकी गति देने से बना— इसके उत्तर में जब विज्ञान मौन है तो वेद घोषणा करता है कि इस का रचयिता वही है—'य आविवेश भुवनानि विश्वा'। जो सब लोकों में व्यापक है उसी ईश्वर ने यह रचा है। एक बीज को वृक्ष बननेमें अवरोधक शक्तियों से संघर्ष करना पड़ता है इसी प्रकार प्रकृति संघर्ष करती है।

जब सूर्य ने अपना राज्य स्थापित कर लिया तो क्या उनके विरोधी लोक नहीं थे? उन्हें उनसे लड़ना पड़ा होगा। यह सूर्य प्रकाशमय और दीप्ति-भंडार होने से 'इन्द्र' है। उसने जीवों के कल्याण के लिए वृत्रों का वध किया—

इन्द्रो दधीचोऽस्थभिर् वृत्राणि अप्रतिष्कुतः।
जघान नवतीर्नव ॥ (ऋ. १.८४.१३)

इन्द्र (सूर्य) ने दधीच (वायु) की अस्थियों (स्थायी तत्त्वों) से ९९ (असंख्य) वृत्रों को मार डाला।

ये वृत्र कौन थे? जब यह पृथ्वी आरम्भ में ठंडी होकर ठोस हुई तब इसपर निरा जल ही जल था। वह चारों ओर तमोमय वाष्पीय पदार्थ से छिपी हुई थी। यही वाष्प वृत्र है जिसे सूर्यने नष्ट किया।

इसमें दधीच (रुके हुए वायु) ने सहायता की। उसके वज्र (बिजली) के प्रभाव से कुहरा पानी बन कर भूमि पर गिर पड़ा। सूर्यने ही वराह नामधार होकर जल से इसे बाहर निकाला। जल सुखाकर इसे निवासयोग्य किया। यही कथा रूपमें वर्णित है।

ऐसे ही त्वष्टा की पुत्री सरण्यू का विवाह, सूर्य की पुत्री का चन्द्र से विवाह आदि सब कथाएँ सूर्य जड़ देवोंकी ही हैं जिन्हें बढ़ाकर ब्राह्मण-ग्रन्थों, महाभारत, पुराणोंमें पूरी कहानियाँ लिखी गयीं। उन को वास्तविक तथा उनसे सम्बन्धित देवताओं को चेतन मानकर पौराणिकोंने अनर्थ फैला दिया। उस से भी अधिक अनर्थ आज-कल के ऐतिहासिकों ने फैलाया कि इन आलंकारिक कथाओंको आर्य और द्रविड़ वा मन-गढ़न्त आदि-वासियों के युद्धों का सूचक मान लिया।

समुद्रसे चन्द्र पैदा हुआ यह बात हँसी की प्रतीत होती है किन्तु आदिसृष्टि में पृथ्वीका ही एक भाग उखड़ कर चन्द्र-रूप में इसकी परिक्रमा करने लगा और अपने रिक्त स्थान पर महासागर बना गया, भूमिका ही दूसरा भाग टूटकर मङ्गलरूपमें आकाश में चक्कर काटने लगा अतः 'भौम'कहलाया इत्यादि बातें संगत प्रतीत होती हैं।

वेदोंमें मानवी इतिहास नहीं है। निरुक्तकार जब 'इत्यैतिहासिकाः'लिखते हैं वहाँ भाव सृष्टि-इतिहास से ही है। यह सिद्धान्त ऋषि दयानन्दका नया नहीं है। उनसे १२६२ वर्ष पहले के स्कन्दस्वामी भी यही मानते थे। वे निरुक्त-भाष्य में लिखते हैं कि सब वैदिक इतिहास अर्थवाद रूप है। युद्धकी बात उपचार मात्र है। सत्यव्रत सामश्रमी ने भी ऐतरेयालोचन में देवों को जड़ सिद्ध करते हुए इन्द्र को सूर्य और वायु ही माना है। वे लिखते हैं कि वृत्र-वध की पौराणिक कहानी हवा से केलेके वन के समान नष्ट हो गयी। यास्क वेदों में इतिहास नहीं मानते उनके निर्दिष्ट ऐतिहासिक उस शैली में अर्थ करने वाले गाथा-नाराशंसी-वादी लोग थे।

अच्छा, अब एक प्रश्न रहता है कि वेदोंमें ऐसी पहेलिया क्यों आयीं और इन जड़ पदार्थोंकी गाथा क्यों गाई गई? इसका उत्तर यह है कि वेद काव्य है। कविता में लक्षणा-व्यंजना भी होनी चाहिए। वाच्यार्थके साथ 'ध्वनि' भी होनी चाहिए जिसे उस की आत्मा कहा है। अतः वेदों में सृष्टि-यज्ञ का वर्णन लाक्षणिकता तथा व्यंजना के साथ हुआ है।

रहा सृष्टि के पदार्थों का वर्णन वह तो ईश्वर की महिमा का ही गान है। चित्र की प्रशंसा चित्रकार की ही प्रशंसा है। सृष्टि के बिना सृष्टि कर्ता से प्रेम कैसे होगा? हाँ, शुष्क-हृदय पूछ सकते हैं कि वेद काव्य रूप में क्यों? सीधे सादे रूप में होने चाहिए थे। यहाँ यह समझना चाहिए कि जब सृष्टि की सुन्दरता का वर्णन करके मन को द्रवित करना है तब सरल वाक्य क्या काम दे सकते हैं? वेदोंमें जहाँ विधिनिषेध बताया गया है वहाँ सीधे वाक्य हैं—

मा गृधः कस्यस्विद् धनम् (किसीका धन न लो)
अनुव्रतः पितुः पुत्रः (पुत्र पिता का आज्ञाकारीहो)

किन्तु जब सृष्टि-वैचित्र्य का वर्णन करना है तब सादगी कैसे निभ सकती है? वहाँ तो रस, ध्वनि, अलंकार सभी कुछ होना आवश्यक है। वेद केवल शुष्कहृदयों के लिए नहीं है। यह तो सहृदय रसिको को भी ब्रह्म-रस-आप्लावित करने के लिए है। इस के अतिरिक्त वेद को साहित्य के सब अङ्ग भी बताने हैं। पहेली, कथात्मक काव्य, रहस्यवाद, प्रशंसा-निन्दा- सभी के उदाहरण वेदमें हैं। काव्यरूप गान का और कथा-रूप उपदेश का हृदयों पर कितना

[लेख का शेष अंश पृष्ठ ६ पर देखिये]

राष्ट्र कल्याण के ८ साधन

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः । अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ।। [ऋ० २ २१।५]

१ इन्द्रे यज्ञेन हिन्वाना- हे मनुष्यो, बिजली आदिसे राष्ट्र को यज्ञके द्वारा बढ़ाओ, हर प्रकार वृद्धि करो, वृद्धि करनेवाले राजा व नेता के अन्दर क्या गुण हों ? वेदमाता कहती है —

२. उशिजः— राष्ट्र की वृद्धि करने वाले के अन्दर ऊँचा आदर्श हो, वे उत्कृष्ट धुन के धनी और आदर्श पर ध्रुव हों। किसी के फुसलाने पर फिसलने की किंचित् मात्र सम्भावना न हो।

३ .मनीषी-राष्ट्र-उत्थानमें बहुत प्रकारकी समस्यायें आती हैं। अचानक संकट उत्पन्न हो जाते हैं, कमजोर दिल के साथी साथ छोड़ देते हैं, बल्कि गूढ़ रहस्य प्रकट कर देते हैं। ऐसी स्थिति में चिन्तन तो करते रहें पर चिन्ता न करते हों, समस्या को हर पहलू से विचारते हों परन्तु प्रभुदेव के सहारे पर चलनेवाले वे मनीषी हैं जिनका साहस ढीला नहीं पड़ता, कदम रुकते नहीं, रास्ता निकल ही आता है।

४. गा अवस्यवः- अपनी प्यारी मातृभूमि, मातृसंस्कृति की रक्षा तो हर कीमत पर होनी चाहिए- यह शरीर इसी मिट्टी से बना है, यह मस्तिष्क इस संस्कृति में सुदृढ़ बना, फिर इसके मान शान को बचाने के हेतु इसे सिर की बलि भी देनी पड़े तो भी कुछ मँहगा सौदा नहीं।

५. धियो हिन्वाना:—ऐसे राष्ट्र-मनीषियों के जीवन सदैव प्रभु-कृपा से कुशाग्र बुद्धि वाले होते हैं। प्रभु देव उन्हें निज दयालुता से नित्य नई सूझ प्रदान करते हैं। वे केवल बचाव 'स्कीम बनाने, प्रस्ताव पास करने, व्याख्यान देने तक ही नहीं, वे मेधावी आमिल बा अमल होते हैं। तत्काल सकेंत को क्रिया में परिवर्तित करते हैं। क्योंकि वे विश्वास रखते हैं कि कर्म की ज्ञान-तप से और ज्ञान की परिपक्वता कर्म से होती है इन्हीं के जीवन में पुरुषार्थ योजना कर्तृत्व और आस्तिकता का समन्वय होता है।

६. गातुं विविद्रिरे अप्तुरः- निरन्तर राष्ट्र-कल्याण के हितैषी जब विचरते रहते हैं तो उन्हें ऐसे ऐसे रास्ते सूझते हैं जिससे राष्ट्र की कमियाँ दूर होती हों और उन्नति लाने के साधनों को प्रगति मिले। इन खोजों पर गहन मनन के उपरान्त वह उन पर शीघ्रता से आचरण करते हैं, शुभ कार्यों को मुलतबी नहीं करते।

७. अभिस्वरा निषदा— इन उपलब्धियों को अपने तक सीमित रखना तो परमेश्वर की ज़ात के साथ अन्याय करना ही है; यह मेरा जीवन कबतक रहेगा ? परमेश्वर विश्वपति है- भुवः स्वरूप दुःख, विनाशक है, अपनी प्रजा के कष्टों की निवृत्ति-अर्थ परम दयालु देव ने मुझे कुछ सुझाया और मैं स्वार्थ के वशीभूत होकर उसे अपनी सम्पत्ति बनाकर कमाई का साधन बनाता हूं तो यह उसके साथ कृतघ्नता करता हूं।

वेदमाता इस सूक्ति के द्वारा आदेश देरही है कि इन सद्गुणों, सुप्रेरणाओं का अधिक से अधिक प्रचार करें ताकि इस प्रकारकी ज्योतिसे सर्वसाधारण लाभ उठायें।

इससे भी बढ़िया व्यवहार होगा कि हम अज्ञान में जकड़े और कष्टों में फँसे बन्धुओं के समीप—बीच में रहें। जहाँ राष्ट्रीय अवगुणों को दूर करें वहाँ संगठन का प्रचार करके मानवमात्र में ऊँच-नीच की भावना को समूल दूर करें। यह राष्ट्रीयताको सुदृढ़ बनाने का एकमात्र अचूक उपाय प्रभु देव ने दिया है।

८. द्रविणानि आशत — उपर्युक्त उपायों से राष्ट्र की व जन साधारण की आर्थिक स्थिति को सुधारा जाये। गरीबी सब पापों की जननी है। शरीर प्रकृति-जन्य है। शरीरकी रक्षा भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति पाने के लिए नितान्त आवश्यक है। तो शरीरकी रक्षा के लिए धन का अभाव एक बड़ी उलझन है।

इसी तरह बौद्धिक विकास के लिए भी आज धन एक प्रमुख साधन है। वह सर्व साधारण को राष्ट्र में प्राप्त होना ही चाहिए। तो इसके लिए राष्ट्र के सदस्य आलसी न हों। उन्हें कर्तव्य-निष्ठ बनाया जाये।

पतन अवश्य होता है यदि लोग अधिकार तो चाहें पर कर्तव्य न निभाएँ तथा राष्ट्र का ऋण न चुकाएँ।

धन के महत्त्व को बहुत से मन्त्रों में स्वीकारा गया है परन्तु कमाई पर हमारे ऋषि अंकुश लगाते हैं।

[१] धन कमाने के लिए स्वास्थ्य को न बर्बाद करें।

[२] धन कमानेके लिए चरित्र हनन न करना चाहिए।

[३] धन कमाने हेतु अपने जीवन का लक्ष्य प्रभु-प्राप्ति को नहीं भूलना चाहिए।

[४] धन हमारे लिएहै, हमारा जीवन केवल धन ही को कमाने के लिए नहीं है।

इसी तरह धन पाकर उसका व्ययकरना भी जानें-

[क] राष्ट्र के कल्याण में व्यय करें।

[ख] धन सत्सगों, यज्ञों में व्यय करें।

[ग] धन गरीब, मोहताजों के कष्ट की निवृत्ति में खर्च करना चाहिए।

निष्कर्ष— राष्ट्र-कल्याण हमारा परम कर्तव्य है। उसके लिए उपरोक्त वेदके ८ साधनों की हमें भरसक साधना करनी चाहिए। —※—

—महात्मा दयानन्द वानप्रस्थ, तपोवन, देहेरादून

※ वेदों में सृष्टि-यज्ञ के आख्यान ※

[पृष्ठ ७ से आगे]

व्यापक प्रभाव पड़ताहै इसे सिद्ध करने को टाल्स्टाय रवीन्द्रनाथ टैगोर और श्री प्रेमचन्द की कहानियों का संकेत पर्याप्त होगा। इनका प्रभाव वास्तविक इतिहाससे बढ़कर है। कथात्मक कविताके लिए वेद ने सृष्टिकी ही कथाओंको चुना क्योंकि वे नित्य हैं।

काव्य जितना व्यंजनात्मक होगा उतना ही रुचिकर होगा। संस्कृत-काव्यों में उत्कृष्ट कविताके कई कई अर्थ किये हैं। रहस्यपूर्ण वैदिक कविता के भी अनेक अर्थ हैं और पहले लोगोंने भी किये हैं। जैसे- 'चत्वारि शृंगास्त्रयोऽस्य पादा:' इस मन्त्रके अर्थ यज्ञ और शब्द दोनों रूपों में किए हैं। अस्य वामीय सूक्त के एक प्राचीन भाष्यकार श्री आत्मानन्द स्वामी ने अध्यात्म परक अर्थ (अद्वैतवाद की दृष्टि से) किया है, और इसमें खगोल का रहस्य भी निहित है। वृत्र से मिलती हुई कथा वृत्रके जनक त्रिशिरा विश्वरूप की है। जो(ऋ० १०.८.८९) को लेकर महाभारतकार ने उपबृंहित की है, यह कथा तैत्तरीय संहिता कांड २ प्रपाठक ५ और शतपथ (१.५.२) में भी है। वह विश्वरूप त्रिशिरा भी वाष्प पिंडत्रयी था और कुछ न था। उसे भी दधीच वायु की अस्थियों तत्त्व विशेषों (विजलियों)से तोड़ फोड़ डाला और वह कुहरे के रूप में वृत्र कहलाया।

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इस (इन्द्रोदधीचोऽस्थिभि:) मन्त्र का अर्थ सेनापति परक किया है। इसके ध्वन्यार्थ से सेनापति के कर्तव्य बताये हैं। इस मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ बड़ा सुन्दर है। इन्द्र (योगी जीवात्मा) दधीच की अस्थियों (ध्यान की स्थिर वृत्तियों) से तमोगुण वृत्रको मार गिराता है। ऐसे अनेक अर्थ इस वैदिक काव्य से निकलते हैं। सुन्दर भावों और ध्वन्यर्थों से वेद-मन्त्र भरे पड़े हैं। यदि हमारे विद्वान् मिलकर तप के साथ साथ स्वाध्याय करें तो बहुत कुछ सत्य अर्थ को प्रकाशित कर सकते हैं। मैं तो केवल संकेत ही कर सकता हूं सो ही कर दिया।।

जगमग ज्योति जलाओ

१ राधेश्याम आर्य, मुसाफिरखाना (सुलतानपुर)

असुर-वृत्तियाँ फैली भूपर अट्टहास करतेहैं निशिचर।
मानवताका रुदन चतुर्दिक् गूंज रहा धरतीपर सत्वर।
उठो;गरजते सिंहसदृश तुम असुरवृत्तियोंसे टकराओ।
जगमग ज्योति जलाओ !

घिरा धरापर घना अँधेरा लगता यहाँ तिमिरका फेरा।
रामकृष्णके वंशज जागो वैदिक-रणका बिगुल बजादो।
जगमग ज्योति जलाओ !

ज्ञानप्रकाश धरापर बिखरे सुख-सम्पत्ति-सफलता सँचरे,
मानवता-पथका अनुगामी बन मानव सब भूपर विचरे
शान्ति तथा समरसता भूपरपुन: पुरातनसो लेआओ।

सम्पादक का संक्षिप्त परिचय



१. नाम— वीरेन्द्र। (जन्म-पत्र में अङ्कित राशि-नाम सिद्धीश्वर। प्रमाणपत्र में अङ्कित वीरेन्द्र अग्निहोत्री।

२. जन्मतिथि— आषाढ़ कृष्ण ५, संवत् १९७२ वि० गुरुवार, १.७.१९१५ ई०।

३. जन्म-स्थान— हाथरस, ज़िला अलीगढ़, उ० प्र०

४. पूर्वजों का स्थान— उसहत, ज़िला बदायूँ उ. प्र. प्रपितामह— श्री हरलाल (काम्पिल्य से आये) पितामह— श्री मंगली लाल।

५. पिता— श्री हरिशङ्कर अग्निहोत्री, प्रधानाचार्य, सरस्वती विद्यालय, बरेली। 'अग्निहोत्री' उपाधि उन्हें आर्यसमाज, बिहारीपुर, बरेली ने दी।

६. माता—श्रीमती वसन्तीदेवी (देहान्त जब मैं दो वर्ष का था)। मातामह— श्री शिवचरन लाल. इंजीनियर, मथुरा। धर्मपत्नी— विमला शास्त्री।

७. गुरुजन— (१)पंडित बुद्धदेव शास्त्री, (२) पं० बिहारीलाल शास्त्री, (३)पं० अयोध्याप्रसाद शास्त्री (४)पं० रामचन्द्र सिद्धान्तालङ्कार, (५) पं० विद्यासागर शास्त्री, वेदालङ्कार आदि।

८. शिक्षा— सम्पूर्ण अष्टाध्यायी और यजुर्वेद कण्ठस्थ किया। शास्त्री, साहित्याचार्य, एम० ए० (संस्कृत तथा हिन्दी), काव्यतीर्थ, एल० टी०

९. सेवा-कार्य— अध्यापक, असिस्टैंट रजिस्ट्रार, गवर्न० संस्कृत कालेज परीक्षा, बनारस, असिस्टैंट इंस्पेक्टर संस्कृत पाठशाला उ० प्र०, प्रिंसिपल और ज़िला विद्यालय निरीक्षक (बदायूँ से सेवा-निवृत्त १९७३)

१०. साहित्यिक कार्य— सम्पादक (१) 'संघ' १९३६ (२) वेदवाणी वाराणसी १९४८-४९, (३) संस्कृत देववाणी लखनऊ १९७७ (४) वेदज्योति, रायबरेली लखनऊ १९७७ से अबतक। लेखक—१. धर्मशिक्षा २. स्वास्थ्य-शिक्षा ३. सामवेद सरल हिन्दी अनुवाद ४. यजुर्वेद अध्याय ३१ पुरुष सूक्त, ५. अध्याय ४० ६. वैदिक धर्मशिक्षा ५ भाग, ६. सत्यार्थ-सार, ७. दीपावली-पर्व-परिचय, ८. श्राद्ध-तर्पण का स्वरूप, ९. संस्कृत-कलिका-विकास, १०. भारतवर्षस्य भूगोलशास्त्रम्, ११. संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः (विशिष्ट) १२. वैदिक छन्दःशास्त्र, १३. यज्ञ-सामान्य विधि। १४. अथर्व वेद भाष्य [प्रेस में] १५. ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद।

११. विगत जीवन में सामाजिक कार्य– [१]आर्यसमाज की सदस्यता १९३३ से, आर्यसमाज बरेली के मन्त्री। [२] झांसी, वाराणसी, अल्मोड़ा, फतेहगढ़, रुद्रपुर, रायबरेली, बलरामपुर, उरई, अलीगढ़, बदायूँ, लखनऊ आदि में आर्यसमाज के प्रधान आदि रहे। [३] अधिष्ठाता शिक्षा वि०,आर्य प्र० सभा उ.प्र.। [४] मन्त्री सार्वदेशिक विद्यार्य सभा, नई दिल्ली। वर्तमान—उपप्रधान –जिला आर्य प्रतिनिधि सभा लखनऊ। मन्त्री विश्व वेदपरिषद् लखनऊ।

१२. भाषण और लेखन– १५ वर्ष की आयु में शास्त्री होकर भाषण और लेखन कार्य प्रारम्भ किया।

१३. वेद-पारायण यज्ञ—महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी मथुरा में सर्वप्रथम दस वर्ष की आयु में यजुर्वेदपारायण यज्ञ में पिताजी ने चारों वेद देकर सम्मिलित किया। सौ से अधिक यज्ञ सम्पन्न कराये। अजमेर में दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी पर चतुर्वेद पारायण में वेदपाठी ऋत्विज रहे जिसकी पूर्णाहुति पर शाहपुराधीश ने पैर छूकर चारों वेद आदि दक्षिणा में दिये।

१४. पिता जी का मृत्यु-सन्देश— "जीवन पर्यन्त वेद और आर्यसमाज का कार्य करते रहना"। —※—

सम्पादकीय—

यज्ञ सम्बन्धी शंका-समाधान

आर्यराष्ट्र वर्ष १७ अंक ३८ में प्रकाशित प० इन्द्रदेवजी पुरोहित, आर्यसभा, पीलीभीत की शङ्काओं का समाधान नीचे प्रस्तुत है—

❀ समिदाधान ❀

४ मन्त्रों से तीन समिधा छोड़ने का विषय निर्णीत हो चुका है श्री गंगा प्रसाद उपाध्याय, तथा स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने अयन्त इध्म० को निकाल दिया था। उनको उत्तर देकर पं० ब्रह्म जिज्ञासु जी आदि ने फिर स्वामीजी के पक्षको स्थापित कर अयन्तइध्म० मन्त्र से समिदाधान की पुष्टि की, जो अब प्राय: प्रचलित है उसमें विभ्रम उत्पन्न करना उचित प्रतीतनहीं होता। यदि मनुष्यकृत मन्त्रों को यज्ञ में न पढ़ा जाय तो कोई पाप तो नहीं होगा, किन्तु केवल विधि की सामान्य-एकरूपता भंग होगी ॥

१— स्वामी जी के देहावसान के पूर्व सस्कारविधि के १ से ४७ तक छपे पृष्ठ भी उन्हें देखने को मिल गये थे जिसमें समिदाधान भी है। अत: छपा समिदाधान देखने को न मिला —यहकहना सत्य नहीं। अयन्त इध्म० केवल पाठमात्र के लिए बढ़ाया - यह कहना अप्रमाण होनेसे ठीक नहीं। बढ़ाते समय एकएक मन्त्र से,कटना और मन्त्रके स्थानपर 'मन्त्रों' करना रहगया।

२—ऋषि दयानन्द इस युग के गृह्यसूत्रकार थे। उन्होंने यदि आश्वलायन कृत अयन्त ० को स्वीकारा तो हमने भी उनके अनुगामी होने से स्वीकार किया और अब सर्वत्र प्रचलित उसे हटाने की बात कहना जनता में बुद्धिभेद पैदा करना होगा।

३— एक नई बिशेष बात- जातवेदस् के लिए दो समिधाएँ बताती हैं कि जातवेदस् दो हैं- भवतन्न: समनसौ...जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य न: (यजु ५.३) अग्नि-विद्युत, अध्यापक-अध्येता, उपाध्याय-आचार्य।

अत: जातवेदस् केलिए २ समिधा सर्वथा उचित है। सभी समिधाएँ अग्नि के लिए हैं, जातवेद: और अंगिर: तो उसके विशेषण हैं।

४— अयन्त इध्म० के समान समिधाग्नि० मन्त्र को 'ओं' से आरम्भ किया है क्योंकि अयन्त इध्म...मन्त्र आश्वलायन का है और समि० आदि यजु ३.१-३ है।

५—समि० मन्त्र के अन्त में, जब कि समिधा नहीं छोड़ी जारही, 'स्वाहा, इदमग्नये इदन्न मम' कहना उचित प्रतीत नहीं होता। यह भी काटने से रहगया। आज कल इसका बोलना कहीं प्रचलित भी नहीं। किन्तु यदि बोला भी जाय तो कुछ हानि नहीं क्योंकि कई स्थलों पर आहुति न देने पर भी 'स्वाहा' बोला जाता है जैसे आचमन मन्त्रों में अमृतोपस्तरणमसि के पश्चात् स्वाहा बोला जाता है। स्वाहा का अर्थ केवल आहुति ही नहीं है।

इससे परीक्षा भी होती है कि कौन विधिको जानता है और कौन नहीं। न जानने वाला 'समिधाग्निं' के अन्त में 'स्वाहा' पढ़ते ही समिधा छोड़ने लगता है जबकि जाननेवाला समिधा न छोड़कर दूसरे 'सुसमिद्धाय' ० के अन्त में 'स्वाहा' पर ही दूसरी समिधा छोड़ता है।

❀ पाँच आज्याहुतियाँ ❀

जब 'अयन्त इध्म'० से ५ आज्याहुतियाँ महर्षि दयानन्द ने स्वयं विधान की और उन्हें चलते हुए सौ वर्ष हो गये तो अब उनका बहिष्कार करनेकी बात कहना अनुचित है।

१. आघारावाज्य भागाहुती 'मुख्य' होम के आदि अन्त में हैं—ये ५ आहुतियाँ सामान्य होमके आदिमें हैं।

जब ५ आहुतियों का विधान है तो केवल पाठमात्र ही क्यों पढ़ा जाय? ५ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२. सामान्य प्रकरण में उल्लेख होने से सर्वत्र विधान हो गया।

३. विषयसूची बनने के बाद इन ५ आहुतियों का विधान छपते-छपते हाशिये पर किया।

४. इसीलिये स्रुवा को पकड़ने का विधान इन ५ आहुतियों से पूर्व नहीं किया जा सका।

५. वेदमन्त्र न होने परभी उपयोगी अच्छे अर्थवाला होने से यह आश्वलायन गृह्य सूत्र (१.१०.१२) का मन्त्र महर्षि को प्रिय था। आचार्य की विधान हुई प्रिय विधि शिष्यों को क्यों न प्रिय लगे?

६. जलप्रोक्षण से पहले ५ घृताहुतियाँ अवैधानिक नहीं हैं क्योंकि इसका विधान आश्वलायन में है ❀

वैदिक यज्ञ– एक अध्ययन

लेखक–– श्री जगदीश आर्य सिद्धान्तरत्न [सासाराम]

वैदिक संस्कृति में यज्ञ का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह भौतिक, आध्यात्मिक दोनों है।

❀ यज्ञ का अर्थ ❀

यह शब्द यज् धातु से बना है जिसके ३ अर्थ हैं– दान, सङ्गतिकरण और देवपूजा। यज्ञमें तीनों हैं।

दान— इस का अर्थ त्याग है। आहुति के बाद इदं न मम (यह मेरा नहीं) कहा जाता है।

सङ्गतिकरण– अर्थात् मेल-मिलाप। इसे अंग्रेजी में हारमोनी कहते हैं। शरीर में वात-पित्त-कफ का सङ्गतिकरण भी एक यज्ञ है।

देवपूजा–– देव दो प्रकार के हैं— चेतन और जड़। चेतन देवों– विद्वानों का सत्कार और अग्नि आदि जड़ शक्तियों का उचित उपयोग ही देव-पूजा है। आज-कल जल-वायु दूषित हो रहे हैं। इनकी शुद्धि यज्ञमें घी-औषधियों की आहुतियों से होगी।

❀ यज्ञ के विभिन्न पर्यायों का भाव ❀

१. श्रेष्ठतम कर्म— शतपथ ब्राह्मण (१.७.१५) में यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म– यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कार्य बताया है।

२. अध्वर––हिंसा-रहित कार्य। पशुओंको मार कर होम करना मांसाहारी वाममार्गियों ने मध्य-काल में चलाया– यह 'अध्वर' से सिद्ध होता है।

३. होम–– यह दान-आदान अर्थवाली 'हू' धातु से बना शब्द बताता है कि अग्नि में आहुत पदार्थ कई गुना अधिक होकर वापस मिलता है।

४. क्रतु— विशेष कर्म। सैकड़ों यज्ञों को करने वाला इन्द्र (परमात्मा और जीवात्मा) 'शतक्रतु' है।

५. सेक्रीफाइस––(बलिदान) यह अंग्रेजी पर्याय यज्ञ में हिंसा मानने वालों ने चलाया है जो सर्वथा अनुचित है। वह बात 'अध्वर' शब्द से सिद्ध है।

❀ यज्ञ और अध्यात्म ❀

भौतिक द्रव्य-यज्ञ के साथ आध्यात्मिक ब्रह्मयज्ञ भी आवश्यक है। यह ज्ञान और योग के रूप में है। आध्यात्मिक साधना के बिना यज्ञ अपूर्ण है।

यज्ञ का उद्देश्य

यज्ञ के आरम्भ में कर्तव्य आचमन – मन्त्रों में उद्देश्य बताया गया है। जलके समान अमृत ईश्वर को विस्तर और ओढ़ने के समान सुखदायी अनुभव करता हुआ याज्ञिक सत्य, यश और श्री(शोभा सम्पत्ति) की प्रार्थना करता है। ये ३ उद्देश्य हैं।

जल-सिचन के ४ मन्त्रों में भी उद्देश्य बताये हैं– अदिति(अखंड ईश्वर), अनुमति (वेदवाणी), सरस्वती(विद्या) अनुमत करना तथा देव सविता से यज्ञ-यज्ञपति को ऐश्वर्य के लिए प्रेरित करने और केत (ज्ञान) को पवित्र तथा वाणी को मधुर करने की प्रार्थना। इसमें सभी उद्देश्य आगये।

यज्ञ का आरम्भ कब हुआ ?

जबसे मानव और वेद हैं तभीसे यज्ञ हैं। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के पहले ही मन्त्र यज्ञका वर्णन करते हैं। वेद कहता है— प्रसुव यज्ञम् (यजुर्वेद ११.७) अर्थात् यज्ञको प्रेरित करो। श्री युधिष्ठिर मीमांसक द्रव्मयज्ञ का आरम्भ त्रेता से मानते हैं। (द्रष्टव्य- वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं की ऐति० मीमांसा) किन्तु यह मत यथार्थ नहीं है। यज्ञ का आरम्भ तो वेदों से ही हुआ, उनका विस्तार त्रेता युगमें हुआ। यह यजुर्वेद ३.१-३ समिदाधान-मन्त्रों से सिद्ध है।

यज्ञों में भौतिक विज्ञान

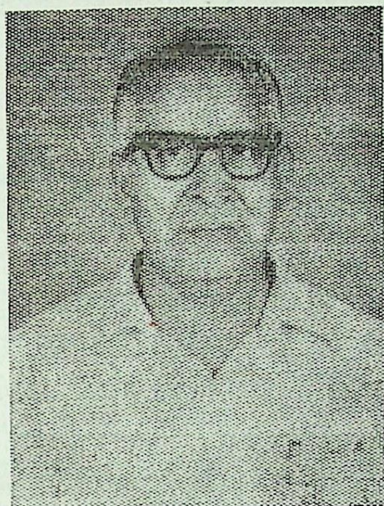
अग्नि-वायु-सूर्य-जल-विद्युत्-वर्षा आदि की विद्या (फ़िज़िक्स) का यज्ञ से अटूट सम्बन्ध है। इससे अतिवृष्टि, अनावृष्टि को रोका जा सकता है, रोगों की चिकित्सा भी की जा सकती है।

इससे ज्योतिष तथा गणित का भी सम्बन्ध है। ऋतु-मास-तिथि-काल और यज्ञशाला-कुण्ड-रचना जानने के लिए ये आवश्यक हैं।

यज्ञों में वेद-मन्त्र-पाठ आवश्यक है। इससे वेदोंकी रक्षा होती है, उनमें वर्णित विद्या की प्राप्ति होती है। अतः यज्ञअवश्य करना चाहिए।

×❀×

महर्षि दयानन्द सरस्वती



लेखक--श्री सुधीन्द्रनाथ शास्त्री एम. ए. स्नातक
उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्

वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञं धर्मशास्त्र-विचक्षणम् ।
वन्दे ऋषिं दयानन्दं स्वातन्त्र्य-पथ-प्रदर्शकम् ।।

सत्यदृष्टया सदा येन मतमसत्यं हि खण्डितम् ।
सत्य-ज्ञानार्थ-प्राप्त्यर्थं वेद-भाष्यम् प्रकाशितम् ।।

वैचारिक क्रान्ति के ब्रह्मा महर्षि दयानन्द, इस तथ्य को हृदयङ्गम करके कि जिस प्रकार प्राणहीन शरीर सर्वथा त्याज्य है उसी प्रकार संस्कृति-विहीन मत भी कभी उपादेय नहीं होसकता, आजीवन विश्व के कल्याण के लिए सत्यार्थके प्रकाश करने के लिए जीवन-संग्राम में प्रवृत्त रहे। गुर्जरप्रान्त के टङ्कारा ग्राम में समृद्ध राज-कर्मचारी औदीच्य कुलावतंस श्री कर्षनजी के यहाँ जन्म लेकर उन्होंने शैशवावस्था में ही अपनी आत्मा को पावन बनाया था। अपने पूज्य पिताजी के आदेशानुसार शिवोपासना करके सच्चे शिव की प्राप्ति के लिए अपने स्तुत्य जीवनको समर्पित कर दिया। पश्चात् अपनी प्रिय बहिन तथा गुरुसदृश चाचाकी मृत्युको देखकर मृत्युंजयी होनेका निश्चय करके घरसे निकलकर सांसारिक माया-मोहसे निरत होकर मुक्तिमार्गके पथिक बने। श्री पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा लेकर भ्रमण करते हुए जब मथुरा पहुँचे तो उनकी भेंट प्रज्ञाचक्षु उपाधि से विभूषित गुरुवर दण्डीस्वामी श्री विरजानन्द जी से हुई। प्रथम भेंट में ही गुरु ने शिष्य को तथा प्रभुकृपा से शिष्यने अपने आराध्य गुरु को पूर्ण रूप से पहचाना। शिक्षा-समाप्ति पर शिष्य द्वारा श्रद्धापूर्वक लौंगों की भेंट प्रस्तुत करने पर गुरु ने अपने प्रिय शिष्य से कहा--प्रियवर, मैं तुमसे कुछ विशेष गुरुदक्षिणाका आकांक्षी हूं। शिष्य का उत्तर था-- गुरुवर, यह शरीर आपकी सेवामें अर्पित नहीं, समर्पित है, आज्ञा करें। गुरु ने प्रिय शिष्य की भावना का आदर करते हुए कहा—

संसार से अविद्यान्धकार को दूर करो।

महर्षि दयानन्द, जिनका शरीर ६।। फुट लम्बा तथा गौरवर्ण आभायुक्त था, जिनपर मोहित होकर सांसारिक ऐश्वर्य उनको अपनी झोली में डालकर और भी अधिक ऐश्वर्यशाली होना चाहता था, गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य करके अविद्यान्धकार को दूर करने में लग गये। उन्होंने ५००० ग्रन्थों को आर्ष मानकर उनमें से वैदिक संस्कृति का सार निकाल कर अपने ३८ ग्रन्थों में प्रकाशित किया। उनका वेद-भाष्य आज भी हमारी संस्कृतिको ऊँचा उठाये हुए है। विश्व के विद्वानों ने उनकी ज्ञानगरिमा की प्रशंसा की है। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के द्वारा नीर-क्षीर-विवेक करके संसार का जो महान् उपकार किया है उसका मूल्याङ्कन वैज्ञानिक शताब्दीमें सभी प्रबुद्ध मस्तिष्क कर रहे हैं।

भाषण तथा लेखन द्वारा उन्होंने अपने जीवनके ५६ वसन्तों में जो कार्य किया उसकी गरिमा आज सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है।

जीवनदाता ऋषि को अज्ञानी लोगों ने १६ बार विष दिया, जिसे वे सहन कर गये, किन्तु अन्त में नन्हीं जान और डा० अली मर्दान खाँ के विष ने उन्हें मृत्यु-शैया पर सुला दिया

अन्त में अविद्यान्धकार को ध्वस्त कर दिवङ्गत

होते हुए दीपावलि के द्वारा प्रकाश को फैला कर 'हे ईश्वर, तेरी इच्छा पूर्ण हो' कहकर मुक्त हो गये। यही उनकी अन्तिम कामना थी— ईश्वर ज्ञान की, 'इच्छा' कर्म की, और 'पूर्ण हो' उपासना की अभिव्यक्ति थी। अर्थात् ज्ञान-कर्म-उपासना की त्रिवेणी में स्नान करके ही मानव-जीवन स्तुत्य तथ धन्य होता है। इस नादान विश्वका यह नियम होगया है-

'अमृत पिलाया जिसने उसको दिया जहर है'

परन्तु उस महान् आत्मा की ज्योति का प्रकाश स्वतन्त्र भारत में अवश्य ही प्रकाशित होकर रहेगा- यह ध्रुव सत्य है ॥

—❀—

महर्षिं दयानन्द प्रतिपादितं वेदनित्यत्वम्

❀ वेदार्थपारिजात-खण्डनम् ❀

[लेखकः— डा० ब्रह्मानन्द शर्मा भू० पू० निदेशक, ७ क अ १५ जवाहरनगर, अजमेर]

वेदार्थपारिजात [अग्रे संक्षेपः 'वेत'] मत निराकरण पुरस्सरं महर्षिदयानन्द मतसमर्थनाय मदीया ये लेखाः परोपकारी आदि पत्रेषु प्रकाशिताः तेषाम् एव अनुक्रमेण अत्र किंचित् प्रस्तूयते—

वेद नित्यत्व साधनाय महर्षिदयानन्देन योग शास्त्रम् अपि उद्धृतम्— स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। (१.२.३६) यः पूर्वेषां सृष्ट्यादावुत्पन्नानां अग्न्यादीनां प्राचीनानामस्मदादीनां भविष्यतां च सर्वेषां गुरुः, तदुक्तत्वाद् वेदानामपि सत्यार्थवत्त्वं नित्यत्वे वेद्यं (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ३२)

अत्र वेतः— 'तदपि न युक्तम्, वेद नित्यत्व प्रकमे ईश्वर नित्यत्व साधनस्य प्रकरणविरुद्धत्वात्' पृ ५२९

अत्र उच्यते—अत्र वेद स्रष्टृ रूपेण ईश्वरस्य नित्यत्वं साधितम्। यस्य वेदस्य स्रष्टा नित्यः, तेन सृष्टो वेदोऽपि नित्यः इति आयातम्, इति ईश्वर नित्यत्व साधनं न अत्र प्रकरण विरुद्धम्। ईश्वरस्य च वेद स्रष्टृत्वम् अत्र प्रयुक्तस्य गुरुशब्दस्य गृणाति इति व्युत्पत्त्यैव सिद्धम्— 'वेद द्वारा उपदिशति सत्यार्थान् स गुरुः'। (ऋ...का पृष्ठ ३२)

अस्मिन् एव प्रसंगे वेतस्य अयं तर्कः यद् गृणाति तत्त्वं योगं योगोपायं चेति गुरुरिति व्युत्पत्तिरेवात्र प्रकृतोपयोगिनी। अत्रोच्यते—अनेन किमेषोऽभिप्रायः यदीश्वरस्य गुरुत्वाद्वेदोपदेशः वहिर्भूतः? स न सिद्धः।

अनेनैव प्रसंगेन महर्षि दयानन्देन सांख्य शास्त्रम् अपि उद्धृतम्—निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्

अस्य अयम् अर्थः— वेदानां निज शक्ति अभिव्यक्तेः पुरुष सहचारि प्रधान सामर्थ्यात् प्रकटत्वात् स्वतःप्रामाण्य नित्यत्वे स्वीकार्ये। (भूमिका पृष्ठ३३)

अत्र वेतस्य आक्षेपः—अत्रापि नित्यत्वप्रतिपादकं किंचिदपि पदं नास्त्येव। न च निजशक्त्यभिव्यक्तेः तन्नित्यत्वसिद्धिः, सर्वस्यैव जगतस्तदीयनिजशक्त्यभिव्यक्त्या त्वद्रीत्या नित्यत्वापातात्। (वेत ५३०)

अत्र उच्यते— निज शक्ति अभिव्यक्तेः इति पद प्रयोगेणात्र महर्षिदयानन्देन स्वसिद्धान्तानुसारं वेद नित्यत्वं साधितम् ईश्वर-प्रसूतस्य वेदस्य जगतो यो भेदः सोऽस्माभिः पूर्वं प्रतिपादितः इति जगतोऽनित्यत्वेन न हि वेदनित्यत्व सिद्धान्तस्य कापि हानिः।

अनेनैव प्रसंगेन महर्षि दयानन्देन ब्रह्मसूत्रम् अपि उद्धृतम्-- शास्त्रयोनित्वात्। (१.१.१३)

अस्यायमर्थः-- ऋग्वेदादेः शास्त्रस्य अनेक विद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। न हीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादि लक्षणस्य सर्वज्ञ गुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति। सर्वज्ञस्येश्वरस्य शास्त्रमपि नित्यं सर्वार्थज्ञानयुक्तञ्च भवितुमर्हति। (भूमिका पृष्ठ ३३)

वेतस्य अत्र अयम् आक्षेपः—सूत्रस्यास्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य शास्त्रस्य ब्रह्मकारणकत्वेन वेदकारणत्वेन परमेश्वरसार्वज्ञसिद्धिपर्थंबसायित्वेन वेदनित्यत्वाप्रतिपादनम्। (वेत पृष्ठ ५३०)

अत्र उच्यते— वेदस्य ईश्वरप्रसूतत्वेन ईश्वरज्ञानरूपता। ईश्वरश्च नित्य इति तत्प्रसूतं वेदरूपं ज्ञानम् अपि नित्यमित्यायातम्। अत्र ये आक्षेपास्तेऽस्माभिः पूर्वमेव निराकृताः। किञ्च वेदस्य नित्यत्वम् अनेन सूत्रेण साधितम्--'अत एव च नित्यत्वम्' (१.३.२९)

अत: ईश्वरोक्तत्वात् नित्यधर्मकत्वाद् वेदानां स्वत: प्रामाण्यं सर्वविद्यात्वं सर्वेषु कालेषु अव्यभिचारित्वात् नित्यत्वं च सर्वैः मनुष्यैः मन्तव्यम् इति सिद्धम् । भूमिका पृष्ठ ३९

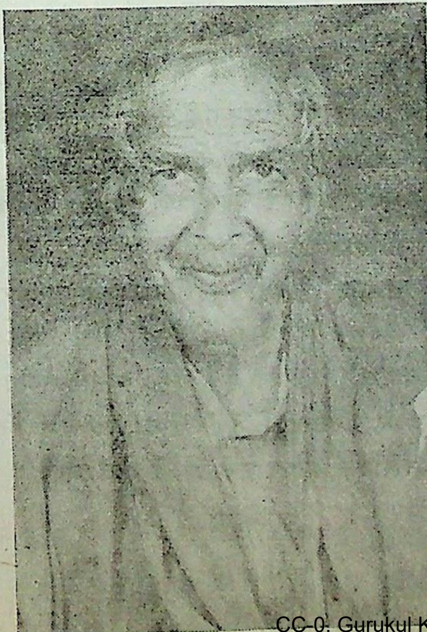
वेतस्य अत्र अयम् आक्षेप:—ब्रह्म कार्यस्योत्पत्तियत: शास्त्रस्यर्ग्वेदादे: पदवाक्यकदम्बात्मकस्य पौर्वापर्यरूपानुपूर्वीमूलकत्वेन पौर्वापर्यस्य च नित्येषु विभुषु वर्णेष्वसंभवेन कंठताल्वादिजनि,तवर्णाभिव्यक्तीनामेव तत्संभवेन तासां चानित्यत्वेनानित्यत्वेऽप्यतीतानागतेषु सर्वेष्वपि कल्पेषु आनुपूर्व्या: सर्वदा ऐकरूप्यात् प्रवाहरूपेण नित्यत्वमेव । (वेत पृष्ठ ५३१)

अत्र उच्यते- पौर्वापर्यरूपाया आनुपूर्व्या व्यक्तिकृतोच्चारणकाले एवावसरो न तत: प्राक् इति अस्माभि: पूर्वं प्रतिपादितम् । किञ्च एवंविधाया आनुपूर्व्या या प्रतीति: सापि अस्मदादिदृष्टया, न तु ईश्वरीय ज्ञान-दृष्ट्या इति ज्ञेयम् । किञ्च प्रथमकल्पे कण्ठ ताल्वादि जनित वर्णाभिव्यक्ता पौर्वापर्य रूपा या आनुपूर्वी अत्र सम्मता तस्या कल्प-समाप्तौ क्षय: इति कथं तस्या: प्रवर्तन-सम्भावना । किञ्च द्वितीयादिषु कल्पेषु यस्य वेदस्य ईश्वरोपदेशेनात्र प्रवर्तनं स्वीकृतं तस्य ईश्वरीय ज्ञाने स्थितिर्न वा ? नास्ति चेत्, कथमीश्वरेण तस्य प्रवर्तन-सम्भावना ? अस्ति चेत्, प्रथमेऽपि कल्पे न हि तस्य तत्र सद्भावे किमपि बाधकं तत्त्वमिति वेदस्य ईश्वरीयज्ञानरूपत्वमेव स्वीकार्यम् । अपरञ्च वेदस्य आविर्भावस्थाने प्रवर्तनमात्र एवेश्वरसामर्थ्यप्रदर्शनेन वेदस्येश्वरसमानान्तर रूपेण स्थितिप्रसंग: स्यादिति अस्माभि: पूर्वं प्रतिपादितम् ।

अस्मिन्नेव प्रसंगे वेतकारैरुक्तम्--शङ्कराचार्येण वेदानां नित्यत्वमभ्युपगम्यैवास्य सूत्रस्यार्थ: कृत इति यदुक्तं तदपि सर्वथाऽशुद्धम् तद्रीत्या ब्रह्मातिरिक्तस्य सर्वस्यैव ब्रह्मकार्यत्वेनानित्यत्वात् । ... पूर्वकल्पीयानुपूर्वीसव्यपेक्षानुपूर्वीनिर्माणकर्तृत्वेन वेदकर्तृत्वमीश्वरस्य । ... अत एव वेदानामपौरुषेयत्वमौत्पत्तिकत्वं सार्वकालिकत्वं नित्यत्वं च । (वेत ५३३)

अत्र उच्यते— वेदे तदानुपूर्वी प्रवाहे च ब्रह्मातिरिक्तत्वाविशेषे प्रथमस्यानित्यता अपरस्य च नित्यतेति एतत् परस्परविरुद्धम् । किञ्चात्र द्वितीयादिषु कल्पेषु पूर्वस्या एवानुपूर्व्या: स्थिति: तद्भिन्नाया: वा ? तद्भिन्नायाश्चेत्, कथमानुपूर्व्या: प्रवाह: ? पूर्वस्या एव चेत्, आनुपूर्वीरूपस्य वेदस्य नित्यत्वमेव आयातम् । —ॐ—

दयानन्द-तुल्यो महात्मा न कश्चित् !



कवि--स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, विद्यामार्तण्ड
जन्म--१२.२.१९०१ निर्वाण-- ८.११.१९७८

सदा सत्य-मानी, सदा सत्य-वादी,
सदा सत्यकारी, परम आप्तवर्य: ।
सुधी निर्भय: श्रौत सत्यस्य वक्ता,
दयानन्द-तुल्यो महात्मा न कश्चित् ॥१॥

भवेद् वेद-धर्मस्य लोके प्रचार:,
भवेयु: समस्ता: जना: वेद-भक्ता: ।
इदं ध्येयमुद्दिश्य यत्नं प्रकुर्वन्,
दयानन्द-तुल्यो महात्मा न कश्चित् ॥२॥

विषं येन पीतं प्रदत्तं विमूढै:,
परं सत्य-मार्गं जहौ यो न जातु ।
सदा सिंहवद् यो जगर्जात्र वीरो,
दयानन्द-तुल्यो महात्मा न कश्चित् ॥३॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेद-भाष्य शैली

प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार, ६१ कांवली रोड देहरादून



मैंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में लगभग २० वर्षों तक वेदाध्यापन किया,१९४२ ईस्वी में सेवा मुक्त होने के पश्चात् अद्यावधि,प्राय: वैदिक स्वाध्याय तथा वेदों पर लिखने में व्यापृत रहा हूं। मुझे जो वेदों में श्रद्धा पैदाहुई उसमें प्रेरणाएं मुझे महर्षि की वेदभाष्य शैली से हुई। ऋषि की शैली के आधार पर ही आर्य वैदिक विद्वान् वेदार्थों में सफल हो रहे हैं। पाण्डेचरी के योगी स्वर्गीय श्री अरविन्द ने भी महर्षिके वेदभाष्य की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है। सायणाचार्य आदि के भाष्य,ब्राह्मणग्रन्थगत तथा कल्पसूत्रगत याज्ञिकार्थों पर आश्रित हैं, जो कि सर्वसाधारण केलिए जीवनोपयोगी नहीं। परन्तु महर्षि दयानन्द की वेदभाष्य शैली में वैयक्तिक जीवन, गार्हस्थ्य,सामाजिक,राजनैतिक,सार्वभौमिकजीवनों तथा आध्यात्मिक और वैज्ञानिकतत्वों पर अद्भुत प्रकाश पड़ता है। पढ़ते समय यह धारणा पैदा होती है कि मन्त्रों के महर्षिकृत अर्थों में प्रासङ्गिकता नहीं, जैसा कि चंडीगढ गोष्ठी में श्री सुदर्शनदेव और श्री अभयदेव ने कहा। क्या महर्षि अथकृत प्रासंगिकता और आप्रसंगिकता के परिज्ञान से शून्य थे? जिस महर्षि ने निज विद्वत्ता, भविष्यद्रष्टृत्व, योग्यता के आधारपर भारतवर्ष की काया पलट दी उसके लिए प्रासंगिकता का विषय क्यागूढ़ था जिसे कि वे न जान पाये? आदरणीया प्रज्ञाजी द्वारा (जो कि उपरिकथित संगोष्ठी में उपस्थित थीं) प्रदर्शित त्रिविधार्थ शैली है जिसे दर्शाने के लिए महर्षि ने वेद भाष्य किये हैं। उन के पास इतना समय न था कि वे प्रति सूक्त और प्रति अध्यायके प्रासंगिक अर्थ दर्शा सकते। इसलिए मन्त्रार्थ करते समय दैवत पदों की त्रिविधरूपता को जगह २ पर महर्षि ने दर्शाया है। महर्षि दयादन्द का वेदभाष्य आर्य तथा आर्येतर वैदिक विद्वानों के लिए वेदार्थ के लिए महाकोष रूप है। इसका आश्रय लेकर त्रिविधरूपता को ध्यानमें रखकर सूक्तों और अध्यायों के प्रासंगिक अर्थ करने चाहिए। यह कार्य श्रद्धालु वैदिक विद्वानों को करना चाहिए। संयोगवश महर्षि की निर्वाण शताब्दी मनाई जाने वाली है। परोपकारिणी सभा अजमेर, जो महर्षि की उत्तराधिकारिणी है -वह वेदोंके प्रासंगिकभाष्यों के कराने में विद्वानों को प्रेरित करे। प्रासंगिक भाष्यों में आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि विशेषतया अपनानी चाहिए और एकसूक्त और अध्याय में एक शैली की प्रासंगिकता रहे। यदि, सूक्त या अध्याय में अपनाई शैली में तद्भिन्न शैली का अर्थ भी प्रतीत हो तो उसे टिप्पणी में दे दिया जाय। इस शैली पर वेदभाष्य सम्पन्न हो जाने पर उनके अनुवाद विदेशी भाषाओं में कराने की कोशिश करनी चाहिए। अथवा विदेशों में वेद प्रचार के लिये चारों वेदों में से आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मन्त्रोंका चुनाव करके एक ग्रन्थ पहिले तय्यार करवा कर उनके अनुवाद विदेशी भाषाओंमें करवाने चाहिए शेष प्रासंगिक भाष्य शनैः शनैः होते रहेंगे।

—❀—

हवन से लाभ

लेखक-- श्री धर्मजित जिज्ञासु मन्त्री आर्यसमाज न्यूयार्क, ५३-४९ स्मार्ट स्ट्रीट फ्लुशिंग

मैं जब अमेरिका आया हवन करनेमें कुछ बाधा उपस्थित हुई-- १. बाहर बिना पुलिस-आदेश के आग नहीं जला सकते। २. अन्दर घर काला होगा। एक हिन्दू-मन्दिर में भी यह आपत्ति हुई। ३. यहाँ तनिक धुएँ को भी वायु-दूषणकारी समझा जाता है। ४. हर घर में अग्नि-सूचक घंटी लगी है जिसकी सूचना पाकर आग बुझाने वाले ऐंजिन आजाते हैं। इसके बचाव के लिए हवन के समय घंटी की बैटरी निकाल लेते हैं।

तीसरी मुख्य आपत्ति का निराकरण आवश्यक है। महर्षि दयानन्दने लिखाहै कि हवनसे वायु शुद्ध होती है। इसे विज्ञानसे पुष्ट होने पर ही माना जा सकता है। श्री प० वीरसेन वेदश्रमी की प्रेरणा से मैंने कई स्थानों को पत्र लिखे। २ से उत्तर मिला-

१--श्री बर्नर मैटजगर, सभापति, क्रिया योग इन्स्टीटयूट वेस्ट जर्मनी ने लिखा कि उनके अनुसन्धान का लिट्रेचर नीचे लिखे स्थानसे मिलेगा-

श्रीमती लिंडा सी रिकाडा, अग्निहोत्र प्रेस, पो. बाक्स १३, रेन्डेल टाउन, मेरीलेन्ड २११३३, अमरीका। वहाँ से लिट्रेचर खरीद लिया।

अग्निहोत्र प्रेस से मिले पत्र में लिखा है--

पृथ्वी के धरातल पर आज जो बहुत अधिक विषाक्तता है उसे ध्यान में रखते हुए हम समझते हैं कि मनुष्य के सामने अब यह प्रश्न नहीं रह गया है कि वह अग्निहोत्र करे व न करे, अब सिर्फ सवाल यही है कि वह कब अग्निहोत्र को अपने जीवन में धारण करे। अग्निहोत्र की भस्म स्वयं में एक चमत्कार है। वह सर्व रोग विनाशक है। आज अमेरिका व यूरोप में हजारों अग्निहोत्री हैं जो दैनिक यज्ञ द्वारा अपना व समाज का महान लाभ कर रहे हैं।

२-श्री बर्टहोल्ड जैहल, कोलिन स्ट्रेव १३७७६० रैंडौल्फजैल, प० जर्मनी (फोन० ७७३२५३४३८) का जर्मन भाषा में लिखित पत्र मिला। वह पत्र ४ पृष्ठों का लम्बा है। उसमें वे लिखते हैं 'हमने विशेष अनुसंधान अग्निहोत्र भस्म के होम्योपैथिक रूपेण सूक्ष्म अनुपानों के संबन्ध में किया है और हमारा निष्कर्ष यह है कि अब तक उठी हुई सब समस्याओं का समाधान अग्निहोत्र की भस्म के विभिन्न अनुपानों द्वारा किया जा सकता है।' वे लिखते हैं कि उनके अनुसंधान चालू हैं। उन्होंने अब तक अग्निहोत्र का भस्म (जिसे दवाइयों की भाषा में उष्टा कहते हैं) से निम्न लिखित दवाइयाँ तैयार की हैं--

(१) अग्नि होत्र पाउडर-- इस के तय्यार करने में अग्निहोत्र भस्म को अच्छी तरह पीसा व छाना जाता है। इस पाउडर को शरीर पर मला जा सकता है व इसे मुख द्वारा भक्षण भी किया जा सकता है।

(२) अग्निहोत्र कैपसूल-- ये हवन की भस्म से तय्यार तथा मुख से सेवन किये जाते हैं।

(३) अग्निहोत्र मल्हम--घी में १० प्रतिशत भस्म मिलाकर बनता तथा मुख द्वारा और मालिश कर काम में लाया जाता है।

(४) अग्निहोत्र क्रीम-- घी को १५ बार तिगुने पानी में उछाल कर, १० प्रतिशत भस्म मिला कर केवल खाल पर मली जाती है। यह ठंडी होती है।

(५) अग्निहोत्र आई ड्राप्स--१ भाग भस्म, १० भाग जल उबालकर नेत्र-बिन्दु तय्यार होता है।

(६) गुदा में चढ़ाने की बत्ती--१७ भाग भस्म ८३ भाग घी मिलाकर ठंडी बत्ती बनायी जाती है।

(७) अग्निहोत्र पाउडर गैस-- १ प्याले गरम पानीमें १ चम्मच भस्मकी गैस साँस से खींचना।

ये अनुसन्धान चकाचौंध वत् हैं। आशा है कि भारत में भी ऐसे अनुसन्धान करके अग्निहोत्र से पूरा लाभ उठाया जायगा और यज्ञ-महिमा बढ़ेगी॥

महर्षि दयानन्द के जन्म की तिथि

[लेखक— श्री आदित्यपालसिंह आर्य, ऐफ ५ । ५२, चार इमली, भोपाल]

वदज्योति के जून अङ्क में श्री इन्द्रदेव पुरोहित ने ऋषि की जन्म-तिथि फाल्गुन शुक्ल २ सं० १८८१ तदनुसार १९ फरवरी १८२५ इ० बताई है। जबकि सभी को ऋषि का जन्म १८२४ ई० मान्य है। यह तभी सम्भव है जब संवतारम्भ से लेकर ३१ दिस० के मध्य ऋषि का जन्म किसी तिथि को हुआ हो। ऐसी तिथि प० अखिलानन्द शर्मा के अनुसार भाद्र शुक्ल ९ सं० १८८१ तदनुसार २० सितम्बर १८२४ ई० है। इस विषय में उनका यह पद्य द्रष्टव्य है—

मासि भाद्रपदे पक्षे सिते वारे बृहस्पतेः।
नवम्यां मध्यमायाते भास्करेऽपि विहायसः।।
नक्षत्रतिशुभ्रे मूले योगेति प्रीति वर्द्धने ।
चन्द्राष्टवसुराकेशे योजनाल्लब्धभावेन ॥
विक्रमादित्यनृपतेर्वसरे जगतां गुरुः ।
निर्गत्य जननी कुक्षेरागतो जगतीतले ॥

अतः ऋषि की आतम कथा के वाक्य देखिये—

[अ] इस प्रकार १४वें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता संपूर्ण ओर कुछ अन्य वेदों का भी पाठ पूरा हो गया था।

[ब] जब शिवरात्रि आई तब त्रयोदशी के दिन कथा का महात्त्यम सुना के शिवरात्रिके व्रत करने का निश्चय करा दिया ...जब चतुर्दशी की शाम हुई तब०

उपरोक्त बिषयों से स्पष्ट है कि ऋषि के जन्म दिन के पश्चात् जब शिवरात्रि मनाई गई तब तक (अर्थात् सितम्बर से फरवरी तक)प्रायः ५ मास बीत चुके थे। इसीलिऐ ऋषि ने उपरोक्त कथन किया है जबकि श्री इन्द्रदेव पुरोहित के लेखानुसार ऋषि जन्मदिवस शिव रात्रि के कुछ काल पश्चात् है।

महर्षि के उक्त कथन [अ]के शब्दों '१४वें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक' का सम्बन्ध सितम्बर १८३७ फरवरी १८३८ तक के ५ मासों से ही है। कि जिस समय तक उन्होंने वेदादि का पाठ पूराकर लिया था। सो ये ५ या ६ मास से न्यून होने से आरम्भ के प्रतीक हैं। यदि अधिक होते तो यह कथन ऋषि दूसरी करते अर्थात चौदहवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने से पहले तक . . . '

आगे विवाह एवं गृह छोड़ने का प्रसंग देखिए—

१– २०वां वर्ष पूरा होने तक विवाह प्रसंग रोके रखा गया। जिससे भाद्रपद सं० १९०१ आ गया।

१– पुनः ऋषि ने अपने पिता से काशी भेजने का अनुरोध किया जिस पर पिताने मना किया और कहा अगले वर्ष तेरा विवाह होगा, आदि . .।

३– २१वां वर्ष पूरा होने तक विवाह की तय्यरी कर दी गई जो एक मास में ही हो गई थी। तय्यारी होने के साथ ही स्वामी जी की आयु २१ वर्ष हो गई थी। इस तरह भाद्रपद सं० १९०२ आ गया था।

४– पुनः कुछ दिन बाद ऋषि ने अश्विन मास के कृष्ण पक्ष में ॐ गृहछोड़ दिया। यह घटना क्रम स्वामी जी के २२वें वर्ष का है। अतः स्वामी जी के लेखक ने १८८१ में २२ जोड़कर = १९०३ सं० में घर छोड़ना लिख दिया और स्वामी जी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। क्योंकि आत्मकथा का यह अंश स्वामी जी ने अपनी दस्तों की बीमारी के समय बरेली में अपने लेखक को बोलकर लिखाया था।

५– इस तरह डेढ़मास तक घूम फिर कर ऋषि सिद्धपुर के मेले में जो कार्तिक पूर्णिमा पर लगता है। पहुंच गये जहाँ उनके पितादि खोजने पहुंच गये श्री इन्द्रदेव वाली तिथि मानने से लगभग ८ मास का अन्तर पर पिता-पुत्र की यह भेंट सम्भव है जो उनके लाड़ले बेटे के घर छोड़ने के पीछे बहुत समय तक भी घरवालों द्वारा उनकी खबर न पा सकने का द्योतक है।

प० अखिलानन्द द्वारा दी गई तिथि को ही प० श्री कृष्ण शर्मा आर्योपदेशक, राजकोट ने सही पाया और ऋषि की जन्म-कुण्डली पाकर इसकी पुष्टि की है।

डा० भवानी लाल भारतीय की भी मान्यता इसी के पक्ष में है जो उन्होंने मुझसे चंडीगढ़ में व्यक्त की थी।

यज्ञों का वर्णन— सौत्रामणि यज्ञ यजुर्वेद अध्याय १९

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

यजुर्वेद में दर्श, पौर्णमास, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध [सर्वमेध] और सौत्रामणि आदि यज्ञोंका वर्णन मिलता है। १९वें अध्यायके १३-३० मन्त्रोंमें सौत्रामणि यागके प्रायः समस्त लगभग ७६ पदार्थों और क्रियाओं का वर्णन किया गया है—

उवट-महीधर— सुत्रामा = अच्छा रक्षक (इन्द्र), तत्सम्बन्धी यज्ञ = सौत्रामणि।

महर्षि दयानन्द— यज्ञ-सूत्र की मणि = ग्रन्थि जिसमें वह यज्ञ सौत्रामणि।

मन्त्र १३-- (१) दीक्षणीयेष्टि में (२) प्रायणीयेष्टि में (३) सोमयाग में —

दीक्षायै रूपं शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि।
क्रयस्य रूपं सोमस्य लाजाः सोमांशवो मधु॥

सं०	उवट-मही० निर्दिष्ट पदार्थ	दयानन्दनिर्दिष्ट पदार्थ
१. शष्प	नवप्ररूढ़ व्रीहि = चावल	शुद्ध धान्य
२. तोक्म	,, यव = जौ	सन्तान
३. सोम	सोमरस	सोम औषधि–रस
४. लाजा	खीलें	खीलें
५ सोम के अंशु		सोम के अंश
६. मधु	मीठे मीठे पदार्थ	शहद

मन्त्र १४– (४) आतिथ्येष्टि (५) घर्म (महावीर) (६) उपसदिष्टि में--

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत् तिस्रो रात्रीः सुरासुता॥

७. मासर	व्रीहि, श्यामाक, ओदन, आचाम चूर्ण	महीनों में रमण करने योग्य आतिथ्य
८. नग्नहु	सर्ज की छाल आदि २६ वस्तुओं का चूर्ण	नंगों को वस्त्र आदि का दान
९. सुता	सुरा चुआई शराब गड्ढेमें ३रात गाड़ना	निचोड़ा सोम रस ३रात्रि अतिथि निवास

मन्त्र १५ से २३ तक-- सोम-याग में--

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत् परिषिच्यते।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्र सरस्वत्या॥१५

१० परिस्रुत	चुआई शराब	औषधि-रस
११. दुग्ध	दूध (इन्द्र-अश्वि-सरस्वती के लिए)	गौ आदि का दूध (ऐश्वर्यच्छुक के लिए वैद्यों तथा विदुषी पत्नी द्वारा)

आसन्दी रूपं राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी।
अन्तर उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक्॥१६॥

१२. आसन्दी	राजा सोमकी चौकी	यज्ञका आसन
१३. सुराधानी	शराब का घड़ा	सोम का घड़ा
कुम्भी	,, की सुराही	अन्न की मटकी
१४. अन्तर	वेदि का बीच	प्राण-हेतु अन्न
१५. कारोतर	सुरा छाननेकी छन्नी	कर्मचारी
भिषक्	इन्द्र-यजमान का वैद्य	वैद्य

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्।
यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना॥१७॥

१६. वेदि	सोमयाग की	यज्ञ की भूमि, सामग्री
१७. बर्हि	कुश	बड़ा पुरुषार्थ
१८. यूप	पशु बाँधने का खम्भा	मिश्रित व्यवहार
१९. अग्नि	यज्ञाग्नि	अग्नि और विद्युत्

हविर्धानं यदश्विना आग्नीध्रं यत सरस्वती।
इन्द्रायैन्द्रं सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः॥१८॥

२०. हविर्धान	अश्वि से प्राप्त हवि-भंडार	शुद्ध पात्र
२१. आग्नीध्र	सरस्वती ,,	,, यजमान
२२. ऐन्द्र सदः	इन्द्र का स्थान	पात के लिए घर
पत्नीशालम्	यजमान की पत्नी का घर	पत्नी-शाला
२३. गार्हपत्य	गार्हपत्य	गृहपति से संयुक्त घर

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य।
प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः॥१९॥

२४. प्रैष	प्रैष मन्त्र	भृत्यों को आज्ञा
२५. आप्री	विशेष मन्त्र	परिचारिकाओंको आज्ञा
२६. प्रयाज	,,	उत्तम यज्ञ-साधन
२७. अनुयाज	,,	यज्ञ–पदार्थ

२८. वषट्कार　आहुति　यज्ञ के कर्म

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवींष्या ।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्यामिर्वषट्कारान् ॥२०॥

२९. पशु　　गौ आदि पशु
३०. पुरोडाश　　पके संस्कृत पदार्थ
३१. हवि　　होम योग्य वस्तुएं
३२. छन्द (देखो मन्त्र २८) गायत्री आदि छन्द
३३. सामिधेनी　　उत्तम समिधा
याज्या, वषट्कार यज्ञ-क्रिया, धर्म करने वाले

धाना: करम्भ: सक्तव: परीवाप: पयो दधि ।
सोमस्य रूपं हविष आमिक्षा वाजिनम्मधु ॥२१॥

३४. धाना भुने अनाज सोमरसरूप भुने जौ आदि
३५. करम्भ उदमन्थ　,, मथने का साधन
३६. सक्तु　　,,　सत्तू
३७ परीवाप हविष्पंक्ति ,, सब ओर बोया खेत
३८. पय:　दूध　,,　दूध
३९. दधि　दही　,,　दही
४०. आमिक्षा (पयस्या)　दहीदूध मीठा मिला
४१. वाजिनम् (छेना-पनीर)　अन्नों का सार

धानानां रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।
सक्तूनाम् रूपं बदरमुपवाका करम्भस्य ॥२२॥

४२. कुवल कोमल बेर　बेर के समान कोमल
४३. गोधूम　गेहूं　　गेहूँ
४४. बदर (बेर) सक्तुओं का बेरफल के रंग तुल्य
४५. उपवाका: करम्भ का जौ रूप दहीयुक्त सत्तू

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि ।
सोमस्य रूपं वाजिनं सोमस्य रूपमामिक्षा ॥२३॥

४६. यवा: पय:　　जौ का पानी
४७. कर्कन्धु एक प्रकार दही बेरों-समान दहीरूप
वाजिन तथा आमिक्षा (देखो मन्त्र २१)

आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावोऽनुरूपः ।
यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा ये यजामहाः ॥२४॥

४८. आश्रावय स्तोत्रिय स्तोत्र विद्यार्थियों को शिक्षा
४९. प्रत्याश्राव अनुरूप ऋचायें विद्या विषयानुकूल

५०. यज धाय्या यज्ञकर ऐसी धारण-योग्य आज्ञा
५१. ये यजामहा:　जो यज्ञ करते हैं
प्रगाथ　जो उत्तम रीति से गाये जाते हैं।

अर्धऽऋचैरुक्थानां रूपं पदैराप्नोति निविदः ।
प्रणवैः शस्त्राणां रूपं पयसा सोमऽआप्यते ॥२५॥

५२. अर्धर्च उक्थ्य अर्द्ध ऋचाओं से स्तोत्रविशेषरूप
५३. पद निविद प्रणव पदों व ओंकारोंसे शस्त्ररूप
पय (देखो ३८) सोम जलसे रसविशेष प्राप्तहोता है

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् ।
वैश्वदेवं सरस्वत्या तृतीयमाप्तं सवनम् ॥२६॥

५४. अश्विदेव प्रातःसवन सूर्यचन्द्रसे प्रातःयज्ञ प्रेरणा
५५. इन्द्र ऐन्द्र मध्यदिन सवन विद्युत्से दूसरा होम
५६. सरस्वती वैश्वदेव ३य सवन सत्यवाणी से तीसरा

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति २७

५७. वायव्य (सोमपात्र) वायु देवतावाले पदार्थ
५८. सत (बैतस पात्र) से द्रोण कलश
कुम्भी　　धान्य और जल के दो पात्र
५९. स्थाली　　पदार्थों को रखने व पकानेके ,,

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः ।
छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥२८

६०. यजु यजुर्वेद　संगतिकरण के साधनों से
६१. ग्रह (पात्र)　उत्तम व्यवहार
६२. स्तोम　पदार्थों के गुणों की प्रशंसायें
६३. विष्टुति　विविध स्तुतियाँ विशेषगान
६४. उक्थ वेदमन्त्र　उत्तम वचन
६५. साम　सामवेद के मन्त्रों से उपासना
६६. अवभृथ स्नान　आत्मा की शुद्धि

इडामिभक्षा आप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः ।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा संस्थाम् ॥२९

६७. इडा (पृथ्वी) ६८. भक्ष ६९. सूक्तवाक ७०. आशी
७१. शंयु ७२. पत्नीसंयाज ७३. समिष्टयजु ७४. संस्था

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥३०

७५. व्रत ७६. दीक्षा ७७. दक्षिणा ७८. श्रद्धा ७९. सत्य ।

आगे ३१वें मन्त्र में कहा गया है—

एतावद् रूपं यज्ञस्य यद् देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
तदेतत् सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ।।

अर्थात् जो ब्रह्मा और ऋत्विजों द्वारा यज्ञ का रूप किया जाता है उसका इतना स्वरूप है । सौत्रामणि यज्ञ करने पर वह सब प्राप्त हो जाता है ।

यज्ञ के चार मुख्य अंग

यज्ञ के ४ प्रधान अंग हैं— १. यजमान २. ऋत्विज् ३. साधनभूत उपकरण ४. हवि सामग्री ।

❀ १. यजमान ❀

यज्ञ करनेवाले यजमान कहाते हैं। वे देवों (ऋत्विजों) के साथ यज्ञ में बैठते हैं। "विश्वे देवा: यजमानश्च सीदति" । यजमान को यज्ञ में पत्नीसहित बैठना चाहिए । पत्नी न हो अथवा अनुपस्थित हो तो विधुरता है, पत्नीका स्थान यज्ञमें पतिके दक्षिण [दहिनी ओर] है । यजमान का स्थान होताके साथ अथवा होता के रूपमें यज्ञवेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख है । विशेष अवस्था में वह दक्षिणमें उत्तराभिमुख बैठ सकता है। यजमान के परिवार के व्यक्ति भी पश्चिममें पूर्वाभिमुख बैठें । यज्ञकर्ता के अनुचर आदि उनके दायें, बायें वा सामने रहें तो आदेश देने और संकेत करने में सुविधा होगी ।

❀ २. ऋत्विज् ❀

यज्ञ के ४ ऋत्विज् और आवश्यकतानुसार ३-३ उनके सहायक होते हैं —

पश्चिम में पूर्वाभिमुख—	उत्तर में दक्षिणाभिमुख—
१. होता [ऋग्वेदी]	१. अध्वर्यु [यजुर्वेदी]
२. प्रशास्ता	२. प्रति प्रस्थाता
३. अच्छावाक:	३. नेष्टा
४. ग्रावस्तोता	४. उन्नेता
पूर्व में पश्चिमाभिमुख—	**दक्षिण में उत्तराभिमुख**
१. उद्गाता [सामवेदी]	१. ब्रह्मा
२. प्रस्तोता	२. ब्राह्मणाच्छंसी
३. प्रतिहर्ता	३. अग्नीध्र
४. सुब्रह्मण्य	४. पोता

ब्रह्मा अथर्ववेदी अथवा चतुर्वेदी होता है । वेद में इनका वर्णन—

ऋचां त्व: पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां,
यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्व: ।।
[ऋग्वेद १०।७१।११]

अर्थात् एक होता ऋचाओं [ऋग्वेद के मन्त्रों] का पोषण करता है । होता द्वारा पठित ऋग्वेद के मन्त्र 'शस्त्र' कहाते हैं । दूसरा उद्गाता शक्वरी-मन्त्रोंसे सामगान करता है । तीसरा ब्रह्मा समय-समयपर आज्ञा देता रहता है, जब कोई प्रमाद हो जाता है तभी उसका प्रायश्चित्त बताता है । यज्ञ के दो मार्ग हैं— एक मन दूसरा वाणी । ब्रह्मा मन रूपी मार्ग से, प्राय: मौन रहकर निर्देश देता रहता है । वह यज्ञ का अधिपति है । वह चतुर्वेदी होता है, अधिकतर अथर्ववेद के मन्त्रों से त्रुटियों का उपचार करता है । अन्तिम चौथा ऋत्विज् यजुर्वेदी अध्वर्यु यज्ञकी मात्रा [परिणाम] तथा विधि-विधान नापता है अर्थात् सबका प्रबन्ध करके यज्ञ को अध्वर (हिंसारहित) रखकर, यज्ञ की रक्षा करता है ।

इसी प्रकार राष्ट्र में भी ४ प्रकार के अधिकारी होते हैं क्योंकि वह भी एक यज्ञ है—

१. होता	१. वित्तमन्त्री
२. उद्गाता	२. सूचना मन्त्री
३. ब्रह्मा	३. प्रधान मन्त्री
४. अध्वर्यु	४. गृह एवं रक्षा मन्त्री

❀ ३. यज्ञ के साधन उपकरण ❀

१. वेदी-चौकोर, गोल या त्रिकोण आदि । उस में लगने वाली ईंटें ।
२. अग्नि—१ आहवनीय, २ गार्हपत्य, ३ दक्षिणाग्नि ।
३. अग्नि मन्थन के लिए अरणि, नेत्र आदि । वर्तमान में दीपशलाका ।
४. समिधायें-आम, गूलर, ढाक, बेल आदि ।
५. हविर्धान-हवि रखनेका बाक्स और कमरा ।
६. अग्निशाला-यज्ञशाला [अग्नियों के कमरे]

अग्नियों का वर्णन अथर्ववेद में इस प्रकार है—

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ।।२।। साहवनीये० ।।४।। दक्षिणाग्नौ० ।।५।। [अ० ८।१०]

स परमां दिशमनुव्यचलत् ।।१३।। तम् आहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च पशवश् चानु व्यचलन् ।।१४।।

७. स्रुवः [चमचा]

८. स्रुच् [चमची]३ प्रकार की जूहू, उपभृत्, ध्रुवा यजुर्वेद में ३ स्रुच् का वर्णन अ० २ मन्त्र ५ में है—

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना... । घृताच्यसि उपभृन्नाम्ना । घृताच्यसि ध्रुवानाम्ना ।।

अथर्ववेद [१८।४।२] में 'स्रुचो यज्ञायुधानि' कह कर इन्हें यज्ञ के शस्त्र बताया गया है। उसीके ५वें मन्त्र में स्रुचों का कार्य बताया गया है —

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।

९. उत्तरवेदि— सोमयागों में बनाई जाती है जिसमें उत्तर में हविर्धान और दक्षिण पूर्वी कोने में सदो-मण्डप नामक दो स्थान होते हैं।

१०. यूप—गौ आदि पशुओं से दूध और उससे घी यज्ञ के लिए लिया जाता है। उन पशुओं को बाँधने के लिए एक लकड़ी का स्तम्भ गाड़ा जाता है उसे यूप कहते हैं।

यस्यां सदो हविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
[अथर्ववेद पृथ्वी सूक्त मन्त्र ८]

अर्थात् वह हमारी मातृभूमि है जिसमें १ सदः = पुरुषों का स्थान, स्त्रियों का स्थान, २. हविर्धान ,, भण्डार और गाड़ी, ३. यूप [एक व ११ व अधिक] बनाये जाते हैं।

अथर्ववेद के शालासूक्त [९ ४ ७ में वर्णन है—

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ।।

अर्थात् एक घर में १ हविर्धान- २ अग्निशाला, ३ पत्निसदः और ४ देव सदः होने आवश्यक हैं।

११. अग्निहोत्र हवणी— यह घी की आहुति के लिए है।

१२ से २० तक आयुध सम्बन्धी ९ पात्र हविको कूटने-पीसने पकाने के लिए हैं—

१२. स्फ्य— कुल्हाड़ी, गडाँसी के आकार का।

१३. कपाल— [पुरोडाश पकाने के लिए]

१४. शूर्प—सूप, फटकने के लिए।

१५. शम्या— छोटी लम्बी चमची।

१६. कृष्ण अजिन— [काले हिरन की खाल] वर्तमान समय में चादर।

१७-१८ उलूखल-मूसल।

१९-२० दृषद्-उपल [सिल-बट्टा]

२१-३० दस चमचे होते हैं- ८ ऋत्विजों के लिए एक यजमान का और एक व्रतशंसी का।

३१-४८ स्थालियाँ, बटलोई, कड़ाही, पात्र और पात्री १८ हैं —

आज्य स्थाली, चरु स्थाली, अन्वाहार्य स्थाली, पिष्टोद्वपनी, १२-१२ अंगुल के जल के पूर्णपात्र दो. प्रणीता, प्रोक्षणी, फलीकरणपात्र, द्रोणकलश, मदन्ती, पिष्टपात्री (चावल की पिट्ठी के लिए) हविर्धानपात्री, मर्जनपात्री, पुरोडाशपात्री दो, इडापात्री दारुपात्री, यजमान-पात्री, पत्नी-पात्री।

४९-८१ तक उपयोजन पात्र ३३ हैं—

कूर्च (अग्निहोत्र हवणी रखने के लिए- १ बाहुमात्र), शृतावदान(१ प्रादेश), वज्र(खाँडा) १अरत्नि = २४ अंगुल, प्राशित्रहरण दो (दर्पणाकार गोल या चौकोर), आसन (सबके लिए पृथक् २ २४ अंगुल), योक्त्र [१२ अंगुल], षडवत्त [६ अंगुल के दो गड्ढेवाला बीच में जुड़ा], अन्तर्धान [कट १२ अंगुल अर्धचन्द्राकार], उपवेश [२४ अंगुल का सामग्री छोड़ने का हाथ], मूंज की रस्सी, शंकु, [नुकीले १२ अंगुल के खूंटे], अन्वाहार्य [४ व्यक्तियों के लिए भोजन पकानेवाला भगोना], दर्वी. मेक्षण, आकर्षफल, कंकत, धृष्टि, अभ्रि [२४ अंगुल परिधियाँ, श्रापणी दो, शल, पशूरवा, वेद, वेदपरिवासन, पवित्रा, प्रेक्षणी, विधृति, प्रस्तर, इध्म, प्रव्रश्चन [लकड़ी काटनेकी कुल्हाड़ी], शाखा, विषाण आसन्दी [गद्दी] या पाटला ४ [पट्टे २४-२४अंगुल के], ओवली।

इन सब का वर्णन श्रौत- पदार्थ- निर्वचन नामक ग्रन्थ में किया गया है।

८२-८६.— इन उपर्युक्त के अतिरिक्त आजकल अँगोछा, चिमटा, संडासी, पंखा, चाकू की भी यज्ञ में आवश्यकता होती है।

८७. उपर्युक्त के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि के संस्कृत भाग में पात्रों के साथ, ऋत्विजों के वरण के लिए, कुण्डल, अंगूठी और वस्त्र भी लिखे हैं।

८८. यजमान तथा पत्नी के पहनने के लिए ४ रेशमी कपड़े।

८९. अग्न्याधेय के लिए ४९ या २५, या १३ या ८ गौएँ। वर के लिए भी ४ गौवें लिखी हैं।

९०. सर्वसामान्य उपस्थित व्यक्तियों के लिए प्रसाद के रूप में वितरणार्थ फल, मिष्ठान्न, हलवा या बताशे तो होने ही चाहिए।

सोमयाग में पात्नीवत ग्रह और हारयोजन चमस पात्रों का नाम यजु० [८।९-११] में मिलता है।

❀ ४. हवि-द्रव्य ❀

यज्ञ में आहुति देने के लिए ४ प्रकार के द्रव्य होते हैं—

१– सुगन्धित— कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, सफेद चन्दन, छोटी इलायची, जायफल, जावित्री आदि।

२– पुष्टि कारक — घी, दूध, दही, फल, मेवा, कन्द, अन्न [चावल, गेहूं, जौ], तिल आदि।

३– मीठे— गुड़, शहद, छुआरे, मुनक्का आदि।

४– रोगनाशक— सोम गिलोय, चिरायता, गूगल आदि।

इन पदार्थों को अलग अलग लेकर कूट छान-पीस कर स्वयं या अपनी देखरेख में नौकर-मजदूरों से बनवाना चाहिए। मीठी वस्तुएं तथा घी आदि यज्ञ के करने के समय ही मिलाना चाहिए जिससे चींटी आदि न हों। बाजार की सस्ती सड़ी-गली बुरादे सी सामग्री का प्रयोग करना उचित नहीं है।

विशेष यज्ञों में स्थालीपाक अर्थात् मीठा भात, खिचड़ी, खीर, हलवा, लड्डू, पूए और पुरोडाश भी बनाना चाहिए।

हविर्यज्ञोंमें मुख्य हवि चावल और जौ हैं जो शरीर के प्राण और अपान के प्रतीक हैं जैसा कि अथर्ववेद में बताया है—

प्राणापानौ व्रीहियवौ। [अ० ११।४।१३]

सौत्रामणि याग में विनियुक्त यजुर्वेद अ० १९ मन्त्र १५-३० में यज्ञ की अनेक वस्तुओं और विधियों का नाम आता है जिसमें से अधिकांश ऊपर पहले वर्णन किये जा चुके हैं। शेष नाम इस प्रकार हैं—

कुम्भी सुराधानी सोमग्रह मुराग्रह [सुरा का अर्थ औषधियों का रस है और ग्रह का पात्र। सुरा का अर्थ मद्य-शराब नहीं।] प्रैष, आप्री, प्रयाज, अनुयाज, वषट्कार, सामिधेनी, याज्या, धाना, करम्भ, सक्तु, परीवाप आमिक्षा वाजिन आश्रावण प्रत्याश्रावण यज ये यजामहे द्रोणकलश अवभृथ सूक्तवाक शंयुवाक पत्नी-संयाज समिष्ट यजुः और दीक्षा।

साम-गान

सभी यज्ञोंमें सामान्यतः और सौमयागोंमें विशेषतः उद्गाता और उसके सहायकोंके द्वारा साम के मन्त्रोंका गान करना अनिवार्य है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि में अन्त्येष्टि को छोड़कर सब संस्कारों में सामवेद में कहे हुए वामदेव्य और महावामदेव्य गान का करना आवश्यक बताया है। यजुर्वेद(१०,१०-१४) में निम्नलिखित ६ सामगानों का विधान सोमयागों में किया गया है—

१ रथन्तर साम	९ त्रिवृत् स्तोम
२ बृहत् साम	१५ पंचदश स्तोम
३ वैरूप साम	१७ सप्तदश स्तोम
४ वैराज साम	२१ एकविंश स्तोम
५ शाक्वर साम	२७ त्रिणव स्तोम
६ रैवत साम	३३ त्रयस्त्रिंश स्तोम

अथर्व वेद में अग्निष्टोम

अथर्ववेद के नवें काण्ड के छठे सूक्त में सोमयाग अग्निष्टोम की विधियों के साथ अतिथियज्ञ की विधियों की तुलना की गई है। इसमें अग्निष्टोम सोमयाग की मुख्य सभी बातें आ जाती हैं।

अतिथियज्ञ और सोमयाग

अथर्ववेद नवम काण्ड सूक्त ६ में अतिथि यज्ञ और सोमयाग की तुलना करनेवाले मन्त्र निम्नलिखित हैं—

१ यद् वा अतिथिपतिः अतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते।। पर्याय १ मन्त्र ३ ।।

२ यद् अभिवदति दीक्षाम् उपैति यद् उदकं याचयति अपः प्रणयति ।।४।।

३ या एव यज्ञे आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ।।५।।

४ यत् तर्पणम् आहरन्ति य एव अग्नीषोमीयः पशुः बध्यते स एव सः ।।६।।

५ यद् आवसथान् कल्पयन्ति यदो हविर्धानानि एव तत् कल्पयन्ति ।।७।।

६ यद् उपस्तृणन्ति बर्हिः एव तत् ।।८।।

यद् उपरिशयनम् आहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकम् अवरुन्धे ।।९।।

यत् कशिपूपबर्हणम् आहरन्ति परिधयः एव ते ।।१०।।

७ यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्ति आज्यमेव तत् ।। ११।।

८ यत् पुरा परिवेषात् खादं आहरन्ति पुरोडाशौ एव तौ ।।१२।।

९ यद शनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतं एव ह्वयन्ति ।।१३।

१० ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्ते अंशव एव ते ।।१५।।

११ यानि उलूखल मुसलानि ग्रावाण एव ते ।।१४।।

१२-१४ शूर्पम् पवित्रं तुषा ऋजीषा, अभिषवणोः आपः ।।१६।।

१५-१८ स्रुग् दर्विः नेक्षणं आयवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणि इयमेव कृष्णाजिनम् ।।१७।।

१९ उग्हरति हवींषि आसादयति ।।[प० २ का म.१]

२०-२१ स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण।५

२२ एते वै प्रियाश्च अप्रियाश्च ऋत्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति येऽतिथयः ।।३।।

२३ यत् क्षत्तारं ह्वयति आश्रावयति एव तत् ।।प.६ म.१

२४ यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयति एव तत् ।।२।।

२५ यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे च अपरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ।।३।। तेषां न कश्चन अहोता ।।४।।

२६-२८ यद् वा अतिथिपति अतिथीन् परिविष्य गृहान् उपोदयति अवभृथमु एव तद् उपावैति ।।५।।
यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यद् अनुतिष्ठते उदवस्यति एव तत् ।।६।।

अब अतिथि यज्ञ और अग्निष्टोम दोनों की तुलना नीचे दी जाती है—

अतिथि यज्ञ में	अग्निष्टोम में
१ अतिथियों को देखना	देवयजन भूमिको देखना
२ अतिथि नमस्कार	दीक्षा ग्रहण
३ जल देना	अपः प्रणयन
४ अतिथि तर्पण	अग्निषोमीय पशुबन्धन
५ निवास व्यवस्था	सदो-हविर्धान मण्डप
६ चादर-तकिया	परिधियाँ बनाना
७ अंजन-उबटन	आज्य (घृत) रखना
८ भोजन पूर्व जलपान	पुरोडाश
९ भोजन पाचक को बुलाना	हविष्कृत् को बुलाना
१० भोजन में जौ-धान	सोमरस के अंशु
११ ऊखल-मूसल	सोम कूटने के पत्थर
१२ शूर्प	दो पवित्रा
१३ तुष	ऋजीष
१४ जल पेय	अभिश्रवण जल
१५ कड़छी	दर्वी
१६ घड़ा	द्रोण कलश
१७ परोसने के पात्र	वायव्यादि ग्रह
१८ भूमि	कृष्ण अजिन
१९ भोजन परोसना	वेदि मे हवि रखना
२० हाथ मे खाना	स्रुक् से आहुति
२१ भोजन मुड़कना	वषट्कार
२२ अतिथि	ऋत्विज्
२३ क्षत्ता को बुलाना	आश्रावण
२४ क्षत्ता का प्रत्युत्तर	प्रत्याश्रावण
२५ परिवेष्टाओं द्वारा परोसना इत्यादि	चमसाध्वर्युओं द्वारा आहुति

अतिथियज्ञ और अग्निष्टोम समान ही समाप्त होते हैं।

संस्कार विधि की भूमिका के श्लोक

[श्रीमती विद्यावती शास्त्री, ५२ | १ए कैलाशपुरी लखनऊ]

ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय

अर्थ -(ओ३म्)परमात्मा का मुख्य नाम'रक्षक' परमेश्वर है। ३ की संख्या प्लुत [३ मात्रा] के लिए है। (सर्वविधात्रे) सबको विशेष धारण करनेवाले के लिए (जगदीश्वराय) जगत् के स्वामी के लिए (नमो नमः) बारबार नमस्कार हैं।

अथ संस्कार विधिं वक्ष्यामः।

अब हम संस्कारों की विधि को कहेंगे।

ओं सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।। (तैत्तिरीय आ० ८। १)

अर्थ- ईश्वर साथ साथ हम दोनों [गुरु-शिष्य,पति-पत्नी] की रक्षा करे। साथ-साथ हम दोनों को सांसारिक भोग प्रदान करे। हम दोनों साथ पराक्रमको प्राप्त करें। हम दोनों का अध्ययन-अध्यापन तेजस्वी(प्रभाव शाली हो। हम दोनों आपस में द्वेष न करें। ईश्वर हमें तीनों प्रकार की आध्यात्मिक, आधिभौतिक,आधि दैविक शान्ति प्रदान करे।

यह मन्त्र तैत्तिरीत आरण्यक प्रपाठक ८ अनुवाक १ में है। यह महर्षि को बहुत प्रिय था। क्योंकि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में भी इसी मन्त्र से मंगलाचरण किया है।

आर्य समाज ने अभी तक इस ग्रन्थ को नहीं छपवाया। अब विश्व वेद परिषद् द्वारा इसका प्रकाशन किया जायगा।

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः।
भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ।।१।।

अर्थ- सबका आत्मा, सत् चित् आनन्द, संसार के आदि में विद्यमान, विश्व का रचयिता, सर्व व्यापक; सबका स्वामी, न्यायकारी,पवित्र परमेश्वर हम सबका सहायक हो।

गर्भाद्या मृत्युपर्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि।
वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परेश्वरम् ।।२।।

अर्थ- गर्भ से लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कार १६ ही हैं. अनन्त विद्यावाले उस परमेश्वर को नमस्कार करके उनका वर्णन किया जायगा।

वेदादिशास्त्र सिद्धान्तमाध्याय परमादरात्।
आर्येतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ।।३।।

अर्थ- शरीर आत्मा की शुद्धि के लिए वेदादादि शास्त्रों का परम आदर से चिन्तन करके आर्यों के इतिहासानुकूल जो पवित्र बातें हैं उन्हें कहा जाता है।

संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते ।।४।।

अर्थ- संस्कारों से संस्कृत को पवित्र तथा असंस्कृत को अपवित्र कहते हैं।

अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो वुधैः।
शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्धनः ।।५।।

अर्थ- अतः शिक्षा और औषधियों से सुखपूवर्वक संस्कारों के करने में बुद्धिमानों को सदा उद्यम करना चाहिए।

कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थन तत्परैः।
वेद-विज्ञान-विरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः ।।६।।

अर्थ- वेदादि शास्त्रों से अनभिज्ञ स्वार्थी तथा मुग्ध मनुष्यों ने संस्कारों के सम्बन्ध में जो मिथ्या ग्रन्थों की रचना की है।

प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः।
जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः ।।७।।

अर्थ- उनका वेदादि के प्रमाणों से खण्डन करके लोगों को सरलता से बोध कराने के लिए इस उत्तम संस्कारविधि की रचना की है।

बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ् मानवप्रियकारकैः।
प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः ।।८।।

अर्थ- मनुष्यों के प्रिय करनेवाले बहुत से सज्जनों से प्रेरित होकर मैं ग्रन्थ लिखने में अच्छी प्रकार से प्रवृत्त हुआ हूं।

दयाया आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः,
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणाऽ-
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः॥६॥

अर्थ– ब्रह्म से प्राप्त हुआ दया का श्रेष्ठ आनन्द शोभित हो रहा है, इसके आगे सत्यरूपी घरवाली विद्या हर्ष से निवास करती है। यह 'दयानन्द सरस्वती' सुन्दर गुणों से प्रसिद्ध, ईश्वर की शरण में विद्यमान जिसका नाम है उसने यह ग्रन्थ रचा है— इसे निष्पाप जनों को जानना चाहिए।

चक्षुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले।
अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥१०॥

अर्थ– संवत् १९३२ विक्रम के कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या, शनिवार को मैंने इस ग्रन्थ का आरम्भ किया।

बिन्दुवेदाङ्कचान्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले।
त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम्॥११॥

अर्थ– संवत् १९४० विक्रम में आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष में त्रयोदशी रविवार को इसका पुनः संस्करण किया गया।

—❀—

महर्षि दयानन्द के प्रति

यह जीवन जंजाल बना था, भार हुए थे सांझ-सकारे।
ऐसे में तुम हुए उजागर बनकर सूरज चाँद सितारे॥

भोर कहीं पर बँधी पड़ी थी तम की काली जंजीरों से
मानवता का गला कटा था दुराचार की शमशीरों से।
मायावर बन भाव सजीले भटक रहे थे मारे-मारे।
ऐसे में तुम हुए उजागर बनकर सूरज चाँद सितारे।

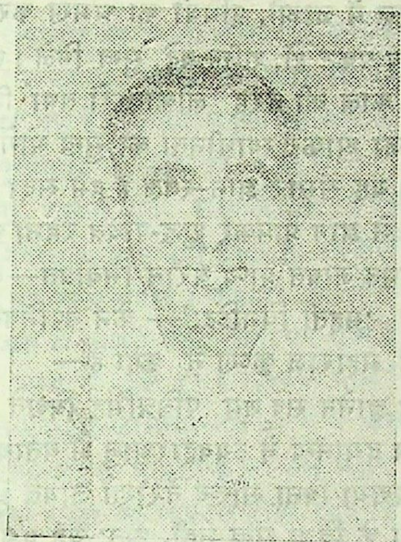
समयचक्र कुछ ऐसा घूमा ग्रहण लगा पावन वन्दन को।
शांतिसुधाघट छलकाकर सब रोका था बढ़ते कुन्दन को॥
नाव नदी में डूब रही थी डूब रहे थे सभी किनारे।
ऐसे में तुम हुए उजागर बनकर सूरज चाँद सितारे॥

धर्म ज्ञान के ऊँचे मन्दिर आडम्बर का साज लिये थे
संस्कृति के जलते वे दीपक कुछ पलका ही ताज लिए थे।
जिधर देखते उसी दिशा में टूट रहे थे सभी सहारे।
ऐसे में तुम हुए उजागर बनकर सूरज चाँद सितारे।

(ले. प्रा. श्री रमाकान्त जी दीक्षित भिवानी)

यजुर्वेद में यज्ञ-कर्म की व्याख्या

(श्री आशुराम आर्य, मन्त्री वि. वे.प. चंडीगढ़)



भाद्रपद पूर्णिमा, २०४० वि. २२ सित० १९८३ ईसवी, दयानन्दाब्द १५९, वेद-सृष्टि-संवत्—१९६०८५३०८४ को आप के द्वारा महता श्यामदास के घर पर यज्ञ और वेद-प्रवचन हुआ।

आपने ६-९-८३ को पंजाब के राज्यपाल को यजुर्वेद भेंट किया जिसे उन्होंने हर्षित होकर ग्रहण किया, और आप के साथ फोटो खिचवाया। यह समाचार रेडियो और पत्रों ने प्रसारित किया।

आपने ८-९-८३ को चण्डीगढ़ रेडियो पर यजुर्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या की जिसे बहुत पसन्द किया गया।

राज्यपाल ने निम्नलिखित बधाई-पत्र दिया—

राजभवन, पंजाब, चण्डीगढ़
सितम्बर ६, १९८३

मुझे यह जानकर अतीव हर्ष हुआ कि विश्व-वेद-परिषद् चण्डीगढ़ (ब्रांच) ने यजुर्वेद का उर्दू लिपि में अनुवाद कर उर्दू भाषा जानने वाले वेद-प्रेमियों के लिए एक बहुत बड़ा कार्य किया है जिस से न केवल भारत के ही अपितु विश्व भर में उर्दू-भाषा जानने वाले लोगों को इस अद्वितीय ग्रन्थ के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त होगा।

मैं इस ग्रन्थ के अनुवादक श्री आशुराम आर्य, मन्त्री, विश्व वेदपरिषद् चण्डीगढ़ (ब्रांच) को उन के अनथक परिश्रम के लिए बधाई देता हूँ।

अ. प्र. शर्मा]

....

यजुर्वेद के पहले मन्त्र 'इषे त्वा' से लेकर अन्त तक यज्ञका व्याख्यान महर्षि दयानन्दने बहुत सुन्दर किया है जो आज के स्वार्थ-तत्पर, घोर संकटमय युगमें अत्यन्त मननयोग्य है। यहाँ १ मन्त्र देखिये—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहं रक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तॉल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि॥ (यजु ५.२६)

अर्थ— मैं सविता देव ईश्वर के उत्पादित इस संसारमें तुझे प्राण-अपानके बल-वीर्य से और पुष्ट वीर के हाथों से अनेक उपकार लेता हूं और दुष्टों के शिरों का छेदन करता हूं। तू यव = पदार्थों को मिलाने और अलग करने में समर्थ है अतः पदार्थों का उत्तम गुणों से मेल कर और दोषोंसे दूरकर, द्वेष और शत्रुओं हमसे दूर कर। मैं तुझे सत्य धर्म के प्रकाशके लिए, अन्तरिक्षमें जानेके लिए और पृथ्वी की पुष्टि के लिए प्रेरित करता हूं। यह ज्ञानियोंका घर है, इसके लोग शुद्ध हों। नारी भी योग्य हों।

भावार्थ— मनुष्यों को योग्य है कि ठीक ठीक तथा क्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान करके सब प्रकार से अपनी शुद्धि करें।

❀ किसलिए इस यज्ञ को करना चाहिए ? ❀

यह शीर्षक महर्षिने इस मन्त्र का दिया है। ईश यज्ञ है। सृष्टि के लोग सब कामों को यज्ञ मानकर करें। देवों (परब्रह्म और विद्वानों) की पूजा (सत्कार, आज्ञा-पालन, सबसे प्रेम करके सुख देना और परोपकार यज्ञ है, जिसके लिए किसीने लिखा है—

वह चाल चल कि उम्र खुशी से कटे तेरी।
वह काम कर कि याद तुझे सब किया करें॥
जिस जा में तेरा ज़िक्र हों हो ज़िक्र ख़ैर ही।
और नाम तेरा लें वो अदब से लिया करें॥

वह फूल बन कि जिस पे हो सारे चमन को नाज।
पैदा वह आबकर कि हो जिस पे अदन को नाज॥
यह भी है कोई जीस्त कि खा पी के मर गया।
हैवान की तरह कोई दिन जी के मर गया॥

❀ मन्त्र की सात शिक्षाएँ ❀

(१) प्राण-अपान ठीक रक्खें। श्वास-प्रश्वास ही हमारा बल है। वे धन्य हैं जो शक्ति-शाली बाहों से उपकार किया करते हैं जैसे राम-कृष्ण-दयानन्द।

(२) राक्षसों की गरदन काटना-- न्यायाधीश और शासन का यह यज्ञ-कर्म है कि दुष्टों को कड़ा दण्ड दें। (विनाशाय च दुष्कृताम्--कृष्ण-गीता)

(३) पदार्थोंको यथायोग्य मिलाना-अलग करना-जल-अग्निके मेलसे भाप बनती हैं जिससे रेल आदि यन्त्र काम करते हैं। बालक-बालिकाएँ अलग पढ़ेंतो समाज का कितना अधिक उपकार हो- यह यज्ञहै।

(४) द्वेष और कृपणता—इनको सदा दूर रखो। दुष्ट शत्रुओं को भी समाज से दूर करो।

(५) ज्ञान-प्रकाश, अन्तरिक्ष-पृथ्वी-भ्रमण—सत्य की खोज के लिए, जिससे संसारमें सचाई का प्रकाश हो और विज्ञानको जान कर लोग सुखी हों अन्तरिक्ष में जाओ, पृथिवी का भ्रमण करो, जिस से रहस्य प्रकट हों, शक्ति बढ़े, सुख मिले। सब लोग प्राचीन काल की तरह लोकान्तरों तथा विदेशों में बेरोक जा आकर स्वाधीनता का सुख भोगें।

(६) यह संसार ज्ञान-स्थल है हमें सदा पितरों, विद्वानों से ज्ञान प्राप्तकर शुद्ध-पवित्र रहना चाहिए।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत--कठ उप.
अन्यथा 'महती विनष्टिः'-- केन उपनिषद्

अतः महाराज कृष्ण ने कहा है—
न हि ज्ञानेन सदृशम् पवित्रमिह विद्यते।
ऋषि दयानन्द ने व्यवहारभानु में बताया—
न विद्यया बिना सौख्यं नराणां जायते ध्रुवम्।
विद्या के बिना सुख नहीं, अतः यह यज्ञ है।

(७) स्त्रियों को भी वेदपाठ-यज्ञ का अधिकार—
वेद-भाष्य में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—
हे नारी, तू भी यह सब इसी प्रकार कर। ऋषि ने यह महान् क्रान्ति की कि पैर की जूती समझी जाने वाली नारी को प्रतिष्ठा दिलाकर उसका सिर विश्व-मानव-समाज में ऊँचा कर दिया॥ ❀

यज्ञों-संस्कारों का महान् ग्रन्थ 'संस्कारविधि'

लेखक—श्री सोहनलाल शारदा, शाहपुरा (भीलवाड़ा राजस्थान)

महर्षि दयानन्द की संस्कारविधि सभी छोटे-बड़े यज्ञों-- ब्रह्मयज्ञ तथा अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध तक सर्वथा उपयुक्त है। इसमें आए वेदों तथा गृह्य-सूत्रों के मन्त्र अत्यावश्यक रूप में विनियुक्त हैं।

जो अपने श्रमपूर्ण स्वाध्याय के बल पर कहते हैं कि ऋषि भूल गये या यह स्थल काटना रह गया वे भ्रम में हैं। प. लेखरामने ऋषि-जीवन में लिखा--

भोजनोपरान्त १ बजे सत्यार्थप्रकाश और संस्कार-विधि की जो कापियाँ छपी हुई आती थीं उनको वह शोधते थे। अतः सिद्ध हुआ कि सामान्य प्रकरण का उन्होंने पूर्णतया संशोधन कर लिया था।

अतः सार्वदेशिक प्रादेशिक तथा परोपकारिणी सभाओं और विश्ववेदपरि. को चाहिए कि इसका सामान्य प्रकरण भूमिका से लेकर वामदेव्य गान तक अवश्य प्रकाशितकरें जिससे सबलोग यथा विधि क्रमपूर्वक यज्ञ-कार्य कर सकें।

महर्षि का अन्तिम सन्देश यही है कि--

'विशेष कर्म कर्ता और कर्म कराने वाले शान्ति, धीरज और विचार पूर्वक क्रमसे कर्म करें करावें। परिववर्तन की कोई चेष्टा न करें तभी पूर्ण लाभ होगा। इसके लिए सभी आर्यसमाजें संस्कारविधि-शताब्दी-समारोह भी मनायें, इसे पढ़ें और पढ़ायें।

१६ संस्कार अत्यन्त उपयोगी हैं

(डा. श्रीमती कमला प्रधान एम.ए. एल.एम. डी, सि० शास्त्री, वेदरत्न)

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने सच्चा मानव बनाने के लिए १६ संस्कार करने पर बड़ा बल दिया है।

संस्कार वह है जिससे मनुष्य को अच्छा बनाया जाय। स्मृतिकार ने ठीक ही कहा है--

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारैर्द्विज उच्यते।

जन्मसे मनुष्य शूद्र पैदा होता है, संस्कारोंसे वह द्विज (दूसरे जन्म वाला) कहाता है।

अब क्रम से उनकी उपयोगिता पर एक दृष्टि--

१-३. जन्म से पहले ही ३ संस्कार होने चाहिए-गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तान्नयन। जीव कर्मानुसार ऐसे पिता-माताको चाहता है जो उसे महान् बनायें। माता-द्वारा गुणों का विकास होता रहता है।

४. जातकर्म में शिशु के कान में 'त्वं वेदोऽसि' कहाजाता है। उसको याद दिलाते है कि तू ज्ञानमय है। जीभ पर सोने-शहद से ॐ लिखना चाहिए।

५- नामकरण- ११वें दिन उत्तम नाम रखा जाय।

६. निष्क्रमण-- तीसरे मास शिशु को वायु व प्रकाश से अभ्यस्त कराया जाता है।

७. अन्नप्राशन-- देह-वृद्धि व पाचनशक्ति पर्याप्त होने पर छठे मास अन्न-भोजन आरम्भ होता है।

८. चूडाकर्म--पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए १ वर्ष के शिशु का या ३ वर्ष में मुंडन किया जाता है जिससे शिर की त्वचा व केश निर्मल-शुद्ध बने रहें।

९. कर्णवेध-- ३य या ५म वर्ष में अन्त्र-वृद्धि की रोक के लिए किया जाता है। सोने के अलङ्कार के धारण से आयु और सौन्दर्य की वृद्धि भी होती है।

१०. उपनयन-- बुद्धि के विकास के लिए बालक बालिकाओं का यज्ञोपवीत करके गुरुके पास भेजना जिसमें उन्हें अग्नि-वायु-सूर्य-चन्द्र-ईश्वर के समान सत्य नियम पालन करनेकी प्रेरणा दी जाती है।

११. वेदारम्भ--८वें वर्ष में उपनयन से १ वर्ष के बाद वेद-शास्त्रों के पढ़ने और कला-कौशल विज्ञान निपुणता पानेहेतु यह काल न्यूनतम १५ वर्ष का है।

१२. समावर्तन-- विद्या-समाप्ति पर होता है।

१३. विवाह--एक योग्य साथी से गँठबन्धन है जिसमें धन-ऐश्वर्य-सन्तान पाकर परोपकार करना होता है। यह कन्याओं का १६ व युवकों का २५ की की आयु के पश्चात ही होना चाहिए।

१४. वानप्रस्थ -- ५० की आयु के बाद घर की चिन्ता छोड़कर आध्यात्मिक क्षेत्रमें योग्य बनना है। शिष्यों को पढ़ाना, स्वाध्याय-प्रवचन, योगाभ्यास।

१५. संन्यास-- ७५ की आयु में योग्य होकर पुत्र-वित्त-लोक की एषणाएँ त्यागकर वेद-प्रचार करना।

इस प्रकार १५ संस्कार जीवित मनुष्य के लिए हैं जिनका उद्देश्य महर्षि-शब्दों में निम्नलिखित है--

'जिसे करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं इसलिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को उचित है।'

१६. अन्त्येष्टि-- जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिसके आगे इस शरीर के लिए कोई भी अन्य संस्कार नहीं है इसीको नरमेध, नर-याग, पुरुष-याग भी कहते हैं।। (संस्कारविधि अन्त्येष्टि प्रकरण)

शताब्दी व संस्कार विधि

(श्री रामस्वरूप रत्तक, अजमेर)

यदि सत्यार्थप्रकाश जन-जन को आर्य बनाता है तो संस्कारविधि उन्हें उन्नतिपथ पर अग्रसर करती है। अतः निर्वाण-शती के साथ संस्कारविधि-शती भी मनायी जाय। निर्वाण-स्मारक-न्यास ४-११-८३ को संस्कार.पौरोहित्य-गोष्ठी और विश्व वेद-परिषद् ५-११-८३ को दोपहर १ बजे से संस्कारविधि-शती गोष्ठी सम्पन्न करेगी। कृपया सभी लाभ उठायें।

सभी सभाओं और समाजों को पूरे वर्ष भर यह संस्कारविधि-शताब्दी मनानी चाहिए जिसमें गोष्ठी में यज्ञों और संस्कारों पर विद्वानों के प्रवचन तथा शङ्का-समाधान हों, साथ ही निर्धनों के विना व्यय के एवं विना दहेज अन्तर्जातीय विवाह कियेजायँ।

को वेदान् उद्धरिष्यति ?

(पं० वीरसेन वेदश्रमी वेद सदन इन्दौर)

अत्यन्त हर्षका विषय है कि यजुर्वेद की क्रमपाठ संहिता जो अभी तक अलभ्य है उसके प्रकाशनार्थ वेदमूर्ति श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने पांच हजार रुपये देने की इच्छा प्रकट की है। एतदर्थ श्री मीमांसक जी का हार्दिक धन्यवाद। यह ग्रन्थ २१ वर्ष पूर्व मैंने गुरुकृपा से लेखबद्ध किया था तथा श्री मीमांसकजी ने कुछ वर्ष पूर्व मुझे लाने के लिए भी कहा था। इसके प्रकाशन पर अनुमानतः ५० हजार रुपये व्यय होगा।

महर्षिस्वामी दयानन्द सरस्वतीने वेदभाष्य पद पाठ के आधार पर किया तथा तथा संस्कार विधिः में लिखा कि 'वेदों को पद, क्रमादि सहित पढ़ें।' प्राचीन काल से यही परिपाटी वेदाध्ययन की है। जैसा कि – 'वेदैः सागंपदक्रमोपनिषदै र्गायन्ति यं सामगाः' द्वारा प्रकट है।

यजुः पद पाठ की पुस्तक तो श्री मीमांसक जी ने अत्यन्त पुरुषार्थ के साथ प्रकाशित की है उससे वैदिक समाज बहुत ही उपकृत हुआ। इसी प्रकार क्रम पाठ की इस पुस्तक से देश-विदेश के वेद के साहित्य में वेद पाठ की गंगा का महत्त्वपूर्ण अवतरण होगा।

आदरणीय श्री युधिष्ठिरजी मीमांसक ने अपने पत्र दि० २१.७.८३ में लिखा कि इस कार्य पर इस समय ४०-५० हजार रुपया व्यय आवेगा। इतना मेरा न ट्रस्टका सामर्थ्यहै। हां आप या कोई व्यक्ति इस महनीय कार्य को करे तो मैं ५००० रुपये तक सहायता कर सकता हूं — पर आज कल इसकी महत्ता को दो या तीन व्यक्ति के सिवाय कौन समझ सकता है ?

आदरणीय वेद विद्वान् श्री मीमांसक जी द्वारा संकल्पित राशि की स्थापना से इसके प्रकाशन के लिए शेष राशि की पूर्तिके लिए सभी वेदप्रेमी धनी मानी सज्जनों, आर्यसमाजों एवं संस्थाओं से निवेदन है कि वे इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन कार्य में हमें मुक्त हस्त से धनराशि प्रदानकर यश के भागी बनें। जिससे 'यजुः क्रम संहिता' का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हो सके तथा अन्य अनेक अप्रकाशित वेद कार्यं के प्रकाशन का सुअवसर प्राप्त हो सके –❀–

ऐतरेय पर सम्मतियाँ

१ ऐतरेय ब्राह्मण का हिन्दी अनुवाद प्राप्त हुआ पढ़ा, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। आपने आवश्यक कार्य किया आपका परिश्रम महान् है आपने भाषा को सरल बनाकर महान् उपकार का कार्य किया है, आप बधाई और धन्यवाद के पात्र हैं मैं हार्दिक-बधाई और धन्यवाद देता हूं।

आर्यसमाजी लोग अधिकतर ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं। उनको पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता नहीं है बहुत से लोग तृप्त हुए बैठे हैं। जिनको ज्ञान की प्यास हो, स्वाध्याय करने की आवश्यकता हो उन के लिए ग्रन्थ बहुत ही ज्ञान-वर्धक है। अन्यों के लिए- भैंस के आगे बीन बजाने के सदृश है।

आपने कर्तव्य पूरा किया है भाग्य-हीन यदि लाभ न उठाएं तो 'कोऽत्र दोषः'।

परमेश्वर आपको लम्बी आयु प्रदान करे जिससे आप और भी ऐसा कार्य कर सकें।

— अमर स्वामी सरस्वती,गाजियाबाद।

२. आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री विद्वान् अनुवादक ने भगीरथ प्रयत्न करके इसका प्रामाणिक अनुवाद किया है और उपयोगी भूमिका लिखी है। ग्रन्थ जहां पठनीय है वहाँ इसकी उपयोगिता पुस्तकालयों के लिए भी सन्दर्भ ग्रन्थों में होना अनिवार्य रूपसे आवश्यक है। महर्षि दयानन्द के अनुसार इसका अनिवार्य रूप से पढ़ना आवश्यक है। अप्राप्य इस ग्रन्थ का प्रकाशन प्रशंसनीय तथा स्तुत्य है।

— स्नातक सुधीन्द्र नाथ शास्त्री, लखनऊ।

३. -'ग्रन्थ पठनीय है'- श्रेष्ठ मानव धर्मं, लखनऊ।

हा जगदीश दत्त जी !

शोक है कि श्री जगदीशदत्तजी आयुर्वेदाचार्य मुरादाबाद का १४.८.८३कोदेहान्त होगया। परमेश्वर उन सद्गति प्रदान करे।

❀ यज्ञों का वर्णन ❀

१. अग्न्याधेय २. अग्निहोत्र ३. दर्श (अमावास्या) की इष्टि ४. पौर्णमास इष्टि ५. नवीन अन्न की इष्टि (होली और दीपावली पर) ६. चातुर्मास्य और पशु-बन्ध (दुष्टों का बन्धन, वायु और सूर्यसम्बन्धी याग)।

सात सोमयाग हैं जिन्हें सुत्या कहते है क्योंकि इनमें सोम आदि औषधियों का रस निचोड़कर आहुति दी जाती है और उनका सेवन किया जाता है।

१.अग्निष्टोम २. अत्यग्निष्टोम ३.उक्थ्य ४.षोडशी ५. वाजपेय ६. अतिरात्र और ७. अप्तोर्याम।

पाकयज्ञों का वर्णन स्मृतियों में अधिक है अतः बलि वैश्वदेव आदि पाकयज्ञों को स्मार्तयज्ञ कहा जाता है। इसी प्रकार हविर्यज्ञ और सोमयज्ञों का वर्णन श्रुतियों में अधिक होने के कारण श्रौत यज्ञ कहा हैं।

जो श्रौतयज्ञ प्रकृति अर्थात् मूलरूप से मुख्य है वे प्रकृतियज्ञ कहलाते हैं जैसे— अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमा-सेष्टि, अग्निष्टोम। इन प्रकृतियागों के अनेक विस्तार और भेद हैं वे विकृति याग कहलाते हैं। जैसे— उक्थ्य, अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि।

चातुर्मास्य आदि यज्ञ ऋतुओं की सन्धियों में रोगों को दूर करने के लिये औषधि-चिकित्सा के रूपमें किए जाते हैं। अतः इन्हें भेषज यज्ञ कहा जाता है।

एक दिन में सप्ताह होनेवाले 'एकाह' यज्ञ कहाते हैं और १२ दिन चलनेवाले 'द्वादशाह'। इसी तरह १ वर्ष तक चलने और हजार वर्ष तक चलने वाले भी यज्ञ हुआ करते थे।

अथर्ववेद [७.७९.३] में दर्शेष्टि का और अथर्ववेद ७.८०.२ में पौर्णमास इष्टि का वर्णन है—

अमावास्यायै हविषा विधेम ।
वृषभं वाजिन वयं पौर्णमासं यजामहे ॥

अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त ११.७.६ से १९ मन्त्रों तक में लगभग श्रौतयज्ञोंके नाम मिलते हैं। वेदसे इन्ही शब्दों को लेकर ब्राह्मण ग्रन्थों- श्रौतसूत्रों में इन नामों वाले यज्ञों की विधियों का विस्तार किया गया है —

अथर्ववेद में यज्ञों के नाम

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।

पृष्ठ २ का शेष

उच्छिष्टे यज्ञस्यांगानि अन्तर्गर्भइव मातरि ॥६

राजसूयं वाजपेयं अग्निष्टोमस् तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥७॥

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥८

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टिं पूर्तं च उच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥९

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१०

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्च ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११

प्रतीहारो निधनम् विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि॥१२

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहाहिताः ।
बिभर्तिभर्त्ता विश्वस्य उच्छिष्टो जनितुःपिता॥१५

चतुर्होतार आप्रियश् चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास् तदिष्टयः॥१९

१. महाव्रत २. राजसूय ३. वाजपेय ४. अग्निष्टोम ५. अर्क ६. अश्वमेध ७. अग्न्याधेय ८. सत्र ९. अग्निहोत्र १०. एकरात्र ११. द्विरात्र १२. सद्यः क्री १३.प्रक्रीः १४. उक्थ्य १५चतूरात्र १६ पंचरात्र १७.षड्रात्र १८. [इन तीनों से दुगुने]-अष्टरात्र १९. दशरात्र २०. द्वादशरात्र २१. षोडशी २२. सप्तरात्र २३.चतुर्दशरात्र २४. विश्वजित् २५. अभिजित् २६. साह्न २७. अतिरात्र २८.द्वादशाह २९.उपहव्य ३०. विषुवान् ३१. चतुर्होतार ३२. आप्रिय[याज्या] ३३. चातुर्मास्य [वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, शुनासीरीय आदि पर्व] ३४. पशुबन्ध और ३५. इष्टियाँ [दर्शेष्टि,पौर्णमासेष्टि तथा सोमयाग की ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित दीक्षणीय इष्टि, प्रायणीय इष्टि, आतिथ्य इष्टि, प्रवर्ग्यइष्टि, उदयनीय इष्टि आदि अनेक प्रकार की इष्टियाँ]- ये सब उच्छिष्ट परमेश्वर में आश्रित हैं।

अथर्ववेद में यहाँ तक लिखा है कि—
अयज्ञियो हतवर्चा भवति । [अथ० १२।२।३७]।
अर्थात यज्ञ न करने वाला निस्तेज हो जाता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्वाण शताब्दी अजमेर

३ से ६ नवम्बर १९८३ तक सम्पन्न होगी, साथमें ६ अक्टूबर से ६ नवम्बर तक चतुर्वेदपारायण यज्ञ होगा, यज्ञ दोनों समय प्रातः सायं हुआ करेगा। यज्ञों की समय-सारिणी निम्नांकित प्रकार होगी—

ऋग्वेद	६ से १८ अक्टूबर तक	१३ दिन	सामवेद	२३ से २५ अक्टूबर तक	३ दिन
यजुर्वेद	१९से २२ अक्टूबर तक	४ दिन	अथर्ववेद	२६ अक्टू.से ६ नवम्बर तक	१२ दिन

यज्ञ के पश्चात् २०-२५ मिनट विद्वानों के वेद-प्रवचन निर्दिष्ट विषय पर होंगे। सभी सम्मिलित हों। ३ नव. को उद्घाटन, ओ३म् पताकोत्तोलन, वेद-सम्मेलन, ४ नव. को मुख्य समारोह, ५ नव. को शोभा-यात्रा

—ओमानन्द सरस्वती, अध्यक्ष, धीकरण शारदा,मन्त्री, दयानन्द वानप्रस्थ, अध्यक्ष यज्ञ, निर्वाण-शताब्दी

विश्व वेदपरिषद् की वार्षिक बैठक और वेद गोष्ठी

३,५ नवम्बर १९८३ को मध्याह्न १ बजे से ऋषि उद्यान अजमेर में होगी। सभी सदस्य कृपया सम्मिलित हों।

— वीरसेन वेदश्रमी, अध्यक्ष — वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, मन्त्री

कार्यालय विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ।

वेद की परीक्षाएँ

वेद-विश्वविद्यालय की वसन्त-पंचमी पर होने-वाली चारों वेदों, संस्कृत, व्याकरण, पौरोहित्य आदि की विशारद, भूषण, रत्न उपाधि वाली परीक्षाएँ माघ पूर्णिमा को होंगीं। पाठविधि पूर्ववत् है। शुल्क ५) में प्रश्नपत्र पाकर, उत्तर भेजिए और सुन्दर प्रमाणपत्र लीजिए।

पुस्तक की समालोचना

स्वर-सिद्धान्त मूल्य २५)

लेखक— आचार्य सोमदेव शास्त्री।

प्रकाशक— आर्यसमाज सान्ताक्रुज, बम्बई।

वेदोंको समझनेके लिए स्वर-ज्ञान भी आवश्यक है। इस ग्रन्थ में स्वर का अर्थों पर प्रभाव आदि विषयों पर अच्छा विवेचन किया गया है। कागज, साज-सज्जा उत्तम है। पुस्तक उपादेय-संग्रहणीय है।

शोक-समाचार —

शोक है कि परिषद्के संरक्षक, राजस्थानशाखा अध्यक्ष डा० सत्यदेव आर्य जयपुर के अनुज डा.रुद्र देवशास्त्री का २८-७ ८३को बम्बईमें देहान्त हो गया।

वेद-प्रचार सप्ताह

संस्कारविधि-शताब्दी

श्रावणी पूर्णिमा, २०४० वि., २३ अगस्त १९८३ ईसवी, दयानन्दाब्द १५९, वेद-सृष्टि-संवत्—१९६०८५३०८४ से श्री कृष्णाष्टमी तक हुई। निम्नांकित व्यक्तियों ने संस्कारविधि पर प्रवचन दिये-

श्री आशुराम आर्य(चंडीगढ़) आ.स.आदर्शनगर,
,, सुधीन्द्र नाथ शास्त्री ,, गणेश गंज,
,, ओजोमित्र शास्त्री महानगर, ,, महावीरगंज,
,, स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ,, शृंगार नगर

ऐतरेय ब्राह्मण छप गया

सरल आर्यभाषा (हिन्दी) अनुवाद

अनुवादक तथा भूमिका-लेखक—

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ

मूल्य ३०) तीस रुपये। अवश्य खरीदिये।

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति, आदर्श प्रेस, सी८१७ महानगर, लखनऊ उ. प्र. २२६००६

ग्राहक-संख्या १३२८

सेवायाम श्री गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय

ओ३म्

वेद-ज्योति

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व-वेद-परिषद्,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ, उ. प्र. २२६००६ . दूरभाष ८४१०१
❀ विशेषांक-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

वर्ष ७, अंक ६, नभस्यः [भाद्रपद] २०४० वि०

सितम्बर १९८३ ई०, मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९

ब्राह्मण-ग्रन्थ-परिचय विशेषांक २

प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार देश-धर्म का ध्यान करो !

आर्यबन्धुओ, अब तो चेतो देश-धर्मका ध्यान करो,
वेदप्रचार करनेको घरघर तन-मन-धन कुर्बान करो।
ऊँचनीचका भेद मिटाकर अपना सबको मीत करो,
गाओ मिलकर गीत वेद के भाई-भाई प्रीत करो॥
—कविराज बनवारीलाल, नयी दिल्ली



ब्रह्मनिष्ठ स्वामी धर्मानन्द सरस्वती आदि के गुरु अपने निवास ६१ कावली रोड, देहरादून में अथर्व वेद के भाष्य में लीन रहते हैं।

विषय-सूची

आदिम मानुष सृष्टि

प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार, देहरादून

प्राणि-सृष्टि किस प्रकार हुई, इस सम्बन्धमें वैज्ञानिक जगत् कोई निर्णय अभी तक नहीं कर पाया। मानुष सृष्टि का विकास, विकासवादी वैज्ञानिक, क्रमिक विकास द्वारा वानरजाति से मानते हैं, तभी तो वानर का नाम वानर हुआ, अर्थात् वा — नर, कि यह नर की तरह है, मनुष्य सदृश है। परन्तु प्राणि सृष्टि का प्रारम्भिक जैवतत्व है, जिसे प्राथमिक वीर्यतत्व कहा जा सकता है। परन्तु यह जैवतत्त्व कैसे पृथिवी पर प्रकट हुआ, इसका कोई निश्चित उत्तर वैज्ञानिकों के पास नहीं है। वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि जीव, केवल जीव से हीं पैदा हो सकता है, जीव की उत्पत्ति का कारण अजीव (जड़तत्त्व) नहीं हो सकता है। इसलिए वैज्ञानिकों ने यह कल्पना की कि पृथिवी पर जैवतत्त्व किसी अन्य लोक लोकान्तर से आया है। परन्तु प्रश्न फिर भी वही है कि अन्य लोकलोकान्तरों में जैवतत्त्व (प्रोटोप्लाज्म) कैसे पैदा हुआ। इस पर वैज्ञानिक जगत् मौन साधे है।

वैदिक सिद्धान्तानुसार जैवतत्त्व का उत्पादक सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही है। जिस परमेश्वर ने असीम लोक लोकान्तरों की सृष्टि की उसके लिये जैवतत्त्व का उत्पादन भी शक्य है। यजुर्वेद के अनुसार आदिम मानव सृष्टि अमैथुनी है, माता-पिता द्वारा जनित नहीं हुई, वह केवल परमेश्वर-संकल्प, इच्छा, या अभिध्यान से जनित है। मन्त्र यह है—

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्व कर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधत् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ [यजु० ३१।१७]

विश्वकर्मा अर्थात् विश्व के रचयिता परमेश्वर के जल, पृथिवी और रस से जो मानव शरीररूप जगत् प्रारम्भ में सयुक्त अर्थात् उत्पन्न हुआ, उसके स्वरूप या रूप का विधान करता हुआ कारीगर परमेश्वर प्रारम्भ में सक्रिय होता है वह रूप है मर्त्यं अर्थात् मनुष्य का 'जन्मतः देवत्व'।

मन्त्र में दो बार 'अग्रे' पद पठित है, अतः मानुष सृष्टि के आरम्भ काल के निर्देशक ये 'अग्रे' पद हैं। एक अग्रे पद तो आरम्भ में जल आदि तत्वों से मानुष के निर्माण का निर्देश करता है, और दूसरा 'अग्रे' पद प्रारम्भ में ही, उत्पन्न मर्त्य में, त्वष्टा द्वारा 'जन्मतः' रूप अर्थात् देवत्व के विधान का निर्देश करता है। मन्त्र में अग्रे पद मानुष सृष्टि के प्रारम्भ काल के द्योतक हैं, जड़ सृष्टि के आरम्भ काल के नहीं। मर्त्य का अर्थ है मनुष्य। मर्त्याः मनुष्य नाम (निघ० २।३) मन्त्र में मर्त्यस्य पद जात्येकवचन में है। मर्त्य की उत्पत्ति विश्वकर्मा करता है। जो कि विश्व का कर्ता है। मर्त्य का निर्माण हो जाने पर त्वष्टा परमेश्वर मर्त्य में रूप सम्पत्ति भरता है। यह रूप-सम्पत्ति है जन्मतः देवत्व' । इस देवत्व से प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक मानवसृष्टि सात्विक होती है। तथा यह काल भी सत् युग होता है। शरीर में ३ तत्त्व प्रधान होते हैं— जल, पृथ्वी और रस। पृथ्वी एक मात्रा में, जल २ मात्रा में। रस जैव तत्त्व = वीर्य है जो प्रोटोप्लाज्म है जिसे विश्वकर्मा निज शक्ति से पैदा करता है। महर्षि दयानन्द का भी यही मन्तव्य है कि मनुष्य की उत्पत्ति के कुछ काल पश्चात् उसमें ज्ञान आदि सद्गुणों का सर्जन होता है।

जन्मतः देवत्व के सम्बन्धमें 'भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्' [योग १.७न्निस] की व्याख्या में पातंजल योगप्रदीपसे स्वा. ओमानन्द तीर्थ का लेख द्रष्टव्य है— विदेहों-प्रकृतिलयों को जन्म से ही असम्प्रज्ञात समाधि की प्रतीति होती है। विदेह वे हैं जिनका देह में अभिमान दूर हो गया और वितर्क-विचार-अनुगत समधि को सिद्ध कर आनन्दानुगत समाधि का अभ्यास कर रहे हैं। प्रकृतिलय वे हैं जो आनन्दानुगत को सिद्ध कर, ७ प्रकृतियों का साक्षात् करते हुए अस्मितानुगत समाधि का अभ्यास कर रहे हैं। ये दोनों जब पुनः जन्म लेते हैं तो उन्हें देवत्व जन्म से ही मिल जाता है। यह प्रतीति ही व्याख्येय मन्त्रगत आजान-देवत्व है। अग्नि-वायु-आदित्य-अङ्गिरा ऐसे ही आजान-देव थे ॥

ब्राह्मणों का देश-काल

ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध मौलिक विवरण से स्पष्ट होता है कि इनके उदय का स्थान है कुरुपाचाल प्रान्त तथा सरस्वती नदी का प्रदेश । ताण्ड्य ब्राह्मण में सारस्वत प्रदेश का परिचय बड़ा ही घनिष्ठ है । सरस्वती नदी के लुप्त हो जाने के स्थान का नाम 'विनशन' है तथा उसके पुन: उद्गम के स्थान का अभिधान 'प्लक्ष प्रास्रवण' है (ताण्० २५.१०.२१) यह स्थान विनशन से अश्व की गति से ४४ दिनों तक चलने की दूरी पर था । यमुना के बहने का प्रदेश 'कारपचव' नाम से अभिहित किया गया है । (ताण्०-२५.१०.२३) । इतना ही नहीं सरस्वती तथा दृषद्वती के बीच के प्रदेश तथा इनके संगम का भी निर्देश मिलता है । सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत है कुरुक्षेत्र को प्रजापति की वेदि मानना (एतावती वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षेत्रम्—ताण्ड्य २५.१३.३)

प्रजापति के यज्ञ क प्रतीक होने से कुरुक्षेत्र यज्ञ की वेदि सिद्ध होता है अर्थात् इसी प्रदेश में ब्राह्मणों का संकलन किया गया तथा यज्ञयाग की पूर्ण प्रतिष्ठा इसी प्रान्त में हुई । मनुस्मृति में भी दृषद्वती तथा सरस्वती दोनों देव-नदियों के बीचका यही देव-निर्मित्त प्रदेश 'ब्रह्मावर्त' नाम से सुप्रसिद्ध हुआ [मनु० २.२२] यज्ञ-संस्कृति का यही केन्द्र तथा पीठ-स्थल है, जहाँ ब्राह्मणों की यज्ञ-प्रक्रिया का पूर्ण विकास सम्पन्न हुआ, यहीं की भाषा-संस्कृति समग्र भारत की संस्कृति है ।

ब्राह्मणों के संकलन काल का अनुमान ज्योतिष सम्बन्धी उल्लेखों के आधार पर लगाया गया है । ब्राह्मण साहित्य से उपनिषदों का काल लगभग १००० वर्ष पीछे माना जाना चाहिए । स्वरों से युक्त होने से शतपथ अत्यन्त प्राचीन माना जाता है । इसके द्वितीय काण्ड में (जिसे कुछ लोग प्राचीन भाग स्वीकार करते हैं) एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ज्योतिष-घटना का वर्णन मिलता है । इसका आशय है कि कृत्तिकायें ठीक पूर्व दिशा में उदय होती हैं और वहाँ से प्रच्युत नहीं होतीं हैं । इस घटना की स्थिति प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर बालकृष्ण दीक्षित के गणनानुसार विक्रम पूर्व ३००० वर्ष होनी चाहिये दीक्षित की इस गणना पर किसी यूरोपीय विद्वान् ने विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु डा० विण्टरनित्स ने अपने इतिहास ग्रन्थ में किसी जर्मन ज्योतिषी (प्रो० ए० प्रे०) के गणनानुसार इस ग्रह स्थिति को ग्यारह सौ ई० पूर्व माना है । इस ज्योतिषी की व्याख्या है कि कृत्तिकायें अपने उदय के बाद तक पूरब में दिखायी पड़ती थीं और ऐसी दशा ग्यारह सौ ई० पूर्व ही सिद्ध होती है । परन्तु [एताः कृत्तिकाः ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते] शब्दों की यह नई व्याख्या मानने की कोई आश्यकता नहीं है । दूसरी विप्रतिपत्ति यह है कि 'वेदांग ज्योतिष' सर्वसम्मति से शतपथ से अर्वाचीन रचना माना जाता है । इसका काल चौदह सौ ई० पूर्व माना जाता है । डा० मैक्समूलर भी इसका समय ग्यारह सौ इक्यासी ई० पूर्व से कथमपि पीछे मानने के पक्ष में नहीं हैं । यदि शतपथ का यह नया काल माना जायगा, तो 'वेदाङ्ग ज्योतिष' के समय से उसकी पूर्ववर्तिता भंग हो जायगी जो कथमपि स्वीकार नहीं । मैत्री उपनिषद् में निर्दिष्ट ज्योतिष घटना के आधार पर इसका समय उन्नीस सौ ई. पूर्व माना गया है इस घटना को ध्यान में रख कर हम दीक्षित के मतानुसार मान सकते हैं कि शतपथ ब्राह्मण का रचनाकाल तीन सहस्र ई० पूर्व है तथा ब्राह्मण युग तीन सहस्र ई०पूर्व से लेकर दो सहस्र वर्ष ई० पूर्व तक मानना चाहिए । प्रचीनतम होने से शतपथ इसकाल के आदि में और अर्वाचीन होने से गोपथ इसके अन्तमें आता है (वैद्य—वैदिक साहित्य का इतिहास पृष्ठ अट्ठारह से चौबिस) ।

ब्राह्मणों की भाषा शैली

समस्त ब्राह्मणग्रन्थ गद्यमें ही निबद्ध किये गये हैं । ब्राह्मणों का गद्य बड़ा ही परिमार्जित, सरल और उदात्त है । दीर्घ समास का न तो कहीं दर्शन होता है और न कहीं अर्थ समझनेमें कोई दुरूहता । भगवती भागीरथी के भव्य प्रवाहके समान यह गद्य अपने प्रवाह को लिये प्रवाहित होता है । भाषा मन्त्रों की भाषा के समान ही है परन्तु वह प्राचीन शब्दों तथा धातुओं से वंचित होकर नये शब्दों तथा शब्द-रूपों को ग्रहण करने में पीछे नहीं रहती । वह संहिताओं और पाणिनि की भाषा को मिलाने वाली बीच की कड़ी है ।

ब्राह्मणों का धर्म, समाज

ब्राह्मण युग में यज्ञ का सम्पादन ही धर्म का मुख्य उद्देश्य था। सच तो यह है कि यज्ञ के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुष्ठानों के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है तथा इन विधियों के पूर्ण निर्वाह के लिए विशेष आग्रह दीख पड़ता है। अग्निकी स्थापना कब करनी चाहिए? कैसे करनी चाहिए? घी की आहुति अग्नि में कहाँ गिरे? वेदि पर बिछने के लिए दर्भ का अग्रभाग पूरबकी ओर रहता है या उत्तर की ओर?–आदि का वर्णंन इतनी सूक्ष्मता तथा विस्तार के साथ किया गया है कि इसे पढ़कर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता है। समस्त कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठतम माना जाता था। (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म शत० १.७-३.५)। ब्राह्मणों में यज्ञकी इतनी महिमा तथा आदर है कि विश्व का सबसे श्रेष्ठ देवता प्रजापति भी यज्ञ का ही रूप है —

एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत् प्रजापतिः [श० ४.३.४.३]

विष्णु का भी प्रतीक यज्ञ है — यज्ञो वै विष्णुः। आकाश में दीप्यमान आदित्य भी यज्ञ रूप है —

स यः यज्ञोऽसौ आदित्यः। [शत० १४.१.]

समस्त कर्मों में श्रेष्ठतम होने के कारण इस विश्व में यज्ञ ही परम आराध्य वस्तु है। जगत् के जितने भी पदार्थ हैं, यहाँ तक कि देवों का जनक रूप प्रजापति भी यज्ञ का ही आध्यात्मिक प्रतीक है। यज्ञ (ईश्वर) से ही सृष्टि हुई, इस वैदिक तत्व का परिचय हमें पुरुष सूक्त से मिल जाता है। ब्राह्मण युग में यज्ञ की महनीयता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हैं। अग्नि-होत्र के अनुष्ठानसे प्राणी अपने सब पापों से छूट जाता है। [सर्वस्मात् पाप्मनो विमुच्यते य एवं विद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति– शत २.३.] अश्वमेध से यज्ञ करनेवाला अपने सब पापों को दूर भगा देता है। शत. १३-५-४.। गोपथ में बड़ी सुन्दर उपमा के द्वारा इस पाप-निर्मोचन का तत्त्व समझाया गया है। जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केंचुली से छूट जाता है तथा सींक मूँज से छूट जाती है उसी प्रकार शाकला का हवन करनेवाला समस्त पापों से छूट जाता है—

तद् यथा अहिः जीर्णायास्त्वचो निर्मुंच्येत, इषीका वा मुञ्जात् एवं हवै ते सर्वस्मात् पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्ते ये शाकलां जुह्वति॥ [गोपथ उ. ४.६]

इतना उपादेय होने से ही यज्ञ के पूर्ण अनुष्ठान करने के लिए इतना आग्रह पूर्वक आदेश है।

यहाँ गौण देवताओं को मुख्यता मिल गयी है। जैसे विष्णु, रुद्र, प्रजापति को। ऐतरेय के आरम्भ में ही विष्णु के परम देव होने की सूचना है—

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः।

रुद्र के लिए महादेव शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। प्रजापति का पद तो देवों में अग्रस्था-नीय है। जगत् के स्रष्टा प्रजापति ही हैं। प्रजापति देवताओं के भी सृष्टिकर्ता हैं। प्रजापति ही भूतल के पदार्थों के स्रष्टा हैं। वे ही देवताओं को उत्पन्नकर उनमें ऊर्ज का विभाग करते हैं और ऊर्ज विभाग से उदुम्बर वृक्ष का जन्म हुआ, इसीलिए प्रजापति की महिमा ब्राह्मणों में सर्वतो महीयान् है।

चार वर्ण

ब्राह्मणयुगीन समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों तथा इनके कार्यों की पूरी व्यवस्था और प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। वैदिक यज्ञ का सम्पादक तथा निर्वाहक होने के कारण इन ब्राह्मणोंका स्थान चारों वर्णोंमें अग्रतम था। ब्राह्मणों में वेद शास्त्रको पढ़नेवाला ब्राह्मण 'मनुष्यदेव' के मह-नीय अभिधान से मण्डित किया जाता था —

ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः। [शत० २.२.२६]

विद्वांसो हि देवाः। [श० ३.७.]

तैत्तिरीय संहिता [१.७.३.१] में ब्राह्मण प्रत्यक्ष देव कहा गया है — एते देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राह्मणाः। शतपथमें दो प्रकार के देवता माने गये हैं, अग्नि आदि हविर्भोजी देव और मनुष्य-देव ब्राह्मण दोनों के लिए यज्ञ के दो विभाग किये गये है। आहुति देवों के लिए और दक्षिणा मनुष्य-देवों के लिए होती है जिन के द्वारा वे प्रसन्न होकर यजमान का कल्याण करते हैं [शत० २।२।२।६] राजा अपने समग्र राज्य को दक्षिणा रूप में दे सकता है परन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति को छोड़कर ही दे सकता है।

अभिषेक के अवसर पर पुरोहित कहता है — यह मनुष्य तुम्हारा राजा है, हम ब्राह्मणों का राजा सोम है (सोमोऽस्माकम् ब्राह्मणानां राजा)। शतपथ की व्याख्या के अनुसार इसका तात्पर्य यह है कि राजा के लिए समस्त प्रजा अन्न-स्थानीय है परन्तु ब्राह्मण नहीं, क्योंकि वह तो भौतिक राजा की प्रजा ही नहीं होता। वह सोमराजा की प्रजा है [शत० १३.३.५.३]। ब्राह्मण के लिए आदर्श है ब्रह्मवर्चसी अर्थात् वेदके अध्ययन से तेजस्वी बनना और इसीलिये ब्राह्मण में वही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जो वेद-ज्ञाता हो—

तद्ध्येव ब्राह्मणेनेष्टव्यं यद् ब्रह्मवर्चसी स्यादिति ॥ [शत० एक।९।३। सोलह]

यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एषां वीर्यवत्तमः ॥ [शत० ४।६।६।५]

ब्राह्मण का बल उसके मुख में, वाक् शक्ति में ही होता है; क्योंकि उसकी सृष्टि मुख से हुई है—

तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यं करोति। मुखतो हि सृष्टः। [ता० ६। एक।६]

ऐसे अनूचान(वेदज्ञ) ब्राह्मण के वश में क्षत्रिय के रहने पर ही राष्ट्र का मंगल होता है और राष्ट्र में वीर पैदा होते हैं —

तद् यत्र ब्राह्मणः क्षत्रं वशमेति तद् राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते [ऐ०८।६]

क्षत्रिय राष्ट्र का रक्षक तथा वैश्य उसका वर्धक माना जाता था। पैर से धारक होने के कारणशूद्र का सेवा धर्म ही प्रधान धर्म था। इस प्रकार यज्ञ-प्रधान वैदिक समाज में वेदज्ञ ब्राह्मणों की महती प्रतिष्टा होना स्वाभाविक ही है।

नैतिकता

यज्ञ का सम्पादन बाह्य आचार के ऊपर होने पर भी वह आन्तर आचरण के ऊपर पूर्णतया अवलम्बित था। जिन पाश्चात्य आलोचकों ने ब्राह्मण ग्रन्थोंमें नैतिकता के अभाव की बात कही है उनका कथन कथमपि मान्य तथा प्रामाणिक नहीं है। उस काल का समाज पूर्णरूप से नैतिक आचारवान् था, और कल्याण के लिये सत्य के अनुष्ठान पर आग्रही था। केवल दीक्षित को ही नहीं, प्रत्येक को सत्यभाषी होना चाहिए। असत्य बोलनेवाला यज्ञके लिए उपयुक्त नहीं होता (अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। शत. ३.१.३.१८) असत्य बोलना जल से अग्नि का सींचना और सत्य बोलना घी से सींचना है। असत्यवादी का तेज धीरे धीरे कम होजाता है। वह नित्यप्रति पापी होता जाता है। अतः सत्य ही बोले। इस प्रकार सत्य पर आग्रह करने वाले ग्रन्थ पर नैतिकहीनता का आरोप कदापि उचित नहीं।

तत्कालीन समाज पाप के आवर्तन-शील स्वभाव से अच्छी प्रकार परिचित था। वह जानता था कि जो मनुष्य एक बार पाप करता है वह अभ्यासवश उसके अनन्तर अन्य पाप का भी आचरण करता है, रुकता नहीं—

यः सकृत् पातकं कुर्यात् कुर्यादेनस्ततोऽपरम्।
ऐतरेय ७.१.७

इसीलिए पाप को रोक कर पुण्य करने की आवश्यकता है। सत्य और श्रद्धा के आचरण से ही मनुष्य स्वर्ग(सुख) को पा लेता है। वाग्देवी के दो स्तन हैं— सत्य और अनृत। वह सत्य से रक्षा करती है और अनृत से मार डालती है—

वाचो वाव द्वौ स्तनौ सत्यानृते वाव ते। अवत्येनं सत्यं नैतमनृतं हिनस्ति य एवं वेद। (ऐतरेय ४.१)

ताण्डय में असत्यको वाणी का छिद्र बताया है—

एतद् वाचश्छिद्रं यदनृतम्। (ता. ८. ६.)

इसका तात्पर्य है कि जैसे छेद के भीतर से वस्तु निकल जाती है वैसे ही असत्यवादी की वाणी से उसका सार निकल जाता है। वह सारहीन वाणी किसी पर प्रभाव नहीं डाल सकती।

शतपथ (२.२.२.) में इसके लिए सुन्दर उपमा का प्रयोग किया गया है। सत्य क्या है? अग्निपर घी डाल कर उसे उद्दीप्त करना। असत्य क्या है? जलती अग्नि पर पानी डालना। असत्य-वादी का तेजो बल शनैः शनैः कम होता जाता है। अत एव सत्य ही बोलना चाहिए—

स यः सत्यं वदति, यथा अग्निं समिद्धं तं घृतेनाभिषिञ्चेत्, एवं हैनं स उद्दीपयति, तस्य भूयो भूयः एव तेजो भवति, श्वः श्वः श्रेयान् भवति। अथ यो

अनृतं वदति यथा अग्निं समिद्धं तमुदकेनाभिषिंचेत् एवं हैनं स ह्रासयति, तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति श्वः श्वः पापीयान् भवति, तस्मात्सत्यं वदेत्।

ऐतरेय में श्रद्धा तथा सत्य की मिथुन-कल्पना बड़ी सुन्दर तथा रोचक है। "श्रद्धा पत्नी है। सत्य यजमान है। श्रद्धा तथा सत्य की जोड़ी बहुत ही उत्तम है। यजमान अपनी पत्नी के साथ मिलकर यज्ञ के द्वारा स्वर्ग पाने में समर्थ होता है। उसी प्रकार सत्य और श्रद्धा के साथ सयुक्त होकर स्वर्ग-लोकों को जीत लेता है।"

श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः। श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम्। श्रद्धया सत्येन मिथुनेन स्वर्गांल्लोकान् जयतीति ॥ (ऐ० ७। दस)

समाज में दान तथा आतिथ्य की प्रतिष्ठा थी। जो मनुष्य न देवों को, न पितरों को, न अतिथियों को दान से तर्पण करता है, वह पुरुष 'अनद्धा' अनृत कहलाता है। सायंकाल में आए हुए अतिथि का किसी तरह निराकरण नहीं करना चाहिए। जो पुरुष अतिथिकी सेवा करता है वह मानो मोटा हो जाता है— प्रसन्न हो जाता है। उस समाज में आतिथ्य की बड़ी महिमा का पता इसी घटना से लग सकता है कि आतिथ्य यज्ञ का शिर माना जाता था, अतिथि की पूजा यज्ञके मस्तक की पूजा मानी जाती थी —

शिरो वा एतद् यज्ञस्य यद् आतिथ्यम्(ऐ०एक।२५)

नारी की महिमा

समाज में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उचित भी ऐसा ही है। यज्ञ में पत्नी यजमान की सहधर्मचारिणी होती है। पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति भी तो इसी विशिष्टता की ओर संकेत कर रही है। पत्नी से विहीन पुरुष यज्ञ करने का कथमपि अधिकार नहीं रखता —

(अयज्ञो वा एषः योऽपत्नीकः तै० २।२।२।६)

पत्नी शरीर का आधा भाग मानी जाती है —

(अथा अर्धो वा एष आत्मनः यत्पत्नी (तै०३।३।३।५)

वेदि की रचना के प्रसंग में शतपथ ब्राह्मण स्त्री-सौन्दर्य के लिए एक महनीय आदर्श की ओर संकेत करता है। स्थूल जघन, कन्धों के बीच छाती का भाग स्थूल, कटि पतली— ये स्त्री की शारीरिक सुषमा के श्लाघनीय प्रतीक थे— एवमिव हि योषां प्रशंसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तरांसा मध्ये संग्राह्या। शतपथ १.२.५.१६। ऐसी स्त्री के साथ विवाहित होकर पुरुष पुत्रोत्पत्ति को स्वर्ग-सुख का साधन समझता था। ऐतरेयमें पुत्रकी भव्य प्रशंसा समाज में वीर सन्तान के मूल्यांकन करनेमें पर्याप्त मानी जा सकती है। पितर पुत्र के द्वारा ही क्लेश को पार करने में समर्थ होते हैं। पुत्र आत्मा से जन्म लेने वाला स्वयं आत्मा ही होता है। वह अन्न से भरी नाव है जो इस संसार-सरित् को पार करने में समर्थ होती है। स वै लोकोऽवदावदः—पुत्र निन्दा के अयोग्य, स्वर्ग का प्रतीक है। ज्योतिर्हि पुत्रः परमे व्योमन्, नापुत्रस्य लोकोऽस्ति— इत्यादि वाक्य पुत्रके सामाजिक मूल्यकी कल्पना के उदाहरण हैं।

नारीके लिए पतिव्रत धर्मका पालन परम मंगलमय माना जाता था। शतपथ (२.५.२.२०) के अनुसार जो स्त्री एक की होती हुई दूसरे के साथ संगति करतीहै वह वरुण्य=पाप करती है— वरुण्यं वा एतत् स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति। वरुणो वा एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति। (शतपथ १२.७.२.१७) समाज में किसी प्रकार का नैतिक स्खलन या शैथिल्य नहीं पाया जाता था।

ऐसे नैतिक आदर्शपर चलनेवाले ब्राह्मणकालीन समाजका अवलोकन कर कोई भी विद्वान् उस पर अनैतिकता का आरोप नही लगा सकता।

शांखायन ब्राह्मण

ऋग्वेद का यह दूसरा ब्राह्मण तीस अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक में पाँच से सत्रह तक खण्ड हैं। सब २२६ खण्ड हैं जिनमें लम्बे लम्बे गद्य हैं।

इसमें पैंग्य आचार्यके विरोध में कौषीतकि नाम आचार्य का मत ही मान्य ठहराया गया है। (देखो ८.९, २६.३) कौषीतकि के मत का निर्देश अन्य स्थलों पर भी है। (देखो २५.१५)

विषय की दृष्टि से यह ऐतरेय का ही अनुगामी है। इससे अनेक बातों का परिचय मिलता है—

१— उत्तर के लोगों का संस्कृत-ज्ञान प्रशंसनीय माना गया है। भाषा सीखने के लिए लोग उत्तर के प्रान्तों में जाते थे और लौटने पर आदृत होते थे— उदञ्च एव यन्ति वाचं शिक्षितुं यो वै तत आगच्छति तं शुश्रूषन्ते (८.६)।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस कथन का मूल्य बहुत अधिक है। पाणिनि मुनि भी उत्तर के थे। उनका जन्मस्थान शालातुर तक्षशिला के पास था इससे उनका भाषा-ज्ञान विशेष श्लाघनीय था।

२— रुद्र की विशेष महिमा का वर्णन है— रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्(२५.१३)। छठे अध्याय में शिवके भव, पशुपति, उग्र, महादेव, रुद्र, ईशान तथा अशनि नाम दिये गये हैं। इनकी उत्पत्ति और व्रत का भी निर्देश किया गया है।

३— ७म अध्याय में अग्नि को प्रारम्भिक और विष्णु को अन्तिम माना है जैसा कि ऐतरेय में। यहाँ विष्णु का अर्थ यज्ञ है— यज्ञो वै विष्णुः।

४—मनुष्योंसे हिंसित पशुओंके विषयमें कहा है— उस लोक में पशु मनुष्यों को खाते हैं— अमुष्मिन् लोके पशवो मनुष्यानश्नन्ति। इससे सिद्ध है कि मांस-भक्षण के प्रति घृणा की भावना विद्यमान थी।

५— शक्वरी के सम्बन्ध में २३.२ में कहा है— इनके द्वारा इन्द्र वृत्रको मार सका अतः शक्वरी हैं

६— गोत्र का प्रचलन हो चुका था। २५.१५ में कहा है कि स्वगोत्री के साथ रहे—ब्राह्मणो समान-गोत्रे वसेत् यन् समाने गोत्रे अन्नाद्यं तस्योपाप्त्यै।

सामवेदीय तांड्य ब्राह्मण

यह ताण्डि शाखा से सम्बद्ध होने से 'ताण्ड्य', पच्चीस अध्याय होने से 'पञ्चविंश, तथा विशाल होने से 'महाब्राह्मण' प्रसिद्ध है। एक दिन से लेकर हजार वर्षोंतक चलनेवाले यज्ञों और उनमें उद्गाता के कार्यों का इसमें वर्णन है। दूसरे-तीसरे अध्याय में त्रिवृत्-पञ्चदश-सप्तदश आदि स्तोमों की विष्टुतियों का, चतुर्थ-पञ्चम में एकवर्षीय गवामयन का, षष्ठ में ज्योतिष्टोम का, सप्तम में प्रातः-माध्यन्दिन सवन और रथन्तर-बृहत्-नौधस-कालेय सामों का, अष्टम-नवम में सायं सवन का, दशम से पञ्चदश तक द्वादशाह का, सोलह से उन्नीस तक एकाह यागों का, बीस से बाईस तक अहीन यागों का, तेईस से पच्चीस तक सत्रों का विशद वर्णन है।

इसमें सोमयाग और सामों का वर्णन मुख्य है। अनेक सामों के नाम उनके द्रष्टा ऋषियों के नाम से हैं जैसे वामदेव्य, यौतान, वैखानस, शार्कर आदि। वात्स साम का रोचक आख्यान है। वत्स और मेधातिथि दो काण्व ऋषि थे। पहले को दूसरे ने शूद्रा-पुत्र कहा। दोनों निर्णयार्थ अग्नि के पास पहुंचे। वत्स का रोआँ भी नहीं जला। तभी से वात्स साम कामनापूरक होने से 'कामसनि' प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार वीङ्क साम च्यवन का यौवन-दाता बताया है। [१४.६.६, १०]

इसमें विभिन्न आचार्यों के मत का खंडन कर अपने मतको पुष्ट किया गया है। व्रात्ययज्ञमें साम गान किस मन्त्र पर हो ? एक मत है—देवो वा द्रविणोदा...पर, दूसरा मत—अदर्शि गातुवित्तम...पर, यहाँ पहले का खंडन और दूसरे का मंडन किया है।

यज्ञ को ही श्रेष्ठता का साधन बताते हुए १८.१.६ में उल्लेख है कि इन्द्रने यज्ञ न करनेवाले यतियों को सियारों के लिए खाने को दे दिया था। लौकिकी समृद्धि पाने के लिए नागों ने भी यज्ञ किया था।

व्रात्ययज्ञ-वर्णन बहुत महत्त्व का है। आचारहीन जनोंके ४ भेद सायण-भाष्यमें बताये हैं। इनके वेश, आचार-विचार, दोष-मुक्ति-यज्ञ और उनमें देय दक्षिणा का रोचक वर्णन अ० १७ में मिलता है।

उष्णीष (पगड़ी), प्रतोद (पैना), फलक-विपथ (खड़खड़ा), कृष्णाश वास (काली किनारी धोती), काला-सफेद भेड़-चर्म, रजत-निष्क (चाँदी-सिक्का) लाल किनारी की धोती, उपानह आदि (श्र.१७.१)

इसका भौगोलिक क्षेत्र सरस्वती-कुरुक्षेत्र-मंडल निमिषारण्य तक है जो स्वर्ग-समान माना गया है। रोहितकूलीय साम की व्याख्या में भरतों के साथ विश्वामित्र का रोहित(रोहतक) के तट तक विजय तथा विनशन, प्लक्ष प्रास्रवण आदि का उल्लेख है।

षड्विंश ब्राह्मण

यह ताण्ड्यका २६वाँ अध्याय है जिसमें ५ प्रपाठक हैं। उनमें पाँचवें का नाम 'अद्भुत ब्राह्मण' है, क्योंकि इसमें विचित्र बातें हैं, जैसे भूकम्प-अकाल में फल-फूल होने, अश्वतरी के गर्भ, हथिनीके डूबने आदि उत्पातों की शान्ति का विधान है। आरम्भमें ही 'सुब्रह्मण्या' की व्याख्या है। ऋत्विज लाल धोती-पगड़ी पहनते थे— लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति (३.८.२२)। सन्ध्या का समय दिन-रात-सन्धि बताया है—तस्माद् ब्राह्मणो अहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते। (४.५.५)

आर्षेय ब्राह्मण

इसमें ३ प्रपाठक हैं जिनमें साम-गायक ऋषियोंके नाम-संकेत दिये हैं तथा मन्त्र और गान में भेद बताया है। यह साम-गान में सहायक है।

दैवत ब्राह्मण

इसमें केवल ३ खण्ड हैं जिनमें सामवेद के देवताओं-अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, सोम, वरुण, पूषा, सरस्वती, त्वष्टा, अङ्गिरस का और छन्द-निरुक्ति का प्रतिपादन है। इनमेंसे कुछ निरुक्तियाँ यास्क ने अपने निरुक्त में ली हैं। 'गायत्री'की स्तुति अर्थ की 'गै' धातु से बने गायत्र(ब्रह्मा)से उत्पन्न बताया है। ये निर्वचन भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे बड़े उपयोगी हैं। दूसरे खंडमें छन्दोंके देवता और वर्णोंका वर्ण है।

मन्त्र उपनिषद् ब्राह्मण

इसमें दस प्रपाठक हैं—दो में ब्राह्मण और ८ में छान्दोग्य उपनिषद्। इसे श्री सत्यव्रत सामश्रमी ने कलकत्ता से प्रकाशित किया है। संस्कारों में प्रयुक्त मन्त्रोंका यह सुन्दर संग्रह है जिनका निर्देश गोभिल गृह्य सूत्र में है। शंकराचार्य ने वेदान्त-भाष्य में इस के उद्धरण देतेसमय इसे तांडचशाखा का बताया—

ताण्डिनां मन्त्रसमाम्नायः—देव सवितः ...

'अस्ति ताण्डिनां श्रुतिः— अश्व इव रोमाणि....

ताण्डिनामुपनिषदि—स आत्मा तत्त्वमसि।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण

यह बहुत ही छोटा है, केवल पाच खंड हैं, साम वेदके गायन से उत्पन्न प्रभाव का तथा साम और साम-योनि मन्त्रों के सन्बन्ध का इसमें वर्णन है। यह कभी बहुत ही प्रसिद्ध था। निरुक्त में —विद्या ह वै... आदि मन्त्र इसी का है। इसी का अनुवाद मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में है। इससे स्पष्ट है कि यह निरुक्त और मनुस्मृति से प्राचीन है।

वंश और साम विधान

वंश ब्राह्मण में सामवेद के आचार्यों के वंशों का परिचय है। यह इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है।

सामविधान नितान्त नवीन, असम्भव, कल्पित अभिचार, जादू-टोना, तान्त्रिक प्रायश्चित्तोंसे भरा पड़ा है। इसमें ब्राह्मणके लक्षण नहीं मिलते। इस में शत्रु को भगाने के लिए चिता-भस्म-प्रयोग और उसकी आटे की मूर्ति के गले तथा अङ्गों को काट कर आग में डालने आदि का विधान अवैदिक है।

जैमिनीय उपनिषद्

जैमिनि शाखा का यह ब्राह्मण महत्त्वशाली है। इसे डा० रघुवीर ने नागपुर से प्रकाशित किया था। जैमिनीय उपनिषद गायत्र्युपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है।

—※—

गाय गायत्रमुक्थ्यम्– गायत्री का गान करो

(वाणी-भूषण, व्याख्यान–वाचस्पति, गुरुवर प. बिहारी लाल शास्त्री, काव्यतीर्थ, बरेली (उ. प्र.)

'सरिता' इतनी अधिक सत्य-विरोधिनी हो गयी है कि वैदिक-धर्म-विरोधी लेख के प्रकाशन में गर्व करती है। गायत्री मन्त्र वायु-मंडल में गति उत्पन्न करने को पढ़ा जाता है। शब्दवाहिनी गति पाठक की आकांक्षाओं का वायुमंडल में प्रसार करती है। इससे उनकी कामनाएँ सिद्ध होती हैं। यह साधन है जो अर्थ-चिन्तन-सहित बहुत समय तक कर्तव्य है।

यह निश्चित रूप से निचृद् गायत्री है किन्तु इस से उसका गायत्री न होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तेइस चौबिस अक्षरों वाले छन्द गायत्री ही हैं। वेद में ऐसे तेइस अक्षरों वाले अनेक मन्त्र हैं। यदि य. ३६.३ की प्रसिद्ध गायत्री विख्यात है तो वह केवल छन्दके कारण नहीं, वरन् उसका शब्दार्थके कारण अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। वस्तुतः यह ध्यानका मन्त्र है और इसका जप आत्मा से किया जाता है।

विश्वमें जो एक देव सविता ईश्वर अमर प्रकाश का अनुपम पुंज है जो वास्तव में वरणीय है उसका जो ध्यान के माध्यम से वरण करता है उसका उस दिव्य ज्ञान की ज्योति से कल्याण होता है जो बुद्धि की प्रेरक है, जो उसे सद्बुद्धि बनाती है, जो क्रमशः मेधा को सुमेधा, प्रज्ञा, ऋतम्भरा, उमा में परिणत करता है। मानवीय जीवन में बुद्धि का सर्वोपरि महत्त्व है और उसे प्राप्त किये बिना दुःखों, क्लेशों और अशान्ति से त्राण नहीं होता।

इस मन्त्र के सस्वर पाठ करने के साथ उसके अर्थ का भी चिन्तन करते हुए, परब्रह्मका जो ध्यान किया जाता है उसकी भी एक विद्या है। योगियों की योगपरक सूक्ष्म विद्याएँ उनके समीपस्थ होकर सीखने तथा निरन्तर अभ्यास करने से आती हैं। केवल विरोध के लिए विरोध करनेवाले निरर्थक आधारों पर इन सुधामयी प्रणालियों का विरोध सन्मार्ग पर चलनेवालों को केवल भ्रम में डालकर उनका अहित करना है जो श्रेयस्कर नहीं है।

मन्त्रके जप का वैज्ञानिक आधार यह है कि जब साधक जपके माध्यमसे अपने को अन्तर्मुखी करता है और बाह्य जगत् से नाता तोड़ कर मन्त्रार्थ पर ध्यान केन्द्रित करता है तो ब्रह्माण्डमें फैले हुए शब्द-ज्ञान-वाहक वायु से शरीर की वाङ्मयी–मनोमयी नाड़ियोंको गति मिलती है और आत्माका योग ब्रह्म से हो जाता है। चित्त-एकाग्रता की उस स्थिति से आत्माको जो शक्ति मिलतीहै उसे व्यावहारिकरूपसे सिद्धि पाना कहते हैं। इनसे जब स्वार्थवश लौकिक लाभ उठाया जाता है तो ये समाप्त हो जाती हैं किन्तु यदि इनसे परमार्थकी भावना और जीवनोत्थान की कामना से कर्म किये जाते हैं तो ये लौकिक रूप में यशस्वी बनाती हैं और मरणोपरान्त मोक्ष को प्राप्त करने में सहायक होती हैं।

यह निर्विवाद है कि मन एकाग्र होने से चित्तकी वृत्तियों का निरोध तथा बुद्धिका विकास होता है। धार्मिक उपदेश मन-बुद्धि की मलिनता दूर करते हैं और ज्ञान-वैराग्य को प्राप्त करा परम सत्ता से योग कराते हैं। जिन ऋषि-मुनियों तथा अन्य महापुरुषों ने गायत्रीके अर्थका चिन्तन करते हुए उसे गुरुमन्त्र के रूप में प्रेरणाका स्रोत बनाया उन्हें इसके जप से निरन्तर सन्मन्त्रणा मिली। आज के युगमें तिलक, मालवीय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मोतीलाल नेहरू आदि के जीवन-वृत्तान्त इस सत्य के साक्षी हैं क्योंकि उन्होंने इस से अपने को लाभान्वित किया और जीवन को यशस्वी बनाया।

आर्य सभ्यता में वेदों का सर्वोच्च स्थान है क्यों कि ये अपौरुषेय हैं। जो प्रभाव ईश्वर का अमर-काव्य अर्थात् वेद अपने मन्त्रों के माध्यम से डालता है, वह अन्य मनुष्यकृत ग्रन्थों द्वारा संभव नहीं है। अतएव जो इस सत्य का साक्षात्कार करते हैं और तदुपरान्त इस मन्त्रका जप करते हुए ध्यान करते हैं, और विधि पूर्वक इसका अनुष्ठान करते हैं, तो मन्त्र उन्हें सतत बुद्धि की प्रेरणा देता है, जो मानवीय जीवन के उत्थान की आधार शिला है। ऐसे ही जीवन को ईश्वरीय गुणालंकृत और महान करते हैं। अतः गायत्री का गान करो।

गायत्री, गुरु मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्र चोदयात्॥
(यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र ३)

शब्दार्थ—ओम्—रक्षक परमेश्वर, भूः—प्राण, भुवः—दुःख-नाशक, स्वः—सुख-स्वरूप है। तत्—उस, सवितुः— प्रेरक, उत्पादक, देवस्य— सुखद, प्रकाशक, गतियुक्त के, वरेण्यम्— वरण-योग्य, श्रेष्ठ पाप-निवारक, भर्गः— तेज को, धीमहि— धारण करें; हम उसका ध्यान करें, यः— जो (सविता) नः -- हमारी, धियः-- बुद्धियों और कर्मों को, प्र चोदयात्-- अच्छे प्रकार से प्रेरित करे॥

यम-लोक और श्राद्ध

यम का अर्थ सूर्य तथा आचार्य और पितर का अर्थ पालनकर्ता वानप्रस्थी गुरु है। अज्ञ मरे हुओं को पितर और उनके राजा को यम मानकर मृतकों का श्राद्ध-तर्पण करते हैं जो अवैदिक और बुद्धि-विरुद्ध है। अतः हम उसका खंडन कर जीवितों का ही श्राद्ध करें।

डा. रामेश्वरदयाल गुप्त(ज्वालापुर) ने दस अप्रैल के आर्यमित्र में 'मृत्यु के उपरान्त' लेख में यम-पितृ लोक मानकर वेदमन्त्र उद्धृत किये हैं जिनका अर्थ अशुद्ध है।

ऋ. १०.१५.१ में बताये गये पितर यज्ञ के ३ सवनों से सम्बन्धित सूर्य-किरणें हैं। चौथे मन्त्र में भी उन्हीं का वर्णन है, पुत्र-पौत्रों को ऐश्वर्य देने की बात नहीं।

मं. दस के सूक्त एक सौ सैंतिस के मन्त्र सात में यम का अर्थ यास्क ने निरुक्त में आदित्य किया है जो सूर्य और आचार्य हैं। सूर्य के सादन (प्रवेश-स्थान) शरीर में प्राण-धारिणी नाड़ियों का और यम आचार्य के घर पर वेद गान का सङ्गीत छिड़ा रहता है।

विशेष जानने के लिए स्वामी ब्रह्ममुनि कृत 'यम-पितृ-परिचय' (सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली से छपी) देखनी चाहिए। — आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

संस्कारविधि की शताब्दी

महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदानुकूल संस्कार-विधि की रचना कार्तिक अमावास्या १९३२ वि. को हुई, इसका दूसरा प्रामाणिक वर्तमान संस्करण भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी १९४० वि.को, निर्वाणसे दो मास पूर्व, महर्षि ने छपने को दिया। इसे सौ वर्ष पूरे होगये, अतः इसकी शताब्दी सर्वत्र मनाई जाय।

जिसके पास न हो वह अवश्य खरीद ले और इसे पूरा पढ़े, वेद-मन्त्र याद करे, शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करे, बच्चों के संस्कार अवश्य करे।

विद्यार्थी इसका वेदारम्भ प्रकरण और गृहस्थ गृहाश्रम के अमूल्य उपदेश अवश्य पढ़ें। समाजों में इसकी कथा और प्रवचन हों।

विश्ववेदपरिषद् श्रावणी से कृष्णाष्टमी तक नौ दिन लखनऊ में संस्कारविधि का शिविर लगायेगी तथा 'संस्कार-विशारद' की परीक्षा लेगी। इच्छुक जन और समाजें ५) शुल्क भेजकर प्रश्नपत्र मँगालें। भाद्रपद वदि १३ को संस्कारविधि शताब्दी मनायें।

वेद की परीक्षाएँ

वेद--विश्वविद्यालय की श्रावणी-पश्चात् होने-वाली चारों वेदों, संस्कृत, व्याकरण, पौरोहित्य आदि की विशारद, भूषण, रत्न उपाधि वाली परीक्षाएँ भाद्रपद पूर्णिमा को होंगीं। पाठविधि पूर्ववत् है। शुल्क ५)में प्रश्नपत्र पाकर, उत्तर भेजिए और सुन्दर प्रमाणपत्र लीजिए।

परिषद् के निश्चय

२९ मई को प्रबन्धसमितिने निम्न निश्चय किये-सदस्यता-शुल्क सब के लिए २०) रु. होगा। वेदज्योति सब सदस्यों को दी जायगी। निर्वाण-शताब्दीपर वेदज्योतिका विशेषाङ्क निकाला जाय।

— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, मन्त्री

प्रेषक—प्रकाशक वेदज्योति, आदर्श प्रेस,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ उ. प्र. २२६००६

ग्राहक-संख्या 1322
सेवायाम श्री पुस्तकाध्यक्ष

ओ३म्

वेद-ज्योति

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व वेद-परिषद्,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ. उ.प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१
❀ विशेषांक-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

वर्ष ७, अंक ७, शुचि [आषाढ़] २०४० वि०

जुलाई १९८३ ई०, मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९

ऐतरेय ब्राह्मण, (३९-४०) पुरोहित से राष्ट्र-रक्षा

वेदज्योति पत्र आया है !

अग्नि वायु आदित्य अंगिरा ऋषियों ने ज्ञान-
सृष्टि प्रारम्भ में जो प्रभुवर से पाया है।
वह ही जगती में प्रिय पावन 'पीयूष' वेद,
ऋक, यजु, साम और अथर्व कहलाया है।
भूल गये थे भ्रान्ति वश जिसको आर्यजन,
पुनि बोध देव दयानन्द ने कराया है।
करें वेद पठन पाठन श्रवण नित्य,
याद यह दिलाने वेदज्योति पत्र आया है॥
ऋक में है ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड यजु में है,
साम ने उपासना का दिव्य गान गाया है।
विविध विज्ञान है अथर्व में इसी से शीश
विश्व के विज्ञानियों ने सादर झुकाया है।
वरणीय वेद का पीयूष पिया जिसने,
जीवन सफल धन्य अपना बनाया है।
करें वेद पठन पाठन श्रवण नित्य,
याद यह दिलाने वेदज्योति पत्र आया है॥

—पन्नालाल पीयूष, अजमेर



वेद और यज्ञ के प्रचार में रात-दिन संलग्न
आचार्य पंडित वीरसेन वेदश्रमी
अध्यक्ष विश्व-वेद-परिषद्, वेदसदन, इन्दौर

वैदिक गणित का महत्व

यद्यपि वैदिक गणित का जन्म भारतमें ही हुआ है, परन्तु भारत में इसे वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है जितनी होनी चाहिए। पुरी के स्वर्गीय शंकराचार्य द्वारा विज्ञान की इस शाखा के संबन्ध में लिखी एक पुस्तक श्री निकोलस के हाथ लगगई और उसे पढ़कर वे वैदिक गणित और भारत की ओर आकर्षित हो गये।

प्रो० निकोलस के अनुसार वैदिक गणित अथर्ववेद से लिये गये १६ मन्त्रों के सूत्रों पर आधारित हैं। इस दिलचस्प नई गणित की खोज,जो कि पश्चिमी गणित से सर्वथा भिन्न है, शंकराचार्य ने की थी। इसके एक सूत्र की व्याख्या एक-एक खण्डमें की गई थी। इस प्रकार इस गणित के १६ खण्ड थे। दुर्भाग्य से यह पाण्डुलिपि कहीं खो गई। लेकिन फिर भी शंकराचार्य ने अपनी वृद्धावस्थामें कमजोर शरीर की परवाह न करते हुए वह पाण्डुलिपि नये सिरे से तैयार कर ली और ३ महीने के भीतर ही उन्होंने इन १६ खण्डों का सार एक ही पुस्तकमें रखकर इसे वैदिक गणितका नाम दिया।

वैदिक गणित और भारतीय जीवन पद्धति ने उत्तर लंदन पालिटेक्निक के वरिष्ठ गणित प्राध्यापक श्री एण्ड्रू पी० निकोलस को इतना आकृष्ट कर लिया है कि वे अब भारत की प्राचीन पुस्तकों के अध्ययन और अनुसंधान से विज्ञान के नवीन पहलुओं पर प्रकाश डालनेहेतु अपना सारा जीवन समर्पित करनेका इरादा कररहे हैं। उन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है और एक भारतीय सन्त का सा जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया है।

श्री निकोलस की यह दृढ़ धारणा है कि इस खोज से ऐसी नई नई बातों का पता चल सकेगा जो अभीतक संसारको ज्ञात नहीं है। उनका कहना है कि 'अब समय दूर नहीं है और वैदिक गणित के रहस्य दुनियाके सामने प्रकट होने ही वाले हैं।

—✿—

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के अतिरिक्त ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेदोत्पत्ति-वेदनित्यत्व वेद विषय विचार-वेदसंज्ञा ब्रह्मविद्या, आयुर्वेद, पृथ्वी आदि का आकर्षण, आदि विषयों में जो सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, उनकी जानकारी प्रत्येक वैदिकधर्मी को होनी चाहिए। साथ में ऐसा प्रयास भी हो कि जितने भी वेद के अध्येता-अध्यापक आदि हैं, उन तक भी ये सिद्धान्त पहुंचाये जावें। जो भी कोई वेद प्रेमी व्यक्ति है उसे सुविधा से ऋषि दयानन्द के वेद विषयक चिन्तन की जानकारी मिल जावे। जो सिद्धान्त प्रस्तुत हैं उनकी पुष्टि में शोध भी होता रहे।

—रक्षक

गौमांस-भक्षण घातक

अमेरिकावासियों ने अनुसन्धान किया है कि गौमांस खाने से कालस्ट्रोल बहुत उत्पन्न होता है जिसे वे कैंसर से भी अधिक घातक मानते हैं क्योंकि इससे हृदय पर आघात होकर तत्काल मृत्यु हो सकती है।

इस परीक्षण के फल स्वरूप वहाँ गौमांस की बिक्री कुछ कम होने लगी है।

पनीर में गौ-मांस

रेनेट पनीर बनाने में महत्त्वपूर्ण संघटक पदार्थ है जो दो सप्ताह के गाय के बछड़े को मार कर उसके पेट से निकाला जाता है। ऐसा पनीर बनाने वाली अनेक कम्पनियाँ भारत में भी हैं जिनके बनाये पनीर आदि बाजार में बिकते हैं जिन्हें लोग शुद्ध समझकर खरीदते और खाते हैं। रेनेट दूसरे देशोंसे भी मँगाया जाता है।

गौ-भक्त वैदिकधर्मियों का कर्तव्य है कि—

१. ऐसा पनीर न खरीदें और न खाएँ-खिलाएँ।

२- रेनेट से पनीर न बनाने के लिए कम्पनी और सरकार को बाध्य करें।

—सम्पादक

इन्द्र के इसी राज्याभिषेक से अंगिरस् के पुत्र संवर्त ने अविक्षित के पुत्र मरुत्त का अभिषेक किया और वह सारी पृथ्वी पर घूमा और उसने विजय करके अश्वमेध यज्ञ किया। श्लोक यह है-

मरुत् लोग मरुत्त के घर में अन्न बांटने वाले रहे। इसकी सब कामनायें पूरी हुईं और विश्वेदेव (विद्वान्) वहाँ मौजूद थे। (७)

खण्ड २२ — इसी इन्द्र के अभिषेक से अत्रि के लड़के उदमय ने अंग का अभिषेक किया। उससे अंग ने पृथ्वी की विजय की और अश्वमेध यज्ञ किया। उस अलोपांग ने एकबार कहाथा– ब्राह्मण, मैं तुझे दस हजार हाथी और दस हजार दासियां देता हूं, तू मुझे अपने यज्ञ में बुलाना। इसके सम्बन्ध में पाँच श्लोक कहे जाते हैं —

१– प्रियमेध के लड़कों ने उदमय को जिन जिन गायों को देने के लिये कहा अत्रि के लड़के उदमय ने मध्य सवन में बदूवा (सौ करोड़ गायों) में से दो दो हजार गायें दीं।

२– विरोचन के पुत्र ने ८८ हजार सफेद घोड़ों की रस्सियाँ खोल दीं और यजमान पुरोहित को दान कर दिया।

३– अत्रि के लड़के ने देश देश से जमा हुई दस हजार लड़कियों का जिनकी गर्दन में आभूषण पड़े थे, कन्यादान कर दिया।

४– वचत्नुक देश में अत्रि के लड़के ने दसहजार हाथी दिये। थके हुए ब्राह्मण ने अंग के दान को लेने के लिए नौकरों से कहा।

५– सौ तुझको, सौ तुझको ऐसा कहता कहता वह थक गया। तब उसने कहा हजार तुझको, हजार तुझको फिर भी थककर सांस लेने ठहर गया (क्योंकि दान के लिए बहुत शेष था)। ८

खण्ड २३— इन्द्र के इसी महाभिषेक से ममता के लड़के दीर्घतमा ने दुष्यन्त के लड़के भरत का अभिषेक किया। इससे भरत ने सब पृथ्वी की परिक्रमाकी और अश्वमेध यज्ञ किया इसके विषय में श्लोक है —

१– भरत ने मष्णार देश में १०७ काले और सफेद दांतों वाले सोने से आभूषित हाथी दिये।

२– जब दुष्यन्त के पुत्र भरतने साचीगुणनामी नगर में अग्नि स्थापित की तो हजारों गायों के गल्ले ब्राह्मणों को दान दिये।

३– जब दुष्यन्तके पुत्र भरत ने ७८ घोड़े यमुना के किनारेऔर ५५ गंगाकेकिनारे इन्द्रके लियेबांधे।

४– दुष्यन्त के पुत्र भरत ने ३३०० मेध्य घोड़ों को बाँधा और अपनी प्रबल माया के द्वारा माया वाले शत्रु को पराजित कर दिया।

५– जैसे पाँच प्रकार के आदमियों में से कोई अपने हाथों से आकाश नहीं छू सकता इसी प्रकार भरतके महाकर्म को न कोई न पा सका न पायेगा।

इसी इन्द्र के महाभिषेक का उपदेश बृहदुक्थ ऋषि ने दुर्मुख पांचालको किया। इसीसे दुर्मुखने राजा बनकर पृथ्वी भर को घूम कर जीत लिया।

वसिष्ठ गोत्री सत्यहव्य के पुत्र ने जनन्तप के लड़के अत्यराति को इसका उपदेश किया। इससे अत्यराति ने इस विद्याको ग्रहण करके पृथ्वी भर का भ्रमण किया और उसे जीतकर राजा बना।

वसिष्ठगोत्री सत्यहव्य के पुत्र ने राजा से कहा– तूने समुद्र के तट तक सम्पूर्ण पृथ्वी जीत ली। तू अब मुझे भी दक्षिणा देकर बड़ा बना। अत्यराति ने उत्तर दिया हे ब्राह्मण जब मैं उत्तर कुरुओं को जीत लूंगा तब तू पृथ्वी का राजा होगा और मैं तेरा सेनापति होऊँगा।

सत्यहव्य के पुत्र ने कहा– यह देवक्षेत्र है। इसको कोई नहीं जीत सकता। तूने मुझे धोखा दिया इसलिये इसको मैं तुझसे लिये लेता हूं। जब अत्यराति से यह सब छीन लिया गया और वह निः– शुक्र होगया तो शिवियके पुत्र शुष्मिण ने उसे मार डाला। इसलिये जो क्षत्रिय इस रहस्य को समझे और जिसका अभिषेक हो जाय उसको चाहिए कि ब्राह्मण से छल न करे। नहीं तो उसकी सम्पत्ति छिन जायगी और वह मार डाला जायगा। (९)

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में पंचिका ८का अध्याय ४ समाप्त हुआ। —※—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ८, अध्याय ५

अध्याय ४०

पुरोहित के द्वारा राष्ट्र की रक्षा

खण्ड २४— अब पुरोहितके विषय में कहते हैं। जिसके पुरोहित न हो उस राजा का अन्न देव नहीं खाते। अतः यज्ञका इच्छुक राजा उसे नियुक्त करे।

देव मेरा अन्न खायें—यह विचारकर राजा उसे नियुक्त करके स्वर्ग दिलानेवाली अग्नियोंकी स्थापना करे। पुरोहित उसका आहवनीय है, पत्नी गार्हपत्य है और पुत्र अन्वाहार्य पचन (दक्षिणाग्नि) है। वह इनके लिए जो कुछ करता है मानो तीनों अग्नियों में यज्ञ करता है। ये पुरोहित के द्वारा शान्त-तनु व प्रसन्न होकर उसे स्वर्गलोक में लेजाती हैं तथा क्षत्र-बल-राष्ट्र-प्रजा को देनेवाली होती हैं। यदि अर्चित न हों तो ये उनसे च्युत कर देती हैं।

पुरोहित, जो वैश्वानर अग्नि है; ५ विघ्नकारक शक्तियाँ भी वाणी-पैर-त्वक्-हृदय-उपस्थ में रखताहै। इनके साथ वह राजा के पास आता है, जो उसकी वाणी को यह कहकर शान्त करता है—

भगवन्; आप अब तक कहाँ रहे? सेवको, इनके लिए आसन लाओ।

उसके पैरों और त्वचा की विघ्नकारी शक्ति को राजा उसके पैर धोकर और अलङ्कार देकर तथा हृदय और उपस्थ को तर्पण और स्वच्छन्द निवास करा कर शान्त करता है।

इस प्रकार शान्त होकर वह उसे स्वर्गादि प्राप्त कराता है, अन्यथा इनसे वंचित करदेता है।१(२४)

खण्ड २५— जैसे समुद्र भूमि को घेरकर वैसे ही पुरोहित राजा को सुरक्षित रखता है। इसे समझ कर राष्ट्र-रक्षक पुरोहित नियुक्त करने वाले का राष्ट्र सुरक्षित रहता है,वह आयुसे पहले नहीं मरता और बुढ़ापे तक पूरी आयु पाता है तथा फिर कभी नहीं मरता; प्रजा उस क्षत्रबलीकी आज्ञा मानती है।

खण्ड २६—इस पर ऋषि (ईश्वर) का कथन है—

१३१९— स इद् राजा प्रतिजन्यानि विश्वा
शुष्मेण तस्थौ अभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति
वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम्॥ ऋ ४.५०.७

अर्थ— वही राजा शत्रुओं को बल और वीर्य से, जीतता है जो देवों के पुरोहित बृहस्पति के समान जिसका अनुकरण मनुष्य करते हैं, अपने उत्तम पोषक पुरोहित का पोषण करता है और पहला भाग रखने वाले उसको सम्मान-सहित नमस्कार करता तथा चुनता है।

१३२०— स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे
तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते
यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति॥ ऋ ४.५०.८

अर्थ—वही पुरोहित अपने राजा के उत्तम हित-कारी घर में प्रसन्न रहता है, उसे सदा अन्न मिला करता है। उस राजा को लोग स्वयं नमस्कार करते हैं जिसके राज्यमें ब्रह्मा पुरोहित प्रतिष्ठित होताहै।

यह उसका अभिवादन है। ३ (२६) [२८३]

खण्ड २७— उसी को पुरोहित बनाना चाहिए जो ३ पुरोहितों और पुरोधाताओं को जानता हो। उनमें एक अग्नि है जिसकी पुरोधाता पृथिवी है। दूसरा पुरोहित वायु है जिसका पुरोधाता अन्तरिक्ष है। तीसरा पुरोहित आदित्य है जिसका पुरोधाता द्यौ है। जो इसे समझता है वही पुरोहित है, जो इसे नहीं समझता वह पुरोहित नहीं है।

जिसका ऐसा पुरोहित हो उसके दूसरे राजा मित्र हो जाते हैं और वह शत्रुओं को क्षत्र-बल से जीत लेता है तथा प्रजा उसे एक मन से मानती है।

पुरोहित के गुण-धर्म

पुरोहित बनाने के मन्त्र ये हैं, राजा कहता है—

भूर्भुवः स्वः ओम्। अमोऽहमस्मि स त्वम् स त्वमस्यमोऽहम् द्यौरहम् पृथिवी त्वम् सामाहम् ऋक् त्वम् तावेह संवहावहै पुराण्यस्मान्महाभयात् तनूरसि तन्वम् मे पाहि ॥ १ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
ता मह्यमस्मिन्नासने अच्छिद्रं शर्म यच्छत ॥२॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।
ता मह्यमस्मिन्नासने अच्छिद्रं शर्म यच्छत ॥३॥

अस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेशयामि अतो देवीः प्रति पश्यामि आपः। दक्षिणम्पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्रे इन्द्रियं दधामि। सव्यं पादम् अवनेनिजे अस्मिन् राष्ट्रे इन्द्रियं वर्धयामि ॥ ४ ॥

पूर्वम् अन्यम् अपरम् अन्यम् पादौ अवनेनिजे देवा राष्ट्रस्य गुप्त्या अभयस्यावरुध्यै। आपः पादावनेजनीर्द्विषन्तं निर्दहन्तु मे ॥ ५ ॥

अर्थ—भूर्भुवः स्वः ओ३म्। यह मैं हूं वह तू है। वह तू है यह मैं हूं। मैं द्यौ हूं तू पृथिवी है। मै साम हूं तू ऋक् है। हम दोनों एक दूसरे को बढ़ायें। हमें इस बड़े भय से बचा। तू शरीर है, मेरे शरीर की रक्षा कर ॥ १ ॥

सोम राजा वाली जो सैकड़ों विशेष लाभकारी औषधियाँ हैं वे मेरेलिए इस आसन पर सुख दें ॥२

जो दीप्त सोम सहित औषधियाँ पृथिवी के अनुकूल विशेष रूपसे स्थित हैं वे मुझे इस आसन पर निर्विघ्न सुख प्रदान करें ॥ ३ ॥

मैं इस राष्ट्र में श्री को स्थापित करता हूँ अतः दिव्य जल की ओर देखता हूं। पुरोहितके दाहिने बाएँ पैर को धोकर मैं इस राष्ट्र में इन्द्र की शक्ति को धारण करता और बढ़ाता हूं ॥ ४ ॥

हे देवो (विद्वानो), मैं राष्ट्रकी रक्षा और अभय की प्राप्ति के लिए पहले और दूसरे पैर को धोता हूँ। पैरों को धोनेवाला जल मेरे द्वेषीको भस्म करें ॥५॥

ब्रह्म-परिमर क्रिया

खण्ड २८— अब ब्रह्म-परिमर क्रिया कही जाती है। जो इसे जानता है उसके सब शत्रु मर जाते हैं। बहने वाला वायु बड़ा है! उसके चारों ओर पांच देवता मरते हैं— विद्युत्, वृष्टि, चन्द्रमा, आदित्य, अग्नि। जब पानी नहीं बरसता तो विद्युत् विद्युत्में प्रविष्ट होकर छिप जाती है। जब मनुष्य शत्रुको न देखें तो राजा कहे—विद्युत् समाप्त होने से मेरे शत्रु भी मर और छिप जायेंगे। वे फिर कभी न दिखाई दें। शत्रु शीघ्रही मर जाता है, वे उसे नहीं देखते।

वृष्टि बरस कर चन्द्रमा में प्रविष्ट होजाती और छिप जाती है। जब वह अन्तर्धान हो जाती है तो नहीं दिखाई देती। जब वे इसे न देखें तो राजा कहे— वृष्टि के समाप्त होने से मेरे शत्रु मर जायँ और फिर न दिखाई दें। शत्रु तत्काल मर जाता है और फिर दिखाई नहीं देता।

अमावस को चन्द्रमा आदित्य में प्रविष्ट होता है और छिप जाता है तथा दिखाई नहीं देता। जब न दिखाई दे तो राजा कहे—चन्द्रमा के छिपते ही मेरे शत्रु मर जायँ और अन्तर्धान हो जायँ तथा वे उसे न देख सकें। वे तत्काल मर जायेंगे और उसको न देख सकेंगे।

आदित्य अस्त होकर अग्नि में प्रविष्ट होता है। वह छिप जाता है और दिखाई नहीं देता। जब न दिखाई दे तो राजा कहे—सूर्यके छिपने से मेरे शत्रु भी लुप्त होजायँ मनुष्य उन्हें कभी न देख सकें। वे शत्रु को न देख सकेंगे क्योंकि वह मर जायगा।

अग्नि बुझकर वायु में प्रविष्ट होती है वह बुझ जाय और वे उसे न देखें तो राजा कहे—अग्निके बुझने सेमेरे शत्रु भी मर जायँ, लुप्त हो जायँ और मनुष्य उन्हें कभी न देख सकें। बस उसके शत्रु तत्काल मर जायेंगे और कोई उसे न देख सकेगा।

अब इन पाँचों देवताओं का पुनर्जन्म होता है— पहले वायु से अग्निका। क्योंकि प्राणवायु रूप बल के मथने से अग्नि उत्पन्न होती है। उसको देख कर राजा कहे—अग्नि फिर उत्पन्न हो, मेरा शत्रु नहीं,

वह दूर भाग जाय। इससे वह दूर भाग जाता है।

अग्नि से आदित्य उत्पन्न होता है। उसको देख कर राजा कहे— आदित्य उत्पन्न हो, मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाय। इससे वह दूर भाग जायेगा।

आदित्यसे चन्द्रमा उत्पन्न होता है। उसको देख कर राजा कहे— चन्द्रमा उत्पन्न हो किन्तु मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाये। इससे वह दूर भाग जायेगा।

चन्द्रमा से वृष्टि होती है। उसको देख कर राजा कहे— वृष्टि उत्पन्न हो किन्तु मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर चला जाय। इससे वह दूर चला जायगा।

वृष्टि से विद्युत् होती है। उसको देखकर राजा कहे— विद्युत् उत्पन्न हो, किन्तु मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर चला जाय। इससे वह दूर चला जायेगा। इसको ब्रह्म-परिमर कहते हैं।

इसको कुषारवके पुत्र मैत्रेय ने भृगुगोत्रके किरिष के पुत्र राजा सत्वन् से कहा था। उसके पाँच शत्रु राजा मर गये और वह बड़ा हो गया।

उसका व्रत यह है—

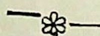
शत्रु के पहले न बैठे। जब समझ ले कि वह खड़ा हुआ है तब खड़ा हो। अपने शत्रु के लेटने के पहले न लेटे। जब समझ ले कि वह बैठा है तभी बैठे। जब तक शत्रु न सो जाय वह न सोए। जब यह समझ ले कि वह जाग गया है तो अवश्य जाग जाय।

ऐसा करने से यदि शत्रु अश्म-मूर्धा (पत्थर के समान दृढ़ सिर वाला) भी हो तो भी वह शीघ्र ही चूर-चूर हो जायेगा॥ ५ (२६) [८५]

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद की

पंचिका ८ का अध्याय ५ समाप्त हुआ।

यह सम्पूर्ण ऐतरेय ब्राह्मण समाप्त हुआ॥



ऐतरेय ब्राह्मण के ऐतिहासिक व्यक्ति

—❀—

प्रातःसायं सत्संगमें पठनीय संगठन सूक्त

ऋ. १०.१९१ का स्वर्गीय अक्षर कृत
पद्यानुवाद

ओ३म् सं समिद्‌युवसे वृषन् अग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

स्वयं-प्रकाश, प्रकाशक सबका, सब ही से बलशाली।
करे मेल संयोग सभी का, करे अलग वा खाली ॥
वही एक प्रेरक बैठा है जड़ में हर वाणी के ।
करे पदार्थ सुपर्याप्त जो हों आवश्यक प्राणी के ॥

ओ३म् संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥२॥

मिलकर साथ चलो तुम सबही, मिलकरही तुम बोलो ।
मिलकर ही तुम भाव परस्पर अपने मन के खोलो ॥
जैसे सर्वश्रेष्ठ विद्वज्जन निष्ठा के ही द्वारा ।
करते जिस कर्तव्य भाग को, करो अनुकरण प्यारा ॥

ओ३म् समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानम् मन्त्रम् अभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

हो समानता सुविचारों में समितिः में समता हो ।
मन में हों सम भाव सुमन से, चित्त समत्व-लता हो ॥
निश्चय ही मैं समविचार-उपदेश तुम्हें देता हूं ।
तुमको मैं समान हवि देकर सृष्टिय-ज्ञ करता हूं ॥

ओ३म् समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥

हों सङ्कल्प समान तुम्हारे नहीं विषमता होवे ।
हृदय परस्पर हितकारी हों मान-सहित सम होवें ॥
मन समान हो सदा तुम्हारा भेद-भाव सब जाये ।
जिससे 'अक्षर' भली भाँति सब कार्य सफलता पाये ॥

साहित्य-समालोचना

❀ महर्षि दयानन्द के शिक्षा' राजनीति और कला-कौशल सम्बन्धी विचार [दयानन्द विचार कोश ❀ लेखक— डा. रामनाथ वेदालङ्कार । प्रकाशक— महर्षि दयानन्द अनुसन्धानपीठ., पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ । मूल्य— पच्चीस रुपये ।

यह ग्रन्थ स्वामी दयानन्द के शिक्षा-राजनीति-कला कौशल सम्बन्धी विचारों का समग्र मूल्याङ्कन उपस्थित करता है । विद्वान् लेखक ने महर्षि के ग्रन्थोंको मथकर यह विचार-नवनीत पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है । इसमें स्वामीजी के ग्रन्थों और पत्रव्यवहार का सम्यक् उपयोग किया है । ऋषि केवल अध्यात्म-दर्शन-धर्मके ही व्याख्याकार नहीं थे अपितु लौकिकजीवन को सुखी समृद्ध तथा सर्वांगीण बनाने की योजनाएँ भी उन्होने अपने ग्रन्थों द्वारा प्रस्तुत की थीं । उनको शीर्षकों में विभक्त करके तत्सम्बन्धी अधिकांश उक्तियों को एक स्थान पर संगृहीत कर उपयोगी कार्य किया है ।

आशा है कि इससे पाठ ों को स्वामी जी के विशद दृष्टिकोण और व्यापक विचारों का परिचय मिलेगा ।

डा. भवानीलाल भारतीय, चण्डीगढ

सरिता की शरारत

मार्च ८३ द्वितीय अङ्क में ऋ. १.८२. ५ के सायण-भाष्य का डा. गङ्गाप्रसाद शर्मा का अनुवाद– 'सोम से मतवाला होकर इन्द्रका प्रेयसी के पास जाना और मोद पाना' अत्यन्त अनुचित है । क्या इन्द्र कोई मनुष्य है? क्या वह शराबी बदमाश है ? सायणके चेले उत्तर दें । महर्षि दयानन्द सरस्वती के भाष्यानुसार मन्त्रार्थ—

युक्तस्ते अस्तु दक्षिणः उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसः ।
योजान्विन्द्र ते हरी ॥

अर्थ—हे असंख्य कर्मोंवाले इन्द्र = जीवात्मा, सेना-पति विद्वान्; आप अपने वाहन में दो हरि [हरण-आकर्षण-युक्त यन्त्रों, ऋण धन विद्युतों, अग्नि-जल और घोड़ों] को युक्त कीजिए । अपने शरीरमें प्राण-अपान का योग कीजिए । आपका दाहिना और बायाँ [शरीर-यन्त्र-सेना का] अंग कार्य-युक्त रहे । इससे प्रिय जाया = पत्नी-प्रजा-ऐश्वर्योत्पादक भूमि-सेना को हर्षित करते हुए आप उनको साथ लेकर योग-विद्या-सेना के ऐश्वर्यों का लाभ पायें ।

— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

श्री विशुद्धानन्दस्याभिनन्दनस्य प्रत्यभिनन्दनम्

गीर्वाणामरवाक्-प्रचाररुचिराचार्याग्रणी कोवि...
वेदानामनुशीलनेन नितरां पूतान्तरात्मा मह...
आचार्यो वरवर्णनीयचरितो वीरेन्द्रशास्त्री मुनि...
वेदज्योतिरिदं प्रसारयति यो जीव्यात् शतं शारदः ॥१

कर्णे कोमलभाव-भूषित-पदालीमाधुरीमाद्दव...
सिञ्चल्लोचनयोरनल्पममृतं हर्षप्रकर्षं दध...
लिम्पच्चान्दनसौरभेण सुतरां प्रत्यङ्गमाप्लावयत्;
अद्यालम्भि भवद्दलं विदलयद् दुर्भाग्यदोषं द्रुतम् ॥२

श्रीमत्पाणि-पयोज-गुम्फित-सुवर्णग्राम-पुष्पैर्नवैः
भव्यैर्भवि-पराग-राग-सुरभि'प्राचुर्य पूराप्लुतैः ।
आमोद-भ्रमराभिनन्दन-पदैः साशीः शुभैर्मालितैः,
संयुक्तं ह्यनुकम्पमानममितं लब्धं दलं श्रीमताम् ॥३॥

शिक्षा-संस्कृति-मन्त्रणालयगते राष्ट्रीयसंस्थानके,
दिल्लीस्थे निरवाचि संस्कृतगिरोऽहं सर्वकारे...वै ।
भूयो भूरिविधातृ भाविभविकं सद्भावनाभूषितम्,
सामोदं प्रतिपद्यते ननु मया श्रीमच्छुभाशंसनम् ॥४

शिक्षासंस्कृतिरक्षणव्रतपरे संस्थानके चैवमः,
त्र्यब्दीं यावदहं वृतश्च समितौ सत् सर्वकारेण ...;
ज्ञात्वा तद् भवतां मनो ह्यतितरां हर्षप्रकर्षं द...
मन्यन्तेऽयसमुन्नति खलु निजामेषः स्वभावः सताम् ॥५॥

सृष्टेः सम्वत एव निर्णयविधौ धर्माधिकारे स्थिताः,
विद्वांसो ह्यनुरोधिताः 'प्रतिबुधा आकारणीयाः मम
वादं ते कलयन्तु साधुमतयः सम्भूय चैकस्थले,
सिद्धं स्वीकरणीयमेव सकलैर्युक्तिप्रमाणैरितम् ॥६॥

किन्त्वद्यावधि नैव तैरनुगतो निर्बन्ध एषोऽपि मे,
पक्षोऽतस्तु विनिर्णयं पुनरहो चूम्बतु निश्चप्रचम् ।
यच्चैकाब्दापण्णवत्यनुगतः प्राज्ञैः प्रयोज्योऽधुना,
यावन्नैव मतं परैरनुमतं सिध्येत् प्रमाणैश्चितम् ॥७॥

श्रीमत्प्रत्यभिनन्दनं तु विदधद् हृष्यामि चान्तर्भृशम्
आशासे भवतां सदैव प्रियवागुत्साहसंवर्धनम् ।
आधास्यत्वनुरागरंजितमनः प्रीतिं परां शाश्वतीम्
पुष्णन्तीहि निसातिः प्रियजनाश्चिन्तन्त्यभीष्टं सदा ॥

प्रणामाः वन्दनीयेभ्यो बालेभ्यश्चाशिषां शिवाः ।
वाचो वाच्या विशेषेण विशुद्धानन्द शर्मणः ॥९॥

कार्यव्यस्ततताहेतौ सत्यप्युत्तरितं मया ।
तदप्यनुत्तराक्षेपे 'महत्त्वं' प्रतिपाद्यते ॥११।

अमहत्त्वं महत्त्वेन ख्यापयन्तो निरन्तरम् ।
महान्तः खलु व्याजेन आशिषो नः प्रयुंजते ॥१२॥

आनन्द-मन्दिरम्, विशुद्धानन्द
कूंचा पाँडा, बदायूँ सदस्यः सार्वं धर्मार्यसभा, दिल्ली

शोकसमाचार

निम्नलिखितके देहान्तपर शोक व्यक्त किया गया—

१. वैद्य रामस्वरूप रोहतक ६-३-८३
२. श्रीमती सरलादेवी शास्त्री अलीगढ़ १०-३-८३
३. अर्जुनदेव विद्यालङ्कार ज्वालापुर [८०] २९-३-८३
४. वैद्य सुरेन्द्रकुमार स्नातक बीसलपुर ,
५. श्री हीरासिंह पूर्वप्रधान आ.स. अल्मोड़ा १-५-८३
६. पं. शिवकुमार शास्त्री की माता मडराक ६-५-८३

वेदपारायण यज्ञ सम्पन्न

— महात्मा दयानन्द ने श्री कोहली जी के घर पर लखनऊ में तथा तपोवन देहरादून में १८-२४ अप्रैल को
— आचार्य वीरेन्द्र मुनि ने श्री राम दुलारे शर्मा के घर पर लखनऊ में १३ से १५ मई तक यजुर्वेद से।
— प. वीरसेन वेदश्रमी ने १० से १७ अप्रैल तक सोनीपत में तथा १८ से २१ अप्रैल तक अजीतमल (इटावा) में यज्ञ सम्पन्न किया ।

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति, आदर्श प्रेस,
सी ८१७ महानगर. लखनऊ उ. प्र. २२६००६

ग्राहक-संख्या १३२८
सेवायाम् श्री पुस्तकालयाध्यक्ष

ओ३म्

वेद-ज्योति

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व वेद-परिषद्,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ, उ. प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१
❀ विशेषांक-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

वर्ष ७, अंक ८, नभः [श्रावण] २०४० वि०

अगस्त १९८३ ई०, मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९

ब्राह्मण-ग्रन्थ-परिचय विशेषांक १

आर्यवीरो उठो इस घड़ी !

आर्यवीरो उठो इस घड़ी राष्ट्रमें आपदा है खड़ी॥
आर्य ऋषियों की भूमि पै भी धर्ममर्यादा अब न रही,
भाई भाई यहाँ लड़ रहे शिक्षा आर वेद की न रही।
टूटी है सभ्यता की कड़ी, राष्ट्र में आपदा है खड़ी॥
आर्य पुरुषों के जीवन सदा, वेद-मर्यादा से युक्त हों,
राष्ट्र देवोंका बन जायगा, लोग ईश्वरसे संयुक्त हों।
चन्द्र तब शुभ होगी घड़ी, राष्ट्र में आपदा है खड़ी॥

—चन्द्रदेव शास्त्री



परोपकारिणी सभा अजमेर के प्रधान

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

आप के प्रधानत्व में ३ से ६ नवम्बर १९८३ तक महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी अजमेर में होगी।

विषय-सूची

वेद में विज्ञान

[श्री हरिप्रसाद शर्मा, अध्यक्ष वृष्टि-विज्ञान-मंडल, मथुरा]

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्ज शतक्रतो ॥
[यजुर्वेद, अध्याय ३ मन्त्र ४६]

मन्त्र का देवता [विषय] यज्ञ है। इसमें उसके रहस्य का उद्घाटन किया गया है। इसमें यज्ञ कर्ता कहता है कि हे शतक्रतु [सैकड़ों, असंख्य कर्मों वाले] परमेश्वर, सूर्य, विद्युत्, वायु, मेघ, हम दोनों इष-ऊर्ज=अन्न तथा ऊर्जा शक्ति का विशेष क्रय करें। इस काम की उपमा वस्ना (बनिये के व्यापार) से दी गयी है। यज्ञ का लक्ष्य अन्न-बल की प्राप्ति है अन्न के बिना जीवन नहीं। कैसा अन्न ? वह सार-हीन अन्न नहीं जिससे शरीर में ऊर्जा[पराक्रम] पैदा न हो, जिससे भूख तो मिट जाये किन्तु बल पैदा न हो वह निस्सार है। जो अन्न यज्ञ की वर्षा के अमृत-जल से उत्पन्न होता है वही पराक्रम देता है।

पूर्णा दर्वि परापत—४ प्रकार [सुगन्धित, मिष्ट, पुष्टि-कारक, रोग-नाशक] के पदार्थों के मिश्रण से पूर्ण हुई आहुति जब यज्ञाग्नि में पड़ती है तब सूक्ष्म कणोंमें छिन्न-भिन्न होकर वायु तथा जल को शुद्ध करती हुई अन्तरिक्ष में स्थित जल में खलबली पैदा करती है। वे सूक्ष्म कण जल-रस को लेकर वर्षा के रूप में भूमि पर लौटते हैं। इस अमृत-रूप जल से अन्न तथा उस से ओज उत्पन्न होकर प्रजा को बलवान् बनाते हैं।

वस्नेव विक्रीणावहै— ये शब्द एक नवीन रहस्य खोलते हैं। यज्ञ की प्रक्रिया वस्तुतः बनिये का सा [वस्नेव]व्यापार है। एक ओर यज्ञ करनेवाला तथा दूसरी ओर इन्द्र है। यज्ञकर्ता अग्निमें आहुति देता है दूसरी ओर इन्द्र वर्षा कर देते हैं। इस व्यापार में अग्नि तथा पृथिवी मध्यस्थ (दलाल) का काम करते हैं। अग्नि यजमान की आहुति को छिन्न-भिन्न कर इन्द्र के पास पहुँचा देता है। वहाँ से जो अमृत-वर्षा होती है उससे भूमि की उर्वरा शक्ति बीजको सौगुना बढ़ाकर अन्न पैदा करती है।

व्यापारके इस रहस्यको भुलादेनेसे अन्नकी पैदा-वार घट गई। आज भी यज्ञ-प्रथा को पुनर्जीवित कर हम अन्नोत्पादन में आत्म-निर्भर हो सकते हैं।

चाकलेट का राजरोग

डा० रवीन्द्र अग्निहोत्री, बम्बई

चाकलेट एक प्रकार का विष है। वैज्ञानिकों ने इसका विश्लेषण किया है। इसके रसायनों में एक फिनाइल एथिलेमाइन है जिसके शरीरमें पहुंचनेपर फेफड़ों से एक पदार्थ रिसने लगता है जो रक्त के द्वारा शरीर में फैल जाता है, इससे गरदन के द्वारा मस्तिष्क को आक्सीजनयुक्त शुद्ध रक्त लेजानेवाली नसें सिकुड़ने लगती हैं जिससे मस्तिष्क को पूरा रक्त नहीं पहुंच पाता और सिर दर्द से लेकर ब्रेन-हेमरेज तक विष की मात्रानुसार हो सकता है।

जितने विष हैं उनका प्रभाव नशीला होता है। इसीलिए उनके सेवन की इच्छा बारबार होती है। चाकलेट का भी स्वाद एक बार जीभ पर चढ़ जाय तो सरलता से उतरता नहीं। शायद यही कारण है कि वृद्ध तक चाकलेटका नशा करते देखे गये हैं। पर इसके परिणाम कितने भयङ्कर हो सकते हैं इसका एक ताजा उदाहरण सामने आया है। अभी आठ जनवरी के 'द ट्रिब्यून' में एक छात्र की मृत्यु का समाचार छपा था जो चण्डीगढ़ में इंजीनियरिंग का छात्र था। डाक्टरों ने बताया कि उसकी मृत्यु चाकलेट खाने से उत्पन्न मस्तिष्क-रक्त-प्रवाह से हुई। अतः इस घातक चाकलेट के विष से बचिए और बच्चों को बचाइये ॥

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ की विषय सूची

—❀—

ब्राह्मण ग्रन्थ-परिचय

❀ ब्राह्मण का अर्थ ❀

ब्रह्म = वेद और वेद प्रतिपादित यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाला, और ब्रह्म = ब्राह्मणों = वेदज्ञों द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ 'ब्राह्मण' कहाता है । पुल्लिङ्ग ब्राह्मण शब्द ब्रह्म = वेदज्ञान प्राप्त किये हुए ब्राह्मण वर्ण का अर्थ रखनेवाला है। साहित्य में ब्राह्मण उस ग्रन्थराशि का नाम है जिसमें वेद और वैदिक यज्ञों की विधियों के रहस्य ऋषियों द्वारा बताये गये हैं। अत: वेद मूल संहिताओं- ऋग,यजु,साम और अथर्व का नाम है तथा ब्राह्मण एक प्रकार से अप्रत्यक्षरूप में ब्रह्म (ब्रह्मज्ञानी ऋषियों) द्वारा की गई व्याख्या है। वेद से सम्बन्ध रखने के कारण कुछ लोग इन्हें भी वेद कह देते है। वस्तुत:वेद और ब्राह्मण साहित्य अलग अलग हैं । वेद ईश्वरोक्त है, ब्राह्मण वेद का आधार लेकर किये गये उसके और वैदिक यज्ञों के व्याख्यान हैं ।

❀ उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ ❀

प्रत्येक वेद के अलग अलग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं —

१ ऋग्वेद—[१] ऐतरेय
[२] सांख्यायन (कौर्षातकि ऋषिका)

२-यजुर्वेद— [३] शतपथ (वाजसनेयी माध्यन्दिन)
[४] शतपथ (काण्व शाखा का)
[५] तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का)

३-सामवेद—[६] ताण्ड्य(पंचविंश महाब्राह्मण)
[७] (षड्विंश (अद्भुत)
[८] आर्षेय
[९] दैवत।
[१०] मन्त्र उपनिषद्
[११] संहितोपनिषद्।
[१२] वंश।
[१३] जैमिनीय उपनिषद्।
[१४] साम विधान।

४ अथर्व वेद—[१५] गोपथ

अनुपलब्ध—भाल्लवि, शाटचायन, काठक आदि।

❀ ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय ❀

१— महर्षि जैमिनि ने मीमांसा दर्शन में बताया शेषे ब्राह्मण शब्द: (२.१.३३)।

२—शबर स्वामी ने इसके भाष्यमें बताया है कि मन्त्र के लक्षण जिसमें न हों वह शेष बचा वैदिक साहित्य ब्राह्मण शब्दवाची है।

३— वृत्तिकार उपवर्ष ने बताया कि 'इत्याह' (ऐसा है) के रूप में जिसमें 'इति' बहुत आवे और आख्यायिका का रूप हो वह ब्राह्मण है।

इन श्लोकोंमें ब्राह्मण के दस लक्षण बताये हैं-

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधि:।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥
उपमानं दर्शते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु।
एतद् वै सर्ववेदेषु नियतं विधिलक्षणम्॥

४— ब्रह्माण्ड पुराण (१.३३.४७-४८) में इन में दूसरे श्लोक का उत्तरार्ध निम्न प्रकार है—

लक्षणं ब्राह्मणस्यैतद् विहितं सर्वशाखिनाम्॥

५— वायु पुराण (उनसठवें अध्याय के १३२-१३३) में ये श्लोक व्याख्यासहित मिलते हैं।

ये दस लक्षण निम्नलिखित हैं—

(१)हेतु—यज्ञकी विधि का कारण बताना, जैसे शूर्पेण जुहोति तेन ह्यन्नं क्रियते (सूप से होम करता है क्योंकि उससे अन्न शुद्ध किया जाता है)
शतपथ २.५.दो.तेइस

(२) निर्वचन (निरुक्ति)—'दधि' (दही) धारण करने से,'आज्य स्तोत्र' 'आजि'से(ताण्ड्य ७.दो.१) इसी प्रकार रथन्तर, वृहत साम आदि की निरुक्ति बतायी गई है। (ताण्ड्य७,६.४.५)

(३) निन्दा— जुआ खेलना, अपात्र को विद्या, यज्ञ में माष (उड़द) के प्रयोग (अमेध्या वै माषा:- तै. तं.५.१.८.१) आदि की निन्दा की गई है।

(४) प्रशंसा—अग्निष्टोम (तां. ६.३.८.६), यज्ञ, वायु (वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता- तै. सं. दो.१.१) आदि की प्रशंसा भरी पड़ी है।

(५) संशय-- होतव्यम् गार्हपत्ये, न होतव्यम् (गार्हपत्य अग्नि में होम करना चाहिए वा नहीं) इस प्रकार के संशय भी मिलते हैं।

(६) विधि— 'विधि' का अर्थ यज्ञ तथा उस के अंगों उपांगों के अनुष्ठान का उपदेश है। ताण्ड्य (६.७) में अनेक विधियाँ उपलब्ध होती है। उदाहरणार्थ बहिष्पवमान' के लिए अध्वर्यु तथा उद्गाता आदि पाँच ऋत्विजों के प्रसर्पण का विधान किया गया है। साथ ही साथ दो नियमों का पालन करना नितान्त आवश्यक होता है। ऋत्विजों को प्रसर्पण करते समय धीरे धीरे पैर रखने का नियम है तथा मौन रहने का भी विधान है। पाँचों ऋत्विजों में अध्वर्यु, प्रस्तोता, उद्गाता प्रतिहर्ता तथा ब्रह्मा को एक दूसरेके पीछे इसी क्रम से पंक्ति बाँधकर चलने की व्यवस्था है। इस पंक्ति के टूट जाने पर अनेक हानि तथा अनर्थ की सम्भावना होती है। इस समय अध्वर्यु अपने हाथ में कुश को लेकर चलता है।

शतपथ ब्राह्मण विधि-विधानों की एक विशाल राशि प्रस्तुत करता है। आरम्भ के ही प्रथम कांड में दर्श और पौर्णमास इष्टियोंके मुख्य तथा अवान्तर अनुष्ठानों का वर्णन यागक्रम से किया गया है तथा द्वितीय कांड में आधान तथा पुनराधान, अग्निहोत्र तथा उपस्थान, आग्रयण तथा दाक्षायण यज्ञ का वर्णन बड़े विस्तार पूर्वक पुंखानुपुंख किया गया है। विधि के साथ ही साथ हेतु लक्षण का सयुक्तिक निर्देश किया गया है। शतपथ के आरम्भकी कण्डिकामें ही सहेतुक विधि का निर्देश उपलब्ध होता है। पौर्णमास इष्टि में दीक्षित होने वाला व्यक्ति आहवनीय तथा गार्हपत्य अग्नियों के बीच में पूरब की ओर खड़ा होकर जल का स्पर्श करता है। इस जल के स्पर्श का क्या कारण है? जल मेध्य होता है अर्थात् यज्ञ के लिए उपयोगी पदार्थ होता है। झूठ बोलनेवाला यज्ञ के लिए उपयुक्त नहीं होता है। अतः जल के स्पर्श करने से व्यक्ति पापों को दूर कर मेध्य बनता है। या जल पवित्र होता है। अतः जल के स्पर्श करने से व्यक्ति पवित्र होकर दीक्षित होता है।

यजमानेन सम्मिता औदुम्बरी भवति (तै.६.२.१०)
अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः (ऋ.भा.भू.)

(७) — परक्रिया(परकृति)— दूसरे के कार्य को देखकर अच्छा या बुरा बताना। जैसे– माषान् मे पचत(मेरे लिए उड़द पकाओ)शतपथ १.१.१.१०

यह उदाहरण कुमारिल के अनुसार परकृति के आधार पर है जिसने परकृति का अर्थ-- 'एक के द्वारा किया गया उपाख्यान' और पुराकल्प का अर्थ 'बहुतोंद्वारा किया गया आख्यान' बताया है।

(८) पुराकल्प (इतिहास)—जो पहले हुआ हो।

[१] जनककी सभामें याज्ञवल्क्य, गार्गी, शाकल्य आदि ने एकत्र होकर आपस में प्रश्नोत्तर रीति से संवाद किया था।

[२] उल्मुकैर्ह स्म पूर्वे समाजग्मुः (पूर्व जन अंगारों के साथ ही आये थे) (शाबर भाष्य)

(९) व्यवधारण-कल्पना (निश्चय करना)— यावतो अश्वान् प्रतिगृह्णीयाद् (तै. दो -३-१बारह) (जितने अश्वों का दान ले)

उपमा [आख्यान]

(१०) उपमा (उपदेश)– ब्राह्मणों में विधि अर्थवाद का वर्णन इतने विस्तार से कियागया है कि साधारण पाठकों को उद्वेग हुए बिना नहीं रहता, परन्तु इन उद्वेदक विषय–व्यूहों में से कभी कभी अत्यन्त रोचक आख्यान नितान्त आकर्षक तथा महत्त्वपूर्ण निकल आते हैं। तमिस्रा में प्रकाश की किरणों के समान तथा दीर्घ मरुभूमि में हरी भूमि की तरह ये पाठकों के उद्विग्न हृदय को शान्त तथा शीतल बनाते हैं। विधि-विधानों के स्वरूप की ही व्याख्या इन आख्यानों की जननी है, परन्तु कभी-कभी ये यज्ञ के संकीर्ण प्रान्त से पृथक् होकर साहित्य के सार्वभौम क्षेत्र में विचरने लगते हैं तो कर्मकांड की कर्कशता उन्हें रोक नहीं सकती।

आख्यान दो प्रकार के होते हैं – स्वल्पकाय और दीर्घकाय। स्वल्पकाय आख्यानों में उन कथाओं की गणना है जो सद्यः विधि की सयुक्तिकता प्रदर्शित करने के लिए उल्लिखित हैं।

ऐसे छोटे आख्यानों में कतिपय प्रधान ये हैं — वाक् का देवों को परित्याग कर जल और अनन्तर वनस्पति में प्रवेश [ताण्ड्य ६.५.१०-१२), स्वर्भानु असुर का आदित्य पर आक्रमण और अत्रि द्वारा उस अंधकार का विघटन (ताण्ड्य ६.६.८) यज्ञ का अश्वरूप में देवताओं से अपाक्रमण तथा दर्भमुष्टि के द्वारा उसका प्रत्यावर्तन (ता० ६.७-१८); अग्नि मन्थन के समय घोड़े को आगे रखने का प्राचीन इतिहास [शत० १.६.४.१५], असुरों तथा देवों के बीच नाना संग्राम (शत० २.१.६.८-१८) [ऐत० १.४.२३, ६.२.१]

इन छोटे आख्यानों में कभी-कभी बड़ी गम्भीर तात्त्विक बातोंका भी संकेत मिलता है जो ब्राह्मणों के कर्मकाण्डात्मक वर्णन से नितान्त पृथक् होता है तथा गूढ़ गम्भीरार्थ-प्रतिपादक होता है। प्रजापति की प्रार्थना उपांशु रूप से करने के निमित्त शतपथ ने जिस कथानक का उपक्रम किया है वह नितान्त रहस्यमय है। श्रेष्ठता पाने के लिए मन और वाक् में कलह उत्पन्न हुआ। मन का कहना था कि मेरे द्वारा अनभिगत बात वाणी नहीं बोलती है। मेरा अनुकरण करती हुई मेरे पीछे चलती है। (कृतानुकरा अनुगन्त्री) वाणी का कथन था कि जो तुम जानते हो उसकी विज्ञापना मैं ही करती हूं (मन के द्वारा ज्ञात या चिन्तित तथ्यों का प्रकटीकरण वाणी करती है) अतः मैं श्रेष्ठ हूं। दोनों प्रजापति के पास गये। उन्होंने अपना निर्णय मन के पक्ष में दिया। फलतः वाणी की अपेक्षा मन श्रेष्ठ माना जाता है। इस कथानक के भीतर मनोवैज्ञानिक तथ्य का विशद संकेत है (शत० १,४.५.८.१२)

वाक् से सम्बद्ध अनेक आख्यायिकायें बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद हैं। गायत्री छन्द सोम को देवताओं के निमित्त ले जा रहा था कि गन्धर्वों ने उसका हरण किया। देवता लोगोंने वाक् को भेजा वाक् अपने साथ सोम को लेकर लौटी। अब वाक् के लौटने का उद्योग होने लगा। गन्धर्वों ने स्तुति तथा प्रशंसा से उसे अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा। उधर देवों ने गायन और वादन के द्वारा [illegible]

कर उन्हीं के पास चली गई। इस कथा के प्रतीयमान उपदेश पर ब्राह्मण आग्रह दिखला रहा है कि यही कारण है कि स्त्रियां आज भी स्तुति की अपेक्षा संगीत से अधिक आकृष्ट होती हैं यह उनका स्वभाव ही ठहरा। (शत० ३.२.४.३-६)

सृष्टि के विषय में अनेक आख्यान ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। पुरुष के द्वारा वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख तो पुरुष सूक्त में ही उपलब्ध है। ताण्ड्य ब्राह्मण में भी प्रजापति के अंग विशेष से वर्णों की तथा तत्तत् देवताओं की उत्पत्ति बतलायी है। प्रजापति के मुखसे ब्राह्मण एवं अग्नि की, बाहु से क्षत्रिय एवं इन्द्र की, मध्यदेश से वैश्य एवं विश्वेदेवाः की, पैरों से शूद्र की उत्पत्ति गुणों की समानता बताने हेतु बताई गई है।

किन्हीं आख्यानों में साहित्यिक सौन्दर्य तथा कल्पनाकी सुन्दर अभिव्यंजना मिलती है। रजनी के उदय के विषय में सुन्दर आख्यान मैत्रायणी संहिता में मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि रात्रि की उत्पत्ति यमी के विषाद को भुला देने के लिए की गई है। यम के परलोक चले जाने पर यमी उसके दुःख से इतनी दुःखित हुई कि वह सर्वदा विलाप किया करती थी। यम को किसी तरह भूलती ही न थी, उस समय दिन का ही राज्य था। दिनमें उसकी स्मृति भूलती ही न थी। प्रजापति ने दयावश रात्रि को जन्म दिया। अन्धकार से जगत् व्याप्त हो गया। तभी यम को भुला सकी।

पर्वतों के पंख सम्पन्न होने तथा इन्द्र से उनके पक्षछेदन की कथा भी इसी संहिता में उपलब्ध है। ये कहानियाँ सचमुच सुन्दर रोचक हैं।

बृहत्काय कहानियों में पुरूरवा एवं उर्वशी की कहानी (शत०) एवं शुनःशेप की कहानी [ऐत०] प्रमुख हैं। इनमें से अनेक कहानियों का आधार संहिताओं में अन्तर्निविष्ट है जिन्हें लेकर ब्राह्मणों एवं पुराणों ने अपनी पद्धति के अनुसार पल्लवन किया है (पुरूरवा उर्वशी का वर्णन ऋ० १०।९५)

न्याय दर्शन में स्तुति, निन्दा, परकृति पुराकल्प इन चारों को अर्थवाद बतलाया गया है। इसके साथ विधि एवं अनुवाद को भी ब्राह्मण का लक्षण बताया गया है। हेतु, संशय, व्यवधारण, कल्पना, का वर्णन उनमें नहीं प्राप्त होता है।

—❀—

ब्राह्मणों का महत्व

ब्राह्मणों के यागानुष्ठानोंके विशाल सूक्ष्मतम वर्णन को आजकल का आलोचक नगण्य दृष्टि से देखने का दुःसाहस भले ही करे, परन्तु वे एक अतीत युग की संरक्षितनिधि हैं, जिन्होंने वैदिक युग के क्रिया-कलापों का भव्य चित्र धर्म-मीमांसक के लिये प्रस्तुत कर रखा है। यह परिस्थिति के परिवर्तन हो जाने के कारण अवश्य ही धूमिल सा हो गया है, परन्तु धार्मिक दृष्टि से उपादेय,सग्रहणीय और माननीय हैं। भारतीय धर्म के इतिहास में श्रौत विधानों का एक विचित्र युग ही था। उस युग को अपने पूर्ण सौन्दर्य तथा सौष्ठव के साथ आज भी उपस्थित करने का श्रेय इन्हीं ग्रन्थों को है। समय ने पल्टा खाया है। युगों ने करवटें बदलीं हैं। भक्ति आन्दोलन की व्यापकता के कारण वैदिक कर्मकाण्ड का ह्रास हो गया। श्रौत यज्ञ विधान आज अतीत की एक स्मृति मात्र है। वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड से लोगों की आस्था उठती गई। फलतः न कहीं श्रौत याग होते हैं और न कहीं उन अनुष्ठानों को साक्षात् करने का अवसर ही कभी प्राप्त होता है। यही कारण है कि ब्राह्मणोंके क्रिया कलापों को ठीक ठीक हृदयंगम करना एक विषम समस्या है; परन्तु इतना तो निश्चित है कि वे यज्ञ सम्बन्धी बकवाद नहीं हैं जैसा कि अधिकांश पश्चिमी व्याख्याता मानते आये हैं। उनके भीतर भी एक तथ्य है जिसे को खोलने की एक कुञ्जी है श्रद्धामय अनुशीलन तथा अंतरंग दृष्टि। बहिरंग दृष्टि वाले के लिये तो ये 'ब्राह्मण' उटपटांग अंडबण्ड के सिवाय और क्या हो सकता है?

❀ ब्राह्मण ग्रन्थ और मीमांसा ❀

ब्राह्मणों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि उस समय यज्ञयाग के अनुष्ठानों को लेकर विद्वानों में बड़ा शास्त्रार्थ होता था। मीमांसा जैसे शास्त्र की उत्पत्ति उस युग में हो गई थी जिसमें तर्क पद्धति के अनुसार यज्ञ के विषयों का विमर्शन होता था। मीमांसक ही हमारे प्रथम दार्शनिक हैं और मीमांसा प्रथम दर्शन। मीमांसा के लिये न्याय का प्रयोग इसीलिये उपयुक्त प्रतीत होता है। ब्राह्मणों में यज्ञीय विषयों के मीमांसक विद्वानों को ब्रह्मवादी संज्ञा दी गई है। उन के सामने यज्ञों की व्यवस्था के लिये आपाततः प्रतीत होनेवाल विरोधों को दूर करना आवश्यक था। अतः उन्होंने तार्किक बुद्धिका प्रयोग कर विधिवत् मीमांसा की। तांडय ब्राह्मण [६.४.१५) में 'एवं ब्रह्मवादिनो वदन्ति' के द्वारा अनेक यज्ञीय समस्याओं के सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। शतपथ (१.१.१.७-१०) में ऐसे तार्किक विद्वानों के नाम भी मिलते हैं और उन के मतों की समीक्षा भी की गयी है। उदाहरणके लिये दीक्षा के पूर्व दिन भोजन करने अथवा न करने के प्रश्न पर सावयस अषाड़ और याज्ञवल्क्य में मध्य गम्भीर मीमांसा मिलती है। अषाढ़ अनशन को ही व्रत मानने के पक्ष में थे किन्तु याज्ञवल्क्य ने सिद्ध किया कि भोजन करना चाहिये परन्तु खाया हुआ भी न खाये के समान हो, जैसे जंगली धान फल आदि।

ब्राह्मणों में 'मीमांसा' का प्रयोग बहुत मिलता है—

उत्सृज्याम् नोत्सृज्यामिति मीमांसन्ते। (तै. ७.५)

ब्राह्मणपात्रे न मीमांसेत। (तांडय ६.५.९)

उदिते होतव्यमनुदिते होतव्यमिति मीमांसन्ते(वै२.९)

ब्राह्मणों में निम्नलिखित अनेक बातें मिलती हैं—

[१] यज्ञों के नाना रूपों और अनुष्ठानों का परिचय।

[२] उन निर्वचनों से परिचय जो निरुक्त की निरुक्तियों का मौलिक आधार हैं।

[३] इन आख्यानों का मूल जिससे पुराण-कथाएँ बनीं।

[४] 'कर्म-मीमांसा' का आरम्भ और उत्थान।

[५] विविध शास्त्रों के उदय की कथा— कि यज्ञ की आवश्यकता की पूर्ति के लिये उत्पन्न हुए ये शास्त्र सार्वभौम क्षेत्र में अपना विकास करने लगते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ की अनुक्रमणिका

अ

आ

इ

ई

उ

ऊ

ऋ

ए

ऐ

शुनःशेप का आख्यान

[प० वीरसेन वेदश्रमी, अध्यक्ष विश्ववेदपरिषद्]

शुनःशेप की कथा हरिश्चन्द्र एवं रोहित की कथा का अङ्ग है। आधिदैविक अर्थ में यह सब वृष्टि-विज्ञानसे सम्बन्धित है। ऋग्वेदमें हरिश्चन्द्री मरुद् गणः बताया है। मरुद्गणों का नाम हरिश्चन्द्र है। उनका पुत्र मेघ है। मेघ अनेक प्रकार के होते हैं। रोहित (लोहित-लाल) वर्ण का मेघ अपक्व, अवर्षण-कारक होता है अतः वरुण (जल देवता-समुद्र) को रोहित की बलि हरिश्चन्द्र-मरुद्गण दे नहीं पाते हैं। अन्तमें अजीगर्त अपने पुत्रकी बलि देनेको तैयार होता है।

शुनःपुच्छ, शुनःशेप, शुनोलाङ्गूल— ये तीन पुत्र अजीगर्त के हैं। अजीगर्त वे मेघ हैं जो पृथिवी की ओर झुके हुए बरसने को गड़गड़ा रहे हैं। ऐसी स्थिति में मेघों में तीन प्रकार की वायु उत्पन्न होती है—

शुनःपुच्छ वह वायु है जो मेघ-मण्डल के ऊपर ही गति करती है। शुनःशेप वह वायु है जो अंतरिक्ष से सीधी पृथिवी की ओर आती है। और शुनोलाङ्गल वह वायु है जो मेघ-मंडल के नीचे के स्तर पर चलती है। शुनः शब्द वायु-वाचक है, और तीनों नाम तीन प्रकार की वायु की गति के हैं। अतः शुनःशेप-वायु के चलने से रोहित-बादल वर्षणशील बादलों से मिल जाता है।

शुनःशेप आदि ऋषि सृष्टि के प्राण-तत्त्व भी हैं ऐसा महर्षिने ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में माना है। ऋषि मनुष्यरूप भी हुए। हम लोगों का ध्यान सदा मानव ऋषि पर ही गया, सृष्टि के प्राणतत्त्वों पर नहीं। सृष्टि के प्राण-तत्त्व-ऋषियों में भी कार्य-कारण-भावसे पुत्र-पौत्र-वंशभाव समझा जासकता है।

नयी पीढ़ी को वैदिक आर्य बनाओ

श्री सोहनलाल शारदा, शाहपुरा (भीलवाड़ा, राज.)

जब तक हम नयी पीढ़ी को वैदिक आर्य नहीं बनायेंगे— इसके लिए कोई नया कार्य-क्रम नहीं देंगे— तब तक शनैः शनैः नीचे की ओर ही चलते जायेंगे। समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि संस्कृत-विद्यालयों में विद्यार्थी न्यून होते जा रहे हैं।

महर्षि के जीवन चरित्र में तो आता है कि जोधपुर के राजा जीवनसिंह के उत्तर में महर्षि ने कहा था कि मैं कोई शिष्य नहीं बनाऊँगा, मेरा कार्य आर्यसमाज ही पूरा करेगी। ऋषि के ग्रन्थों के आधार पर हमने यह ५ सूत्री कार्यक्रम बनाया है—

१. ५ से ८ वर्ष के बच्चों को आर्यसमाज के नियम व्याख्या सहित पढ़ाये जायँ।

२. इन्हीं बालकों को सत्यार्थ प्रकाशके तीसरे समु० के आधार पर नित्यकर्म, आचमन, प्राणायाम, संध्या, यज्ञका पाठ सिखाया जाय।

३. इन्हीं को आगे चलकर संस्कारविधि का सम्पूर्ण सामान्य प्रकरण समझाया जाय, जिससे पुरोहितों की समस्या हल हो सकेगी। महर्षि का भी आदेश है कि इतना तो अवश्य पढ़ लेवे।

४. पुनः इन सुयोग्य बाल विद्यार्थियों को सत्यार्थ-प्रकाश का छठा समु० पढ़ाया जाय, जिससे उनकी रुचि राजनीति की ओर जम जाय।

५. पुनः विद्यार्थियों को इसी समुल्लास के अन्तिम प्रकरणके आदेशानुसार राजनीति के महाभारत, मनुस्मृतिके एतद्विषयक अंश, वेदमन्त्र पढ़ाकर पूर्णज्ञानी ऐसा बनाये कि आगे चलकर ये विद्यार्थी राष्ट्र में प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकें।

यदि हम केवल आलोचनामें रहे, नई पीढ़ीको तैयार नहीं किया तो जो हाल हमारा पाकिस्तान बनने पर हुआ कि करोड़ों रुपये का माल छोड़कर जान लेकर भागे, इसी प्रकार आगे पंजाब, उ.प्र., म.प्र., दक्षिण से भागना न पड़े। अतः इस कार्य में शीघ्र जुट जायँ।

कम खाइये रोग भगाइये

स्टाकहोम का समाचार है कि डाक्टरों के एक दलने अपने परीक्षणों से प्रमाणित किया है कि उपवास, अल्प आहार और शाकाहार से बहुत से गंभीर रोगों के दूर करने में बहुत सहायता मिलती है।

वहाँ आङ्गिक सर्जरी के प्रोफेसर डाक्टर ओलोव लिङहव के नेतृत्व में परीक्षण कर रहे डाक्टरोंके दल ने यह पाया है कि उपवास और अल्पाहार (कम खाने) से पुराना दमा, उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर), प्रास्टेट तथा ब्लैडर की सूजन, मधुमेह और रीढ़ जैसे रोगों को बिना किसी दवा के दूर या कम किया जा सकता है।

उठो आर्य वीरो!

उठो आर्य वीरो, जगत को जगा दो।
उठो, जाग करके तुम सोये उठा दो॥
बजा दो जगत में अब वेदों का डंका।
अनाचार पापों की फूंको तुम लङ्का।
भ्रष्टाचार पाखण्ड जड़ से मिटा दो॥ उठो....
अविद्या करो दूर भारत के लालो।
बनो साहसी और उद्देश्य पालो।
झण्डा ओ३म् का तुम जगत में फहरा दो॥ उठो...
तुम्हीं थे जिन्होंने धर्म को बचाया।
चढ़े फाँसी पर तुम ने सिर भी कटाया।
पुनः उठकर वह ही तुम जौहर दिखादो॥ उठो...

—कविराज बनवारीलाल शादाँ, नयी दिल्ली

शाखा-समाचार

परिषद् की चंडीगढ़, ज्वालापुर, जयपुर, दिल्ली रायपुर, रेवाड़ी, कलकत्ता, बम्बई आदि शाखाओंमें प्रत्येक पूर्णिमा को विशेष यज्ञ तथा वेद-गोष्ठी हुई।

संस्कारविधि की शताब्दी

महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदानुकूल संस्कारविधि को रचना कार्तिक अमावास्या १९३२ वि. को हुई, इसका दूसरा प्रामाणिक वर्तमान संस्करण आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी १९४० वि.को, निर्वाणसे दो मास पूर्व, महर्षि ने छपने को दिया। इसे सौ वर्ष पूरे होगये, अतः इसकी शताब्दी सर्वत्र मनाई जाय।

जिसके पास न हो वह अवश्य खरीद ले और इसे पूरा पढ़े, वेद-मन्त्र याद करे, शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करे, बच्चों के संस्कार अवश्य करे।

विद्यार्थी इसका वेदारम्भ प्रकरण और गृहस्थ गृहाश्रम के अमूल्य उपदेश अवश्य पढ़ें। समाजों में इसकी कथा और प्रवचन हों।

विश्ववेदपरिषद् श्रावणी से कृष्णाष्टमी तक नौ दिन लखनऊ में संस्कारविधि का शिविर लगायेगी तथा 'संस्कार-विशारद' की परीक्षा लेगी। इच्छुक जन और समाजें ५) शुल्क भेजकर प्रश्नपत्र मँगालें। भाद्र वदि १३ को संस्कारविधि शताब्दी मनायें।

वेद की परीक्षाएँ

वेद-विश्वविद्यालय की श्रावणी-पश्चात् होनेवाली चारों वेदों, संस्कृत, व्याकरण, पौरोहित्य आदि की विशारद, भूषण, रत्न उपाधि वाली परीक्षाएँ भाद्रपद पूर्णिमा को होंगी। पाठविधि पूर्ववत् है। शुल्क ५)में प्रश्नपत्र पाकर, उत्तर भेजिए और सुन्दर प्रमाणपत्र लीजिए।

परिषद् के निश्चय

२९ मई को प्रबन्धसमितिने निम्न निश्चय किये-सदस्यता-शुल्क सब के लिए २०) रु. होगा। वेदज्योति सब सदस्यों को दी जायगी। निर्वाण-शताब्दीपर वेदज्योतिका विशेषाङ्क निकाला जाय।

— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, मन्त्री

प्रषक— प्रकाशक वेदज्योति, आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ उ. प्र. २२६००६

ग्राहक-संख्या १३२२
सेवायाम् श्री पुस्तकालय ...

ओ३म्

वेद-ज्योति

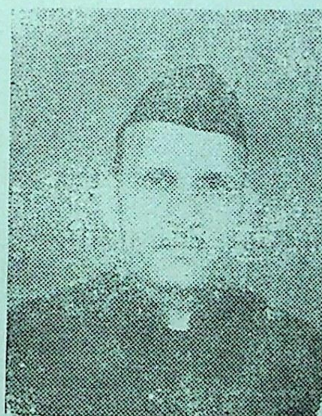
सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व वेद-परिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ, उ. प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१
❀ विशेषांक-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

वर्ष ७, अंक ५, माधव [वैशाख] २०४० वि०

मई १९८३ ई०, मानव-वेदसृष्टि--संवत् १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९

ऐतरेय ब्राह्मण, (अध्याय ३४-३५) राजसूय यज्ञ

हा! श्री सत्यदेव आर्य!



विश्व-वेद-परिषद् के प्रथम कोषाध्यक्ष, कर्मठ, जीवन-दानी आर्यनेता रिटा० आडीटर, ६८ वर्षीय श्री सत्यदेव जी का २९-३-८३ को सायं ६ बजे हृदय अवरोध से देहान्त होगया। १-४-८३ को अन्त्येष्टि और ३-४-८३ को शान्ति-यज्ञ विधिवत् हुआ।

शोक-सभा में नागरिकों ने श्रद्धांजलि अर्पित की। ईश्वर उन्हें सद्गति और पत्नी- ३ पुत्रों- ३ पुत्रियों को धैर्य धारण कराये।

वेदों की ज्योतिर्मय वाणी

वेद-ज्योति से वसुधा का अज्ञान मिटेगा।
इस प्रकाश से पाखण्डों का पाश कटेगा॥
दयानन्द की सत्य तपस्या,
सुलझा पायी जटिल समस्या,
आर्य शक्ति से अनाचार का भार घटेगा। वेद०
वेदों की ज्योतिर्मय वाणी,
मानवता के हित कल्याणी;
प्राणिमात्र के मन से भ्रम का मेघ हटेगा।
वेदों से ही दिशा दिशा का सेतु पटेगा॥

—सरस्वती कुमार 'दीपक', बम्बई

वेद को पढ़ो! अरे पढ़ो!

नहीं हैं ऐसा ग्रन्थ कोई विश्व में, पढ़ो।
यथार्थ ज्ञान के लिए इसे पढ़ो, पढ़ो॥
प्रमाद छोड़ कर पढ़ो, विचार कर पढ़ो॥
पढ़ाएँ वेद को, पढ़ें, सुनें, सुनाएँ भी।
विवेक-मार्ग देख कर चलें चलाएँ भी॥
स्वयं सदैव वेद को पढ़ो! अरे पढ़ो!॥

—अभिविनय भारती, नयी दिल्ली

वाल्मीकि रामायण में राम की कुछ विशिष्ट बातें

वेदमें राम शब्द निम्नलिखित मन्त्र में आता है-

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् उशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥ ऋ १०.३.३,सा १४५८

इसका अग्नि देवता (विषय) है। सायण ने सूर्य अर्थ करते हुए लिखा कि सूर्य उषा के साथ उसके पीछे आता है और राम = अन्धकार को दूर करता है। यह आधिदैविक अर्थ हुआ।

श्री जयदेव शर्मा ने भौतिक अर्थ में लिखा कि अग्रणी राजा प्रजा-सेना के साथ आकर राम = अन्धकार-तुल्य शत्रु पर चढ़ाई किया करे।

मैंने, स्वामी ब्रह्ममुनि, श्री विश्वनाथ विद्यामार्तंड तथा स्वामी धर्मानन्द ने सामवेद के आध्यात्मिक भाष्य में लिखा कि भद्र अग्नि ईश्वर भद्रा प्रकृति-अर्चना-सात्त्विक चित्तवृत्ति के साथ साक्षात् होकर राम = अज्ञान को दूर करता और राम = रमणीय रमणयोग्य आत्मा में साक्षात् होता है।

ऐसा उत्तम अर्थ होनेपर भी पौराणिक ज्वाला-प्रसाद मिश्र ने वेद में राम का नाम आया बताना सिद्ध करने हेतु नितान्त अशुद्ध कल्पित अर्थ किया कि दाशरथि राम सीता के साथ आये, उसे रावण हरले गया, हनुमान् राम के पास पहुँचे आदि।

राम और हनुमान् तो वेदोंके ज्ञाता थे और त्रेता में हुए, तो उनसे पहले ही सृष्टि के आरम्भमें प्रकट हुए वेदों में उनका नाम कैसे आ सकता है?

वाल्मीकि राम को 'वेद-वेदाङ्ग-विज्ञाता' (बाल-कांड) और हनुमान् के सम्बन्ध में कहते हैं—

नानृग्वेदाधीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥

रामने कहा—हनुमान् ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद को पढ़े बिना ऐसा नहीं बोल सकते, यह वेदज्ञ हैं।

दशरथ ने ४८ वर्ष की आयु में अश्वमेध-पुत्रेष्टि यज्ञ किये जिन्हें उनके जामाता (पत्नी शान्ता के पति) ऋषि श्रृङ्ग ने कराया था। रामकी बहिन शान्ताको लोमपाद ऋषि ने गोद ले लिया था।

वाल्मीकिके सिद्धाश्रममें राम-लक्ष्मण ने १२ वर्ष में ७२ शस्त्रास्त्रों (विभिन्न प्रकार के बम और क्षेप्य मिसाइलों) का ज्ञान और अभ्यास किया। ये ऋषि बड़े साइन्टिस्ट थे जिनकी यज्ञ-शाला लैबरेटरी थी। पाठक इन ७२ अस्त्रों का वर्णन रामायण में पढ़ें।

जनक के सीता (कृषि) यज्ञ करते समय जन्मी पुत्री का नाम सीता हुआ। वेद में इसका अर्थ हल की फाल और रेखा है।

जब राम माता कौसल्या से वन-गमन की आज्ञा लेने गये तो वे यज्ञ कर रही थीं।

राम ने विश्वामित्रके साथ और वन जाते समय तमसा नदी-तट पर सन्ध्या की! सीता भी वैदिक सन्ध्या दैनिक करती थीं रामने हनुमान्से कहा था— सीता जलाशय-समीप सन्ध्या करने सायं आयेगी।

राम प्रतिदिन वेद पढ़ते थे। भरत पूछते है— रामको वन क्यों भेजा? क्य। वेद-पाठमें अनध्याय किया था? भरतने कहा था- जो पाप वेद न पढ़ने और सूर्योदय तक सोते रहने से लगता है वह मुझे लगे यदि वन भेजने में मेरी तनिक भी इच्छा हो।

अगस्त्य के आश्रम में सोलह हजार सैनिक तथा शस्त्रास्त्रों का भण्डार था।

लक्ष्मण सीताका केवल पैरका नूपुर ही पहचान सके क्योंकि नित्य चरण-स्पर्श करते थे—

नाहं जानामि केयूरे नैव जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

रावण और राक्षस हमसे अच्छे थे क्योंकि उनके घर-घर अग्निहोत्र होता और वेद पढ़ा जाता था—

अग्निहोत्रं च वेदाश्च राक्षसानां गृहे-गृहे।

रावण आर्य ब्राह्मण था। उसने सीता के साथ बलात्कार नहीं किया- इतना सच्चरित्र था तभी तो स्वयंवर के योग्य समझा गया था। उसकी मूर्ति जलाना बन्द होना चाहिए क्योंकि यह अनुचित है।

राम सुख-दुःख में समान थे, ऐसे ही हम बनें—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥

— वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

राजसूय यज्ञ में दीक्षा

खण्ड २०— राजा को देवयज्ञ करने की याचना करनी चाहिए।

प्रश्न—जिस ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य को दीक्षा लेनी हो वह देवयज्ञका स्थान राजासे माँगता है यदि राजा यज्ञ करे तो वह किससे स्थान माँगे ?

उत्तर—दिव्य क्षत्रों के अधिपति आदित्यसे माँगे। राजा दीक्षाके दिन प्रात: सूर्यके सामने खड़ा हो पढ़े—

१२९३. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ... ॥
ऋ १०।१७०.३

देव सवितर्देवयजनं मे देहि देवयज्यायै ॥

आदित्य उत्तर को चलता जाता है मानो कहता है हाँ मैं देता हूं। इस प्रकार जिसको आदित्य स्थान दे देता हैं उसका कोई अहित नहीं कर सकता।

जिसको इन मन्त्रों का पाठ करके स्थान मिल गया उसकी श्री दिन प्रतिदिन बढ़ेगी और एश्वर्य मिलेगा।

खण्ड २१— अब इष्टा-पूर्ति अपरिज्यानि (हानि न करनेवाली)दो आहुतियाँ दे। ये दीक्षा से पहले ही देनी चाहिए। ये ४ बार लियेहुए घी की आहुतियाँ ये मन्त्र पढ़ कर आहवनीय अग्नि में दी जाती हैं—

पुनर्न इन्द्रो मघवा ददातु। ब्रह्म पुनरिष्टं पूर्तं दात् स्वाहा ॥

मघवा इन्द्र और ब्रह्म इस आहुति का पूरा फल दे।

अब पशु को बाँधने के लिए ३ समिष्ट यजु मन्त्रों को पढ़ने के पश्चात यह मन्त्र पढ़े—

पुनर्नो अग्निर्जातवेदा ददातु क्षत्रं पुनरिष्टंपूर्तं दात्स्वाहा।

ये दोनों आहुतियाँ दीक्षा पानेवाले क्षत्रिय को देनी चाहिये। ३ (२१) [२४४]

खण्ड २२— आराह्ळ के पुत्र सोजात का कहना है कि कामना की पूर्ति के लिए अजीत पुनर्वण्य की ये दो आहुतियाँ इन दो मन्त्रों से दे—

ब्रह्म प्रपद्ये ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायतु ब्रह्मणे स्वाहा।

अर्थ— ब्रह्म मुझे क्षत्र से बचाए। यज्ञ करने वाला मैं ब्रह्मको प्राप्त करता हूं। उसके लिए उत्तम वचन हैं।

जो दीक्षा लेता है वह यज्ञ से फिर जन्म लेता है। ब्रह्म-प्रपन्न को क्षत्र नहीं सताता।

अब वह पशु के बाँधने के समिष्ट यजु पढ़ कर यह मन्त्र पढ़ता है—

क्षत्रं प्रपद्ये क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायतु क्षत्राय स्वाहा।

ऐसा ही है कि जो क्षत्र को पाता है वह राष्ट्र को पाता है। क्षत्र ही राष्ट्र है। उस से प्रपन्न को ब्रह्म नहीं सताता, प्रसन्न हुआ क्षत्र ब्रह्म से रक्षा करता है।

ये दोनों आहुतियाँ इष्टा.पूर्त की हानि से बचने के लिए हैं। पूर्वोक्त के स्थान पर इन दोनों को ही देना चाहिए। ४ (२२) [२४५]

❀ पूर्वहोम के पश्चात् उपस्थान ❀

खण्ड २३— क्षत्र का देवता इन्द्र; छन्द त्रिष्टुप्, स्तोम पंचदश है। राज्य के अनुसार यह सोम है और सम्बन्ध से राजन्य। जब मृग चर्म धारण करके दीक्षा व्रत लेता है और ब्राह्मण उसके चारों ओर रहते हैं तब वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है। उससे इन्द्र इन्द्रिय को. त्रिष्टुप् वीर्य को. पंचदश स्तोम आयु को. सोम राज्य को. पितर यश-कीर्ति को ले लेते हैं। क्यों कि वे कहते हैं कि यह हमसे अलग होगया।

अब वह दीक्षा के बाद आहुतियाँ देकर आहवनीय के पास आकर कहता है—

मैं इन्द्र-त्रिष्टुप्-पंचदश स्तोम-सोम राजा-पितरों को नहीं छोड़ता। ये अपनी शक्तियों को मुझसे न लें। मैं उनसे युक्त होकर अग्नि देवताको प्राप्त करता हूं। मैं गायत्री-त्रिवृत् स्तोम सोम-ब्रह्म को प्राप्त होता हूं। मैं ब्राह्मण हो गया हूं।

जब वह यह कहता है तो वे उससे अपनी शक्तियों को नहीं लेते। ५ (२३) [२४६]

❀ उत्तर-होम के पश्चात् उपस्थान ❀

खण्ड २४— क्षत्रिय अग्नि-गायत्री-त्रिवृत् स्तोम-ब्राह्मण के सम्बन्ध से दीक्षित होता है। यज्ञके समाप्त होने पर जब वह फिर क्षत्रिय हो जाता है तो वे अपनी शक्तियों को यह कह कर ले लेते हैं कि वह हमसे भिन्न क्षत्रिय हो गया।

पशु-बन्धन सम्बन्धी समिष्ट यजु की आहुतियों के पश्चात् वह आहवनीय के पास आकर कहे— मैं अग्नि-गायत्री-त्रिवृत् स्तोम-ब्रह्म के सम्बन्ध को छोड़कर नहीं जा रहा। वे मुझसे अपनी शक्तियाँ न लें। मैं उनके साथ इन्द्र-त्रिष्टुप् पंचदश स्तोम-सोम के पास आता हूं।

और क्षत्रिय हुआ जाता हूं। हे देव–पितरो हे पितर–देवो, जो मैं हूं उसी रूप में यज्ञ करता हूं। जो मैंने इष्टि की वह मेरी है। मैंने अपनी ही वस्तुकी पूर्ति की है। जो तप क्रिया है वह मेरा ही है। अपनी ही वस्तुकी आहुति दी है इसका अग्नि उपद्रष्टा, वायु उपश्रोता और आदित्य अनुख्याता है। मैं जो हूं वही हूं. ऐसा कहने पर और क्षत्रिय बनकर आहवनीयमें आहुति देनेपर उससे अग्नि आदि अपनी शक्तियाँ वापस नहीं लेते। ६(२४)[२४७]

खण्ड २५. प्रश्न—जब ब्राह्मण की दीक्षा होती है तो कहा जाता है ब्राह्मण की दीक्षा हुई। यदि क्षत्रिय की दीक्षा हो तो क्या कहना चाहिए ?

उत्तर— कहा तो यही जायगा कि ब्राह्मण की दीक्षा हुई किन्तु क्षत्रियके पुरोहितके ऋषिका नाम ले तथा उसी का प्रवर कहे क्योंकि उसने ब्राह्मण होकर यज्ञ किया। ७ (२५)[२४८]

खण्ड २६. प्रश्न— क्षत्रिय यजमान–भाग को खाए या नहीं ? यदि खाए तो पापी हो क्योंकि वह अहुताद है। यदि न खाए तो यज्ञ से पृथक् होजाय क्योंकि यह यजमान का भाग है।

उत्तर—इसे ब्रह्माको दे देना चाहिए क्योंकि वह क्षत्रियके स्थान पर है। वह उसका आधा है। उस का खाया हुआ अपने खायेके समान हो जाता है। वह साक्षात् यज्ञ है यज्ञ उसमें प्रतिष्ठित है। यजमान यज्ञमें प्रतिष्ठित है। अतः वह यज्ञमें यज्ञको डालता है जैसे जल में जल या अग्नि में अग्नि डाली जाती है। इसमें न नियम–विरोध है न यजमान को हानि अतः यजमान–भाग ब्रह्मा को दे देना चाहिए।

कुछ ऋत्विज यह पढ़कर इसे अग्निमें छोड़तेहैं–

प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिंस्त्वा दधामि सह यजमानेन स्वाहा ॥

किन्तु ऐसा न करना चाहिए। यजमानभाग को अग्नि में डालना यजमान को अग्नि में डालना है। ऐसा करनेवाले से कहे—तूने यजमान को अग्नि में जला दिया। उसके प्राण जल जायेंगे और वह मर जायगा। सदा ऐसा ही होता है। ऐसा न करे। ८

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३४ (सप्तम पञ्चिका का चतुर्थ अध्याय) समाप्त हुआ।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ७ अध्याय ५

अध्याय ३५

श्यापर्णों को यज्ञाधिकार

खण्ड ३७– सुषद्मा के पुत्र विश्वन्तर ने श्यापर्णों को यज्ञ के अधिकारसे वंचित कर दिया। उन्होंने जब यह सुना तो उसके यज्ञमें जाकर वेदिके भीतर बैठगये। उनको देखकर विश्वन्तर बोला—ये पापी यहाँ बैठे हैं। इनको निकाल दो। वेदि के भीतर मत बैठने दो जब नौकर उन्हें निकालने लगे तो वे उठकर चिल्लाने लगे— परिक्षित के पुत्र जनमेजय ने जब कश्यपों के बिना यज्ञ करना प्रारम्भ किया तो कश्यपों में से असितमृग लोगों ने उन भूतवीरों को यज्ञ से हटा दिया (जो कश्यपों के स्थानमें यज्ञ के लिऐ बुलाये गये थे)। क्या हममें भी कोई ऐसा वीर है जो सोम-पान को जीत ले ?

मृगवु के पुत्र राम ने उत्तर दिया—वह वीर मैं हूँ। यह राम मार्गवेय श्यापर्ण था जिसने वेदों को पढ़ा था। वह राजा से बोला— हे राजन् क्या तुम मुझ जैसे वेदपाठी को भी वेदिसे निकालोगे ?

राजा ने पूछा-- हे ब्रह्मबन्धु, तू जो कोई हो यह तो बता कि तूने यह ज्ञान कहां प्राप्त किया? १(२७)

खण्ड २८– राम ने उत्तर दिया– जब इन्द्रने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का अपमान किया; वृत्र को मारा, यतियों को शृगालों के सामने फेंक दिया, अरुर्मघों को मारडाला व बृहस्पति को धिक्कारा तो देवोंने इन्द्रको निकाल दिया और सोमपान से वंचित कर दिया। तब अन्य सब क्षत्रिय भी सोमपान से वंचित हो गये। जब इन्द्र ने त्वष्टा से सोम ले लिया तो उसे भी फिर भाग मिलगया किन्तु क्षत्रिय अब भी वंचित हैं। यहाँ केवल एक जानता है कि वह अधिकार कैसे मिल सकता है।

राजा—क्या तू इस विधिको जानता है? मुझे बता।

राम— हाँ मैं जानता हूं। तुझे बताऊँगा। २

क्षत्रिय के अभक्ष्य

खण्ड २९— ऋत्विज इन तीन भक्ष्यों में से किसी एक को देंगे— सोम, दही या जल। यदि सोम दें तो तू ब्राह्मणों को प्रसन्न करेगा क्योंकि यह उनका भक्ष्य है। तेरी सन्तान उनके समान बन जायगी। वह दान सोम-पान और भोजन की इच्छुक होगी और यथेच्छ विचरेगी। क्षत्रियत्व में कमी होगी। दूसरी या तीसरी पीढ़ीमें वह ब्राह्मण हो जायगी और उनके साथ रहेगी।

यदि वैश्योंका भक्ष्य दही लेंगे तो तू वैश्योंको प्रसन्न करेगा। तेरी सन्तानमें वैश्यत्व आयेगा। वे दूसरों को कर देंगे जो उनको यथेच्छ चलायेंगे, क्षत्रियत्वकी कमीसे वैश्यत्व आ जायगा तो सन्तान दो-तीन पीढ़ियोंमें पूरी वैश्य हो जायगी और उनमें रहना पसन्द करेगी।

यदि शूद्रों का भक्ष्य जल लेंगे तो तू शूद्रों को प्रसन्न करेगा। सन्तान में शूद्रत्व आयेगा। वह दूसरों की सेवा करेगी। दूसरे उनको यथेच्छ ताडना करेंगे। क्षत्रियत्व में कमी आने पर सन्तान शूद्र होगी। दो तीन पीढ़ियों में पूरी शूद्र होजायगी और उनके साथ रहने लगेगी।३

क्षत्रिय के भक्ष्य

खण्ड ३०— हे राजन् न्यग्रोध[वट]वृक्ष की नीचे लटकने वाली जड़ें, उदुम्बर [गूलर]; अश्वत्थ[पीपल] और प्लक्ष [पिलखन] के फल---ये क्षत्रिय के हैं। इन का रस निकालकर पिये। यह उसीका भाग है।

जब देवता यज्ञ करके स्वर्ग गये तो सोम का चमचा टेढ़ा होने से सोम की बूँदों के फैलने से न्यग्रोध हुआ। यह पहले कुरुक्षेत्र में फिर अन्य स्थानोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ अब तक उसे न्युब्ज कहते हैं। जो नीचे की ओर बढ़े वह न्यग्रोह और फिर न्यग्रोध कहाया। ४

खण्ड ३१— इस सोमरस में से जो नीचे गिरा उस की नीचे जाने वाली शाखायें और फल हो गये। इसलिए जो क्षत्रिय न्यग्रोध की नीचे जानेवाली जड़ों और उसके फलको खाता है वह अपने निज भक्ष्य से वंचित नहीं होता। इसके अतिरिक्त वह प्रतिनिधि रूप में सोमपान भी कर लेता है क्योंकि न्यग्रोध सोमका रूपान्तर है। वह परोक्षरूप से ही ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है। क्षात्र शक्ति (न्यग्रोध की भाँति) सृष्टि में फैलती है। उन्हीं का राष्ट्र होता है। न्यग्रोध भूमि में गड़ा भी होता है अपनी शाखायें नीचे फैलाकर बढ़ता जाता है। जो क्षत्रिय यज्ञ में न्यग्रोध की जड़ों और फलोंका रस पान करता है वह राष्ट्र में न्यग्रोध की प्रतिष्ठा पाता है। उसका राष्ट्र सुदृढ़ हो जाता है। अपनी शक्ति की स्थापना करता है और उसका राज्य नष्ट नहीं होने पाता है। [५]

खण्ड३२-- यह जो उदुम्बर के फल हैं यह अन्न ऊर्ज और रससे उत्पन्न हुए हैं और वनस्पतियों में सब से अधिक रस वाले हैं। इनसे राजा क्षत्रियत्व को सम्पन्न कर देता है।

अश्वत्थ वनस्पतियों के तेज से उत्पन्न हुआ है वनस्पतियों का राजा और तेज है। यह क्षत्रियमें साम्राज्य और तेज धारण करता है।

प्लाक्ष वनस्पतियों के यश से उत्पन्न हुआ है। इस में वनस्पतियों का स्वाराज्य और वैराज्य है उन्हें वह इस प्रकार क्षत्रिय यश धारण करा देता है।

जब ये वस्तुएँ उपस्थित हो जाती हैं तो सोमराजा को खरीदते हैं और उपवास का कृत्य करते है। उसी प्रकार जैसे असली सोम यज्ञ में किया जाता है।

उपवास के दिन अध्वर्यु के पास सोम निचोड़ने के सभी सामान आजाने चाहिए जैसे चर्म, दो तख्ते, द्रोण कलश, दशापवित्र [छन्ना], पत्थर, पूतभृत-चमचा, आधवनीय, स्थाली,[घड़ा] और उदंचन। यह जो रस निचोड़ागया इसका एक भाग प्रातःसवनके लिए दूसरा दोपहरके सवन के लिये करना चाहिए। [६]

खण्ड ३३—जब आहुतिके लिए चमचोंको उठाते हैं तब यजमानके चमचेको भी उठाते हैं। उसमें दो तरुण दर्भ डाल कर परिधि-समिधाओं के अन्दर डालते हैं, एक दर्भ डालकर स्वाहा के साथ पढ़ते हैं

१२६४—दधिक्राव्णो अकारिषम्... ऋ ४.३९.६

और दूसरा दर्भ डालकर यह मन्त्र पढ़ते हैं—

१२६५ — आ दधिक्राः शवसा पंच कृष्टीः... ऋ ४.३८.१०

जब ऋत्विज अपने चमचों को पीनेके लिए उठावें तभी यजमान भी अपने चमचे को उठाये।

जब होता इडा कहे तो यजमान भी यह कहता हुआ अपने चमचे से पिये—

यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छ-चीभिः। इदन्तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥

यह सोम प्रसन्न चित्त से पिया हुआ हितकर होता है। उसका राष्ट्र व्यथा-रहित होता है।

निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर हृदय-स्पर्श करता है—

शं न एधि हृदे पीतः प्रण आयुर्जीवसे सोम तारीः।

यदि हृदय-स्पर्श न करे तो आयु कम होगी।

नीचे लिखे दो मन्त्रों से चमचा को भरता है—

आ प्यायस्व समेतु... (देखो २०२)

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः...(देखो १२४)

रूप-समृद्ध होने से ये मन्त्र सफल हैं। ७(३३)

खण्ड ३४—जब ऋत्विज चमसों को रख दें तो यजमान भी अपने चमस को रखदे। जब वे उठायें तो उठाये और प्रातःसवनमें यह मन्त्र पढ़कर पिये—

नराशंस-पीतस्य देव सोम ते मतिविदः
ऊमैः पितृभिर्भक्षितस्य भक्षयामि ॥

मध्यसवन में ऊमैः के स्थानमें ऊर्वैः और तीसरे सवन में काव्यैः कहता है। क्योंकि पितर प्रातः के ऊम, मध्य के ऊर्व और सायं के काव्य कहाते हैं।

सोमपा प्रियव्रत ने कहा था—जो सोम पीता है उसके पितर अमर हो जाते हैं और राज्य दृढ़।

प्रत्यभिमर्श व आप्यायन तीनों सवनों में समान है। सब सोमरस निकालने के समान की जाती है। इस विधिको राम मार्गवेयने सुपद्माके पुत्र विश्वन्तर को बताया। तब राजाने कहा—हम तुझे एक हजार गौएँ देते हैं। मेरे यज्ञमें श्यापर्ण लोग आयें।

इसी विधि का कथन कवष के पुत्र तुर ने परिक्षित के पुत्र जनमेजय से किया और पर्वत-नारद ने सहदेव-पुत्र सोमक से। फिर उसने सहदेव सार्जय से। फिर बाभ्रव देवावृध से फिर भीम वैदर्भ से फिर नग्नजित् गान्धार से। इसका कथन अग्नि ने सनश्रुत से उसने अरिन्दम से उसने क्रतुविद् से उसने जानकि से और वशिष्ठ ने सुदास से किया।

वे सब इस प्रकार पान करके बड़े होगये। सब महाराजा थे। जो क्षत्रिय इस प्रकार पान करता है उसकी श्री सूर्य के समान चमकती है। वह सब दिशाओं से बलि (कर) लेना है और उसका राज्य व्यथा-रहित हो जाता है। ८(३३) [२५७]

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद पञ्चिका ७ का अध्याय ५ समाप्त हुआ।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ८, अध्याय १

अध्याय ३६

राजसूय के स्तोत्र-शस्त्र

खण्ड १— राजसूय यज्ञ के प्रातः और तृतीय सवन के स्तोत्र और शस्त्र सोमयाग के ऐकाहिकों के ही समान होते हैं क्योंकि वे शान्ति और प्रतिष्ठा के देने वाले हैं। परन्तु मध्य सवन में भेद है। उसके पवमानका वर्णन हो चुका जिसके पृष्ठस्तोत्रमें दोनों साम बृहत्सहित होते हैं और गाये जाते हैं।

रथन्तर साम का पहला मन्त्र यह है—

आ त्वा रथं यथोतये.... (१) (५८४)

तुविशुष्म तुविक्रतो... (२) (७४८)

पारिभाषिक शब्द

अग्नीध्र— अग्नि रखने का स्थान । कुण्ड ।
अतिजगती- १३-१३के ४पादों (५२ अक्षरों)का छंद
अध्रिगु—पशु (अशिक्षित) को शान्त करनेवाला ।
अनद्धा—किसी को आहुति न देनेवाला (७.६)
अनीजान— जिसने अभी तक यज्ञ नहीं किया ।
अनुचर—शस्त्र का पिछला भाग ।
अनुमति— अमावस्या का उत्तरार्ध ।
अनुष्टुप्—८-८ के ४ चरणों ३२ अक्षरोंका छन्द ।
अनुस्तरणी —मृत्यु के समय दान दी गयी गौ ।
अन्तर्याम— अन्तर्याम और उपांशु २ घड़े होते हैं ।
इन पर प्याला (ग्रह) रक्खा जाता है । (२.२१)
अभ्यावर्ति--बार-बार आनेवाले षडह् आदि दिन ।
अवभृथ— यज्ञ का अन्तिम कार्य, स्नान ।
अविहृत पाठ—जिसमें मन्त्रके पद दूसरे से न मिलें
अव्यूळ्ह -- छन्दों का क्रम टूट जाना, जैसे प्रातरनुवाक में गायत्री-अ-त्रि-बृ-उ-ज-पंक्ति ।
अहीन—कई दिन तक चलने वाला सोम याग ।
आगू—अध्वर्यु का कथन- होता यक्षत' या होतर्यज
आग्रन्थन— सादी गाँठ देना । (५.१५)
आज्य--देवों के लिए पिघला घी । होता का शस्त्र
आयुत--पितरों के लिए आधा पिघला हुआ घी ।
आरम्भणीय-- वर्ष के आरम्भ में किया जाने वाला कृत्य जिसे चतुर्विंश भी कहते हैं । (४.१२)
आहाव- आज्य शस्त्रमें होताका कथन- 'शंसावोम्'
आहुति = आहूति--यज्ञका बुलावा, यज्ञमें हवि-त्याग
इष्टि--जिसके द्वारा यज्ञ खोजा जाय । (१.२)
इडादधि--दही से किया जाने वाला क्रतु (३.४०)
ईजान--जिसने पहले यज्ञ किया हो ।
उदयनीय-- सोम-याग की अन्तिम इष्टि ,
उपगाता-- साम-गायकों के साथ गायक (७.१)
उपनयमनी--दूध पीने का लकड़ीका चमसा ।
उपवसथ—सोमयाग से एक दिन पहले का उपवास ।
उपसद— घेरा, याग का विशेष कृत्य ।
उपसर्ग —षोडशीमें मिलाये गये महानाम्नीके ५ अंश
उपस्तरण—यज्ञ में चमचे से घी डालना ।

उपांशु-- उपांशु और अंतर्याम दो घड़े होते हैं ।
इनके ऊपर रखे प्यालों को ग्रह कहते हैं ।
उष्णिक्-७-७-७-७ अक्षरोंसे बना २८अक्षरका छंद
सोमयाग के १६ ऋत्विज — ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता उद्गाता और इनके३-३सहायक-१ ब्राह्मणाच्छंसी २. अग्नीध्र ३. पोता । ४. प्रशास्ता ५. अच्छावाक ६. ग्रावस्तोता । ७. प्रतिप्रस्थाता ८. नेष्टा ९. उन्नेता १०. प्रस्तोता ११. प्रतिहर्ता १२. सुब्रह्मण्य ।
एकधन = एकधना-वह जल जो यज्ञ के दिन प्रातःकाल लाया जाता है ।
एकाह —एक दिनमें पूर्ण होनेवाला सोमयज्ञ ।
किशारू—चावल की भूसी (२।६) [चावलके अंग- किशारू तुषा एवं कसार] ।
कुहू — अमावस्या का पूर्वार्ध ।
खर— यज्ञ पात्र रखने की चबूतरी [१.२२]
गायत्री-८-८-८ क्रम से३ पादवाले२४ अक्षरकाछंद
गोष्ठ- जहाँ पशु शाम को बाँधे जाते हैं
घृत- देवों का घृत आज्य,मनुष्यों का घृत, पितरों का आयुत एवं गर्भस्थ जीवोंका घी नवनीत कहलाता है पिघला घी आज्य, जमा हुआ घृत,आधा पिघला आयुत एवं मक्खन नवनीत कहलाता है
चरु या ओदन —दूध घी मिला उबला चावल ।
चितैध— चिता का ईंधन
जगती-१२-१२ १२-१२ अक्षरोंका४८ अक्षरकाछंद
जातवेद-अग्नि (उत्पन्न हुये को पाया) -व्युत्पत्ति
जुष्टि— रियायती आहुति (१.३०)
ज्योतिष्टोम—सोमयागका प्रथम विभागहै इसकी ४ संस्थाएँ अग्निष्टोम,उक्थ्य,षोडशी,अतिरात्र हैं
तूष्णीशंस—चुपचाप जाप या प्रार्थना
तृच— तीन ऋचाओं से मिलकर बने सूक्त
दीक्षणीय इष्टि- यह यज्ञकी तैयारी (भूमिका) है
दूरोहण -स्वर्ग या सूर्य ,व्युत्पत्ति (४.२०)
त्रिष्टुप्-११-११-११-११ अक्षर[४४ अक्षरका छंद]
द्वादशाह- बारह दिनों का कृत्य (४.२३)
धाय्य-सामिधेनियों के बीचमें पढ़े जानेवाले मन्त्र

नभाक— खोदने का कुदाल (६.२४)
नवनीत— गर्भस्थ जीवों के लिये घी (देखो घृत)
निनृति—पदोंके अंतके स्वरोंकी आवृति को कहते है
निग्रन्थन— लपेट कर गाँठ देना (५।१५)
निविद—सोमपानके लिये देवताओं के आवाहन मन्त्र
न्यूंख—स्वर को उदात्त कर पढ़ने की विशेष विधि
न्यून— दस से एक कम = ९ [६,९]
पंक्ति-१०-१०-१०-१० अक्षरोंवाला ४० अक्षर का छंद
परांचि दिन— अकेले दिन [६.१८]
पांचजन्य—पाँच-देव,मनुष्य,गन्धर्व-अप्सरा, सर्प,पितर
पुरोगव— नेता [१।३०]
पुरोडाश–इष्टियोंमें दीगई चावलके आंटेकी प्रधानहवि
पुरोरुक्—उच्च स्वर से कहे जाने वाला पद
पृष्ठ—सामवेद के दो तृच मिलकर पृष्ठ कहाते हैं
प्रग्राह– पाठकी वहविधिजिसमें २-३पदोंकेबाद रुकतेहैं
प्रणयन– अग्नि को उत्तर वेदी से ले जाना
प्रतिपद— शस्त्र का पहला भाग
प्रतिष्ठा— पशु ठहरने का स्थान, [३.२४]
प्रपदरीति–ऋचाओंके बीचमें कुछपद मिलाकर पढ़ना
प्रस्तर— कुशों का बंडल
प्रातरनुवाक्य–प्रातःकाल बोले जानेवाले अनुवाक्य
प्रायणीय इष्टि— यज्ञ की प्रारम्भिक इष्टि
वृहती– ६-८-९-९अक्षरों से बने ३६ अक्षर का छंद
महानाम्नी—जिसके द्वारा इन्द्र ने महान् बनाया
मानुष—मादुष—जो दोष के योग्य न हो
यज्ञदोष—जग्ध, गीर्ण, वात (३।३४)
यूप—यज्ञ शाला का खम्भा जिसमें पशु बाँधते है
योनि— बीच में पढ़े जाने वाले मन्त्र
रराटी– हविर्धान के खम्भों पर लटकी दर्भ की माला
राका— पूर्णिमा का पहला आधा भाग
रूपसमृद्ध– जिनमें की जानेवाली क्रिया का संकेत हो
रोहित— जिस छन्द से स्वर्ग पर चढ़ा जाय
वर—देव-यजन, यज्ञ-स्थान (१-१३)
वषट्कार—३ प्रकार के वज्र, धामच्छद-रिक्त (३-७)
वसतीवरि– यज्ञ के १ दिन पूर्व लाया गया जल
वहतु— अतिथि को भेंट में दी जानेवाली वस्तु, दहेज
वह्नि— वहन करनेवाला, नेता, अगुआ (३-१७)
वाण—तीर- इसके ३ भाग हैं- अनीक, शल्य, तेजन

वावाता—राजा की बीच की पत्नी । पहली महिषी, दूसरी वावाता, तीसरी परिवृक्ता
विहृत पाठ– जिसमें मन्त्र के पद दूसरे से मिलजायँ
व्यूह्ल—छन्दों के क्रमशः ४-४ अक्षर बढ़ना । क्रम-गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पंक्ति-त्रिष्टुप्-जगती
व्यूह्लछन्दस्— छन्दों का तितर बितर हो जाना
शक्वरी– १४-१४ के ४चरण =५६ अक्षरोंका छन्द व्युत्पत्ति ५.७ में
शस्त्र—होता द्वारा ऋचाओंका विशेष पाठ, १२ हैं आज्य; प्रउग, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसि, अच्छावाक, (५ प्रातःसवन के), मरुत्वतीय, निष्केवल्य, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसि, अच्छावाक् (५ मध्यसवनके), वैश्वदेव, अग्नि-मारुत (२ सायंसवनके) इनके साथ ही सामवेदके १२ स्तोत्रहोते हैं(३.३६)
षडह— ६ दिन का यज्ञ-कृत्य (४.१५)
शुक्र— व्याहृति (५.३२)
संसव-दोष—दो या अधिक पुरुषों के एक ही समय पास पास सोमयाग करने से उत्पन्न गड़बड़ी
संगविनी– जहाँ पशु दोपहर को धूप से बचने के लिए बाँधे जाते हैं ।
सदस्– उत्तर वेदी के दक्षिण-पूर्व में विशेष स्थान
सम्पात— व्युत्पत्ति (४.३०)
समानोदर्क– समान-वाक्य पर समाप्त सूक्त (५.१)
साम— दुःख का अन्त करने वाला, न्याय वाला वेद-गीत (व्युत्पत्ति ३.२३) । इसके ५ भाग हैं– आहाव(हिंकार), प्रस्ताव,उद्गीथ, प्रतिहार, निधन
सामिधेनी—अग्नि प्रज्वलित करते समय समिधाएँ अग्नि में डालने पर पढ़ी जानेवाली ऋचाएँ
सिमा– जो सीमा से बाहर हुए (व्युत्पत्ति ५.७)
सिनीवाली— पूर्णिमा का दूसरा भाग, उत्तरार्ध
स्वर-साम— व्युत्पत्ति ४.१९
हविर्धान— वह गाड़ी जिस पर सोम या अन्य हवि उत्तर वेदि में लायी जाती है ।
हविष्पङ्क्ति– यज्ञ में डाली जानेवाली ५ प्रकार की वस्तुएँ– धान, करम्भ, परिवाप, पुरोडाश और पयस्या (दही-मट्ठा) –दूध–घी आदि ।
होता– जो देवों का आवाहन करे (१.२)

—※—

मन्त्र-सूची

मन्त्र पृष्ठ संख्या मन्त्र पृष्ठसंख्या

कोष्ठक के अन्दर संख्या पञ्चिका तथा खण्ड की है।

वेद को सर्व-सुलभ बनाओ

हमारे संगठन की सुदृढ़ता व व्यापकता का प्रयोजन है वेद-प्रचार। क्योंकि आर्यसमाज परोपकारिणी सभा गौकृषिआदि रक्षिणी सभा इनके नियम-उपनियमों में वेद को मानव मात्र तक पंहुंचा देने का संकेत किया गया है। अभी ये स्थिति है कि आर्यसमाज के सब सदस्य भी वेद से परिचित नहीं हैं, अतः इस शताब्दी दिवस तक हमं आर्य सदस्यों को संस्कृत-आर्ष ग्रन्थोंका इतना ज्ञान प्राप्त करलेना चाहिए कि आर्य शुद्ध उच्चारण से वेद पढ़ तो सकें ही। विद्वान् लोगों को पुरोहित बनाने का नियम प्रत्येक आर्य समाज के लिए हो तो वेद को सर्वसुलभ किया जा सकेगा।

सार्वदेशिकसभा को तो चतुर्वेद-भाष्य संस्कृत में निकालना चाहिए तथा सम्पूर्ण विश्व में जिन-जिन संस्थाओं में वेद अध्ययन अनुसंधान हो रहा है वहाँ वहाँ पहुंचाना चाहिए। अभी शताब्दी दिवस तक विश्व के समस्त वेदाध्यायी शिक्षालयोंमें ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तो पहुंचाई ही जा सकती है।

मानव-मात्र तक वेद पहुंचे, इसके लिए हमें वेद का अनुवाद विश्व की सब भाषाओं में (जो लगभग एक-हजार हैं) कराना होगा। इस कार्य के लिए निम्न पद्धति अपनावें। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद (अपूर्ण) व यजुर्वेद भाष्य में संस्कृत अन्वय दिया है, जिसका हिन्दी भाषा में अनुवाद नहीं हैं। हिन्दीभाषी प्रदेशों की सभायें मिलकर 'संस्कृत अन्वय की हिन्दी मात्र' प्रकाशित करादें तथा ऋग्वेद(शेष), साम, अथर्व के भी अनूदित अन्वय मात्र प्रकाशित करादें। इस पद्धति से बड़े कम मूल्य पर वेद प्रेमियों तक वेद को पहुंचाया जा सकेगा। इसी प्रकार का प्रयत्न भारत की हिन्दी इतर भाषाओं व अन्य राष्ट्रों में जो विभिन्न भाषायें हैं, उनके लिये भी किया जा सकता है। वेद के अनुवादित संस्कृत अन्वय के माध्यम से वेद को प्रत्येक शिक्षित तक पहुंचाने के साथ ही विश्व के अशिक्षित मानव समाज तक ऐसे स्नातक तैयार कराते चलें जो विश्वके एक-एक भाषामें वेद को सर्वप्रिय करते चलें।

विश्वके सभी वेद जिज्ञासु विद्वानों तक तो वेद का संस्कृत भाष्य ही पहुंचाना होगा। इसके लिए सार्वदेशिक को चाहिए वह राष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रत्येक राष्ट्र के विश्व-विद्यालयों में जहाँ भी पाठ्य चर्चा में वेद हैं, ऋषि दयानन्द का वेद भाष्य पहुंचा दे।

यदि आर्य जनता सार्वदेशिक के प्रतिनिधि रूप में उन्हीं लोगों को भेजे जो संस्कृत-शास्त्र वेद से परिचित हों तथा जिनकी दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीय हो, तो अगली शताब्दी तक मानव मात्र तक वेद ग्रन्थ (चाहे संस्कृत अन्वय का अनुवाद मात्र हो) पहुंचाया जा सकता है।

हम आर्य अपने जीवन में वेद को जितना निभायेंगे उतनी ही सघनता से उसका प्रभाव मानव-समाज में बढ़ता जायगा। अब तो दूसरे लोकों में भी जाने का प्रबन्ध हो रहा है अतः वहाँ भी वेद-सन्देश पहुंचाने के लिए आर्यसमाज को तैयार होना चाहिए। आगामी ऋषि निर्वाण शताब्दी पर जनता हमारे नेताओं को प्रेरित करेगी जिससे हमारा विद्वद् वर्ग मानवमात्र को वेदामृत का पान करा सके। — रक्षक, अजमेर

दो विद्वान्, आर्यपथिक लेखराम-गुरुदत्त विद्यार्थी

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी एम. एससी. प्रोफेसर का २६-४-१८६४ ई० को और देहान्त १९-३-१८९० ई० को हुआ। केवल २६ वर्ष की अल्प आयु में आपने वेद का अध्ययन कर वेद-विषयक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वे सच्चे जीवित शहीद थे। महर्षिके दर्शनकर नास्तिक आस्तिक बन दिनरात प्राणायाम किया और वेद पढ़ा।

शास्त्रार्थ-महारथी' आर्य-पथिक पंडित लेखराम का जन्म ८ चैत्र संवत् १९१५ विक्रम को और बलिदान फाल्गुन शुक्ल ३ संवत् १९५३ वि० को एक मतान्ध के छुरा से हुआ। उन्होंने भी महर्षि के दर्शन किये, उनका जीवन-चरित्र लिखा और ईसाई-मुसलमानों से अनेक शास्त्रार्थ किये। दोनोंको श्रद्धांजलि अर्पित है। वी.शा.



१२ वर्ष ७ अङ्क ५ मई १९८३ ई० वेदज्योति पंजीकृत संख्या ६९२१।६२ डाक लेख २०६

गौघाती को गोली से मारो

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसावबीरहा॥

अथर्ववेद कांड १ सूक्त १६ मन्त्र ५

भारत-सरकार-लोक-राज्य-सभाध्यक्षों को सभी गौ-हत्या बन्द करने-कराने के स्मृतिपत्र दिये जाचुके हैं। यदि न माना तो जुलाई से सत्याग्रह होगा।

—अ. भा. गौ-संरक्षण-परिषद् नई दिल्ली

शोक-समाचार

नीचे लिखे विद्वानों के निधन पर उनकी सद्‌गति की प्रार्थना के साथ शोक प्रकट किया जाता है—

१ गुरुवर श्री अयोध्या प्रसाद शास्त्री लखनऊ
२ श्री देवीदयालु जौहरी फतहगढ़(८५) १०-११-८२
३ भीमभाई नागर आ. स. कछोली १५-१२
४ स्वामी वेदव्रतानन्द (नचनी गोरखपुर) १८-१२
५ श्रीमती सुषमा देवी (रानी अमेठी) २१-१२-८२
६ सर्व श्री के. एल. वर्मा अजमेर (८०) १५-१-८३
७ पं. धर्मवीर वेदालङ्कार पाडिचेरी (७८) २७-१-८३
८ सोहनलाल प्रधान आ. स. डिबाई (अनूपशहर)
९ अभयकृष्ण जौहरी इलाहाबाद लखनऊ१-२-८३
१० बी, एन. चौबे हैदराबाद ३-२-
११ डा. आत्माराम दिल्ली ३-२-
१२ स्वामी वेदमुनि वानप्रस्थ कौड़ियागंज ९-२-
१३ एल.सी.सोंधी प्रधान आ. स. लन्दन १३-२-
१४ रामपत वानप्रस्थ मदीना रोहतक(७६)६-२
१५ कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार दिल्ली १८-२-
१६ पंडित महेन्द्र शास्त्री बहालगढ़ (सोनीपत)
१७ श्री वीरवल नाथ सदर लखनऊ २७-२-
१८ देवीशरण आर्य दिल्ली
१९-२० कुसुम कुमार वेदालङ्कार तथा भाई विद्यासागर वेदालङ्कार बिलिमोरा वलसाड़१८-३
२१ देवेन्द्रनाथ भनोट हैदराबाद २४-३-
२२ नारायण दास कपूर ऋषीकेश २५-३-
२३ श्री सत्यदेव आर्य मन्त्री सार्व.वे.प्र-स.२६-३-८३

समाचार

❀ चण्डीगढ़ होली उत्सव ❀

२८-३-८३ को विश्ववेदपरिषद् शाखा चण्डीगढ़ द्वारा स्थानीय समाजों की ओर से महिला आर्यस० सैक्टर १८ की अध्यक्षता में श्री आशुराम आर्य के वेदमन्त्र-गान के साथ वासन्ती नवसस्येष्टि यज्ञ आरम्भ हुआ। यत्पश्चात् डा.भवानीलाल भारतीय, श्रीमती सत्यवती, ब्रह्म० रामप्रकाश, माता देवकी रानी वर्मा, प्रधाना राजकुमारी और मन्त्रिणी दयावन्ती ने परस्पर प्रेम भक्ति और सुधार पर बल देते हुए होलीपर्व की महिमा का वर्णन किया। होली-पद्धति की सौ प्रतियाँ लखनऊ से मँगा कर बाँटीं। श्रीमती कृष्णा कपूर की बालक-बालिकाओं की संगीत पार्टीने भजनोंका प्रोग्राम देकर पुरस्कार पाये। श्रीमती चंचल जी के शहीदी गीत ने बलिदानों की खूनी होलीका दृश्य पेश करके समाँ बाँधदिया मन्दिर की अपील पर एक हजार रुपयों का दान श्री सन्तराम भाटिया ने अर्पण किया। धन्यवाद।

—आशुराम आर्य, मन्त्री परिषद्

❀ आर्यसमाज सिलीगुड़ी का वार्षिक चुनाव ❀

प्रधान— श्री जवाहर लाल आर्य।
मन्त्री— श्री सर्वेश्वर झा।

❀ आर्य-समाज का पुनः-सङ्गठन ❀

वर्तमान स्थिति और भविष्यके सम्बन्धमें विचार कर रिपोर्ट देने के लिए सार्वदेशिक सभा ने एक उपसमिति गठित की है। इस विषयके सुझाव नीचे के पते पर भेजे जायें—

दत्तात्रेय आर्य (संयोजक) प्रधान आर्यसमाज अजमेर

❀ सोमरस डिस्टीलर्स नाम निरस्त करो ❀

इस नाम से महाराष्ट्र सरकार ने शराब की फैक्टरी का लाइसेन्स दिया है जो अनुचित है क्यों इससे सोम का अर्थ शराब समझा जायगा जो कि वस्तुतः नहीं है। आर्य-समाज सान्ताक्रूस बम्बई के इस नामको हटानेके प्रस्तावका सभी समर्थन करें।

प्रेषक—प्रकाशक वेदज्योति, आदर्श प्रेस, सी. ८१७ महानगर, लखनऊ उ. प्र. २२६००६

ग्राहक-संख्या १३२८
सेवाराम श्री
पुस्तकालय ...

ओ३म्

वेद-ज्योति

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व वेद-परिषद्,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ, उ. प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१

❀ विशेषांक-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

वर्ष ७, अंक ६, शुक्र [ज्येष्ठ] २०४० वि०

जून १९८३ ई०, मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९

ऐतरेय ब्राह्मण, (३६-३८) राजसूय में अभिषेक

आर्यों का सदा कल्याण

करे जो काम पर-हित के वही इन्सान होता है।
काम जो धर्म के आये वीर बलवान होता है॥
दीन दुखिया अनाथों बेजुबानों का सहायक जो।
बड़ा है भाग्यशाली वह जगत् में मान होता है॥
तर्क की जो कसौटी पर खरा खोटा परख लेता।
वही ज्ञानी जिसे वेदों का सच्चा ज्ञान होता है॥
फँसा पाखण्ड की कीचड़ में करता कर्म जो खोटे।
समझाने से जो न समझे, वही नादान होता है॥
स्वाध्याय और सत्संग में समय अपना लगाता जो।
कहे 'निर्भय' आर्यों का, सदा कल्याण होता है॥
करे जो काम परहित के वही इन्सान होता है।

—नन्दलाल 'निर्भय', बही॰, फरीदाबाद

वेदों की महिमा

'वेदों में वह सब कुछ है जिसकी हमें इस जीवन में आवश्यकता होती है और परलोक के लिए हम कामना करते हैं'—यह मद्रास के राज्यपाल श्री ऐस एल खुराना ने १३-२-८३को वैदिक कन्वेंशन में कहा-

वेद सभी संसार के हैं

अग्नि ने ऋग, वायु ने यजु, देखकर जगको दिखाया,
साम का मधु गान पा आदित्य ने सबको सिखाया,
यह महान् अथर्व-वैभव अंगिरा के पास आया,
पाठ-क्रम चेताजनों ने श्रुत सुबर गौरव बचाया।
वेद तन-मन के, अतनु करतार के हैं।
वेद भारत के, सभी संसार के हैं! ॥
वर्ण-आश्रम का व्यवस्थित, कर्मणा अधिकार देते,
ब्रह्म-आत्मा-प्रकृति—तीनों को सही आधार देते।
वेद जन-जन के, सुखद परिवार के हैं।
वेद भारत के, सभी संसार के हैं! ॥

— भैरवदत्त शुक्ल

'वेदों में प्राचीन आर्य संस्कृति, सभ्यता, स्वस्थ प्रथा, प्रगतिशील समाज-व्यवस्था का ढाँचा तथा सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल के बीज और तथ्य सन्निहित हैं'। इस प्रकार वैदिक वैज्ञानिक आधारों की खोज की बात कहकर उन्होंने ऋषि दयानन्द कृत वेद-भाष्य की वरीयता परोक्ष रूप में प्रतिपादित की।

महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि

[श्री इन्द्र देव पुरोहित भारतीय आर्यसभा, कुलपति गुरुकुल शाही (पीलीभीत) उ. प्र.]

दो नाम रखने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित है, १ नाक्षत्रिक, २ आभिप्रायिक। नाक्षत्रिक नाम नक्षत्र के अनुसार पुरोहित रखते हैं तथा आभिप्रायिक नाम माता पिता अपने अभिप्राय के अनुसार रखते हैं, वही नाम व्यवहार में लाते हैं।

ऋषि दयानन्द के भी नाम दोनों प्रकार के थे; १-दयाराम या दयाल जी २-मूलशंकर। कुछ लोग मूलशंकर को नाक्षत्रिक नाम तथा दयारामको आभिप्रायिक नाम मानते हैं तथा कुछ लोग इसके विपरीत दयाराम को नाक्षत्रिक नाम और मूलशंकर को आभिप्रायिक नाम मानते है। यदि नाक्षत्रिक नाम मूलशंकर मान लिया जावे तो —

[१] शंकरानुयायी पिता ने मूलशंकर नाक्षत्रिक नामको छोड़कर दयाराम आभिप्रायिक नाम क्यों रखा जबकि दयाराम नाम वैष्णव है ? इसके विपरीत यह तो न्यायसंगत है कि शंकर अनुयायी पिता ने दयाराम नाक्षत्रिक नाम को छोड़कर मूलशंकर आभिप्रायिक नाम रखा क्योंकि दयाराम नाम वैष्णव होने से ऋषि के पिता को अभीष्ट नहीं था।

[२] ऋषि से पूर्व वंश परम्परा में किसी का नाम शंकर परक नहीं है तो कैसे मान लिया जावे कि मूल शकर नाक्षत्रिक नाम पुरोहितने रखा ! इसके विपरीत दयाराम नाम रखना न्याय संगत है।

[३] ऋषि ने स्वयं लिखा है —

मैं अपना ब्रह्मचारी नाम भी बहुत प्रसिद्ध करना नहीं चाहता क्योंकि घर का भय बहुत बड़ा था।

विशेषत: संन्यास आश्रम का अवलम्बन करने से दूसरा नाम ग्रहण करने पर मेरा परिचय संपर्क भी निरापद हो जावेगा।

पूर्णानन्द सरस्वती के नाम से सन्यास आश्रम ग्रहण करके मैं दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुआ।

यहाँ दूसरा नाम दयाराम ग्रहण किया जो कि दयाराम के राम को अलगकरके आनन्द जोड़कर बना है। यह दयाराम नाम गाँवमें सर्वत्र प्रचलित नहींथा। इस नाम को माता-पिता आदि घर वाले ही जानते थे। प्रसिद्ध नाम तो उनका मूलशंकर ही था जिसको इब्राहीम आदि साधरण मनुष्य तक जानते थे। अत: ऋषि मूलशंकर नामसे डरते थे (क्योंकि घरवाले हमें जान जायेंगे) इसलिये उन्होंने इस नाम को छोड़कर दयानन्द नाम रखा। ऋषि को दयाराम नामसे मोह था, नहीं तो दयाराम को छोड़कर और कोई अपना अन्य नाम रखते।

सिद्धान्त यह है कि नाक्षत्रिक नाम अप्रसिद्ध होता है यदि प्रसिद्धहो तो आभिप्रायिक नाम रखने की क्या आवश्यकता हो ? अत: इसी नियम के अनुसार ऋषि का ब्रह्मचारी नाम जो अप्रसिद्ध था वह था दयाराम नाम। यदि ऐसा न होता तो दयानन्द नाम न रखते।

[४] स्वामी वेदानन्द जी कहते हैं—

स्वामी दयानन्द का जन्म का नाम दयाल जी एवं दयाराम है।

तथा राजकोट आर्यसमाज के मन्त्री जी लिखते हैं- स्वामी जी का मूलशंकर नाम मूल नक्षत्र पर नहीं था इधर प्रत्येक व्यक्ति के दो दो नाम होते हैं। इसी तरह स्वामीजी का राशि का नाम दयाराम था। जिस से दयानन्द नाम पड़ा और लाड़ प्यार का नाम मूलशंकर था जिसका मूल नक्षत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है।

[५]जो लोग यह कहते हैं कि मूलनक्षत्र में जन्म होने के कारण मूलशंकर कहने लगे, तब भी नाक्षत्रिक नाम मूलशंकर नहीं हुआ क्योंकि मूलनक्षत्र के 'ये यो भा भी अक्षरों पर कोई नाम होना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं है और यदि मूलनक्षत्र में जन्म मान लें तो दयाराम नाम क्यों रखा गया। जब कि वे सज्जन इसे न आभिप्रायिक मानते हैं न नाक्षत्रिक। इसके लिए कोई उत्तर नहीं है। (आगे शेष पृष्ठ ११ पर)

राजसूय यज्ञ के स्तोत्र और शस्त्र

यस्य ते महिना... (३) देखो [७४६]

रथन्तर का पिछला मन्त्र यह है —

इदं वसो सुतमन्ध ... [देखो ५८७]

नृभिर्धूतः सुतो .... [,, ७५०]

तं ते यवं यथा ... [,, ७५१]

पवमान ऊक्थ मरुत्वतीय शस्त्र है जिसमें रथंतर साम है।

(मध्य सवन में) पवमान स्तोत्र को रथंतर की रीति से गाते हैं। सहारा देने के लिए बृहत् पृष्ठ है। पहले और पिछले स्तुति के मन्त्रों को रथन्तरसे गाते हैं। रथंतर ब्राह्मण है बृहत् क्षत्रिय है। ब्राह्मण क्षत्रिय से पहले होता है। राजा को समझना चाहिए कि जब ब्राह्मण मेरे आगे है तो मेरा राष्ट्र सुदृढ़ और विघ्न रहित होगा। रथन्तर अन्न है। पहले रखने से वह राजा को खाना प्राप्त कराता है। रथंतर यह पृथ्वी है, यह प्रतिष्ठा है। पहले रखने से यह राजा को प्रतिष्ठा देता है।

इन्द्रको बुलाने का प्रगाथ बिना किसी परिवर्तन के वही है जो कि और सोम दिनों का है। ब्रह्मणस्पति का प्रगाथ जिसकी विशेषता 'उत्' है दोनों सामों में एक सा है। धाय्या भी वही है। मरुत्वतीय प्रगाथ ऐकाहिकों का विशेष है। [१]

खण्ड २— (पवमान उक्थ्य) का निविद् सूक्त यह है —

जनिष्ठा उग्रः... [देखो ५९९]

इसमें 'उग्र' भी और 'सह' भी। यह क्षत्रका रूप है। ओजिष्ठ भी क्षात्ररूप है। बहुलाभिमानः में 'अभि' शब्द है जो पराजित करने का रूप है। इस सूक्त में ग्यारह ऋचायें हैं। त्रिष्टुप् में ग्यारह अक्षर होते हैं। क्षत्रिय इसका रूप है। ओज इन्द्र का बल है। यह त्रिष्टुप् है। ओज क्षत्रिय का वीर्य है। इस प्रकार वह राजा को ओज, क्षत्र तथा वीर्य से सम्पन्न करता है। यह 'गौरिवीत' सूक्त है। इससे मरुत्वतीय शस्त्र समृद्ध हो जाता है। इसका ब्राह्मण पहले कहा जा चुका है।

त्वामिद्धि हवामहे ··· [देखो ७८२]

स त्वं नश्चित्र ... [देखो ७८४]

यह बृहत् पृष्ठ है। बृहत् साम क्षत्र है। ज्येष्ठ है तथा श्रेष्ठ है। इससे राजा समृद्ध होता है।

'अभि त्वा शूर नोनुमः' यह रथन्तर बृहत् साम का अनुरूप है। यह लोक रथन्तर है, वह लोक बृहत् है। इसलोक वह लोक अनुरूप है। उस लोक का यह लोक अनुरूप है। इस प्रकार रथन्तर को बृहत् का अनुरूप बना लेते हैं तथा दोनों लोकों का भोग यजमान को प्राप्त कर लेते हैं।

ब्रह्म रथन्तर है क्षत्र बृहत्। ब्रह्म में क्षत्र प्रतिष्ठित है तथा क्षत्र में ब्रह्म। इस प्रकार दोनों सामों का समन्वय प्राप्त होता है।

धाय्या वही है– यदि वावान...[देखो ६०७] इसका ब्राह्मण पहले कहा जा चुका है।

साम प्रगाथ यह है –

उभयं शृणवच्च न... [देखो ७८७]

तं हि स्वराजं ... [,, ७८८]

यह दोनों सामोंका रूप है जो गाये जाते हैं। २

खण्ड ३— १२६६. तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा ऋ० ६.१८

इसमें अभिभूति में अभि है। अषाळ्हम्, उग्र, सहमानम् क्षत्र के भी रूप हैं। इसमें १५ मन्त्र हैं। ओज क्षत्र और वीर्य पंचदश स्तोम वाला है। इनसे राजा सम्पन्न होता है। यह भरद्वाजका सूक्त है। बृहत् साम को भी भरद्वाज ने ही निकाला था। यह आर्ष है। वह राजसूय समृद्ध हो जाता है जिसमें बृहत् होता है। जब कोई क्षत्रिय यज्ञ करे तो बृहत् पृष्ठ को काम में लावे क्योंकि इससे यज्ञ समृद्ध हो जाता है। ३

खण्ड ४— राजसूय यज्ञ के होत्रों [मैत्रावरुण ब्राह्मणाच्छंसी तथा अच्छावाक] के कृत्य वही हैं जो ऐकाहिक यज्ञों में होते हैं। ये शान्ति तथा प्रतिष्ठा के लिये हैं। ये यज्ञ को पूरा करते हैं एवं त्रुटि नहीं रहने देते। वे सर्वरूप तथा सर्वसमृद्ध होते हैं इनसे यज्ञ सर्व रूप और सर्व समृद्ध हो जाता है। जो क्षत्रिय इसको करता है वह समझता है कि

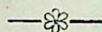
इन होत्रों के सर्वरूप और सर्वसमृद्ध कृत्यों से मेरी कामनायें पूर्ण हों। इसलिए जहाँ कहीं एकाहों में स्तोम या पृष्ठ नहीं पूरे होते वहाँ होत्रकों के ऐहिक कृत्यों से उनको समृद्ध बना देते हैं।

कहते हैं कि उक्थ्यको पंचदश स्तोम और शस्त्रवाला होना चाहिए। क्योंकि इन्द्रियों की तीव्रता शक्ति है और ओज पंचदश स्तोमवाला है। क्षत्र वीर्य ;बल है। इस प्रकार वह ओज क्षत्र और वीर्यसे युक्त होता है।

इसके स्तोम और शस्त्र ३० [१५-१५] होते हैं। विराट् छन्द में ३० अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है। विराट् स्थापना करने का अर्थ यह है कि वह इसको अन्न में स्थापित करता है। इसलिये वह उक्थ पंचदश स्तोम अंकों वाला होना चाहिए।

अग्निष्टोम जो ज्योतिष्टोम का भाग है यहाँ ठीक होगा। त्रिवृत स्तोम ब्रह्म है और पन्द्रह अंकों वाला क्षत्रिय। ब्रह्म क्षत्र से पहले हैं। [राजा को सोचना चाहिए] अगर ब्रह्म प्रथम हो जायगा तो हमारा राज्य सुदृढ़ हो जायगा। सत्तरह वैश्योंका अङ्क है और इक्कीस शूद्रों का। स्तोमों में त्रिवृत् = तेज, पंचदश = वीर्य, सप्तदश = सन्तान और एकविंश = प्रतिष्ठा है। इसप्रकार वह इसे इन चारोंसे सम्पन्न करता है। अत: ज्योतिष्टोम चाहिए जिसमें चौबीस स्तोम-शस्त्र हैं। चौबीस अर्धमास संवत्सर में हैं जिसमें सब अन्न होते हैं। इस प्रकार वह यजमान क्षत्रिय को सब प्रकार के अन्न से संयुक्त करता है। अत: ज्योतिष्टोम का अग्निष्टोम चाहिए। ४ [२६१]

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३६ (अष्टम पञ्चिका का प्रथम अध्याय) समाप्त हुआ।



ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ८ अध्याय २

अध्याय ३७

राजसूय में अभिषेक

खण्ड ५— अब दीक्षा लेनेवाले क्षत्रिय के अभिषेक का प्रश्न है जो अवभृथ स्नानके पश्चात् अन्तिम इष्टि की समाप्ति पर होता है। सामान पूर्व से तय्यार रहता है। गूलर की लकड़ीकी चौकी के पाये प्रादेश-मात्र और शीर्ष शीर्ष आधे हाथके तथा बन्धन मूंज के हों। बिछाने के लिए व्याघ्रका चर्म,गूलर की शाखा और चमचा हो जिसमें आठ वस्तुएँ हों। दही-शहद-घी-धूप में बरसा हुआ-जल-शष्प-यवांकुर-औषधिरस-दूब। स्फ्य से रेखा खींचकर दक्षिण में तख्त रखते हैं जिसका अगला भाग पूर्व में होता है। उसके दो पाये वेदि के भीतर दो बाहर होते हैं जो भू-श्री के कामनाप्रक मित-अमित रूप हैं।

खण्ड६--शेरके चर्म के लोम ऊपर और गरदन पूर्व में रह। व्याघ्र वन-पशुओं में क्षत्र और राजा भी क्षत्र इससे समृद्धि होतीहै। राजा उसपर बैठनेके लिए पीछे से आकर घुटने टेककर इस प्रकार बैठता है कि दाहिनी जाँघ भूमिसे छूजाय और दोनों हाथोंसे चौकी पकड़कर इस मन्त्र का पाठ करता है--

१२९७-- अग्निष्ट्वा गायत्र्या सयुक् छन्दसारोहतु सवितोष्णिहा सोमोऽनुष्टुभा बृहस्पतिर्बृहत्या मित्रा-वरुणौ पंक्त्या इन्द्रस्त्रिष्टुभा विश्वेदेवा जगत्या तानहम-नुराज्याय साम्राज्याय भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय महाराज्याय आधिपत्याय स्वाव-श्याय आतिष्ठाय आरोहामि ॥

इसको पढ़कर राजा पहले दाहिना फिर बायाँघुटना रखता है। ऐसा होता है। यह लोगों का ...

देव इस प्रकार छन्दों के साथ आरोहण करते हैं। कि अगला छन्द पिछले से चार अक्षर अधिक हो। अब ये दो मन्त्र पढ़े जाते हैं--

१२६८-६६-- अग्नेर्गायित्र्यभवत् समुग्वो...
विराळिमत्रावरुणयो.... ऋ १०.१३०.४-५

जो राजा इन देवोंके पीछे चौकीपर चढ़ता है उस का उत्तरोत्तर योग-क्षेम होता है वह श्री, प्रजाका ऐश्वर्य और आधिपत्य को प्राप्त करता है।

पुरोहित जलकी शान्तिकेलिए मन्त्र बुलवाता है-

१३००-- शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोपस्पृशत त्वचं मे। सर्वां अग्नीँ रप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त ॥

यदि यह न किया जाय तो जल अशान्त होकर उससे वीर्य को छीन लेता है २ (६) [२६३]

खण्ड ७—अब गूलर की शाखा से उसका सिर ढाँककर ये ४ मन्त्र पढ़ते हुए जल छिड़कते हैं—

१३०१—इमा आपः शिवतमा इमा सर्वस्य भेषजीः।
इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्रभृतोऽमृताः॥

याभिरिन्द्रमभ्यषिचत् प्रजापतिः सोमं राजानं वरुणं यमं मनुम्। ताभिरद्भिरभिषिचामि त्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह॥

महा-तम् त्वा महीनाम् सम्राजं चर्षणीनाम्।
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम् अग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसा इन्द्रियेणा-भिषिचामि बलाय श्रियै यशसेऽन्नाद्याय भूर्भुवःस्वः॥

यदि पुरोहित केवल राजाके बल आदि की प्राप्ति चाहे तो भूः, यदि दो (पुत्रसहित) की तो भूः भुवः, यदि तीन (पुत्र-पौत्र-सहित) की तो भूर्भुवः स्वः कहे।

कुछ का कथन है कि व्याहृतियोंसे दूसरोंके लिए ही कार्य होताहै अपने लिए नहीं। अतः इन्हें न कहे।

कुछ का कथन है कि इन्हें छोड़नेसे केवल अगले जन्मके ऊपर अधिकार होता हैं इस जन्म पर नहीं।

सत्यकाम जाबाल का कथन है कि यदि इन्हें न बोलकर अभिषेक कियाजाय तो वह मर सकताहै।

उद्दालक आरुणि कहते हैं कि यदि व्याहृतियोंके सहित अभिषेक होता है तो राजा विजय पा कर सभी वस्तुएँ प्राप्त करलेता है अतः भूर्भुवःस्वः कहे।

अभिषेक का अंग होम

अभिषेक के पश्चात् ये वस्तुएँ निकल जाती हैं-

ब्रह्मत्व-क्षत्रियत्व-ऊर्ज-अन्नाद्य-जल-औषधिरस-ब्रह्मवर्चस्-अन्न की पुष्टि-सन्तति। क्षत्र औषधियों की प्रतिष्ठा है। निम्नलिखित आहुतियों से वह इन को पुनः स्थापित करता है—

ब्रह्म प्रपद्ये स्वाहा॥
क्षत्रं प्रपद्ये स्वाहा॥ ३ (७) [२६४]

खण्ड ८- चौकी चमस-शाखा गूलर की क्यों हो? क्योंकि वह ऊर्ज-अन्न है जिसे धारण कराता है।

दही-मधु-घी जल और औषधियों के रस हैं। वह इनको धारण कराता है।

धूप में वर्षा के जल से वह तेज और ब्रह्मवर्चस् को राजा में स्थापित करता है।

शष्प-यवांकुर से पुष्टि-प्रजा स्थापित करता है।

औषधि-रस क्षत्र और अन्न-रस हैं। ये दोनों उसमें स्थापित किये जाते हैं।

दूब औषधियों का राजा है। यह राजा का चिह्न हैं। इससे राज्य का विस्तार और प्रतिष्ठा होती है।

जो वस्तुएँ राजा में से कम हो गयीं थीं वे सब उसमें फिर आ जाती हैं। वह सफल हो जाता है।

अब पुरोहित सोमरस का प्याला राजा के हाथ में देता हुआ यह मन्त्र पढ़ता है—

१३०२- स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः॥ (ऋ ९.१.१)

हे सोम, तू स्वादिष्ठ और हर्षप्रद धारा से पवित्र कर, तू इन्द्र के लिए रक्षार्थ निचोड़ा गया है।

अब शान्ति का मन्त्र बोलता है-

१३०३— नाना हि वां देवहितं सदस्कृतं मा सं सृक्षाथां परमे व्योमनि। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष राजा मैनं हिंसिष्टं स्वां योनिमाविशन्तौ॥
यजु १९.७

तुम दोनोंका देव-हितकारी स्थान भिन्न है. तुम परम व्योम में मत मिलो। हे औषधि, तू बलवाली हैं। यह सोम राजा है। अपने स्थान को जाते हुए तुम इसकी हिंसा मत करो।

सोम और औषधि में भिन्नता है। पीते समय मित्र ऋत्विज का भी ध्यान रखकर उसे भी दे। ४ (८)

खण्ड ९— अब गूलरकी शाखाको देखते हुए चौकी से नीचे उतरने की घोषणा करता हैं—

१३०४– प्रतितिष्ठामि द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि प्राणापानयोः प्रति तिष्ठाम्यहोरात्रयोः प्रतितिष्ठाम्यन्नपानयोः प्रति ब्रह्मन् प्रति क्षत्रे प्रत्येषु त्रिषु लोकेषु तिष्ठामि।

अन्त में वह पूर्णतया खड़ा होता है. सबमें प्रतिष्ठित होता, उत्तरोत्तर श्री और आधिपत्य को पाता है।

अरिष्ट-विजय, प्रपद-पाठ

उतरकर पूर्वाभिमुख बैठकर तीन बार नमो ब्रह्मणे कहकर कहता है— वरं ददामि जित्या अभिजित्यै विजित्यै संजित्यै (मैं जय अभिजय विजय संजय के लिए वर देता हूं)। इस प्रकार जब क्षत्र ब्राह्मणके वशमें आ गया तो राष्ट्र समृद्ध होता, वीरोंको उत्पन्न करता है।

वह वाणी को वशमें करके उठकर आहवनीय में यह पढ़कर समिधा रखता और वीर्य-सम्पन्न करता है—

समिदसि सम्वेक्ष्व इन्द्रियेण वीर्येण स्वाहा।

समिधा रखकर पूर्वोत्तर की ओर ३ पग बढ़ाता है—

क्लृप्तिरसि दिशां मयि देवेभ्यः कल्पत। कल्पतां मे योगक्षेमो अभयं मे अस्तु।

अब वह पराजय हटाने के लिए विपरीत दिशा में चलता है। ऐसा कहते हैं। ५(९)[२६६]

खण्ड दस— देव-असुर लड़ते थे। असुर पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर में जीत गये। जब देव पूर्वोत्तर दिशा में लड़े तो जीत गये। अतः राजा जब युद्ध के लिए चले तो इसी दिशामें चले। पुरोहित रथका ऊपरी भाग छुए—

१३०५. वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाः (ऋ ६।४७.२६)

वह इस सूक्त को पढ़कर रथ को घुमाये—

१३०६—अभीवर्तेन हविषा... (ऋ १०.१७४)

और इन सूक्तों को पढ़ कर रथ की ओर देखे—

१३०७—आशुःशिशानो (अप्रतिरथ सूक्त ऋ १०.१०३)

१३०८—शास इत्था... (शास सूक्त ऋ १०.१५२)

१३०९—प्र धारा यन्तु मधुनः (सौपर्ण सूक्त)

वह युद्ध में जाते समय कहता है–तथामे कुरु वथाहमिमं संग्रामं संजयानि। वह पूर्वोत्तर में जीत जायगा।

यदि वह अपने देशसे निकाला गया हो तो कहे — मैं स्वराष्ट्रको लौटूं। पूर्वोत्तरमें जानेसे लौट आता है।

वह यह मन्त्र पढ़ता है मानो शत्रु को हरा चुका—
अप प्राच इन्द्र ... (देखो ११४९)

ऐसा करने से वह शत्रु-रहित हो जाता है।

महल में आकर वह गार्हपत्य के पास बैठता है तब ऋत्विज चार बार घी भरकर इन्द्र के लिए ३ आहुति देता और प्रपद (मन्त्रके बीच में कुछ जोड़ना) की रीति से मन्त्र पढ़ता है जिससे रोग-हानि-रहित अभय हो।६

खण्ड ग्यारह—वे तीन मन्त्र ऋ ६.११०.१-३ ये हैं–

१३१०–१२. पर्यूषु प्र ध धन्व वाजसातये परि वृत्रा (भूर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये सह प्रजया सह पशुभिः) णि सक्षणिः। द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे (स्वाहा)॥

अनु हि त्वासुतं सोममदामसि महे सम (भुवो ब्रह्म... पशुभिः) र्य राज्ये वाजाँ अभि पवकान प्रगाहसे स्वाहा॥

अजीजनोहि पवमान सूर्य विधारे श(स्वर्ब्रह्म...पशुभिः) क्मना पयः। गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या (स्वाहा)॥

[टि०– कोष्ठक का भाग मन्त्र में जोड़ा गया है।]

इन आहुतियोंको देनेवाला अरिष्टों पर विजय पाता शत्रु-रहित होता, त्रयी विद्या द्वारा सुरक्षित रहता, सब दिशाओंमें विचरता और इन्द्रलोक में प्रतिष्ठा पाता है।

अब गो-अश्व तथा सन्तानों के लिए प्रार्थना है—

१३१३—इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पुरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणो वीरस्त्राता निषीदतु॥

ऐसी प्रार्थना करने वाले के बहुत सन्तान और पशु उत्पन्न होंगे। इसको समझते हुए पुरोहित जिस क्षत्रिय के लिए यज्ञ करते हैं उसकी प्रतिष्ठा होती है।

जो इसे न समझ कर क्षत्रिय के लिए यज्ञ कराते हैं वे उसे घसीटते और धन छीनलेते हैं जैसे कि कोई वन में जाता हो उसे चोर-डाकू पकड़ कर धन छीन लें।

परिक्षित् के पुत्र जनमेजय ने कहा है—रहस्य-ज्ञाता ऋत्विजों ने मेरा यज्ञ कराया अतः मैं विजयी हुआ। मैं शत्रु को शीघ्र जीतता हूं, तीर मुझे नहीं लग सकते, मैं पूर्णायु होकर पृथ्वी का स्वामी होऊँगा। इसे जान कर यज्ञकर्ता पूर्णायु तथा सब भूमि का स्वामी होता है॥

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद पञ्चिका ८ का अध्याय २ समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ८, अध्याय ३

अध्याय ३८

इन्द्र का महाभिषेक

खण्ड बारह— अब इन्द्र के महाभिषेक का वर्णन किया जाता है। प्रजापति सहित देवों ने कहा – 'यह देवों में सबसे अधिक ओजवाला, साहसी, सत्ता वाला और कामों को अच्छी तरह करनेवाला है। इसी का अभिषेक करें।' वे उसके लिए ऋचाओंसे बने सिंहासन को लाये। उन्होंने बृहत् और रथन्तर सामों को सिंहासन के अगले दो पाये बनाया और वैरूप तथा वैराज को पिछले दो पाये। शाक्वर और रैवत को ऊपर का पट्टा, नौधस और कालेय को उसके बगलके तख्ते। उन्होंने ऋचाओं का ताना, सामों का बाना यजुओं का बीच का भाग, यश को बिछौना, श्री को तकिया बनाया। बृहस्पति ने उसके अगले पाये, वायु और पूषा ने पिछले, मित्र और वरुण ने ऊपर के तख्ते तथा अश्विनोंने दो बगल के तख्ते पकड़े।

तब इन्द्र सिंहासन को इस प्रकार संबोधन करके उसपर चढ़ा– वसु तुझपर गायत्री छन्द, त्रिवृत स्तोम रथन्तर साम द्वारा चढ़ें। उनके पीछे साम्राज्य के लिये मैं चढ़ूं। रुद्र तुझ पर त्रिष्टुप् छन्द से, पंचदश स्तोम और बृहत् सामसे चढ़ें। आदित्य तुझ पर जगती छन्द, सप्तदश स्तोम और वैरूप साम से चढ़ें। विश्वेदेवा तुझपर अनुष्टुप् छन्द, एकविंश स्तोम और वैराज साम से चढ़ें। साध्य और आप्त्य तुझ पर पंक्ति छन्द त्रिणव स्तोम और शाक्वर साम से चढ़ें। मरुत और अंगिरा तुझ पर अतिच्छन्दस् छन्द से और त्रयस्त्रिंश स्तोम और रैवत साम से चढ़ें और मैं उनके पीछे तुझ पर भोग, स्वराज्य, वैराज्य, राज्य, महाराज्य, स्वावश्य और अधिक जीवन के लिए चढ़ूं। इन शब्दों को कह कर सिंहासन पर बैठे।

जब इन्द्र इस प्रकार सिंहासन पर बैठ गया तो विश्वेदेवों ने उससे कहा, 'जब तक इन्द्र की घोषणा न की जायगी वह पराक्रम से कार्य न कर सकेगा। परन्तु यदि ऐसी घोषणा की जायेगी तो वह करसकता है।' तब उन्होंने ऐसा करना अंगीकार कर लिया और इन्द्र के सामने मुँह करके जोर से कहने लगे।

देवों ने उसको साम्राज्य का सम्राट्, भोगों का भोक्ता, स्वाराज्य का स्वराट् राजाओं का पिता परमेष्ठी बना दिया। उन्होंने कहा, 'आज क्षत्र पैदा हुआ, आज क्षत्रिय पैदा हुआ, विश्व का अधिपति पैदा हुआ, विश और लोगों का भोगने वाला उत्पन्न हुआ, पुरों का नाश करने वाला उत्पन्न हुआ। असुरों का घातक उत्पन्न हुआ, ब्राह्मणों का रक्षक उत्पन्न हुआ, धर्मका रक्षक हुआ। जब घोषणा हो चुकी तो प्रजापति ने अभिषेक करके इन मन्त्रों को पढ़ा —

खण्ड तेरह— निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय [भोज्याय, स्वाराज्याय, वैराज्याय, परमेष्ठ्याय, राज्याय, माहराज्याय, अधिपत्याय, स्वावश्याय, अतिष्ठाय] सुक्रतुः॥ [ऋ० देखो १४६]

धृतव्रत वरुण साम्राज्य इत्यादि के लिए बैठा।

इन्द्र गद्दी पर बैठा था। प्रजापति इन्द्र के सामने खड़ा हुआ और पश्चिम को मुख करके गूलर–पाश की भीगी शाखा से निम्नलिखित मन्त्रोंसे अभिषेक किया–

इमा आपः शिवतमाः [३ मन्त्र। पृष्ठ १५६]

देवस्य त्वा सवितुः [यजु]

भूः भुवः स्वः। २

खण्ड चौदह— इन्हीं मन्त्रों से इकतीस दिनों में वसुओं ने पूर्व में साम्राज्य के लिए, रुद्रों ने दक्षिण में भौज्य के लिए; आदित्यों ने पश्चिम में स्वाराज्य के लिए, विश्वेदेवों ने उत्तर में वैराज्य के लिए, साध्य-आप्त्रों ने ध्रुवा में राज्य के लिए, ऊर्ध्व में मरुतों–अंगिरसों ने पारमेष्ठ्य, महाराज्य, आधिपत्य और स्वावश्य के लिए इन्द्र का अभिषेक किया। अतः उस के अनुसार सब दिशाओंमें राजा अभिषेक करके सम्राट भोज, स्वराट्, विराट्, राजा और परमेष्ठी' महाराजा, अधिपति कहाते हैं। इन्द्र इस महाभिषेक से सर्वश्रेष्ठ दोनों लोकों में सर्व-कामना-पूरक हो गया॥ ३ (१४)

अध्याय ३ समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ८, अध्याय ४

क्षत्रिय का महाभिषेक

खण्ड पन्द्रह—इस रहस्य को समझता हुआ जो ऋत्विज चाहे कि यजमान क्षत्रिय सबको जीत ले, सब लोकों को ले ले, सब राजाओं में श्रेष्ठ हो जाय, साम्राज्य-भौज्य-स्वाराज्-वैराज्-पारमेष्ठ्य-राज्त-महाराज्य-आधिपत्य प्राप्त करले, सर्वत्र उसकी पहुँच हो, वह सब भूमिका स्वामी पूर्णायु हो, पृथिवी पर समुद्र तक राज्य करे और संशय-रहित हो तो उसे चाहिए कि उस क्षत्रिय का इन्द्र के महाभिषेक की रीति से महाभिषेक करे और उससे यह शपथ ले कि यदि तूने मुझसे द्रोह किया तो तेरे उत्पन्न होने की रातसे लेकर मरण रात तक किये सुकृत, प्राप्त आयु और प्रजा को मैं ले लूँगा।

इसे जाननेवाला क्षत्रिय यदि चाहे कि मैं सबको जीत जाऊँ तो वह शङ्काके बिना ऐसी शपथ खाये।

खण्ड सोलह– ऋत्विज् कहे– बट, गूलर, पीपल, प्लक्ष की चार लकड़ियाँ लाओ। वट क्षत्रिय, गूलर भोज, पीपल सम्राट्, प्लक्ष स्वराट्-विराट् हैं। इन को लानेवाले उसमें क्षत्र-भौज्य-साम्राज्य-स्वाराज्य-वैराज्य धारण कराते हैं।

अब उससे कहे—चावल-महाव्रीहि-कंगुनी-जौ—इन चार अन्नोंको लाओ। ये क्रमशः क्षत्रिय, सम्राट्, भोज और सेनानी हैं। इनको लानेवाले उसमें क्षत्र साम्राज्य, भौज्य, सेना-नेतृत्व धारण कराते है।

अब वह गूलर की चौकी लाता है। गूलरके पात्र में इन अन्नों और दही-शहद-घी-वर्षाजल आदि को रखते हैं। सिंहासन के प्रति कहते हैं—

बृहत्-रथन्तर तेरे अगले पाये हैं, वैरूप-वैराज पिछले। (इत्यादि देखो पिछला पृष्ठ)

[खण्ड अठारह-उन्नीस बारह-तेरह के समान हैं]

खण्ड २०— दही-शहद-घी-जल से सींचकर इन्द्रिय-औषधरस-तेज-अमृतत्व धारण कराता है। दक्षिणा में सोना, हजार गौएँ, और चौकोर खेत

अध्याय ३९

दे। यह भी कहते हैं कि अपरिमित दे क्योंकि वह अपरिमित है। अपरिमितका अपरिमित फल होगा।

अब वह राजा के हाथ में सोम का पात्र देता है– स्वादिष्ठया.... (देखो १६०२)

अब जो शेष रहे उसे ये दो मन्त्र पढ़कर पिए— रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः।
इदंतदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि॥

अभि त्वा वृषभा सुते...(ऋ ८.४५.२२)

महाभिषेक करके राजा इन मन्त्रोंसे सोम पिये– अपाम सोमममृता अभूम... (ऋ ८.४८.३)

शन्नो भव चक्षसा...(मं० दस सूक्त ३७ मंत्र दस)

जिस प्रकार पुत्र पिताका आलिङ्गन करके आनन्दित होता वैसे ही राजा सोम पीकर और अन्नाद्य खाकर अपने को भूल जाता है।

खण्ड इक्कीस— कवष के पुत्र तुर ने परिक्षित् के पुत्र जनमेजय का वैसा ही राज्याभिषेक किया था जैसा कि इन्द्र का हुआ था। अतः वह विजयी हुआ और उसने अश्वमेध किया जिसकी गाथा है–

'जनमेजय ने देवों (सैनिकों) के लिए सिंहासन के पास अन्न खानेवाले, माथे पर चिह्नवाले और हरी माला वाले अश्व को बाँधा।'

इसी रीति से भृगु के पुत्र च्यवन ने मनु के पुत्र शर्यात का अभिषेक किया जिससे उसने पृथिवी को जीता; अश्वमेध किया, देवोंके यज्ञमें गृहपति बना।

इसी प्रकार वाजरत्न के पुत्र सोमशुष्मा ने सत्राजित के पुत्र शतानीक का, पर्वत-नारद ने आम्बाष्ठ्य का और उग्रसेन के पुत्र युधांश्रौष्टि का अभिषेक किया। इन्होंने और कश्यप ने तथा भुवन के पुत्र विश्वकर्मा ने सम्पूर्ण पृथ्वी जीती, अश्वमेध किया। कहते हैं विश्वकर्मा की प्रशंसामें पृथ्वीने यह गाया–

'हे विश्वकर्मा कोई मेरा दान नहीं कर सकता। तूने मुझे दान करदिया। मैं पानीमें डूब जाऊँगी। तेरा कश्यप को देने की प्रतिज्ञा करना व्यर्थ है।'

ऐसे ही वसिष्ठने पैजवन सुदासका अभिषेक किया।

महर्षि की जन्मतिथि

[पृष्ठ २ से आगे]

सौराष्ट्र में ऐसा कोई नियम नहीं है कि मूलनक्षत्र में जन्म होने के कारण किसी का नाम मूलयुक्त रखा जाय। मैंने स्वयं सोमनाथ जाकर वहाँ के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री रमणशाह छागनलाल शास्त्री से इस बात का प्रमाण प्राप्त किया है। उक्त तथ्यों के आधार पर ऋषिवर का जन्म-नाम दयाराम सिद्ध होता है।

❀ ऋषि का जन्म फाल्गुन शुक्ल पक्ष में ❀

ऋषि ने स्वयं लिखा है—

१. संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म हुआ था।

२. फिर माता पिता ने बुलाकर विवाह की तैयारी करी तब तक इक्कीसवाँ वर्ष पूरा हो गया था।

३. एक मास में विवाह की तैयारी हो गई, फिर चुपचुप सं० १९०३ के वर्षमें शामसमय घर छोड़दिया।

ऋषि द्वारा वर्णित उपर्युक्त उद्धरणसे सिद्ध होता है—

१. ऋषि का जन्म १८८१ वि० में हुआ था।

२. २२ वें वर्ष सं० १९०३ चैत्र शु०पक्ष में गृहत्याग।

३. घर बुलाने के समय आयु २१ पूरी हो गई।

४. ऋषि को वर्ष के अन्तमें एक मासपूर्व बुलाया गया

५. जन्म तिथि के पश्चात् एक मास के भीतर विवाह सम्बन्धी सब सामग्री प्रस्तुत हो गई।

६. ऋषि का जन्म वर्ष के अन्तिम मास में हुआ।

७. २१ वर्ष की आयु और गृह त्याग में एक मासका अन्तर है। यदि सवा मास का भी समय होता तो ऋषिवर एक मास के बजाय सवा मास कहते। डेढ़ मास और दो मास तो किसी भी दशामें नहीं होसकता

८. होली से पूर्व ऋषिवर घर बुलाये गये। क्योंकि वे होली को स्वयं ही घर आ जाते।

९. चौदहवें वर्ष में पांव रखने से पहले... शिवरात्रि के आने पर पिता ने कहा आज तुम्हारी दीक्षा होगी, इससे सिद्ध है कि शिवरात्रि के पश्चात् ऋषि जन्म है। इसी को हरीशचन्द्र जी विद्यालंकार लिखते हैं —

पहली घटना उस समय की है जब कि मूल जी की आयु अभी १३ वर्ष की थी। ... संवत् १८९४ की शिवरात्रि की इस घटना ने मूल जी को मूर्ति पूजा का घोर विरोधी बनाया।

१०. विवाह एक वर्ष पहले तय हो चुका था। ऋषि ने लिखा है 'तेरा अगले साल में विवाह भी होगा। लड़की वाला नहीं मानता है' यह बात ऋषि ने कही थी इससे सिद्ध होता है कि विवाह एक वर्ष पहले ही तय हो चुका था।

११. वे विवाहतिथि से कुछ दिन पहले ही भागे थे। ऋषिने पूना व्याख्यानमें कहा है—एक महीनेके भीतर पूरी तैयारी हो गयी। यह देखकर मैं एकदिन शौच के बहाने से एक धोती साथ लेकर घरसे निकल पड़ा।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि विवाह तिथि और गृह त्याग में कुछ दिन का अन्तर अवश्य था।

१२. ऋषि दयानन्द उत्तरीय विक्रम सं० मानते थे।

ऋषि ने लिखा है कि अब सं० १९१२ विक्रम समाप्त हुआ। अगले पाँच मास में कानपुर व प्रयाग के मध्यवर्ती अनेक प्रसिद्ध स्थान मैंने देखे। भाद्रपद के प्रारम्भ में मिर्जापुर पहुंचा।

इससे स्पष्ट है कि सं० विक्रम के समाप्त होने के ५ मास बाद भाद्रपद आरम्भ होता है जिसके अनुसार वर्ष के आरम्भ में चैत्रमास है। परन्तु दक्षिण भारत गुजरात में कार्तिक मास से परिवर्तित होनेवाली वि० सं० का चलन है। ऋषि उसे नहीं मानते थे।

पं अखिलानन्द जी ने दयानन्द दिग्विजय में भाद्रपद शुक्ल ९ ऋषिजन्म लिखाहै जो कि नितान्त अशुद्ध है क्योंकि—(१) इस जन्म तिथि को आजतक आर्य-समाज ने नहीं अपनाया। (२) जन्म तिथि और गृह त्याग काल में एक मासका अन्तर है परन्तु उनके मत से सात मास का अन्तर आता है जो अशुद्ध है।

उपर्युक्त विवरण से सिद्ध है कि ऋषि का जन्म शिवरात्रि के पश्चात् होलीसे पहले फाल्गुन शु०पक्ष है।

❀ फाल्गुन शु०जन्म २ सं१८८१ १९फरवरी१८२५ ❀

ऋषि का नाक्षत्रिक नाम पूर्वोक्त वर्णन से दयाराम सिद्ध है। दयाराम नाम पूर्वाभाद्रपद के तृतीय चरणमें आता है, फाल्गुन शु०पक्षमें पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र द्वितीया तिथिको आता है अतः ऋषि का जन्म फा० शु० शुदि द्वितीया में हुआ था। सं०१८८१ ऋषि ने स्वयं बताई है उसके अनुसार१९ फरवरी १८२५ई० शनिवार था।

आशा है विद्वजन मेरेइस पक्षको स्वीकार करेंगे एवं ऋषिजन्म तिथि इसी तिथि पर सरकार से भी मनवाने का प्रयत्न करेंगे।

—❀—

समाचार

❀ महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी अजमेर में ❀

सा. आ. प्र. सभा ने ९.४.८३ को निश्चय किया कि शताब्दी ३ से ६ नवम्बर ८३ को परोपकारिणी सभा के साथ मिलकर अजमेर में ही सम्पन्न होगी।

❀ चण्डीगढ़, हरिद्वार, लखनऊ में वेदगोष्ठियाँ ❀

वेद-संगोष्ठियाँ गत चैत्र पूर्णिमा को सम्पन्न हुईं। आगामी वैशाख पूर्णिमा को भी होंगी।

❀ लखनऊ में संस्कृत कवि सम्मेलन ❀

अ. भा. सं. परिषद् द्वारा ३०-४-८३ को हुआ।

❀ आ. प्र. सभा उ. प्र. का वार्षिक अधिवेशन ❀

दयानन्द कालेज लखनऊ में २८,२९ मई को होगा।

❀ उ. प्र. विश्ववेदपरिषद् का अधिवेशन ❀

वहीं पर २८-५-८३ को प्रातः यज्ञ के पश्चात् होगा सदस्यगण कृपया अवश्य सम्मिलित हों।

❀ नव-वर्ष, आर्यसमाज-स्थापना-दिवस, रामनवमी ❀

सर्वत्र आर्यसमाजों में सोत्साह सम्पन्न हुए।

संस्कृत भाषा की दिव्यता

जिज्ञासु सं. प्र. समिति उ. प्र. के दीक्षान्त समारोह में प्रयाग में स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती ने कहा—

देववाणी संस्कृत दिव्य है। इसका रचयिता वही परमेश्वर है जिसने हमें वाणी दी। इसकी भी रचना में कम चमत्कार नहीं। इसका व्याकरण, इसकी वर्णमाला अद्वितीय है। महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में ४००० सूत्रों में व्याकरणके समस्त नियमोंको बाँधकर जो बुद्धि-कौशल दिखाया है. उससे यह कहना पड़ता है कि उन जैसा विद्वान् न कभी उत्पन्न हुआ और न होगा। ❀

—उ. प्र. के राज्यपाल ने हैदराबाद में भाषण देतेहुए कहा कि विश्व को संस्कृत का अध्ययन इसलिए करना चाहिए कि इसके समान अन्य कोई साहित्य नहीं है।

जिससे मनुष्य उच्च पथका पथिक बनसके। यह मानव को देवत्व की दिशा में ऊपर उठाती है।

❀ आ. स. सान्ताक्रुज बम्बई में संस्कृत-समारोह ❀

२७-३-८३ को संस्कृत.परीक्षाओं में सफल छात्रों को प्रमाण-पत्र देते हुए श्री मधु देवलेकर ने कहा—

यहाँ मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि संस्कृत तो जन साधारण की भाषा है। आर्यसमाज ने संस्कृत पढ़ा कर भारतीय संस्कृति को सुरक्षित किया है।

श्री प्रकाशचन्द्र त्यागी ने कहा— भारतीय सभ्यता संस्कृति रक्षार्थ प्रत्येक को संस्कृत पढ़ना चाहिए।

महामन्त्री कैप्टिन देवरत्न ने कहा— हम गत दो वर्ष में २२८ जनों को संस्कृत पढ़ा चुके हैं।

प्रधान श्री मूना ने संस्कृत में ही स्वागत किया। और अध्यापक आचार्य सोमदेव का आभार माना। छात्र-छात्राओं ने मन्त्र-श्लोक-पाठ आदि किया।

विदर्भ में इस्लामीकरण

आदिवासी क्षेत्रों के भ्रमण के बाद वि.वे.प. के संरक्षक.सा.आ.प्र.स.के प्रधान श्री रामगोपाल वानप्रस्थ ने बताया—पेट्रो डालर के बल पर विदर्भ के ८ लाख भीलों-आदिवासियों-हरिजनों को लालच से मुसलमान बनाया जारहा है। उन्हें सरकारी सहायता के लेने का अधिकार नहीं। सरकार इसकी जाँच करे।

म. प्र. आ. प्र. स. और वि. वे. प. की प्रधान श्रीमती कौशल्या देवी तथा मन्त्री श्री रमेश चन्द्र ने उन स्थानों में दयानन्द-सेवाश्रमों की स्थापना का दृढ़ सङ्कल्प किया। सोनाला में आर्यसमाज स्थापित कर ४ दिवसीय वैदिक शिविर में भीलों-हरिजनों आदि को यज्ञ करके यज्ञोपवीत और अन्न वस्त्र दिये गये।

❀ स्वामी ओमानन्द सरस्वती का अभिनन्दन ❀

परोपकारिणी सभा के प्रधान, मूर्धन्य विद्वान् श्री स्वामी ओमानन्द को गुरुकुल नरेला दिल्ली के उत्सव पर १५ मई ८३ को अभिनन्दन ग्रन्थ और प्रशस्ति-पत्र भेंट किये गये। —❀—

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति, आदर्श प्रेस, सी ८.१७ महानगर. लखनऊ उ. प्र. २२६००६

ग्राहक-संख्या १३२८
सेवायाम् श्री [handwritten name]

卐 ओ३म् 卐

श्री पं. वीरसेनजी वेदश्रमी वेदविज्ञानाचार्य

द्वारा प्रस्तुत



वेद मन्त्रों के सस्वरपाठ, मन्त्र गान एवं प्रवचनों के विविध केसेट्स (Cassettes) तथा रचनाओं की सूची

●

सम्पूर्ण यजुर्वेद सस्वर पाठ सहित १२ केसेट्स में
मूल्य ६००) रु.

सम्पूर्ण सामवेद संहिता पाठ केसेट्स में
मूल्य ५००) रु.

— प्राप्ति स्थान —



卐 ओ३म् 卐

ध्वनि पूरित सस्वर मंत्र पाठ केसेट्स

वेद मन्त्रों के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरों में उच्चारणों का विशेष महत्व है-अतः प्राचीनकाल से स्वर सहित मन्त्र पाठ का हमारे देश में गुरु परम्परा से अध्ययन प्रचलित रहा है ।

स्वर सहित मंत्रोच्चारण आवश्यक

स्वरों या वर्णों के उच्चारण में थोड़ा-सा भी दोष हो जाने से उसके अभिप्राय एवं प्रयोज नमें बहुत भारी अन्तर हो जाने से संकल्पित फल नहीं होता –– अतः सस्वर मंत्रोच्चारण आवश्यक ही है ।

वेद भेद से ४ प्रकार का पाठ

वेद भेद से प्रधानतः चार प्रकार का वेद पाठ है । अतः हमने ऋग्वेद के मंत्रों का ऋग्वेद रीति से यजुर्वेद का यजुर्वेद रीति से, साम तथा अथर्व का उसी-उसी वेद की रीति से सस्वर पाठ टेप रिकार्ड किया है ।

मंत्रों के आर्चिक गान के केसेट

मंत्र गान केसेट में मंत्रानुसार उदात्तादि स्वरों के आधार पर नारदीय शिक्षानुसार सप्त स्वरों में मंत्रों का आर्चिक गान, ताल, वाद्यादि सहित है ।

अभ्यास केसेट्स

घर बैठे सस्वर मंत्राभ्यास के लिये इनको बनाया गया है । मंत्र का प्रत्येक चरण, पंक्ति एवं सम्पूर्ण मंत्र ५।५ बार उच्चारित किया गया है । जिससे इसके साथ सस्वर मंत्राभ्यास करना सुगम हो जाता हैं ।

□ □ □

प्रत्येक केसेट का मूल्य ५०) रु. डाक पैकिंग व्ययादि १०) रु. अतिरिक्त ।
६ केसेट मंगाने पर डाक व पैकिंग खर्च नहीं लगेगा ।

• • पता :- **वेद सदन** – महारानी रोड, इन्दौर ४५२००७

प्रति करना निषिद्ध है । शीघ्र मंगावें ।

सस्वर मंत्रपाठ - मंत्र संगीत एवं मंत्राभ्यास केसेट्स

नं. १ संध्या हवन केसेट - इसमें प्रातः सूक्त सार्थक ० संध्या ० प्रार्थना मंत्र अर्थ सहित ० दैनिक अग्निहोत्र ० स्वस्तिवाचन ० शांतिकरण ० साप्ताहिक सत्संग होम तथा महावामदेव्य गान है। **चारों वेदों की रीति से मंत्र पाठ स्वर सहित है।**

नं. २ मंत्र पाठ केसेट - इसमें **यजुर्वेद की रीति से सस्वर पाठ** निम्न अध्यायों का है - यजुर्वेद अध्याय १६वां रुद्राध्याय ० ३१वां अध्याय पुरुष सूक्त ० ३२वां ब्रह्म सूक्त ० ३६वां शान्त्याध्याय ० ४०वां ईशावास्यं ० सूक्त तथा आत्मपावन एवं वैदिक श्री सूक्त भी हैं।

नं. ३ प्रवचन केसेट - गायत्री एवं यज्ञ विषय पर।

नं. ४ प्रवचन केसेट - सन्ध्या का क्रियात्मक एवं यौगिक रहस्य।

नं. ५ प्रवचन केसेट - वेद कथा एवं शिवशंकर दयानन्द गाथा।

नं. ६ मंत्र गान केसेट- प्रणव साम ० गायत्री ० ईशावास्यम् ० विश्वानिदेव ०त्र्यंबकं यजामहे ० यज्जाग्रतो ० संगच्छध्वं ० समानो मन्त्रः ० समानीव आकूतिः ० महावामदेव्य सामगान ० स्तुता मया वरदा वेदमाता ० द्यौः शान्तिः ० **मन्त्रों का गान वाद्य सहित वेद मन्त्रों के ही स्वरों में प्रस्तुत है।**

नं. ७ मंत्र पाठ केसेट-गायत्री मंत्र एवं त्र्यंबकं यजामहे मन्त्रों के सस्वर, संहिता, पद, क्रम, जटा, घनादि पाठ हैं।

न. ८ एवं ९ आर्याभिविनय केसेट - मन्त्रपाठ महर्षिकृत अर्थ सहित।

नं. १० मंत्र पाठ केसेट ऋग्वेद मन्त्र- प्रथम मण्डल के प्रथम ५ सूक्त तथा स्वराज्य सूक्त, ज्ञान सूक्त, पुरुष सूक्त, कः (प्रजापति) सूक्त, वागाम्भृणी सूक्त, नासदीय सूक्त, अघमर्षण सूक्त, ऋग्वेद का अन्तिम संज्ञान सूक्त। ऋग्वेद रीति से तथा श्रुति परम्परा से अभ्यास पाठ नासदीय सूक्त मन्त्रों का भी है।

अभ्यास केसेट निम्न प्रकार हैं—

केसेट नं. ११ - गायत्री मन्त्र, प्रातः सूक्त के ५ मन्त्र, ईश्वर स्तुति प्रार्थना के ८ मन्त्र यजुर्वेद रीति से।

केसेट नं. १२ व १३ - स्वस्तिवाचन के मन्त्रों का अभ्यास २ केसेटों में प्रतिवेदानुसार।

केसेट नं. १४ व १५ - शान्तिकरण के मन्त्रों का अभ्यास २ केसेटों में प्रतिबेदानुसार।

केसेट नं. १६ व १७ - पुरुष सूक्त यजुर्वेद एवं ऋग्वेद की रीति से

केसेट नं. १८ - यजुर्वेद का ४०वां अध्याय।

केसेट नं. १९ - सामवेद की प्रथम दशति एवं महावामदेव्य गान।

केसेट नं. २० - ऋग्वेद के प्रारम्भ और अन्त के सूक्त।

हमारी प्रमुख रचनायें--

१. **वैदिक सम्पदा** - वर्तमान समय की प्रमुख समस्या - अध्यात्म, समाज शास्त्र, शिक्षा, राजनीति, शासन, युद्ध, कृषि, चिकित्सा, विज्ञान आदि का विवेचन वेदों से प्रतिपादित किया है।

इसके अंग्रेजी संस्करण के प्रकाशन का प्रयत्न चल रहा है। अंग्रेजी संस्करण के आमुख का लेखन प्रोफेसर जी. लीमी एम. ए., पी-एच. डी. (न्यूयार्क) द्वारा हुआ है।

२. **सन्ध्यायोग रहस्य** - इस में मन्त्र के साथ, मन्त्रार्थ भावना, व्यवहार जीवन में साधना, लाभ, योग सूत्रों के साथ समन्वय, सन्ध्या का क्रियात्मक रहस्य, ओ३म् एवं गायत्री के जप की आर्ष विधि, सन्ध्या द्वारा अष्टांगयोग की सरलता से साधना, सन्ध्या में गायत्री का अन्तर्भाव, गायत्री में सन्ध्या का अन्तर्भाव आदि अनेक रहस्यों को प्रकट किया गया है। जो अब तक सन्ध्या के बारे में नहीं पढ़ा और सुना वह इसमें प्राप्त होगा। अनेक चित्र और दो रंगों में अच्छे कागज़ पर छपी है। मूल्य २०) रु. डाक व्यय ५) पृथक्। तीन प्रतियों का मूल्य ६०) भेजने पर डाक खर्च नहीं लगेगा। ५प्रतियां का मूल्य १००) भेजने पर १ प्रति बिना मूल्य भी दी जावेगी।

३. **वैदिक सूक्त संग्रह**- नित्यपाठ योग्य आत्मपावन, सरस्वती, सुमंगलम्, संजीवन, श्री सूक्त एवं वाणिज्य ये ६ सूक्त अर्थ एवं प्रयोग सहित हैं। यज्ञ में भी नित्य उपयोगी है। मूल्य ४) रु. ५ प्रति मंगाने पर २१) रु. में डाक व्यय सहित मिलेगी। १० प्रति मंगाने पर १ प्रति बिना मूल्य दी जावेगी।

४. **वेद कथा**- वेद के गूढ़ रहस्य कथा द्वारा समझाने में सुगम हो जाते हैं अतः पठनीय है। मूल्य २) मात्र, डाक व्यय पृथक्।

५. **वैदिक श्री सूक्तम्** - नित्य पाठ एवं यज्ञ में उपयोगी - अर्थ सहित मूल्य १) रु.

६. **गायत्री मंत्रः प्रकृति विकृति पाठ समलंकृतः**– गायत्री मन्त्र के पद, क्रम, जटा, घनादि पाठ हैं। मूल्य १) रु.

निम्न पुस्तकें शीघ्र प्रकाशित होगी--

१. **शिवशंकर दयानन्द गाथा** - शिव-रात्रि बोध-पर्व के आधार पर महर्षि दयानन्द की अपूर्व भावबोधक गाथा केसेट नं. ५ के व भाग में भी यह गाथा है।

२. **याज्ञिक आचार संहिता** - यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं की व्यवस्था का अपूर्व ग्रन्थ है।

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ७, अंक ४, मधु [चैत्र] २०४० वि०

अप्रैल फरवरी १९८३ ई०, मानव-सृष्टि-वेद-संवत् १९६०८५३०८४, दयानन्दाब्द १५९

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व वेद-परिषद्,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ, उ. प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१

ऐतरेय ब्राह्मण, (अध्याय ३३) शुनःशेप-आख्यान

....

❀ विशेषांक-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

आर्यसमाज के संस्थापक



महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्थापनातिथि— चैत्र शुक्ल ५,१९३१ वि०, १०-४-१८७५ ई.
१०८ वीं स्थापना-दिवस— १८-४-८३ ई

आर्यसमाज है यह !

देश को जगाने वाला आर्य-समाज है,
आर्य-समाज है यह आर्य-समाज है ॥
देश-धर्म-जाति की बचाई जिसने लाज है, आर्यसमाज०
जाति पर विधर्मियों के नित्य हमले हो रहे थे,
नींद में बेहोश पड़े जाति वाले सो रहे थे।
सोई हुई जातिको जगाया किसने आज है ? आर्य०
आर्य-समाज ने जगाई ज्योति वेद की,
बन्द हुई बायबिल, कुरान और पुराण भी।
दूर किये पाखण्ड, बुरे रिवाज़ हैं। आर्य-समाज०
इसीने सुनाया देश-प्रेम का जोशीला राग,
लेकर अँगड़ाई सारे देशप्रेमी पड़े जाग।
भागे हैं विदेशी सारे देश में स्वराज है ॥ आर्य०
इसीने भगाया भ्रम जाल छुआ-छूत का,
इसीने मिटाया झूंठा ढोंग जात पाँत का
जन्म का महत्त्व मिटा, कर्म सरताज है ॥ आर्य०

सम्पादकीयम् —

वेद-सृष्टि-संवत्

❀ नव संवत्सर (नया वर्ष) शुभ हो । ❀

नव वर्ष मधुमास, चैत्र शुक्ल १, संवत् २०४० वि० (तथा मेष संक्रान्ति १४-४-८३) को १९६०८५३०८४ आरम्भ होगा ।

वेद-सृष्टि-संवत् से अभिप्राय उसकालकी गणना से है जब से मानव-सृष्टि उत्पन्न कर परमात्मा ने वेदों का प्रकाश किया । इस युग में सर्व प्रथम महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों की उत्पत्ति में वर्षों की गणना अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में आज से १०६ वर्ष पूर्व (फाल्गुन कृष्ण ६ शनिवार,चतुर्थ प्रहर वि०सं०१९३३ के समय),भूमिका के संशोधन के समय, ३ फरवरी १८७७ को,मेरठ में अन्तिम रूप से की थी ।

उसके और मनुस्मृति (१.६८-७३,७९,८०) के प्रमाण से संक्षिप्त और सरल वेद-सृष्टि-संवत् के काल की गणना निम्न लिखित प्रकार है —

कलियुग	४३२००० वर्षका	कलियुग
इससे दूना द्वापर युग	८६४००० ,,	द्वापरयुग
,, तिगुना त्रेतायुग	१२९६००० ,,	त्रेतायुग
,, चौगुना सतयुग	१७२८००० ,,	कृतयुग
एक महायुग (चतुर्युगी)	४३२०००० ,,	चतुर्युगी

७१ चतुर्युगी का एक मन्वन्तर ७१ से गुणा करके ३०,६७२०००० वर्षका मन्वन्तर होता है ।

१४ मन्वन्तर निम्नलिखित हैं – १. स्वायम्भव, २. स्वारोचिष, ३. औत्तमि, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८.सावर्णि,९. दक्षसावर्णि, बृहत् सावर्णि, ११. धर्म सावर्णि, १२. रुद्रपुत्र, १३. रौच्य, १४. भौतव्यक ।

१४ मन्वन्तरों की एक मानव-वेद सृष्टि = ९९४ चतुर्युगी होती है । ४,२९,४०,८०००० वर्षों का एक मानव-वेद-सृष्टि संवत् होता है ।

महर्षि के लेख के समय तक व्यतीत हुए वेद-सृष्टि-संवत् का विवरण निम्न प्रकार है —

६ मन्वन्तर के वर्ष	१,८४,०३,२००००
७वें ,, की २७ चतुर्युगी	११,६६,४००००
२८ वीं चतुर्युगी का सतयुग	१७,२८०००
,, ,, त्रेतायुग	१,२९,६०००
,, ,, द्वापर युग	८,६४०००
,, ,, कलियुग के वर्ष	४९७६
योग—वेद-सृष्टि संवत् के भुक्त वर्ष	१,९६,०८,५२,९७६
महर्षि से अब तक बीते वर्ष जोड़े	१०७
आज तक वेद-संवत् के वर्ष व्यतीत हुए ।	१९६०८५३०८३

वेद-सृष्टि-संवत् के शेष भोग्य वर्ष (महर्षि-दयानन्द के लेख के समय तक) ७वें मन्वन्तर की

२८ वीं चतुर्युगीमें कलियुग के शेषवर्ष	४,२७,०२४
शेष ४३ चतुर्युगियों के वर्ष	१८,५७,६०,०००
शेष ७ मन्वन्तरों के वर्ष	२,१४,७०,४०,०००
योग –	२,३३,३२,२७,०२४

६ चतुर्युगियों के २५९२०००० वर्ष मानव-वेद-सृष्टि से पहले व्यतीत हो चुके हैं । उनको मिलाकर जड़ सृष्टिको हुए १९८६७७३०८४ वर्ष होते हैं और पूरी सृष्टिकी आयु ४३२०००००० होती है, और ऋषि ने इसमें सन्धिकाल न माना न जोड़ा।

अत: मयासुर कृत सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सन्धिकाल मानना व जोड़ना ठीक नहीं और उसे जोड़कर आज १९७०९०४९८४ सृष्टि-संवत् मानना कदापि उचित नहीं है । उसके मानने में कोई भी औचित्य नहीं , उसे न जोड़ने को ऋषि की भूल बताना अत्यन्त अनुचित है । अत: वैदिकों को वेद सृष्टि संवत् अब १४ अप्रैल १९८३ ई०, चैत्र शुक्ल १ संवत् २०४० वि० को १,९६,०८,५३०८४ मानना और प्रयुक्त करना चाहिए ।

वेद सृष्टि-संवत के शेष भोग्य वर्ष २ अरब ३३ करोड़ ३२ लाख २७ हजार २४ वर्ष हुए । महर्षि ने इसी वेद संवत् का वर्णन सत्यार्थप्रकाश तथा चांद पुर के मेला में किया है । इसमें से तब से बीते १०७ वर्ष घटाने पर अब २३३३२२६९१७ वर्ष शेष हैं । गणना सृष्टिके अन्त से प्रारम्भ कर पीछे की ओर जाते हैं तो उपर्युक्त वेद-संवत् की मन्वन्तर-गणनानुसार ९९४ चतुर्युगियां पार करने पर शेष ६ चतुर्युगियों के बराबर का काल वेदाविर्भाव से पूर्व ही बच रहताहै । यही समय महत्तत्त्व, आकाश आदि पंचभूत, वनस्पति आदि के आविर्भावका है ।

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ७, अध्याय ३

अध्याय ३३, शुनःशेप का आख्यान

खण्ड १३ — इक्ष्वाकु वंशके राजा वेधस् का पुत्र हरिश्चन्द्र निस्सन्तान था। उसकी सैंकड़ों पालित स्त्रियाँ थीं किन्तु पुत्र कोई न था। वहाँ पर्वत और नारद ऋषि रहते थे। उसने नारद से पूछा—

ज्ञानी-अज्ञानी सभी पुत्रको चाहते हैं। हे नारद बताओ कि उससे क्या लाभ है।

नारद ने इसका उत्तर दस श्लोकों में दिया—

१. यदि पिता जीते हुए, पुत्र का मुख देखले तो उसका ऋण छूट जाता है। वह अमर हो जाता है।

प्राणियों के जितने भोग पृथिवी-जल-अग्नि में हैं उनसे भी अधिक पिता के लिए पुत्र में हैं।

३. पिता पुत्र रूपी नाव से आपत्ति-नदियों को पार करते हैं। आत्मा से आत्मा पैदा होता है।

४. मलिन रहने, चर्म पहनने, दाढ़ी-मूंछ रखने से क्या लाभ? हे ब्राह्मणो, पुत्र की इच्छा करो।

५. अन्न प्राण देता, कपड़ा रक्षा करता, स्वर्ण रूप देता है। विवाह में पशु मिलते हैं। पत्नी सखा है। दुहिता कृपा-पात्री है। किन्तु पुत्र उस लोक में भी ज्योति है।

६. पति पत्नीमें गर्भके रूप में प्रविष्ट होता, तथा नया जन्म लेकर दसवें मास में उत्पन्न होता है।

७. स्त्री तभी जाया होती है जब पिता उसमें पुत्र होकर जन्मता है। बीज बढ़कर उपजता है।

८. देवों-ऋषियों ने पहले उसे तेजोयुक्त करदिया फिर कहा कि अब यह तुम्हारी जननी है।

९. जिसके पुत्र नहीं उसका लोक नहीं— इसको पशु भी जानते हैं, वे माँ-बहिनका ध्यान नहीं करते।

१०. जिनके पुत्र होते हैं वे शोक-रहित होकर विस्तृत मार्ग पर चलते हैं। पशु-पक्षी भी इस बात को जानते हैं। वे माँ-बहिनका ध्यान नहीं करते।१

खण्ड १४— फिर नारद बोले— राजा वरुण (आचार्य) के पास जाओ और कहो कि मुझे पुत्र (पालनार्थ) दो। मैं उससे यज्ञ(श्रेष्ठ कर्म) करूंगा।

अच्छा कहकर वह वरुण के पास जाकर बोला— मुझे सन्तान मिल जाय तो मैं तेरा यज्ञ करूं।

उसने स्वीकार कर रोहित नामक शिशु दिया।

वरुण— तुझे पुत्र मिल गया। अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— जब दस दिन हो जायँ तो यज्ञ करूँ

दस दिन बाद वरुण-- अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— जब दाँत निकल आते हैं तब वह श्रेष्ठ-कर्म-योग्य होता है। तभी मैं शिक्षित करूँगा।

दाँत निकल आने पर वरुण- अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र-- जब दाँत गिर जायें तब करूंगा।

दाँत गिर जाने पर वरुण-- अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— दूसरे दाँत निकलने पर करूँगा।

दूसरे निकलने पर वरुण— अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— जब क्षत्रिय शस्त्रधारी हो जाता है तब यज्ञके योग्य होता है। तभी मैं यज्ञ करूँगा।

रोहित के शस्त्रधारी होनेपर वरुण- अब यज्ञकर।

हरिश्चन्द्र ने रोहित को बुलाकर कहा—जिसने तुझको मुझे दिया उसके लिए मैं तुझे शिक्षा-यज्ञ में दूंगा। वह निषेध करके और धनुष लेकर वन में चला गया और एक वर्ष तक घूमता रहा। २(१४)

खण्ड १५...अब वरुण ने हरिश्चन्द्रको पकड़ा। उसका पेट फूल गया। यह सुनकर रोहित वन से आया। तब इन्द्र पुरुषके रूपमें आकर बोला--

हे रोहित, सुना है कि श्रम न करने वाले को श्री नहीं मिलती। मनुष्यों में रहते रहते अच्छा भी बुरा हो जाता है। इन्द्र भी चलते रहनेवाले का ही सखा है। अतः तू चलता ही रह, चलता ही रह।

तदनुसार वह दूसरे वर्ष भी घूमता रहकर लौटा तो गाँव में इन्द्र-ब्राह्मण फिर आकर बोला—

जो विचरता है उसके पैर फूल के समान होते हैं उसका आत्मा फल उगाता और पाता है। श्रम से उसके पाप छूट जाते हैं। अतः तू विचरता रह।

वह तीसरे वर्ष भी घूमता रहा। वापस आनेपर फिर इन्द्र-पुरुष आकर उससे बोला—

बैठे हुए का भाग्य बैठता है, खड़े हुए का खड़ा होता है. पड़े रहनेवाले का पड़ा रहता है और जो विचरता है उसका विचरता है, अतः विचरता रह।

वह चौथे वर्ष घूमता रहा, लौटनेपर इन्द्र बोला—

कलि सोता हुआ रहता है, द्वापर अँगड़ाई लेता रहता है, त्रेता खड़ा रहता है और सत् युग चलता रहता सम्पन्न होता है। अतः चलता रह।

वह ५म वर्ष घूमता रहा, लौटने पर इन्द्र बोला—

विचरता हुआ ही मधु और गूलर के फल पाता है। सूर्य के सौन्दर्य को देख, जो चलता हुआ तन्द्रा नही करता। अतः चलता ही रह, चलता ही रह।

तदनुसार वह छठे वर्ष भी वन में घूमता रहा। वहाँ वह सुयवस् ऋषि के पुत्र अजागर्त से मिला जो भूखा रह रहा था। उससे रोहित बोला—हे ऋषि, मैं तुमको सौ गायें दूंगा, तुम मुझे ३ पुत्रों में से १ दे दो। मैं उसके द्वारा स्वयं को बचा सकूं।

अजीगर्त बोला— बड़े को मत लो। माता छोटे के लिए यही बोली। मध्यम शुनःशेप के लिए दोनों तैयार हो गये। सौ गायें देकर उसे लेकर वह घर आया और पितासे बोला— इसके द्वारा स्वयं कोष बचाऊँगा। वह वरुण के पासजाकर बोला —मैं इसे यज्ञ के लिए तुझे दूंगा। वरुण बोला— क्षत्रिय से ब्राह्मण अधिक अच्छा। तब वरुण ने उसे राजसूय यज्ञ की विधि बताई। इसीप्रकार अभिषेक के दिन शुनःशेप को अधिकृत किया। ३ (१५) [२३८]

खण्ड १६— इस यज्ञ में विश्वामित्र होता, था जमदग्नि अध्वर्यु,वसिष्ठ ब्रह्मा अयास्य उद्गाता थे। आरम्भ में कोई ऐसा न मिला जो उसे अनुशासन में बाँधता। अजीगर्त बोला— मुझे सौ गौएँ और दो, मैं इसे अनुशासन में बाँधूंगा। उसको सौ गायें और दीं। उसने पुत्र को अनुशासनमें रक्खा। आप्रि मन्त्रों का पाठ तथा अग्नि-परिक्रमा भी हो गयीं किन्तु कसको शिक्षामें गति देनेवाला कोई न मिला। तब अजीगर्त बोला--मुझे सौ गायें और दो, मैं इसको प्रगति दूँगा। उसको सौ गायें और दी गयीं। वह प्रगति देनेके लिये भयभीत करने। शासन तेज करने लगा। अब शुनःशेप ने सोचा कि वह मुझे ऐसे दण्ड दे रहा है मानों मैं मनुष्य ही नहीं हूँ। मैं देवताओं के पास दौड़ूं। सबसे पहले उसने (१) प्रजापति के ध्यान में यह ऋचा पढ़ी—

१. कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरम् च॥ (ऋ. १.२४.१)

अर्थ-- अमरों में सुखस्वरूप, निश्चय ही सर्वाधिक सुखमय ईश्वर के सुन्दर नाम ओ३म् को हम जानें। वह मुझे पृथिवी के लिए फिर देता है कि मैं पिता-माता को देखूँ।

इस प्रकार ध्यान में उसे ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि अग्नि देवों में सबसे निकट हैं, तू उसके पास जा।

तब उसने (२) अग्नि आचार्य का ध्यान किया—

२. अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयम् मातरम् च॥ ऋ १.२४.२

अग्नि ने कहा-- प्राणियों का स्वामी सविता है, तू उसका ज्ञान प्राप्त कर। तब उसने (६) सविता (सूर्य) का निम्नलिखित ३मन्त्रोंसे गुणवर्णन किया—

३. अभि त्वा देवं सवितः... [देखो १६५]

४. यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः। अद्वेषो हस्तयोर्दधे॥

५. भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे॥ ऋ. १.२४.३-५

अर्थ--जो कुछ भी तेरा ऐसा ऐश्वर्य निन्दित के भी सामने लेकर मैं अद्वेषी होकर हाथों में देता हूं। तुझ ऐश्वर्य-दाता के तेरे ज्ञान से हम ऐश्वर्य का उच्च पद-प्राप्ति के लिए ऊँचे उठें।

सविता ने प्रेरणा दी-- तू वरुण के लिए प्रतिबद्ध है; उसी से विद्या ग्रहण कर। तब उसने निम्न लिखित ३१ऋचाओं १.२४.६-१५ और १.२५.१-२१ से वरुण का गुण-वर्णन किया--

वरुण के ३१ मन्त्र

[वरुण का अर्थ दुःख-दोष-निवारक, वरणीय ईश्वर, गुरु, जल, जलसेनापति, सूर्य, चन्द्र, आक्सीजन, पुलिस न्यायाधीश आदि होते हैं। यहाँ जल और गुरु हैं।]

६. नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्च नामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥

अर्थ–ये पक्षी, लोक, आपः, वायु तेरा बल नहीं पाते।

७. अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्युरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः।

अर्थ— वरुण ऊपर आकाश में तेजःसमूह को धारण करता है। उसकी किरणें नीचे आती हैं, इनका मूल ऊपर रहता है। वे हीं हमारे अन्दर निहित हों।

८. उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥

अर्थ—वरुण सूर्य के अनुकूल चलने के लिए विशाल पथ बनादेता है, आकाशमें किरणोंके लिए स्थान देताहै

९. शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टेऽस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥

अर्थ—तेरी असंख्य औषधियाँ हैं, तेरी विशाल बुद्धि हमें मिले। कष्ट दूर कर, हमसे पाप को दूर हटा।

१०. अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥

अर्थ—ये ऊँचे स्थापित नक्षत्र रात में दिखाई देते हैं दिन में कहाँ गये ? वरुण के नियम अटल हैं। चन्द्रमा रातमें विशेष चमकता हुआ गति करता है।

११. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥

अर्थ–हे वरुण, मैं वन्दना करता हुआ तुझसे याचना करता हूं जिसे यज्ञकर्ता हवियों से आशा करता है। तू तिरस्कार न करता हुआ बोध करा, आयु नष्ट न कर।

१२. तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे। शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥

अर्थ–विद्वान् जिस ज्ञानका उपदेश मुझे रातदिन करें वह मेरे हृदय को प्रकाशित करे। प्रकृति के बन्धन में

१३. शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस् त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः। अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥

अर्थ— प्रकृति के तीन [सत्त्व, रजस्, तमस्] गुणों से बँधा हुआ शुनःशेप [विषयी, सुखार्थी जिज्ञासु] जीवात्मा ईश्वर और आचार्य को पुकारता है। विद्वान् राजा वरुण उसकी रक्षा करे और बन्धनों को खोल दे।

१४. अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः। क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥

अर्थ— हे वरुण, तेरे प्रति अपराध को हम यज्ञादि से दूरकरें। हे विद्वान्, आप हमारे पाश शिथिल करें।

१५. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥

अर्थ— हे वरुण, आप हमारे उत्तम, मध्यम, अधम बन्धनों को शिथिल कीजिए। और हे आदित्य, हम आपके व्रतमें रहकर अखण्ड मोक्ष के लिए निष्पाप हों।
ऋ १.२४.६–१५

१६. यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यवि द्यवि ॥

हे वरुण देव, हम आपके व्रत को साधारण जन के समान प्रति दिन तोड़ा ही करते हैं।

१७. मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे ॥

हे वरुण, अनादर करने वाले के बध और लज्जित पर क्रोध करने के लिए मत प्रेरित कर।

१८. वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम्।
गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥

हे वरुण, जैसे वीर सुख के लिए अश्व को बाँधता है वैसे ही हम आपके ज्ञानको वाणीसे धारण करते हैं।

१९. परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये।
वयो न वसतीरुप ॥

जैसे पक्षी अपने निवास स्थान को जाते हैं वैसे ही मेरी विशेष स्तुतियाँ आप तक पहुंचें।

२०. कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे।
मृळीकायोरुचक्षसम् ॥

हम सुख के लिए बल से शोभित विद्वान् बड़ा, द्रष्टा वरुण अपना नेता कब बनायेंगे और राज्य-लक्ष्मी को

२१. तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।
धृतव्रताय दाशुषे ॥

२१. व्रतधारी, दानी पुरुष के लिए जैसे गायक-वादक दोनों समान रूप से प्रसन्न करते है वैसेही मित्र वरुण--वायु सूर्य उस विमानादि में प्रयुक्त होकर कार्य सिद्ध करें [हाइड्रोजन-आक्सीजन गैस प्रयुक्त हों]।

२२. वेदा यो वीना पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ॥

जो अन्तरिक्ष में जानेवाले पक्षियों और विमानों का मार्ग तथा समुद्र के जहाजों को जानता है।

२३. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ।
वेदा य उपजायते ॥

वह व्रती प्रजावाले १२ मासों तथा १३ वें मास को जानता है जो तीसरे वर्ष में अधिक होता है।

२४. वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः ।
वेदा ये अध्यासते ॥

वह वायुकी गतियों व उसके अध्यक्षोंको जानताहै।

२५. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः ॥

व्रती वरुण साम्राज्य के लिए उत्तम कार्य वाला प्रजाओं में निश्चित रूप से रहता है।

२६. अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभिपश्यति ।
कृतानि या च कर्त्वा ॥

अतः वह सब अद्भुत कर्मों को देखता है।

२७. स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥

वह सुकर्मी अखण्डित होकर सुन्दर पथ बनाए और हमारी आयुओं को बढ़ाए।

२८. बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
परिस्पशो निषेदिरे ॥

वरुण सोने का कवच और शुद्ध वस्त्र पहन कर आसन पर बैठताहै, उसके गुप्तचर घूमा करते हैं।

२९. न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देवमभिमातयः ॥

हिंसक, द्रोही, अभिमानी उसे हरा नहीं सकते।

३०. उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
अस्माकमुदरेष्वा ॥

जो मनुष्यों में यश और उदरों में अन्न देता है

३१. परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥

जैसे गौएँ स्वस्थानमें जाती हैं वैसे मेरी बुद्धियाँ उसकी इच्छा करती हुई दूर तक जाती हैं।

३२. सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥

जहाँ से मुझे मधुर ज्ञान मिलता है उस विषय में बोला करें। होता के समान तू उसे प्राप्त करा।

३३. दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि ।
एता जुषत मे गिरः ॥

सबके दर्शनीय रथको पृथिवी पर देखनेके लिए मेरी वेद-वाणियों का सेवन करो।

३४. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युराचके ॥

हे वरुण, मेरी इस पुकार को सदा सुनिए और सदा सुख दीजिए। ज्ञानेच्छु मैं कामना करता हूं।

३५. त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि ।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥

हे मेधावी, तू समस्त द्यौ और पृथिवी पर प्रकाशित है। तू प्रति प्रहर हमारी प्रार्थना को सुन।

३६. उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।
अवाधमानि जीवसे ॥ ऋ १.२५.१-२१

जीवनके लिए उत्तम-मध्यम-अधम पाशों को छुड़ा।

अग्नि का वर्णन

वरुण के कहने से शुनःशेप ने अग्नि-दर्शन क्रिया-

३७. वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जाम्पते ।
सेमं नो अध्वरं यज ॥

हे पवित्र ऊर्जा-पति, आप उचित वस्त्र धारणकर हमारे इस विज्ञान-यज्ञ को आगे बढ़ाइये।

३८. नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः ।
अग्ने दिवित्मता वचः ॥

हे श्रेष्ठ बलिष्ठ अग्नि विद्वान्, तू गुणों और तेज से युक्त होकर हमें उपदेश कर।

३९. आ हि ष्मा सूनवे पिताऽऽपिर्यजत्यापये ।
सखा सख्ये वरेण्यः ॥

तू पिता होकर पुत्र को, आचार्य होकर शिष्य

४०. आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
सीदन्तु मनुषो यथा ॥
हमारे यज्ञ में वरुण-मित्र-अर्यमा आकर बैठें ।
४१. पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च ।
इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥
हे श्रेष्ठ होता, आप हमारे इस कार्य से प्रसन्न हों, मित्र बनें और हमारी इन वाणियों को सुनें ।
४२. यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
त्वे इद्धूयते हविः ॥
जो कुछ भी हम ज्ञान द्वारा अनेक देवों से मेल करते हैं वह मानो अग्नि में आहुति दी जाती है ।
४३. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रिया स्वग्नयो वयम् ॥
सुखद नेता प्रसन्न हों, हम अग्निवाले प्रिय हों ।
४४. स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः ।
स्वग्नयो मनामहे ॥
उत्तम अग्निवाले देव हमें सुख और ज्ञान दें ।
४५. अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् ।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥
हे अमृत, हम शिष्य-आचार्य परस्पर बात करें ।
४६. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ॥ [ऋ १.२६.१-१०]
हे बल के रक्षक अग्नि, आप सब ३ प्रकार की अग्नियांसे इस यज्ञ और वायु-बलसे अन्न को दें ।
४७.अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥
हम यज्ञों में प्रकाशमान, अश्वके समान बलवान् अग्नि को विविध सत्कारों से वन्दना करें ।
४८. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥
वह निश्चय ही पुत्रवत् प्रेरक, बलयुक्त नेता, सुख देनेवाला अग्नि वर्षा द्वारा सुख से सींचनेवाला हो ।
४९. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥
वह पूरी आयु का हेतु होकर दूर-पासके पापी शत्रु से हमारे सदन-शिल्प-शरीर की रक्षा करे ।
५०. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
...ने देवेषु प्र वोचः ॥

हे आचार्य, आप सुखद ज्ञान का उपदेश करें ।
५१. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥
आप हमें परम-मध्यम-अन्तिम ऐश्वर्य प्रदानकरें ।
५२.विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥
हे अद्भुत ज्ञान-प्रकाशक, आप समुद्र की लहरों के समान विज्ञानके विभाग करनेवाले और दानी पर शीघ्र कृपा करनेवाले हैं ।
५३. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥
हे अग्रणी, आप जिसको सेनाओंमें बचाते और प्रेरित करते हैं वही स्थिर प्रजाओंका नेता होताहै ।
५४. नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥
हे सहनशील, इस पराक्रमीका मुकाबला करने वाला कोई नहीं । इसका बल प्रशंसनीय है ।
५५. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥
वह सबका द्रष्टा अश्वों के द्वारा युद्धको जिताने वाला और बुद्धिमानों द्वारा ज्ञान का दाता है ।
५६. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥
हे स्तुति से पहचाने जाने वाले, आप यज्ञकर्ता, सेनापति के लिए दर्शनीय सत्य गुण दीजिए ।
५७. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥
वह महान्, अग्नि के समान, बहुतों को प्रसन्न करने वाला अग्रणी अन्न-बल के लिए प्रेरित करे ।
५८. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥
वह प्रजापति अग्नि हमारे प्रशंसनीय वचान सुने ।
अब अग्निके कहनेसे उसने विश्वेदेवोंकी स्तुतिकी-

विश्वेदेवाः की स्तुति

५९. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ ऋ १.२७.१-१३
बड़ों, छोटों, जवानों, वृद्धों को नमस्ते । यदि कर सकें तो देवोंका यज्ञ करें, मैं बड़ों का यश न बिगाड़ूं ।

इन्द्र के २२ मन्त्र

विश्वेदेवोंके कहने से उसने इन्द्रका वर्णन किया–

६०. यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि। आतून इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।

हे संसार के सच्चे पालक, हम असमर्थवत् हैं। अधिक ऐश्वर्यवान् इन्द्र,हमें गौओं, अश्वों, हजारों ऐश्वर्यों में सम्पन्न कर। (यह वाक्य ६६मन्त्र तक है)

६१. शिप्रिन्वाजानाम्पते शचीवस्तव दंसना। आ०

हे सुखद,अन्नपति,शक्तिमान्, यह सामर्थ्य तेरी है।

६२. निष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने। आ०

आप मिथ्यादर्शी, सोये मूर्खों को जगा दीजिए।

६३.ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातय:।आ.

हे शूर, आपके शत्रु सो जायँ, दानी बोधयुक्त हों।

६४. समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया। आ.

हे इन्द्र, आप पाप से निन्दित, गधे के समान नीच को दण्ड दें।

६५. पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो बनादधि। आ०

कुटिलगतिवाला दूर गिरता है जैसे वन से हवा।

६६. सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्। आ०

सब दुष्टोंको नष्ट और हिंसकको विनष्ट करो।

ऋ १.२९.१–७

६७.आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्त:शतक्रतुम्। मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभि:।।

जैसे अन्न के इच्छुक कुएँ का वैसे ही तुम इन्द्र का आश्रय लेकर ऐश्वर्य–जल से सींचो।

६८.शतं वा य: शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्। एदु निम्नं न रीयते ।।

जो पवित्र–आश्रयणीय सैकड़ों-हजारों के आगे झुकता है वह जल के समान शान्त होता है।

६९. सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे। समुद्रो न व्यचो दधे ।।

जिस बलवान् के हर्ष के लिए इन पदार्थों को ही इसके वश में समुद्र के समान धारण कराता हूं।

७०. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ।।

यह संसार आपके ही वशमें होरहा है जैसे जल पोत बन्दरगाह में। वैसे ही हमारे वचन को सुनें।

७१. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।

हे धनोंके पति वीर, यह तेरी सच्ची विभूति है।

७२. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ।।

हे शतक्रतु, आप युद्धमें रक्षार्थ ऊँचे होकर रहिए।

७३. योगेयोगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ।।

हम मित्र योग–अवसरों में बली इन्द्र को बुलावें।

७४. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभि:। वाजेभिरुप नो हवम् ।।

यदि वहसुनले तो हजारों रक्षा-साधनों से आजाये।

७५. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे।

जिसे तुझसे पहले पालक बुलाता है उस आकाश के भी पूर्व विद्यमान ईश्वर की मैं स्तुति करता हूं।

७६. तं त्वा वयं विश्ववाराऽऽशास्महे पुरुहूत। सखे वसो जरितृभ्य: ।।

हें सब के वरणीय, बहुतों से स्तुत, बसानेवाले, मित्र, आप को हम स्तोताओं का हितकारी मानें।

७७. अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपा: सोमपाव्नाम्। सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ।।

हे सोमके पालक, शस्त्र–धारक, आप विदुषियों तथा सोम-रक्षक हम सब के हितकारी हैं।

७८. तथा तदस्तु सोमपा: सखे वज्रिन्तथा कृणु। यथा त उश्मसीष्टये ।।

हे राष्ट्रपालक,बलवान् मित्र, आप वैसा कीजिए कि वह वैसा हो जैसा हम अभीष्ट फल चाहते हैं।

७९. रेवतीर्न: सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजा:। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ।।

समृद्ध हम जिनसे हर्षित हों— ऐसी ऐश्वर्य-युक्त, अन्न-बलयुक्त क्रियाएँ आप इन्द्रके आश्रय में हों।

८०.आ घ त्वावान्त्मनाप्त: स्तोतृभ्यो धृष्णवियान:। ऋणोरक्षं न चक्र्यो: ।।

हे बलवान्, आप पहियोंके धुरा के समान स्वयं स्थित होकर स्तोताओं के लिए सुख देते हैं।

८१, आ यद्दुव: शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभि: ।। (ऋ० १.३०.१-१५)

जैसे पहियोंका धुरा क्रियाओं से कामनाको पूर्ण करता है वैसेही हे सैकड़ों कर्मों में कुशल, आपकी

इन्द्र राजा ने प्रसन्न होकर उसे एक रथ दिया जिसको स्वीकार करते हुए उसने वह मन्त्र पढ़ा--

८२. शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि। स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात्॥

इन्द्र श्रेष्ठ घोड़ों से सदा धन को जीते, कर्मशील वह हमें सुवर्ण-युक्त रथ देवे। दानी वह दान दे।

इन्द्रके कहने से उसने अश्विओंका वर्णन किया–

अश्वि - उषा का वर्णन

८३. आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत्॥

८४. समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः।
समुद्रे अश्विनेयते॥

८५. न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः।
परि द्यामन्यदीयते॥

हे सूर्य-चन्द्रके समान सभासेना-पति, आप वीर सेनाके साथ प्रयाण करें तथा गौ–सुवर्ण–युक्त हों

हे दुःखनाशक, यहआपका एकसमान बना रथ मनुष्य के बिना समुद्र में जाता है।

आप अविनाशी रथ के ऊपर चक्र लगाते हैं जो उसको आकाश में ले जाता है।

तब उससे अश्विओं ने कहा— तू उषा का गुण वर्णन कर, उसमें योग कर, तू मुक्त होजायगा।

तदनुसार उसने ३मन्त्रोंसे उषा-वर्णन किया—

८६. कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये।
कं नक्षसे विभावरि॥

८७. वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात्।
अश्वे न चित्रे अरुषि॥

८८. त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः।
अस्मे रयिं नि धारय॥ ऋ १.३०.१६-२२

हे ज्ञान-कथा से प्रिय,अमर उषा, कौन मनुष्य तेरे सुख-भोगमें है,हे प्रकाशयुक्त,तू किसे मिलती है?

हे व्यापक-विचित्र-दीप्तिमय, पास और दूर से भी तुझे नहीं जान पाते।

हे सूर्यकी पुत्री, तू उन ज्ञान-बलों से हमें प्राप्त हो और ऐश्वर्य प्रदान कर।

इसके वाद वह मुक्त हो गया और हरिश्चन्द्र भी स्वस्थ होगया। ४ (१६) [२३९]

खण्ड १७—तब ऋत्विज शुनःशेपसे बोले—अब तू हम में से ही है। तब उसने अंजः-सव (सोमरस निकालनेका विशेष विधान)करते हुए ये मंत्र पढ़े–

८९. यच्चिद्धि त्वं गृहे गृहे उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः॥

हे ऊखल(विद्वान्), क्योंकि तू घर घर में प्रयुक्त है अतः जेताओं के नगाड़ेके समान अच्छे शब्द कर।

९०. उत स्म ते वनस्पते.....

९१. आयजी वाजसातमा.......

९२. ता नो अद्य वनस्पती...... ऋ १.२८.५-८

सोम को द्रोण-कलश में इस मन्त्र से रक्खा—

९३. उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आसृज।
नि धेहि गोरधि त्वचि॥ ऋ १-२८.९

इन ऋचाओंमें स्वाहा लगाकर सोमयज्ञ किया–

९४. यत्र ग्रावा ...... ९५. यत्र द्वाविव जघना...

९६. यत्र नार्यपच्यवम्...९७. यत्रमन्थां विबध्नते...

अब वह अवभृथ के लिए सामग्री लाया और इन दो ऋचाओं से आहुतियाँ दीं—

९८.त्वं नो अग्ने वरुणस्य... ९९.स त्वं नो अग्ने...
ऋ ४.१.४-५ (११९०-९१)

तब शुनःशेपने हरिश्चन्द्रको बुलाकर यह पढ़ा—

१००. शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः। एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतश्चिकित्व इह तू निषद्य॥ ऋ ५.२.७(१२९२)

हे अग्नि (ईश्वर और विद्वान्),हजारों बन्धनों से निन्दित सुखेच्छु को भी छोड़ो जिससे वह शान्त हो। हे बुद्धिमान् होता, आप यहाँ स्थित हो कर हमारे बन्धनों को काटिए।

अब शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में बैठ गया।

अजीगर्त— हे ऋषि, मेरे पुत्र को मुझे दो।

विश्वामित्र– नहीं, इसे मुझे देवोंने दिया है अतः यह देवरात वैश्वामित्र हुआ, उसके कापिलेय और बाभ्रव बान्धव हैं।

अजीगर्त— तू मेरे पास आ, तुझे माता-पिता बुलाते हैं। तू अंगिरा गोत्रका है, पितृ-गृह न छोड़।

शुनःशेप—मैंने तेरे हाथ में वह वस्तु देखी जो शूद्र

भी नहीं लेता। तूने तीन सौ गायें मुझसे अधिक मानीं।

अजीगर्त– हे तात, मैं अपने किये पर दुःखी हूं। मैं उसके निवारणार्थ तुझको सौ गायें देता हूं।

शुनःशेप– जो एकबार पाप करसकता है वह दूसरी बारभी करसकता है। तू उससे निवृत्त नही होसकता।

विश्वामित्र — हां,निवृत्त नहीं हो सकता। वह जब दण्ड देने को तय्यार था तो बड़ा भयानक लगता था। तू उसका पुत्र मत बन, मेरा पुत्र हो जा।

शुनःशेप– बताओ आपके गोत्रमें कैसे आ सकता हूं?

विश्वामित्र– तू मेरे पुत्रों में ज्येष्ठ हो, तेरी सन्तान श्रेष्ठ हो, दाय-भागी हो, मैं मन्त्रोंसे तुझे पुत्र बनाताहूं।

शुनःशेप– आप पुत्रों से कह दें कि वे मुझे प्रेम से स्वीकार करें तब मैं आपका पुत्र बन जाऊँगा।

विश्वामित्र– हे मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु, अष्टक, तुम और तुम्हारे भाई सुनें– इसको ज्येष्ठ समझो। ५

खण्ड १८. विश्वामित्रके १०१ पुत्रथे, मधुच्छन्दा से ५० बड़े और ५० छोटे। बड़ोंको अच्छा न लगा। तब विश्वामित्र ने शाप दिया– तुम्हारी सन्तान अभक्ष्यवाली होगी। अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिब दस्यु ये ही हैं। मधुच्छन्दा और छोटे ५० भाइयों ने कहा—पिता जो कहेंगे हम मानेंगे। विश्वामित्र ने उनकी प्रशंसाकी।

हे पुत्रो, तुम सन्तानों-पशुओं से बढ़ो। मेरा कहना मानकर तुमने मुझको पुत्रवान् बनाया। हे गाधिपौत्रो, तुम पुत्रवान् होओ। देवरात के संरक्षण में बढ़ोगे, वह तुम्हें सत्य मार्ग पर ले चलेगा उसके अनुचर बनो, वह पथ-प्रदर्शक और हमारी विद्याका अधिकारी होगा।

इन पुत्रों को धन, यश, कीर्ति मिली। देवरात दो ऋषियों का दायभागी हुआ– जह्नु के वंशके धनका, गाधि के वंश की विद्या का।

यह सौ ऋचाओं में शुनःशेप का आख्यान है।

इसका वाचन होता स्वर्णासनपर बैठकर करता है। अध्वर्यु का भी स्वर्णासन है, क्योंकि स्वर्ण यश है, जो राजा को मिलता है। अध्वर्यु होता के ऋचा पढ़ने पर ओ३म् और गाथाके बाद तथा कहताहै जो क्रमशः दैवी और मानुषीहैं जिनसे वह राजा के पाप-दोष छुड़ाता है। अतः विजयी चाहे यज्ञ न करे,शुनःशेप-कथा अवश्य सुने, वह आख्याता को हजार और अध्वर्यु को सौ गायें और स्वर्णासन दे, होता को खच्चरों–सहित चांदी का रथ भी दे! सन्तान की कामना वाले भी इसे सुनें, उनको सन्तान की प्राप्ति होगी। ६(१८) [२४१]

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३३ (सप्तम पञ्चिका का तृतीय अध्याय) समाप्त हुआ।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ७ अध्याय ४

अध्याय ३४

प्रजापति का यज्ञ

ब्रह्म और क्षत्र

खण्ड १९. प्रजापति ने यज्ञ [संसार] रचा। उससे ब्रह्म और क्षत्र हुए। उसके बाद दो प्रकारकी जनता हुई एक हुताद [यज्ञ-शेष खानेवाले ब्राह्मण] दूसरी अहुताद [यज्ञ-शेष न खानेवाले क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र]!

यज्ञ उनसे छूट गया, ब्रह्म–क्षत्र ने उसका अनुसरण किया। ब्रह्म अपने यज्ञ के आयुध लेकर चला और क्षत्र अपने शस्त्र—घोड़ा रथ-कवच-वाण-धनुष। परन्तु वह पीछा न कर सका। ब्रह्म यज्ञ को घेरकर खड़ा होगया उसके हाथ में अपने ही आयुध देखकर यज्ञ लौट आया और ब्राह्मण के ही साथ रहा।

अब क्षत्र ने ब्रह्म का पीछा कर कहा–मुझे इसको दे। उसने कहा—अपने शस्त्र अलग रखकर यज्ञ के आयुध लो। उसने ऐसा करके यज्ञ को पा लिया और उसका अधिकारी हो गया॥ १ (१९) [२४२]

अग्निहोत्र से चिकित्सा

आचार्य सोमदेव, बम्बई - ५४

७ फरवरी के टाइम्स आफ इन्डिया बम्बई में श्री 'बेरी राथनर' अमेरिकन शोधकर्ता का 'अग्निहोत्र' पर किये गये शोध से सम्बन्धित समाचार प्रकाशित हुआ। हवन से क्या-क्या लाभ होते हैं तथा इससे किन-किन बीमारियों का उपचार होता है इस विषय में विद्वान् शोधकर्ता ने अनेक तर्क, हेतु और प्रमाण उपस्थित करके यज्ञ (हवन) के प्रति भारतीय जनता का ध्यान आकृष्ट किया एतदर्थ उनको बहुत-बहुत साधुवाद।

भारतीयों की मानसिक दासता की इतनी दयनीय स्थिति है कि जो हितकर बात हमारे ऋषि-मुनियों ने कही है उसपर हम विश्वास नहीं करते हैं और यदि कोई पाश्चात्य विद्वान् वही बात कहता है तो सभी का ध्यान अनायास उस ओर चला जाता है। यही कारण है कि यज्ञ के वास्तविक स्वरूप, इसकी विशेषता और होनेवाले लाभों की ओर १०० वर्ष से आर्य समाज की ओर से घोषणा एवं व्यवहारिक प्रचार हो रहा है। किन्तु इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। भारत में एक समय यह था कि कोई भी शुभकार्य (संस्कार) बिना यज्ञ के नहीं होता था। प्रतिदिन घर-घर में यज्ञ (अग्निहोत्र) होता था, जिससे मनकी पवित्रता, उससे व्यक्ति का चरित्र निर्माण होता था तदनुकूल राष्ट्र बनता था और इसीलिये देश सोने की चिड़िया कहलाता था। जिस घरमें हवन नहीं होता था उस घर की तुलना श्मशान से की जाती थी। जैसा कि लिखा है —स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि।

अग्नि में डाला गया पदार्थ हजारगुना अधिक शक्तिशाली तथा गुणकारी हो जाता है जैसे परमाणु को जितना सूक्ष्म बनाया जाय उतना ही शक्तिशाली होता है, ठीक इसी प्रकार अग्नि भी हर वस्तु को सूक्ष्मतम करके हर व्यक्ति के पास पहुँचा देती है। इसी तरह यज्ञ द्वारा घृत तथा अन्य सुगन्धित पदार्थ, औषधियाँ, सामग्री के रूप में अग्निमें डाली जाती थीं जिससे वायुमण्डल शुद्ध होता और उसका स्वास्थ्यपर अच्छा प्रभाव पड़ता था। खाँसी जुकाम, यक्ष्मादि रोगों में एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में भाप देना, आयुर्वेद में भस्म बनाना, होम्योपैथीमें भी विचूर्णीकरण आलोडन आदि करना ये सब स्थूल पदार्थोंको सूक्ष्म करके पदार्थ की शक्तिकी वृद्धि करतेहैं। अतः ये सबभी यज्ञकी उपयोगिता को सिद्ध करते हैं, अग्निमें डाला हुआ स्थूल पदार्थ सूक्ष्म होकर गुणात्मक, परिणामात्मक दोनों शक्तिशाली होता है।

प्राचीन कालमें वर्षेष्टि, पुष्टि आदि यज्ञ होते थे। वर्षेष्टि यज्ञ तो बहुत ही प्रसिद्ध रहे हैं, वेदों में कहा भी है 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु' ऐसे अनेक वर्षेष्टि यज्ञ आर्य समाज के विद्वानों ने कराये हैं। इसी तरह पुत्रेष्टि यज्ञ होते रहते हैं। जिसके संतान नहीं होती, इन यज्ञोंके द्वारा अनेक सद्गृहस्थों ने यज्ञ द्वारा सन्तति प्राप्त की है। अजमेरके एक आर्य विद्वान पं० राम चन्द्रजी आर्य मुसाफिर ने 'शीतला चेचक-हर धूप' के नाम से एक तरह की सामग्री बनाई है। जिसे यज्ञ में डालने से बड़ी चेचक निकलने से तड़पते हुए व्यक्ति को गहरी निद्रा आ जाती है और चेचक स्वतः सूखने लगती है। सैकड़ों व्यक्तियों पर इसका सफल प्रयोग भारतवर्षमें अनेक स्थानों पर किया गया है। जिससे सभी को लाभ हुआ है। यज्ञमें बोले जाने वाले मन्त्रों का भी प्रभाव यज्ञकर्ता पर पड़ता है उसमें वे गम्भीर आध्यात्मिक चेतना के भाव अन्तर्निहित होते हैं जिससे व्यक्ति शान्त-गम्भीर और धीर बना रहता है, उसमें मानसिक तनाव जैसी स्थिति होनेका प्रश्न ही नहीं उठता है। ये सब गुण यज्ञ में विद्यमान है किन्तु हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम ऋषियों की परम्परा को छोड़ते जा रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने १५० वर्ष पूर्व इस ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया राजा महाराजाओं के यहाँ यज्ञोंका आयोजनभी किया। किन्तु ऋषि के मार्गका अनुसरण भारतवासी नहीं कर सके, जिससे नाना व्याधियों से संत्रस्त एवं दुःखी है।

श्री बेरी धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति के शाश्वत सिद्धान्तको स्वीकार कर उसके महत्त्व को दर्शाकर यज्ञ की ओर सबको आकृष्ट किया है।

—❀—



वर्ष १७ अङ्क ४, अप्रैल १९८३ ई० **वेदज्योति** पंजीकृत संख्या ६९२१।६२ डाक लखनऊ २०१

ओ३म् क्रतो स्मर यजुर्वेद ४०.१५

ओ३म् में मन को लगा तू वेद ने सबको बताया।
है यही शुभमार्ग सच्चा क्यों फिरे भटका-भुलाया?
इसी से कल्याण होगा, जायगा नहिं तू ठगाया।
आदि सृष्टि में पिता ने पाठ यह सबको पढ़ाया।।
वेदों को पढ़ने से तू फिर हंस सम बन जायगा।
नीर क्षीर-विवेक को भी प्राप्त तू कर पायगा।।
अनित्य जगको देखकर फिर मन नहीं ललचायगा।
अपने को प्यारा तभी तू ओ३म् का कर पायगा।।
शरीर-रथ तुझको मिला था मुक्ति पाने के लिये।
लक्ष्य अपना भूलकर क्यों फंसगया किसके लिये?
चेत जा अब भी समय जिससे न पछताना पड़े।
बार बार संसार-चक्र में न कभी आना पड़े।।
यम-नियम साधन बनाकर ज्ञान गंगा में नहा ले।
अपनी नेकी, पर-बदी को भूलकर सुखशान्ति पाले।।
ईश्वर और मृत्यु को रख याद निजकल्याण करले।
सत्य पथका पथिक बनकर तू स्वजीवन अमरकरले।।

— चन्द्रभूषण सिंह 'वेद विशारद', परास, गोण्डा।

वेद ज्योति-वक्तव्य

(फार्म-४, नियम ८)

१ – प्रकाशन स्थान — लखनऊ
२– प्रकाशन अवधि–मासिक, मास की पहली तिथि
३– मुद्रक, ४- प्रकाशक, ५-सम्पादक —
नाम– वीरेन्द्र शास्त्री, राष्ट्रीयता– भारतीय,
पता– सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६
६– स्वामित्व – विश्ववेदपरिषद् (रजि०) लखनऊ

मैं वीरेन्द्र शास्त्री, इस वक्तव्य द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरे ज्ञान और विश्वास में सत्य है

दिनाङ्क– ८–३–८३ (हस्त) वीरेन्द्र शास्त्री

सेवायाम् ग्राहक-संख्या १३२८
श्री पुस्तकालयाध्यक्ष
स्थान
डाकघर गुरुकुल कांगड़ी
जिला और प्रदेश ________
(हरिद्वार)

वेदों का नाद बजायेगा!

यह आर्यसमाज सकल जग में वेदों का नाद बजायेगा।
इस उजड़े आरत भारत को फिर स्वर्गसमान बनायेगा।
पतितों को पुनः उठायेगा बिछुड़ों को गले लगायेगा।
फिर प्यारी गैया मैया के सारे दुख दर्द मिटायेगा।।
शुद्धि का चक्र चलायेगा, संस्कृत-सम्मान बढ़ायेगा।
प्रिय पावन ओ३म् पताका को भूमंडल पर लहरायेगा।।

समाज-रोगों का निवारण

१. जन्म की जात-पाँत— नाम के आगे जाति-सूचक शब्द न लिखो। वर्ण गुणकर्मानुसार मानो, दलितों को उठाओ, विधर्मियों को शुद्ध करो, उन के साथ खान-पान, विवाह-सम्बन्ध करो।

२. आन्दोलन का अभाव— शराब-मांस, अवैदिक शासनके विरुद्ध सत्याग्रह-क्रान्ति करो। युवक वीर-दल और राज्यार्यसभा सङ्गठित करो।

३. साहित्य की कमी— सरल भाषा में साहित्य की रचना करो दैनिक पत्र और संस्कृत-पत्रिका को प्रकाशित करो। स्वाध्याय प्रतिदिन अवश्य करो।

४. सत्संग में अनुपस्थिति—सपरिवार जाइये।

५. स्वार्थ, द्वेष, कटु आलोचना–इन्हें दूर करो।

चण्डीगढ़ शाखासमाचार

माघ एवं फाल्गुन पूर्णिमा आयोजन समारोह पूर्वक क्रमशः सर्व श्री प्रेम बलराज सोबती और श्री सत्यपाल सिंह विज के गृह निवासों सैक्टर १८ और २३ में किये गये। आशुराम आर्य और डा० भारतीय जी ने क्रमशः अध्यात्म ज्ञान से शान्ति और धर्मवीर पं० लेखराम आर्य मुसाफिर के के बलिदान पर विचार प्रस्तुत किये। यज्ञशेष, जल-पान और दान आदि से आए सभ्य नर-नारियों का सत्कार किया गया।

इस अवसर पर श्री राजेन्द्र प्रसाद वर्मा, श्री प्रभुदयाल छाबड़ा और प्रेमचन्द मनचंदा तब सदस्य बने। स्वागत एवं धन्यवाद।

—आशुराम आर्य, मन्त्री परिषद्

ओ३म्

वेद-ज्योति

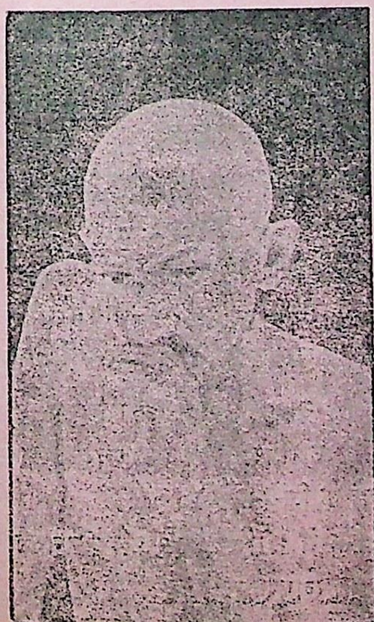
वर्ष ७ अंक १, सहस्य (पौष), तपः [माघ] २०३९
जनवरी १९८३ वेद-संवत १९६०८५३०८३ दयानन्दाब्द १५८

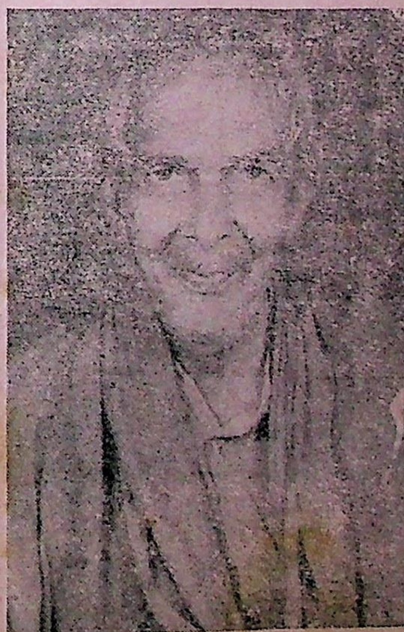
सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्रमुनि शास्त्री, एम०ए० काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्व-वेदपरिषद्
सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ. प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१

ऐतरेय ब्राह्मण, (अध्याय २४ से २७)

❀ विशेषांकों-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एकप्रति २) रुपये ❀

महात्मा गाँधी   स्वामी धर्मानन्द सरस्वती





जन्म २ अक्टूबर १८६९ बलिदान ३० जनवरी १९४८ जन्म १२ फरवरी १९०१ देहान्त ८ नवम्बर ७८ ई०

क ट प यादि सूत्र

(श्री भय्या साहेब पन्त, ५८ नारायण पेठ, पुणे)

[गताङ्क से आगे]

एको अश्वो वहति सप्तनमा [ऋ अस्य वामीय]

एक सूर्य पृथ्वीको ऊपर खींच रहा है।

सप्त = ७, नामा = ५०कोश अतः

७गुणित ५०गुणित२.५ = ८७५ मील

कितने कालमें ८७५ मील- यह बताना आवश्यक है। काल-माप के परिमाण हैं—

एक अहोरात्रमें साठ मुहूर्त, अतः मुहूर्त = ४८ मिनट

एक मुहूर्त में सठ लव, अतः लव = ४८ सेकंड

अतः ८७५ मील ४८ सेकंड[लव]में, या १८.२ मील सेकंडमें। और हमें मालूम है कि सूर्यकी ओर पृथ्वी की घूमनेकी गति मध्यम प्रमाणसे १८.५मील, से. है।

अथवा पृथ्वी की दीर्घवलयिक कक्षा मानलें, तो पृथ्वी की कम से कम गति १८.२ मील सेकंड में।

अतः २य मन्त्रका २य चरण पृथ्वी-गति बताता है।

त्रि नाभिचक्रम् अजरम् अनर्वम्।

त्रि = ३, नाभि = ४०, चक्रम् = ६.२८३.

यह गुरुत्वाकर्षण बताता है अतः उसका माप—

८ हजार हस्त का कोश होता है। अतः हस्त = १९.८ इंच। इस से भी छोटा माप इसका साठवँ भाग = ०.३३ इंच। काल का पुराना माप ६०विलव का लव होता है अतः विलव = ४।५ सेकंड। गुरुत्वाकर्षण के शक्ति होने के कारण उसे प्रवेग या (काल)२ में गिना जाता है, अतः ऊपर दिये अङ्कोंका [सेकंड२]में रूपान्तर करनेकेलिए [५।४]२ ने गुणना होगा और इंचोंको फुटमें बदलनेके लिए १।१२ से।

क्योंकि ३गुणे४०गुणे६.२८३ गुणे०.३३गुणे १।१२ गुणे[५।४]२फुट या सेकंड२, अतः = ३२.३९फुट।

हमें ज्ञात है, जी = ३२.२८ फुट या सेकंड२। इस प्रकार तीसरा चरण गुरुत्वाकर्षण बतलाता है।

यत्र इमा विश्वा भुवना अधि तस्थुः।

इसमें यत्र = २१, विश्वा = ४४, भुवना = ४४ °

भुवना में न अन्त में आने से इसे ०अंश मानेंगे।

क्योंकि २१ गुणे ४४ गुणे ४४ ° अतः = ४०६५६ वर्गदैव अंश भूपृष्ठ के ऊपर हो सकते हैं।

यदि भू-पृष्ठ पूर्ण गोलाकार हो तो उसके ऊपर ४। रेडियस ° = १२.५६६ गुणे ५७.२८३ ° = ४१२३३ वर्गदैश अंश बैठेंगे। किन्तु हमारी भूमि पूर्ण गोलाकार नहीं है अतएव ऊपर दिये गये वर्गदैव अंश पूर्णतः बराबर हो सकते हैं।

अब हम अस्य वामीय सूक्त की अन्य ८वीं ऋचा पर कटपयादि सूत्रका उपयोगकरेंगे—

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे सा बीभत्सुः गर्भरासा निविद्धा नम स्वन्त इदुपवाकमीयुः

अर्थ— जभी माता ने मनचाही एकत्रित की हुई द्रव्य-रचना पूरी की तभी उसने उत्पत्तिकर्ता पिता की, चैतन्यशक्ति के लिए प्रार्थना की। अण्ड गर्भ-प्रक्रिया से ताडन की गई उस माता ने जोर से ऊर्जा शक्ति को बाहर फेंकने की इच्छा की तो वहाँ नमस्कार जैसे नीचे उतरने वाले प्रवाह और अनेक प्रकार की ध्वनियाँ होने लगीं।

तारोंमें अणुगर्भ प्रक्रिया कैसे हुई और सूर्य[तारा होने के कारण]के वातावरण में उद्रेकादि महत्व-पूर्ण घटनाओं की कैसी निर्मित हुई इन विषयों पर यह ऋचा प्रकाश डालती है।

जब संख्याशास्त्रका हम विचार करें, तो भज् = भागना, ऐसा अर्थ करते हैं। इसीलिये जो संख्यायें हमें मिल जायेंगी उन से दिये हुए परिणाम को भाग देना होगा। दूसरी पंक्ति गौण वाक्य होनेके कारण [उदात्त स्वरके अनुसार यही बात सत्य है],यह पंक्ति परिणाम देगी। यह परिणाम क्या है उसे प्रथम हम देख लेंगे और वापिस उस परिणाम का उपयोग इतर पंक्तियों के लिये करेंगे।

दूसरी पंक्ति में धीति = ६९ और मनसा = ७०५ ऐसे दो अंक महत्वपूर्ण हैं।

(क्रमशः)

प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता मौन होकर पढ़ते हैं, और होता वाणीसे पढ़ता है। वाणी-मन देव-मिथुन से मिथुन की उन्नति होती है। इसे समझनेवाला सन्तान और पशुओं से युक्त होता है।

चतुर्होतृ मन्त्र

अब होता चतुर्होतृ मन्त्रोंको उद्गाता के स्तोत्र के के साथ साथ पढ़ता है। वह इनमें देवों के यज्ञ का छिपा नाम प्रकाशित करता है। इसे समझने वाला प्रकाशित हो जाता है।

जिस वेदपाठी को यश न प्राप्त हो वह वन में जाकर दर्भ के सिरों को बाँधकर, एक दूसरे ब्राह्मणके दक्षिण और बैठकर ये मन्त्र जोर जोर से पढ़े।

खण्ड २४– अब उद्गाताके पीछे रखी गूलर की शाखा को छूते हैं, यह सोचकर कि हम अन्न-रस को छूरहे हैं, क्योंकि गूलर अन्न-रस है। जब देवों ने अन्न-रस बाँटा तो गूलर उत्पन्न हुआ। यह वर्ष में ३ बार फल देता है। गूलर-शाखाको लेना मानो अन्न-रस को लेना है।

वे वाणी को रोकते हैं। वाणी ही यज्ञ है। यज्ञ को रोकने से मानो दिन=स्वर्ग लोक को लेते हैं।

वे दिन-रातमें वाणी न बोलें। बोलने से दिन-रात को शत्रुओंके अधीन कर देंगे। केवल जब सूर्य अध-छिपा हो तब बोलें, तब वे शत्रु के लिए स्वल्प समय छोड़ेंगे, या सूर्यास्त-पश्चात् बोलें जिससे शत्रु अन्धकार-भागी होजाये। आहवनीय अग्निके चारों ओर घूमकर बोलते हैं और उससे सुख पाते हैं।

फिरइस मन्त्रको पढ़ते हैं--यदिह ऊनम् अकर्म यत् अत्यरीरिचाम, प्रजापतिं तत्पितरमप्येतु। प्रजापति को कमी-बढ़ती हानि नहीं पहुँचाती। वे कम-बढ़ के रक्षक हैं। यह समझ कर बोलने वाले की कमी-बढ़ती प्रजापति को पहुँचती है।

खण्ड २५--होता कहता है--'हे अध्वर्यु'। यही उचित आहावहै। अध्वर्यु कहता है—'ओ३म् होतः'। या 'तथा होतः'। इस प्रकार दसों पदों में प्रत्येक के पढ़नेसे पूर्व होता इसी आहाव को कहता है।

दस चतुर्होतृ मन्त्र ये हैं—

१. तेषां चित्तिः स्रुगासी३त्। (उनकी चेतना स्रुक् थी)
२. चित्तमाज्यमासी३त्। (चित्त घी था)
३. वाग्वेदिरासी३त्। (वाणी वेदि थी)
४. आधीतं बर्हिरासी३त्। (अध्ययन आसन था)
५. केतो अग्निरासी३त्। (समझ अग्नि थी)
६. विज्ञातमग्नीदासी३त्। (विज्ञान अग्नीध्र था)
७. प्राणो हविरासी३त्। (प्राण हवि था)
८. साम अध्वर्युरासी३त्। (साम अध्वर्यु था)
९. वाचस्पतिर्होता आसी३त्। (आचार्य होता था)
१०. मन उपवक्ता आसी३त्। (मन मैत्रावरुण था)

अब ग्रह संज्ञक मन्त्र यह है, उसे भी होता पढ़े–

ते वा एतं ग्रहमगृह्णत। वाचस्पते, विधे, नामन्, विधेम ते नाम। विधिस्त्वमस्माकं नाम्ना द्यां गच्छ यां देवाः प्रजापतिगृहपतय ऋद्धिमराध्नुवंस् तामृद्धि रात्स्यामः।

उन्होंने इस ग्रहको लिया और कहा– हे आचार्य हे विधि नाम, हम तेरा नाम लें। विधि तू हमारे नाम से द्यौ को जा। देव और प्रजापति-गृहपतियों ने जो समृद्धि पाई उसको हम प्राप्त करें।

प्रजापतेस्तनूः तथा ब्रह्मोद्य

प्रजापतिकी तनू नामक १२ मन्त्र २-२ पढ़ते हैं–

१-२. अन्नादा चान्नपत्नी च। [अग्नि-आदित्य]
३-४. भद्रा च कल्याणी च। [सोम और पशु]
५-६. अनिलया चापभया च [बेघर वायु, अभयमृत्यु]
७-८. अनाप्ता चनाप्या च [अप्राप्त पृथ्वी, अप्राप्य द्यौ]
९-१०. अनाधृष्या चाप्रतिधृष्या च। विद्युत्, सूर्य]
११-१२. अपूर्वा चाभ्रातृव्या च। [मन, संवत्सर]

इन १२ शक्तिवाले पूर्ण प्रजापति का १०वां दिन है।

ब्रह्मोद्य— अग्निः गृहपतिरिति हैक आहुः सोस्य लोकस्य गृहपतिः, वायुः गृहपतिरिति हैक आहुः सो अन्तरिक्षलोकस्य गृहपतिरसौ वै गृहपतिर्योऽसौ तपत्येष पतिर्ऋतवो गृहाः। येषां वै गृहपतिं देव विद्वात् गृहपतिर्भवति राध्नोति स गृहपती राध्नुवन्ति ते यजमानाः। येषां वा अपहतपाप्मानं देवं विद्वान्गृहपतिः भवत्यप स गृहपतिः पाप्मानं हते अप ते यजमानाः पाप्मानं घ्नते। अध्वर्यो अरात्स्मारात्स्म॥

अर्थ—कुछ अग्नि को,कुछ वायु को, कुछ सूर्यको गृहपति बताते हैं, किन्तु वे क्रमशः पृथ्वी, अन्तरिक्ष, ऋतुओं के हैं। जो उस पाप-निवारक देव गृहपति (ईश्वर) को जानते हैं वे यजमान पाप को दूर कर देते हैं। हे अध्वर्यु, हम सफल हुए! हम सफल हुए!

इति द्वादशाहयज्ञ विधिः समाप्ता ।

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की पाँचवीं पञ्चिका का चतुर्थ अध्याय समाप्त।

——❀——

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ५, अध्याय ५

अध्याय २५

अग्निहोत्र

खण्ड २६—(यजमान) सायं-प्रातः कहता है-आहवनीय अग्नि को लाकर रख, ऐसा होने पर यजमान दिन-रात में जो पुण्य करता है उसे सामने अभय स्थान में रखता है। आहवनीय अग्नि यज्ञ= स्वर्ग है। इसे समझने वाला यज्ञ-स्वर्ग को स्वर्ग में स्थापित कर देता है।

जो सब देवोंसे सम्बन्धित, १६ अवस्थावाले, पशु-प्रतिष्ठित अग्निहोत्र और उसके द्रव्य दूधको जानता है वह उससे समृद्ध होता है।

दूध की १६ अवस्थाएँ (देवताओं से सम्बन्ध)—

जो दूध गौ के अन्दर है वह रुद्र का, बछड़े द्वारा लिया गया वायु का, दुहा जा रहा अश्विओं का, दुहा जा चुका सोम का, आगपर रक्खा वरुण का, उबलता हुआ पूषा का, पात्र से बाहर आता मरुतों का, फेनवाला विश्वेदेवों का, मलाईवाला मित्र का, आँच से उतारा द्यावापृथिवी का, होमार्थ निकाला सविता का, होमार्थ लेजाया रहा विष्णु का, होम के पास पहुंचा बृहस्पति का, पहली आहुति अग्नि की, अन्तिम प्रजापति की और आहुत दूध इन्द्र का है। इसको जाननेवाला सफल होता है। १(२६)[१७६]

अग्निहोत्र के प्रायश्चित्त

प्रश्न— जिसकी अग्निहोत्र की, बछड़े के साथ, दुही जाती हुई गौ बैठ जाय तो क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर-- तब यह मन्त्र पढ़े—

यस्माद् भीता निषीदसि ततो नो अभयं कृधि।
पशून् नः सर्वान् गोपाय नमो रुद्राय मीळ्हुषे ॥

यह मन्त्र पढ़ते हुए उसे उठाए—

उदस्थाद् देवी अदितिः आयुर्यज्ञपतौ अधात्।
इन्द्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय च ॥

अनन्तर उसके थन और मुख पर जल छिड़के। अथवा उसको ब्राह्मण के लिए दे दे।

प्रश्न—यदि दुही जाती गौ रँभाए तो क्या करे?

उत्तर—यह यजमान को बताने के लिए रँभाती है। अतः शान्ति के लिए अन्न भी खिलाए। अन्न शान्ति है। और यह मन्त्र बोले—

सूयवसाद् भगवती हि भूयाः...(देखो ३६१)

प्रश्न— जिसकी गौ हिल जाय तो क्या करे?

उत्तर— यदि वहाँ दूध गिरादे तो उसे छूकर जपे

यदद्य दुग्धं पृथिवीमसृप्त यदोषधीरत्यसृपद् यदापः।
पयो गृहेषु पयो अघ्न्यायां पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयि

बचे दूध की आहुति दे। सब फैल गया हो तो दूसरी गौ दुहकर उसके दूध की आहुति दे। हवन श्रद्धा से करना चाहिए। जो यहसमझकर अग्निहोत्र करता है वह सभी वस्तुओंको पा लेता है। २

खण्ड २८— आदित्य इसका यूप, पृथिवी वेदि, औषधि बर्हि, वनस्पति ईँधन, जल प्रोक्षणी, दिशाएँ परिधि हैं। यदि अग्निहोत्रीकी कोई वस्तु खो जाय तो वह उसे परलोक में मिलेगी। इसे समझने वाले अग्निहोत्री को सब कुछ मिल जाता है।

अग्निहोत्री सायं आहुति से देवोंके लिए मनुष्यों की और प्रातः आहुति से मनुष्यों के लिए देवों की दक्षिणा देता है। रक्षा के बिना सोये मनुष्य देवों

के लिए दक्षिणा हैं देव मनकी बात जान लेते हैं।

सब कुछ देवोंको देकर जो लोक मिलता है वही इसे समझने वाले अग्निहोत्री को मिलता है।

सायं आहुति देकर आश्विन शस्त्र का आरम्भ और वाक् वाक् कहकर वाणी का प्रतिगार करता है, प्रातः आहुति देकर महाव्रत करता है जिस को प्राण अन्न अन्न कहकर स्वीकार करता है। इसे समझनेवाले अग्निहोत्री के लिए रात में आश्विन शस्त्र अग्नि द्वारा, और दिनमें महाव्रत आदित्यके द्वारा अनूकूल होता है।

इस अग्निहोत्रकी आहुतियाँ १ वर्षमें ७२० सायं और ७२० प्रातः (२-२ सायं-प्रातः) सब १४४० हैं उतनी ही गवामयन में यजुष्मती ईटें होती हैं। इस को समझने वाले अग्निहोत्री के चित्य अग्नि से मानो संवत्सर सत्र होता रहता है। ३(२८)[१८१]

अग्निहोत्र का समय

खण्ड २६- जतूकर्णका पौत्र, वतवत का पुत्र वृषशुष्म बोला— हम देवों से कहेंगे कि जो अग्निहोत्र उभयेद्यु (सूर्यास्त पर और दूसरे दिन सूर्योदय पर) किया जाता था वह अन्येद्यु (१ दिन=१ रात में सूर्य के अस्त और अनुदित रहते) किया जाता है।

कुमारी गन्धर्वगृहीता बोली—यही शिकायत हम पितरों से करेंगे।

अतः सूर्य के उदित रहते होम करना चाहिए।

अनुदितहोमी २४.वें वर्ष में गायत्री-दर्शन पाता है, उदितहोमी १२ वें में ही। उसके २ वर्ष १ वर्ष के बराबर रह जाते हैं उदितहोमी का १वर्ष में १ वर्ष पूरा रहता है। अतः उदित में होम करे।

वह निश्चय ही दिन-रात के तेज में हवन करता है जो अस्त होने पर शाम को और उदित होने पर प्रातः। अग्नि-तेज से रात और आदित्य-तेज से दिन तेजस्वी होते हैं जो ऐसा जान कर उदित में हवन करता है उसका होम दिन-रात के तेज में होता है। इसलिए उदित होनेपर होम करे। (२९)

खण्ड ३०— दिन-रात वर्ष के [illegible]

वह ऐसा है कि मानो १ पहिया से चले, और जो उदित में होम करे वह ऐसा है मानो २ पहियों से चले और शीघ्र मार्ग पूरा करले।

इस पर यह यज्ञ-गाथा गायी जाती है—

'यह सब भूत और भविष्य बृहद् और रथन्तर से युक्त है। धीर अग्नियोंका आधान कर उन दोनों से सोमयाग करे, दिनमें अन्य होम करे,रातमें अन्य।

रात रथन्तर वाली, दिन बृहत् वाला, अग्नि रथन्तर, सूर्य बृहत् है। ये देवता उसको तेजोमय सुख प्राप्त कराते हैं जो ऐसा समझ कर उदित में होम करता है। अतः उदित में होम करना चाहिए।

तब यह अन्य यज्ञगाथा गायी जाती है—

यथा कोई रथ में अन्य घोड़ा न जोड़कर एक ही घोड़े से जाये ऐसे ही वे बहुत मनुष्य जा रहे हैं जो सूर्योदय से पहले अग्निहोत्र करते हैं।

उसी प्रकृष्ट गतिवाले देव के पीछे यह सब जगत् चलता है, अनुचर है, यह अनुचरवाला देव है, ऐसा समझनेवाला अनुचर प्राप्त करता और इसके अनुचर होता है। यह (आदित्य) एक अतिथि है जो होम करते हुओं में आता है। इस पर एक गाथा है—

यदि मुझ जैसे अप्रसिद्ध ने बिसों (भसीड़ों) को चुराया हो तो वह निष्पापको पापी बना दे, पापीके पापको स्वीकार करे, शाम को आये अकेले अतिथि को घर से भूखा निकाल दे या होम न करके अपमान करे।

यह आदित्य एक अतिथि है जो होम-कर्ताओं में रहता है। इसी देवताका वह अपमान करता है जो समर्थ होकर अग्निहोत्र नहीं करता। उसको यहदेव इहलोक परलोक- दोनों से निकाल देता है।

अतः जो अग्निहोत्र के लिए समर्थ हो वह अवश्य करे। इसीसे कहतेहैं कि शामका अतिथि न लौटाए।

इसके ज्ञाता, नगरवासी जानश्रुतेय ने सनतन्तु के पौत्र उदितहोमी एकादशाक्ष-पुत्र से कहाथा कि हम सन्तानको देखकर जानलेंगे कि इसने जानकर होम किया अथवा बेसमझे। उसकी पूरे राष्ट्र के समान भरपूर सन्तान थी। सूर्योदय पर होम करनेवाले के भी भरे राष्ट्र के समान सन्तान होती है।

खण्ड ३१— उदय होता हुआ सूर्य आह्वनीय से किरणों को मिला देता है। जो अनुदित में होम करना है वह मानो न पैदा हुए कुमार या बछड़े को दूध पिलाना और उदितमें होम मानो उत्पन्नको दूध पिलाना। इस सूर्य के लिए आहुति इहलोक परलोक दोनों में अन्नाद्य हो जाती है।

अनुदितमें होम, कर न फैलाये मनुष्य या हाथीके आगे भोजन फेंकना है। उदित में होम करना फैलाये करमें भोजन देना है। मानो इसी करसे सूर्य उड़ाकर उसे ऊपर ले जाकर सुख में रखता है जो ऐसा जान कर होम करता है। अतः सूर्य के उदय होने पर होम करना चाहिए।

उदय होता हुआ सूर्य सब प्राणियों को प्राण देता है अतः उसे प्राण कहते हैं। इसके ज्ञाताकी आहुति प्राण में ही पड़ती है। अतः उदित में होम करे।

जो सायं सूर्यास्त पर और प्रातः सूर्योदयपर होम करता है वह सत्य बोलता है। सायंका मन्त्र यह है-

भूर्भुवः स्वः। ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः।

प्रातः का मन्त्र यह है—

भूर्भुवः स्वः। ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः।

सत्य बोलते हुए उसकी सत्य में आहुति होती है जो इसे समझता हुआ उदित में होम करता है।

इससे सम्बन्धित यह यज्ञगाथा गायी जाती है—

'जो सूर्योदय से पहले अग्निहोत्र करते हैं वे दिन में कहने योग्य को बिना दिन निकले बोलते हुए प्रातः प्रातः असत्य बोलते हैं। मन्त्र 'सूर्यो ज्योतिः' है किन्तु इनके पास उस समय ज्योति नहीं होती। ६

प्रजापति का तप

खंड ३२– प्रजापति ने चाहा कि प्रजा उत्पन्न करूँ बहुत हो जाऊँ। उसने तप किया। तप करके पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ को बनाया। उन लोकों को तपाया। उन तपे हुओं से ३ ज्योतियाँ उत्पन्न हुईं—पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु, द्यौ से सूर्य। उन ज्योतियों को[ऋषियों में] तपाया। उनसे ३ [प्रकार की रचना-वाले] वेद उत्पन्न हुए— अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से साम वेद। उसने इन वेदों को तपाया। क्रमशः इनसे ३ शुक्र उत्पन्न हुए– भूः, भुवः, स्वः। उसने इन ३ को तपाया। उससे ३ अक्षर उत्पन्न हुए– अ, उ, म्। उसने इन तीनों को जोड़ दिया। इससे ओ३म् हुआ। अतः होता ओ३म् कहता है। ओम् स्वर्ग लोक है। ओम् वह है जो तपता है।

प्रजापति ने यज्ञका विस्तार कर देवों को दिया। उन्होंने इसका विस्तार किया। उन दोनों ने यज्ञको जुटाया, यज्ञ किया। ऋग्वेद से होता का, यजुर्वेद से अध्वर्यु का साम वेद से उद्गाता का और इन तीन विद्याओं के शुक्र से ब्रह्मा का कार्य किया।

देवों ने प्रजापति से पूछा कि यदि हमारे यज्ञ में किसी वेद में ज्ञात या अज्ञात भूल हो जाय तो क्या प्रायश्चित्त है? प्रजापतिने उत्तर दिया— ऋगवेद की भूल में भूः से गार्हपत्य में, यजुर्वेद की भूल में भुवः से अग्नीध्रीय में और हविर्यज्ञों में अन्वाहार्य-पचन में, सामवेद की भूल में स्वः से आहवनीय में, अज्ञात वा आपत्ति की भूल में भूः-भुवः-स्वः तीनों से आहवनीय में ही आहुति दो।

ये ३ व्याहृतियाँ वेदों के अन्तर्बन्धन साधन हैं। जैसे आत्मा से आत्मा को, पर्व से पर्व को, सरेस से चर्म या अन्य किसी वस्तु के टुकड़ों को जोड़ते हैं। ये व्याहृतियाँ सबके लिए प्रायश्चित्त हैं। इनसे ही प्रायश्चित्त करना चाहिए। ७ (३२) [१८५]

ब्रह्मा का कर्म

खण्ड ३३— ब्रह्मवादी पूछते हैं—ब्रह्मा का कर्म किससे किया जाता है? उत्तर है कि त्रयी विद्यासे।

यह जो पवित्र करता है, यज्ञ है, जिसके वाणी-मन २ मार्ग हैं। वाणी त्रयी विद्यासे एक भागका संस्कार करते हैं और मनसे ही ब्रह्मा संस्कार करता है।

कोई ब्रह्मा प्रातरनुवाकको तैयारी कर स्तोमभागों को जप कर, बोलते रहते हैं। ऐसे एक को देख कर ब्राह्मण बोला— इसने यज्ञ का आधा भाग लुप्त कर दिया। जैसे १ पैर का मनुष्य या रथ गिर पड़ता है ऐसे ही वह यज्ञ और यजमान गिर जाता है। अतः उपांशु-अन्तर्याम से लेकर होम-समाप्ति तक, पवमान स्तोत्र के बाद अन्त की ऋचा तक, शस्त्रसहित

स्तोत्र पढ़ते समय वषट्कार तक ब्रह्मा मौन रहे। जैसे २ पैरों वाला मनुष्य और २ पहियों वाला रथ नहीं गिरता वैसे ही मन-वाणी वाला यज्ञ और यजमान पतित नहीं होते। ८ (३३) [१८६]

खंड ३४. अध्वर्यु को ग्रहोंके थामने, प्रचार करने तथा आहुति देने के लिए, उद्गाता को गायन के लिए, होता को पुरोनुवाक्या-शस्त्र-याज्या को पढ़ने के लिए दक्षिणाएँ दी जाती हैं, तो ब्रह्मा को किस काम के लिए दी जाये? क्या बिना श्रम के ही उसे दक्षिणा दी जाय?

इसका उत्तर यह है कि वह यज्ञ का चिकित्सक है, यज्ञ की चिकित्सा करके दक्षिणा लेता है। वह अति अधिक छन्दों के रस [व्याहृति-प्रणव] से ऋत्विज का काम करता है। वह आधे का भागी दूसरे ऋत्विजोंका अग्रणी होता है। आधा कार्य उस का और आधा अन्य ऋत्विजों का होता है।

अतः यज्ञ में कोई त्रुटि हो तो उससे ही निवेदन करते हैं, वही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त कराता है।

स्तोत्र-पाठ का संकेत मिलने पर प्रस्तोता कहता है-

ब्रह्मन्, स्तोष्यामः प्रशास्तः।

इस पर वह अनुमति देता है—

भूः। इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्। [प्रातः सवन में]
भुवः " " माध्यन्दिन "
स्वः " " ३ य "
भूर्भुवः स्वः " " उक्थ्य वा अतिरात्र में

इन्द्रवन्तः स्तुध्वम् का अर्थ है कि यज्ञ [सोमयाग] इन्द्र का है। वह यज्ञका देवता है। इन्द्रवन्तः स्तुध्वम् कह कर वह उद्गीथ को इन्द्र वाला करता है और कहता है कि इन्द्र से अलग मत होओ। इन्द्रवाले होकर स्तुति करो। ९ (३४) [१८७]

वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय २५ (पंचम पञ्चिका का पञ्चम अध्याय) समाप्त हुआ। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ६ अध्याय १

सोम को निचोड़ना

खण्ड १-- देवता सर्व-चरु में सत्र करने बैठे। वे पाप-फल को दूर न कर सके। उनसे कद्रु स्त्री का पुत्र मन्त्र-द्रष्टा सर्प [संचारी] अर्बुद ऋषि बोला- 'होतासे की जानेवाली एक क्रिया छूटगयी, उसे कर दूं तब तुम पाप-फल से छूट जाओगे।' वे बोले-- अच्छा। वह प्रत्येक मध्यन्दिन सवन में आया और ग्रावाओं का स्तवन [गुण-वर्णन] किया। अतः उस अनुकरण पर मध्यन्दिनमें ग्रावस्तुति करतेहैं। जिस मार्ग से वह आता था उसको अर्बुदोदासर्पणी पगडंडी कहते हैं।

सोम राजा ने उन्हें मदयुक्त कर दिया। वे बोले- यह विषैला हमारे सोम को देखता है। इसकी आँखों

फिर भी सोम के मद-युक्त होने पर वे बोले-- यह अपने [चुने] मन्त्रसे ग्रावस्तुति करता है। इसमें अन्य ऋचाएँ मिला दें -तदनुसार उस की ऋचा में अन्य ऋचा को मिलाया, तब सोमने मद-युक्त नहीं किया अतः इसकी ऋचा में शान्ति के लिए दूसरी ऋचाओं को मिला देते हैं।

देवों ने पाप दूर किया तत्पश्चात् अर्बुद के सब साथियों ने पाप दूर किया। वे पुरानी जीर्ण त्वचा को छोड़कर नयी त्वचा से युक्त हो गये।

ऐसा जाननेवाले पापको दूर करते हैं। १[१८८]

खंड २- प्रश्न- कितनी ऋचाओं से सोमस्तवन करे?

उत्तर--१०० से। पुरुष शतायु, शतवीर्य, शतेन्द्रिय है अतः इनसे यजमान को दीर्घायु करता है।

अथवा ३३ से। क्योंकि उस अर्बुद ने ३३ देवों का पाप दूर किया था।

ग्राव-स्तुति

अथवा अपरिमित ऋचाएँ बोले। क्योंकि प्रजापति और उसकी यह ग्रावस्तुति क्रिया अपरिमित है। उसकी सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं जो अपरिमित ऋचाओं से स्तवन करता है।

इस का ज्ञाता सब कामनाओं को पूर्ण करता है।

प्रश्न— मन्त्र कैसे बोले ? अक्षर-अक्षर, या ४-४ अक्षर, या चरण-चरण, या आधी-आधी ऋचा, या पूरी ऋचा ?

उत्तर—पूरी ऋचा और पूरे चरण पढ़े नहीं जाते, अक्षरशः या ४-४ अक्षर पढ़ें तो छन्द लुप्त हो जायें और अनेक अक्षर छूट जायें। अतः प्रतिष्ठा के लिए आधी-आधी ही ऋचा बोले। मनुष्य दोपाया तथा पशु चौपाया है। होता यजमान को चौपायों के ऊपर प्रतिष्ठित करता है। अतः आधी-आधी ऋचा पढ़े।

प्रश्न— मध्यन्दिन सवन में की गयी ग्रावस्तुति दूसरे २ सवनों में कैसे मान ली जाती है ?

उत्तर— गायत्री से स्तुति प्रातः सवन की, और जगती छन्दसे ३य सवन की स्तुति हो जाती है क्यों कि गायत्री प्रातः का तथा जगती सायंका छन्द है। ऐसे ज्ञाताकी मध्यन्दिन ग्रावस्तुति सब सवनों में हुई।

प्रश्न— जब अध्वर्यु ही अन्य ऋत्विजों को अन्य सभी कार्योंमें प्रैष देता है तो इसमें क्यों नहीं देता?

उत्तर— क्योंकि ग्रावस्तुति का सम्बन्ध मन से है, मन को आदेश नहीं होता, अतः इसमें आदेश नहीं।

सुब्रह्मण्या

खण्ड ३— वाणी ही सुब्रह्मण्या है, सोम राजा उस का बछड़ा है। सोम राजा को खरीदने पर उसे बुलाते हैं जैसे किसी गौको बुलायें। उस वत्स से सब कामनाएँ दुही जाती हैं। जो इसे समझता है वाणी उसकी सभी कामनाएँ पूरी कर देती हैं।

प्रश्न— सुब्रह्मण्या के नाम का कारण क्या है ?

उत्तर —वाणी ही कारण है क्योंकि यह अच्छी वेद मन्त्रों की वाणी है।

प्रश्न—यह ऋत्विज पुरुष है। उसे स्त्री के समान क्यों बुलाते हैं ?

उत्तर— क्योंकि वाणी स्त्रीलिङ्ग है इसलिए।

प्रश्न— जब अन्य ऋत्विज ऋत्विज-कर्म वेदि के भीतर करते हैं और सुब्रह्मण्या वेदि के बाहर तो वह कर्म वेदि के भीतर किया कैसे समझा जाता है ?

उत्तर— वेदि में एक उत्कर होता है जिसमें होकर कूड़ा आदि बाहर फेंका जाता है वहाँ खड़े होकर किया आह्वान वेदि-मध्य किया ही समझा जाता है।

प्रश्न– वहाँ खड़े होकर सुब्रह्मण्या क्यों पढ़ते हैं ?

उत्तर—ऋषियों ने एक सत्र किया था। वहाँ पर सबसे वृद्ध से वे बोले—सुब्रह्मण्या को बुला। हममें तू देवों के निकटतम होकर बुलायेगा। अतः सबसे वृद्ध को सुब्रह्मण्या बनाते हैं। वह सब वेदि को प्रसन्न करता है।

प्रश्न— उसको दक्षिणा में बैल क्यों देते हैं ?

उत्तर— बैल नर होता है, सुब्रह्मण्या स्त्रीलिङ्ग है, इस प्रकार जोड़ा हो जाता है।

आग्नीध्र के कर्तव्य

आग्नीध्र ऋत्विज पात्नीवत ग्रह के लिए याज्य मन्त्र धीरे धीरे पढ़कर यज्ञ करता है। पात्नीवत रेतः है जिसका सिंचन धीरे धीरे होता है। वह अनुवषट्कार नहीं करता क्योंकि यह संस्था (विराम) है, और रेतः-सिंचन में विराम न होना चाहिए।

वह आग्नीध्र नेष्टा के पास बैठकर खाता है। नेष्टा ऋत्विज पत्नी का आजन [लानेवाला] है। अग्नि पत्नियों में सन्तानोत्पत्ति के लिए रेतः धारण कराता है। यह समझनेवाला अग्नि से ही सन्तान के जन्मके लिए पत्नीमें रेतः-स्थापन करता है तथा प्रजा और पशुओं से युक्त होता है।

दक्षिणा के पश्चात् सुब्रह्मण्या समाप्त होजाती है। वह वाणी ही है, दक्षिणा अन्न है। इस प्रकार अन्त में यज्ञको अन्नाद्य और वाणी में स्थापित करते हैं॥

३ (१६०)

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय २६

ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ६, अध्याय २

मैत्रावरुण का शस्त्र

खण्ड ४—देवों ने यज्ञ का विस्तार किया। तब असुर आये कि इसमें विघ्न डालें। उन्होंने दक्षिण की ओर से आक्रमण किया। इसको यज्ञ की सब से दुर्बल दिशा समझा। देवोंने सावधान होकर मित्रावरुण को दक्षिण की ओर नियत कर दिया और इन्हीं के द्वारा प्रातःसवन में असुरों को भगा दिया। इसी प्रकार यजमान भी भगा देते हैं। इसलिए मैत्रावरुण ऋत्विज प्रातः-सवन में मैत्रावरुण शस्त्र को पढ़ता है।

ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र

असुरों ने दक्षिण ओर हार कर यज्ञ के मध्य में आक्रमण किया। देवोंने इन्द्रके द्वारा उनको हटाया इसलिए ब्राह्मणाच्छंसी प्रातःसवन में इन्द्रशस्त्र पढ़ता है।

अच्छावाक् शस्त्र

बीच से हारकर असुरों ने यज्ञ के उत्तरी भाग पर आक्रमण किया। देवों ने सजग होकर इन्द्र और अग्नि को उत्तर भाग में नियत किया। उन्होंने इन्द्राग्नि की सहायता से प्रातःसवनमें राक्षसोंको भगा दिया। इसी प्रकार यजमान भी इन्द्राग्नि की सहायता से उत्तर की ओर से प्रातः सवन में राक्षसों को भगा देते हैं। इसलिए अच्छावाक् इन्द्राग्नि शस्त्र को प्रातः सवन में पढ़ता है।

असुर उत्तर की ओर हारकर एक पंक्ति में पूर्व की ओर आ डटे। देवों ने सजग होकर अग्नि को प्रातः सवन के पूर्व की ओर नियत किया और उसकी सहायतासे असुरों को निकाल दिया। इसी प्रकार यजमान भी प्रातः सवन में पूर्व की ओर अग्नि की सहायता से ... का होता है। जो इस रहस्य को समझता है, उस का पाप छूट जाता है।

ये असुर पूर्व से हार कर पश्चिम की ओर यज्ञ पर आक्रमण करने लगे। देव जग उठे और स्वयं विश्वेदेवों को पश्चिम की ओर तीसरे सवन में नियत किया। विश्वेदेवों की मदद से उन्होंने पश्चिम की ओर से तीसरे सवन में असुरों को भगा दिया। यजमान भी विश्वेदेवों की मदद से तीसरे सवन से पश्चिम की ओर से असुरों को निकाल देते हैं। इसलिए तीसरा सवन विश्वेदेवों का है। जो इस रहस्य को समझता है उसका पाप छूट जाता है।

इस प्रकार किये यज्ञसे देवों ने असुरों को हरा दिया और पापों से बच कर सुख को प्राप्त किया। इसे समझने वाला यज्ञ करके, शत्रुको हरा कर, पाप से बचता और सुख पाता है। १(४)[१९१]

खण्ड ५— प्रातः सवन में स्तोत्रिय तृच को उसका अनुरूप करते हैं। इस प्रकार पहले दिन के अनुसार अगले दिन का कृत्य करते हैं। मध्यन्दिन में ऐसा नहीं करते। क्योंकि पृष्ठ स्तोत्र श्री हैं अतः उनके लिए मध्य वह स्थान नहीं कि उनको स्तोत्रिय का अनुरूप करें। ऐसे ही तीसरे सवन में भी एक स्तोत्रिय को दूसरे का अनुरूप नहीं करते। २(५)[१९२]

होतृ-सहायकों के मन्त्र

खण्ड ३— अब आरम्भणीया ऋचाएँ बताते हैं—

१०८९— ऋजुनीती नो वरुणो... (ऋ १.९०.१)

इससे मैत्रावरुण शस्त्र का आरम्भ होता है। इसके दूसरे चरण में—मित्रो नयतु विद्वान् है जो मैत्रावरुण को होत्रकों का नेता बताने से प्रणेतृमती है।

१०९०—इन्द्रं वो विश्वतस्परि... (ऋ १.७.१०)

यह ब्राह्मणाच्छंसि शस्त्र का आरम्भ होता है। २य ... में आये 'हवामहे जनेभ्यः' से इन्द्र को प्रतिदिन

१०९१— यत् सोम आसुते नर (ऋ० ७.६४.१०)

यह अच्छावाक् का मन्त्र है। इसमें 'इन्द्राग्नी अजोहुवुः' (इन्द्राग्नी को उन्होंने बुलाया) ऐसा पद आया है। इस प्रकार इन्द्राग्नी को उन्होंने रोज बुलाया। जब अच्छावाक् रोज इसको बुलाता है तो कोई और इन्द्राग्नी को ले नहीं जा सकता।

यह ऋचायें नावें हैं जो स्वर्गलोक (सुख) के किनारे तक पहुंचा देती हैं। इनसे यजमान इन लोकों को तर के स्वर्ग लोक को पहुंच जाते हैं। (३)

खण्ड ७— अब इन के अन्त के मन्त्र कहते हैं—

१०९२— ते स्याम देव वरुण ...(ऋ० ७.६६.९)

यह मैत्रावरुण का परिधानीय या अन्त का मन्त्र है इसमें एक पद आया है 'इषं स्वश्च धीमहि' (हम अन्न और प्रकाश धारण करें)। इससे वे दोनों लोकों को प्राप्त करते है। अन्न से यह लोक और प्रकाश (स्वः) से दूसरा लोक मिलता है।

'व्यन्तरिक्षमतिरद्' [ऋ० ८.१४.७-९]

यह तीन ऋचायें विवृत हैं। इनसे ब्राह्मणाच्छंसी स्वर्ग के द्वार खोल देता है।

१०९३— प्रत्यंतरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
इन्द्रो यदभिनद्वलम् (ऋ० ८.१४.७)

(इन्द्र ने सोम के मद में अन्तरिक्ष को खोल दिया और प्रकाश आने दिया) इससे दीक्षितों का उत्साह प्रकट होता है। इस ऋचा को बलवती कहते हैं।

१०९४— उद्गा आजदंगिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा-सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्। [ऋ० ८.१४.८]

(किरणों को निकाल लाया और अंगिराओं के लिए उनको जो अब तक छिपी थीं प्रकट कर दिया। और वल को निकाल कर फेंक दिया)। इस मन्त्र में अंगिराओं के लिए भेंट का उल्लेख है।

१०९५— 'इन्द्रेण रोचना दिवि' से स्वर्गलोक की ओर संकेत है।

दृढ्हानि दृंहि तानि च। स्थिराणि न पराणुदे।
[ऋ० ८.१४.९]

(इन्द्र ने स्वर्ग के प्रकाशों को दृढ़ किया है। वह स्थिरों को नहीं फेंकता है)।

इस मन्त्र से यजमान सदा स्वर्ग [सुखस्थान] को

१०९६— आहं सरस्वती वतोः (ऋ० ८.३८.१०)

यह अच्छावाक् मन्त्र है, वाक् ही सरस्वती है। 'वतोः' द्विवचन में है 'इन्द्र और अग्नि का'। 'इन्द्राग्न्योरवो वृणे'

यह जो वाक् है वह इन्द्र और अग्नि का प्रिय धाम है। इस प्रियधाम से समृद्धि को प्राप्त होता है। जो इस रहस्य को समझता है वह अपने प्रियधाम के द्वारा समृद्ध होता है। [४]

होत्रक-परिधानीय मन्त्र

खण्ड ८— होत्रकों के प्रातः-मध्य-सवन के परिधानीय (अन्तके) मन्त्र २ तरह के होते हैं—अहीन और एकाहिक। मैत्रावरुण एकाहिक से अन्त करते हैं जिस से यजमान इस लोक से च्युत न हो, और अच्छावाक् अहीनों से, सुखमय लोक को पाने के लिए। ब्राह्मणाच्छंसी दोनों से अन्त करता है, जिससे वह दोनों लोकोंको जोड़ता और उनमें, मैत्रावरुण-अच्छावाक् को, अहीन-एकाहिकों को, अग्निष्टोम-संवत्सर को थामे हुए चलता है।

३ य सवन में होत्रकों के परिधानीय मन्त्र एकाहिक ही होते हैं क्योंकि वह प्रतिष्ठा है। अन्त में होता यज्ञ को प्रतिष्ठावान् करता है।

होता प्रातः-सवन में ऋचाओं को लगातार पढ़े। १ या २ स्तोम अधिक न पढ़े, जैसे कि किसी भूखे-प्यासे को तत्काल खाना-पानी दे दें। यह विचार कर कि मैं देवोंको जल्दी भोजन दे दूंगा, वह लोकमें प्रतिष्ठित हो जाता है।

पिछले २ सवनों में अपरिमित सुख पाने के लिये अपरिमित ऋचाएँ पढ़े। यदि चाहे तो होत्रकों द्वारा पहले दिन पढ़ी ऋचाएँ पढ़े, या होत्रक होता द्वारा पढ़ी ऋचाएँ पढ़ें, क्योंकि होता प्राण और होत्रक अङ्ग हैं। एक ही प्राण का अङ्गों में संचार है।

३य सवनों में होत्रकों द्वारा पढ़े सूक्तों की अन्तिम ऋचाओंसे होता समाप्त करता है, क्योंकि वह आत्मा और होत्रक अङ्ग हैं जिनके अन्त समान होते हैं। अतः ३य सवन में होत्रकों की ऋचाएँ समान होती हैं॥ ५

शाखाओं के समाचार

❀ चंडीगढ़ शाखा ❀

विश्ववेद परिषद् चण्डीगढ़ शाखा की ओर से दि० ३०-१२-८२ को पौष पूर्णमासेष्टि यज्ञ एवं वेद-गोष्ठी का आयोजन डा० भवानीलाल भारतीय के निवास पर सम्पन्न हुआ। महर्षि दयानन्द-पीठ के शोध छात्र पं० वेद पाल शास्त्री ने शतपथ ब्राह्मण पर अपने विचार प्रस्तुत किये। यज्ञशेष से सबका सत्कार किया गया। इस अवसर पर चौ० रिसाल सिंह जी २०) प्रदान कर परिषद के सदस्य बने। धन्यवाद !

❀ "सरिता" की वाक् बन्दी हो ❀

जिसने गायत्री महामन्त्र पर आक्रमण कर करोड़ों भारतीयों को हृदय-आघात पहुंचाया है। दि. ३०-१२-८२ को विश्ववेद परिषद की सार्वजनिक सभा में श्री आशुराम आर्य मन्त्री परिषद् ने 'सरिता' मासिक पत्रिका के दिसम्बर १९८२ के अंकका उद्धरण देते हुए कहा कि इस में "गायत्री मन्त्र की झूठी महिमा" के शीर्षक से लेख में अनेक अनाप शनाप बातें लिख कर जो लगभग २अरब वर्षोंसे प्रचलित संसारमें पूजा उपासना और जप के रूप में कोटिशः लोगों के हृदय में श्रद्धा से आसन जमाये हुए, असंख्य वैदिक साहित्य के सम्पूर्ण ग्रन्थों में अत्यन्त आदर के साथ लिखा आ रहा है, पवित्र वेदके उस श्रेष्ठतम गुरुमन्त्र गायत्री के जाप पर खिलवाड़ करते हुए लेखक ने जहाँ इसको अशुद्ध बतलाने का दुःसाहस किया है वहाँ इसकी महिमा को पौराणिक गप्प मात्र लिखकर देश विदेश में बसे हुए करोड़ों आर्य हिन्दुओं के हृदयको आघात पहुंचाया है।

अतः भारत के सम्पूर्ण धार्मिक सभाओं सनातन धर्म, विश्व हिन्दू परिषद्, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,आर्य प्रादेशिक सभा आदि आदरणीय सभी शंकराचार्यों को इसपर पूरा ध्यान देना चाहिए, वहाँ भारत सरकार को भी इस प्रकार के हृदय-विदारक लेखोंके विरुद्ध कठोर कदम उठाना चाहिए। प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित होकर भारत सरकार और सम्बन्धित धर्मसभाओं को भेजा जाये।

—आशुराम आर्य, मन्त्री वि. वे. परिषद् चण्डीगढ़

हरिद्वार समाचार

❀ हरिद्वार शाखा ❀

विश्व वेदपरिषद् की पंचपुरी शाखा का पौर्णमास यज्ञ एवं गोष्ठी २९.१२.८२को पातंजल योगधाममें हुई जिसके आतिथेय डाक्टर जगतराम थे। वेद में आध्यात्मिकता का स्रोत विषयपर मैंने विचार प्रस्तुत किया।

श्री कल्याण स्वरूप — ईश्वर प्रार्थनोपासना के मन्त्रों में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

आचार्य प्रियव्रत— 'कस्मै' निश्चयात्मक है, प्रश्नात्मक नहीं। उसके पश्चात् डा. जगतराम ने कहा कि ईश्वर की सत्ता मानना ही भक्ति है।

ब्रह्मचारी बाबूराम—योगस्थ होना ही भक्ति है आचार्य प्रियव्रत सब वृत्तियों के निरोध होने पर जड़ हो जायेंगे। फिर दुनिया में क्या होगा ? पापमय वृत्तियों का निरोध अपेक्षित है, न कि सारी वृत्तियों का। स्वामी सत्यानन्द— हम सब सदाचारपूर्वक रहें और भक्ति पीछे करें। प्रो. मनुदेव जी— यदि भक्ति से सेवा का अर्थ है तो वह किस की हो?

गोष्ठी के अध्यक्ष डा. रामनाथ वेदालंकार— वेद में भक्ति की अविरल धारा बही है। महर्षि दयानन्द सरस्वतीने वेदभाष्यके पूर्व आर्याभिविनय लिखी। उपासना ही भक्ति का पर्याय है। स्तुति में ईश्वर के गुणों का वर्णन होता है, फिर उन जैसा बनने की प्रार्थना करना। स्तुति में कर्म और भक्ति दोनों आते हैं। भक्ति के द्वारा शक्ति का संचय होता है। जीवन में कर्म और ज्ञान दोनों की आवश्यकता है। गीता का कर्मयोग एक प्रकार से ईशोपनिषद का भाष्य है। मध्यकाल की भक्ति का स्वरूप अधःपतन का कारण बना। सोम के मन्त्र भक्तिपरक है। सामवेद में भक्तिके रसको तीव्र एवं मधु बताया है। भक्त को सांसारिक युद्ध में कोई परास्त नहीं कर सकता है। इसलिये संध्या में ईश्वर से बल माँगते हैं। वेद में कहा है कि मैं तुम हो जाऊँ और तुम मैं हो जाओ यह दार्शनिक भाषा नही, हृदय की भाषा है। भक्ति के बिना हमारा गुजारा नहीं।

—डा० रामेश्वर दयालु गुप्त, मन्त्री

वर्ष ७ अङ्क १, जनवरी १९८३ ई०

वेदज्योति

पंजीकृतसंख्या ६२०१, डाक



ओ३म्

वर्ष-समाप्ति की सूचना

प्रिय महोदय, सादर नमस्ते !

वेदज्योतिकी आपकी ग्राहकता का वर्ष इस अङ्क के साथ समाप्त हो गया । अतः निवेदन है कि नये वर्षका शुल्क बीस रुपये भेजने का कष्ट करें । आप की सुविधा के लिए धनादेश-पत्र गताङ्क में संलग्न किया । उत्तर न आनेपर अगला अङ्क २० रुपयोंकी वी. पी. से भेजा जायगा । आप उसे अवश्य ले लें ।

आगामी योजना

ऐतरेय ब्राह्मण के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के पश्चात् सरल भाषामें अष्टाध्यायी, निघण्टु-निरुक्त, महर्षि दयानन्दकृत चतुर्वेद-भाष्य-भूमिका [श्री करपात्री के पारिजात के मुँहतोड़ उत्तरके साथ], सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या आदि प्रकाशित करने की योजना है । आप अपनी सम्मति कृपया अवश्य प्रदान करें ।

यदि आप किसी कारण ग्राहक न रहना चाहें तो भी तत्काल सूचना देने की कृपा अवश्य करें, जिससे वी. पी. न भेजी जाय । सूचना देने में आपके पन्द्रह पैसे व्यय तो होंगे किन्तु इससे परिषद् के वी. पी. के तीन रुपये बच जायेंगे । अतः कृपया उत्तर अवश्य दें ।

निवेदक:— वीरेन्द्रमुनि शास्त्री, एम. ए.,
मन्त्री, विश्व वेदपरिषद्, प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७, महानगर, लखनऊ (उ. प्र.) २२६००६

वेद, संस्कृत की परीक्षाएँ

वसन्त पञ्चमी के पश्चात् होने वाली परीक्षाएँ आगामी १३ फरवरी १९८३ को होंगी; इनमें सभी को सम्मिलित होना चाहिए । शुल्क केवल ५) रुपये । परीक्षा उत्तीर्ण कर वेद-विशारद की उपाधि लीजिए ।

—ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री,
मन्त्री, वि०वे०प०, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६

लखनऊ-समाचार

❀ पूर्णिमा-यज्ञ और वेद-संगोष्ठी ❀

माघ पूर्णिमा २८ जनवरी १९८३ को सायं ५ बजे से पौर्णमासेष्टियज्ञ और वेद-संगोष्ठी वेद-सदन, सी ८१७ महानगर; लखनऊ में होगी । कृपया सभी सदस्य इष्ट मित्रों सहित सपरिवार अवश्य सम्मिलित हों ।

गोष्ठी के उपरान्त अधिकारियों का निर्वाचन और जलपान होगा ।

—रामदुलारे शर्मा, (वेदप्रिय दीक्षित)
मन्त्री, लखनऊ शाखा विश्ववेद परिषद् ।

सेवायाम्
ग्राहकसंख्या 822
श्री
स्थान
डाकघर
जिला
प्रदेश

श्री पुस्तकालय
P.O. गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार
(सहारनपुर)

वेद-ज्योति वर्ष ७, अंक ३
तपस्य (द्वितीय फाल्गुन) २०३९ वि० मार्च १९८३ ई०
सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ६ फोन ८४१०१
[ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, अध्याय ३०-३२]
[वार्षिक मूल्य २०) एक प्रति २) । होली पर्व पद्धति २५ पैसा, २०) सैकड़ा]

होली पर्व पद्धति

होली का पर्व प्राचीन वैदिक नव सस्य [अन्न] की इष्टि यज्ञ है। हमें चाहिए कि इस पर्व पर वेदानुसार फाल्गुन पूर्णिमा पर बड़ा यज्ञ करें। विधर्मियों को शुद्ध करें, दलितों का उद्धार करें, बिछुड़ों को गले लगाएँ। भद्दे स्वाँग, जहरीले रंग, गाली गलौच बन्द करें, इनके स्थान पर कपूर-केसर मिला ढाक (टेसू) के फूलों का रंग प्रयुक्त करें, वेद-मन्त्रों तथा सुन्दर कविताओंका पाठ करें। जहाँ होली जलाई जाती है वहाँ गाँव-मुहल्ले के निवासियों को तैयार कर के बड़े हवन किये जायँ जिन में गन्दी वस्तुएँ न छोड़ी जायँ; शुद्ध, सुगन्धित, हवन-सामग्री, नया अन्न, जौ, होला, गन्ना, गुड़, मेवा, घी; पकवान आदि की आहुतियाँ दी जायँ। ऐसे ही हवन मन्दिरों तथा घरों में भी हों।

होली-यज्ञ में निम्न लिखित मन्त्रों से, आरम्भ में ओ३म् और अन्त में स्वाहा बोल कर आहुतियां दें--

आहुतियों के ३१ मन्त्र

१. ओ३म् शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयाभिमातिषाहे।
शतं यो नः शरदो अजीजाद्
इन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा ।।स्वाहा।।

सैकड़ों शक्ति-पराक्रम-रक्षा वाले परमेश्वर की हम भक्ति करें। वही हमें सौ वर्ष तक जीवित रख सकता और सब पाप-दुःख-बुराइयों को दूर कर सकता है।

२. ये चत्वारःपथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति
तेषां यो अज्यानिमजीजिमावहः
तस्मै नो देवाः परि दत्तेह सर्वे ।।स्वाहा।।

विद्वानों के चलनेयोग्य जो ४ मार्ग (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष और ४ आश्रम- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) हैं उनको जो पालन करता है उसीके लिए सब इन्द्रियां और सांसारिक वस्तुएँ सुख देनेवाली होती हैं।

३. ओं ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षाः सुवितन्नो अस्तु। तेषाम् ऋतूनां शतशारदानां निवात एषाम् अभये स्याम ।। स्वाहा ।।

वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर- ये ऋतुएँ हमारे लिऐ सुखदायी हों। उन ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार करते हुए हम सौ वर्षतक अभय और सुखी रहें।

४. ओं इद्वत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग् जीता अहताः स्याम ।। स्वाहा ।।

(मन्त्रब्राह्मण २.१.९-१२, गोभिल गृ० ३,७,१०,११)

इद्वत्सर, परिवत्सर और संवत्सर के अनुसार हम उचित आहार व्यवहार करें। यज्ञ-कर्ताओं की सुमति में चलकर हम सदा सुरक्षित रहें।

५. ओं पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः।
तमिहेन्द्रमुप ह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः ।। स्वाहा ।।

पृथिवी, द्यौ, दिशायें [पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण] और उपदिशायें [आग्नेय, वायव्य, नैर्ऋत्य, ईशान] जिस इन्द्र [ईश्वर, सूर्य, विद्युत्, राजा] के प्रताप से प्रकाशित रहती हैं उसका आह्वान करता हूं। हमारे शस्त्र कल्याणकारी हों।

६. ओं यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्।
तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतम् ।। स्वाहा ।।

हे वृत्रों (दुष्टों, आपत्तियों तथा रोगों) के नाश करनेवाले इन्द्र, हमारे इस कर्ममें जो कुछ कमी रह गई हो वह सब पूरी हो। हमारी आयु सौ वर्ष हो।

७. ओं सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं श्रीः प्रजामिहावतु ।। स्वाहा ।। इदमिन्द्राय, इदं न मम ।।

सम्पत्ति, ऐश्वर्य, भूमि, वर्षा, आयु श्रेष्ठता, शोभा और लक्ष्मी यहाँ प्रजा को प्राप्त हों। इन्द्र को लक्ष्य में रखकर यह आहुति है। यह मेरी नहीं है।

८. ओं यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी

भूयान् कर्मणि । स्वाहा । इदमिन्द्रपत्न्यै इदं न मम ।

इन्द्र (सूर्य और राजा) से रक्षित जिस सीता (हल की फाला और रेखा) के होने पर वैदिक-लौकिक कामों का ऐश्वर्य प्राप्त होता है उसका मैं सम्मान और प्रयोग करता हूं वह मेरे कर्म में दुःख को दूर करने वाली हो । यह आहुति इन्द्रकी पत्नी हल की रेखा को लक्ष्य में रख कर है, मेरी नहीं ।

९. ओं अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता । खलमालिनीम् उर्वराम् अस्मिन् कर्मणि उपह्वये ध्रुवां सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा, इदं सीतायै इदम् न मम ॥

इस सीतायज्ञ [कृषि-कर्म] में मैं ध्रुवा [हल के नीचे के मुख्य भाग] का उचित उपयोग करता हूं, वह हमारे लिये सुखकारी हो । वह ध्रुवा श्रेष्ठ घोड़ों तथा बैलों से युक्त, अच्छा अन्न उत्पन्न करने वाली होकर तथा सदा कार्यमें लगकर [अन्न उत्पन्नकर] प्राणियों की रक्षा करती है ।

१०. ओं सीतायै स्वाहा ।

सीता (हल का फाला तथा हल की पद्धति) को लक्ष्य में रखकर यह आहुति है । सीता का सच्चा उपयोग हो ।

११. ओं प्रजायै स्वाहा ।

प्रजा (जनता) को लक्ष्य में रखकर यह आहुति है । प्रजा के प्रति सत्य क्रिया हो ।

१२. ओं शमायै स्वाहा ।

शमा [शान्ति तथा सुख] के लिये सत्य क्रिया हो । यह आहुति इसी के लिये है ।

१३. ओं भूत्यै स्वाहा ।

भूति [सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य]प्राप्त करने के लिए सत्य क्रिया हो । उसी लक्ष्यके लिये यह आहुति है ।

(५-१३ मन्त्र संस्कारविधि में पार० २-१७ के हैं)

१४. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ स्वाहा ॥ [यजु० १८-३२]

चावल, जौ, उड़द,तिल, मूँग, चना, कंगुनी, पतला चावल, समा, पसाई के चावल, गेहूं, मसूर— ये १२ अन्न मेरे लिए यज्ञ(ईश्वरकृपा और कृषि)से प्राप्त हों ।

१५. ओं वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः । वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु । स्वाहा ॥ [यजु० १८-३२]

हमारा वाज(अन्न, बल, यज्ञ, शस्त्र-ज्ञान) ७ लोकों और ४ दिशाओं में सब देवों के द्वारा धन के विभाग में हमारी रक्षा करे ।

१६. ओं वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ स्वाहा ॥

अन्न हमारे दान को सदा प्रेरित करता है, अन्न ऋतुओं के साथ दिव्य गुण उत्पन्न करता है, अन्न ही मुझको सबसे वीर उत्पन्न करता है, मैं अन्न का रक्षक स्वामी होकर सब दिशाओं को जीतूं ॥

१७. ओं वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् । स्वाहा । [य० १८.३३-३४]

अन्न हमारी सामान्य और मध्यम दशा से दिव्य गुणोंको हवि के द्वारा बढ़ाता है; अन्न ही मुझको सब से वीर बनाता है, मैं सब दिशाओंमें अन्न-पति होऊँ ।

(आगे के ७ मन्त्र १८—२६ तक अथर्व ३-१७ के हैं-)

१८. ओं सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ । स्वाहा ।

विद्वानों में धीर, चतुर मनुष्य सुख देने वाले खेत में हलों को जोतते हैं और जुओं को अलग अलग बैलों के कन्धों पर रखते हैं ।

१९. ओं युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् । विराजः श्नुष्टिःसभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन् । स्वाहा ।

हे मनुष्यो, हलोंको जोड़ो, जुओंका विशेष विस्तार करो यहाँ तैयार खेतमें बीजबोओ । जब अन्नकी बालें अन्न से भर जायँ तब पके अन्न को हँसुले काट लें ।

२०. ओं लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोम सत्सरु । उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ स्वाहा

फाले से युक्त, सुखप्रद, अन्न के लिए चलाया गया हल पृथिवी को बोनेयोग्य करे, स्थिर मिट्टी को, जिस पर रथ चलते हैं, मोटी और भुरभुरी कर दे ।

 (शेष पृष्ठ १३ पर)

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ६, अध्याय ५

शिल्प सूक्त

खण्ड २७-- शिल्प-सूक्तों को पढ़ते हैं। मानवी शिल्प देव-शिल्पों की अनुकृति हैं। हाथी आदि खिलौने, दर्पण, वस्त्र, आभूषण, रथ-- सब शिल्प हैं। इसे समझनेवाला शिल्प जान सकता है। इस से आत्म-संस्कार होता, आत्मा छन्दोमय होती है।

नाभानेदिष्ठ- नाराशंस

१. होता नाभानेदिष्ठ 'इदमित्था... (ऋ १०.६१) सूक्त पढ़ता है जो अनिरुक्त है क्योंकि उसका नाम नहीं लेते। ऋ १०.३१.६ में प्रजापति-द्वारा भूमि में रेत:-सिचन का वर्णन है।

अब नाराशंस (ऋ १०.६२) पढ़ता है। तह तरो की ही वाणी है जिसे वह सन्तानमें रखता है जिससे वह बोलनेवाली उत्पन्न होती है।

कुछ नाराशंस को नाभानेदिष्ठ से पहले बोलते हैं क्योंकि वाणी मस्तिष्क में आगे है, कुछ पीछे बोलते हैं क्योंकि वह जीभ के पीछे है। इसे मध्य में बोले क्योंकि वाणी मध्य में है। अत: नाराशंस नाभानेदिष्ठ के समाप्त होनेसे पहले, २५ ऋचाओं के बाद पढ़ना चाहिए। होता यजमान को वीर्य के रूप में मैत्रावरुण के लिए देता हुआ कहता है कि तू इसे प्राण वाला बना। १(२७)[२१४]

बालखिल्य

खण्ड २८-- २. मैत्रावरुण वालखिल्य (ऋ ८.४९ से ५९ तक ११ सूक्त) विहृत (मिले हुए) पढ़ कर प्राण बनाता है क्योंकि प्राण-अपान परस्पर मिले हैं। पहले २ सूक्तों में चरण बार, दूसरे दोमें आधी आधी ऋचा और तीसरे दो में ऋचाबार पढ़े।

पहले दो में प्राण-वाणी, दूसरे दो में चक्षु-मन, तीसरे दो में कान-आत्मा को वह मिलाता है।

कुछ दो बृहती और दो सतोबृहती को मिलाते हैं। इससे इच्छा तो पूरी हो जाती है किन्तु प्रगाथ नहीं बनते। एक पाद मिलाने से प्रगाथ होजाते हैं।

बृहतीछन्द आत्मा और सतोबृहती प्राण है। दोनों को मिला कर ऐसे पढ़े कि प्रगाथ बन जायँ।

बृहती आत्मा है, सतोबृहती पशु। दोनों मिलाकर पढ़ने से आत्मा और पशु दोनों बढ़ते हैं।

पिछले ७-८ सूक्त क्रम बदलकर पढ़े जाते हैं, यही उनका विहार है।

मैत्रावरुण यजमानकेप्राण बनाकर ब्राह्मणाच्छंसी को दे देता है कि अब तू उत्पन्न कर। २(२८)२१५

सुकीर्ति और वृषाकपि

खण्ड २९--अब ३. ब्राह्मणाच्छंसी सुकीर्ति सूक्त (ऋ १०.१३१) और वृषाकपि सूक्त (ऋ १०.८६) को पढ़ता है। सुकीर्ति देवयोनि है जिससे यजमान को उत्पन्न करता है। वृषाकपि से आत्मा को संयुक्त करता है। उसे न्यूंख रूपी अन्न के साथ पढ़ता है। इस प्रकार वह माँ के समान अन्नसे युक्त करता है।

यह सूक्त ५ पाद के पंक्ति छन्द में है पुरुषके भी ५ भाग हैं--लोम, त्वचा, मांस, अस्थि मज्जा। वह उसे पुरुष के समान नया जन्म देता है और अच्छावाक को दे देता है कि इसे प्रतिष्ठा दे। ३(२९)२१६

एवयामरुत्

खण्ड ३०--४. अच्छावाक एवयामरुत (ऋ ५.८७) को पढ़ता है, इससे प्रतिष्ठा देता है। इसे न्यूंख रूपी अन्न के साथ पढ़ता है। इसका छन्द जगती और अतिजगती है। संसार में या तो जगत् है या अतिजगत्। इसके देवता मरुत् हैं जो जल-अन्न हैं। इन से वह युक्त करता है। ये उपर्युक्त सूक्त सहचर हैं, इन्हें साथ साथ ही पढ़ें। अलग पढ़ना पुरुषको वीर्य से अलग करना है। अत:साथही पढ़े या फिर न पढ़े।

विश्वजित् यज्ञ

अश्व के पौत्र, अश्वतर के पुत्र बुलिल ने विश्वजित् यज्ञ में होता बनते हुए यह किया कि मध्यसवन में दो सूक्त पढ़ाने के बाद एवयामरुत् पढ़ा। जब पढ़ रहा था तभी गौश्ल आकर कहने लगा--

होता, यह तेरा शस्त्र बिना पहियों जैसा क्यों चल रहा है ? यह दशा कैसे हुई ? एवयामरुत् तो उत्तर की ओर पढ़ा जाता है। मध्यसवन इन्द्र का है, उसे तू क्यों निकालना चाहता है ?

बुलिल-- मैं इससे इन्द्रको नहीं निकालना चाहता।

गौश्ल-- तू चाहता है क्योंकि जगती-अतिजगती मध्य सवन के नहीं। यह सूक्त मरुतों का है, इसका पाठ यहाँ न होना चाहिए।

बुलिल--अच्छावाक,रुक जाओ, मैं ठीक करूंगा।

गौश्ल - इन्द्रका सूक्त पढ़ो जिसमें विष्णुकी छाप हो। हे होता,अपने शस्त्र में से एवयामरुत् छोड़ दो जो रुद्र धाय्याके पहले और मारुतशस्त्रके पीछे हो।

बुलिलने ऐसा ही किया,अब भी ऐसा ही करते हैं।

खण्ड ३१. शङ्का-- वालखिल्य प्राण,नाभानेदिष्ठ वीर्य है जो प्राणों से पहले है। जब विश्वजित्-अतिरात्र-षडह के छठे दिन मैत्रावरुण वालखिल्य को पढ़ता है तो नाभानेदिष्ठ को क्यों नहीं पढ़ता ? ऐसे ही ब्राह्मणाच्छंसी वृषाकपि को क्यों पढ़ता है जबकि नाभानेदिष्ठ नहीं पढ़ा जाता ?

उत्तर--आत्मा (शरीर) से वीर्य पहले है। यज्ञ से यजमानका संस्कार करते हैं। गर्भ एक ही दिन में नहीं बन जाता। जब पूरा बन जाता है तब उत्पन्न होता है, इसी प्रकार यज्ञ के पूरा होने पर यजमान पूरा यज्ञमय बनता है।

एवयामरुत् यजमान की प्रतिष्ठा है जिसे तीसरे सवन में अन्त में पढ़ा जाता है। ५(३१)[२१८]

खण्ड ३२--षडह के छठे दिन छन्दरस(आनन्द) बहने लगा। प्रजापति ने उसे अन्यत्र रख कर दबा दिया-- नाराशंसी से गायत्री का, रैभी (अथर्व २०.१२७.४-६) से त्रिष्टुप् का, पारिक्षिति (अ. २०.१२७.७-१०) से जगती का, कारव्य (अ. २०.१२७.११-१४) से अनुष्टुप का रस रोका और होता ने उन्हें फिर रसयुक्त कर दिया। इसे समझनेवाले का यज्ञ रसवाले छन्दों से पूरा होता है।

देवों-ऋषियों ने नाराशंसी से स्वर्ग पाया, इसको समझने वाला भी स्वर्ग पाता है।

ये वृषाकपि के समान प्रग्राह से(२-३ पदोंके बाद रुक रुक कर) पढ़े जाते हैं, इनके पाठ में न्यूंख नहीं एक प्रकारका निनाद होता है यही इनका न्यूंख है।

इन्हीं के समान रैभी, पारिक्षिति, कारव्या मन्त्र पढ़ेजाते हैं। क्योंकि देव-ऋषि रेभन्त: ध्वनि करते हुए इनको पढ़ते हुए स्वर्ग गये अत: रैभी नाम है।

अब यह पारिक्षिति (अथर्व० २०.१२७.७-१०) को पढ़ता है। अग्नि परिक्षित है (चारों ओर-घूमती है) । प्रजा अग्नि के चारों ओर रहती है, और अग्नि प्रजा के चारों ओर। जो इस रहस्य को समझता है, वह अग्नि की सायुज्यता , सारूप्यता,सालोक्यता प्राप्त करता है। पारिक्षिती मन्त्रों के विषय में एक और बात है। संवत्सर परिक्षित है। संवत्सर प्रजाके चारों ओर रहता है और प्रजा संवत्सर के चारों ओर रहती है।

वह कारव्या मन्त्रों को पढ़ता है। इनसे देवों ने कल्याण-कार्य किया वैसे ही यजमान भी करते हैं।

अब वह दिशां क्लृप्ति (अ. २०.१२८.१-५) को पढ़ता है। ५ मन्त्रों से ५ दिशाएँ प्रतिष्ठित करता है। इनमें न्यूंख -निनाद नहीं होता, आधा आधा मन्त्र पढ़ा जाता है।

वह प्रतिष्ठाके लिए जनकल्प(अ २०.१२८.३-११) मन्त्र पढ़ता है। वह दिशाओंमें प्रजाकी रक्षा करता है। फिर इन्द्र-गाथा (अ २०.१२८.१२-१६) पढ़ता है। इनसे देवोंने असुरोंको गाकर हरादिया। ऐसे ही यजमान शत्रुओं को हरा देता है। इन में न्यूंख-निनाद नहीं होता,ऋचा आधी आधी करके पढ़ते हैं।

ऐतश -प्रलाप

खण्ड ३३— ब्राह्मणाच्छंसी ऐतश-प्रलाप पढ़ता है। ऐतश मुनि था। वह 'अग्नेरायुः मन्त्रोंका द्रष्टा था। कहते हैं कि ये मन्त्र यज्ञकी सब कमियोंको दूर कर देते हैं। उसने पुत्रों से कहा— पुत्रो, मैंने जिन

अग्नेरायुः मन्त्रों का दर्शन किया है उनको तुमसे कहूंगा, अवहेलना न करना। उसने आरम्भकिया—

११५८— एता अश्वा आप्लवन्ते।

११५९— प्रतीपं प्राति सत्वनम्। (अ २०.१२९)

उसी समय उसके वंशका अभ्यग्नि नामक व्यक्ति उसके पास गया और उसका मुंह बन्द करके बोला 'हमारा पिता पागल होगया है'। पिता बोला—जा, कोढ़ी होजा। तूने मेरी वाणी मार दी, नहीं तो मैं गौ की आयु १०० वर्ष और मनुष्य की १००० वर्ष कर देता। तूने मुझे रोक दिया: मैं शाप देता हूं कि तेरी सन्तान पापी हो। कहते हैं कि औवर्ण गोत्रके ऐतशायनों में अभ्यग्नि लोग बहुत पापी हैं।

कुछ लोग ऐतशप्रलापको बहुत बढ़ा देते हैं। कोई इसका निषेध नहीं करे। चाहे जितने मन्त्र पढ़ें, क्योंकि यह जीवन है। इसको समझने वाला यजमान के जीवन को बढ़ा देता है।

यह छन्दों का रस भी है। जो इसको समझता है वह अपना यज्ञ सरस छन्दों से करता है।

यह यज्ञ की त्रुटि दूर कर उसे पूर्ण करने के लिए भी है। यह अक्षिति है। इसके पाठ में कहते हैं कि मेरे यज्ञ में कोई भूल न हो, मेरा यज्ञ अक्षय हो।

यह निविद के समान प्रत्येक पदपर रुककर पढ़ा जाता है और अन्त के पद में ओ३म् कहते हैं।

प्रवह्लिका मन्त्र

अब वह प्रवह्लिका मन्त्रों (अ २०.१३३.१-३)को पढ़ता है। इनसे देवों ने असुरों को ठंडा करके हरा दिया। ऐसे ही इनसे यजमान शत्रु को हरा देते हैं।

वह आजज्ञासेन्या मन्त्रों (अ २०.१३४.१-४) को पढ़ता है, इनसे देवोंने असुरोंको पहचानकर पछाड़ दिया। इसी प्रकार यजमान शत्रु को पछाड़ देते हैं।

प्रतिराध मन्त्र

वह प्रतिराध मन्त्रों (अ २०.१३५.१-३)को पढ़ता है। इनसे देवों ने असुरोंकों फूट डालकर हरा दिया इसी प्रकार यजमान शत्रु को परास्त कर देते हैं।

अतिवाद मंत्र

अब वह अतिवाद मन्त्र(अ २०.१३५.४)पढ़ता है इससे देवों ने अति शब्द करके असुरों को पराजित इसी प्रकार यजमान शत्रुओंको पराजित करता है।

वह प्रतिष्ठा के लिए उपर्युक्त मन्त्रों को आधा आधा करके पढ़ता है। ७(३३) [२२०]

देवनीथ मंत्र

खण्ड ३४— देवनीथ (अथर्व० २०.१३५.५-१७) मन्त्रों को पढ़ता है। आदित्य और अंगिरस लोग स्वर्ग में जाने के लिये लड़ पड़े कि हम पहले जायेंगे। अंगिरसों ने मालूम कर लिया कि कल जो हम सोम यज्ञ करने वाले हैं उससे हम स्वर्ग पहुंच जायेंगे। उन्होंने अपने में से एक अग्नि नामवाले को भेजा कि जाकर आदित्यों से कहदो कि जो हम सोमयज्ञ कल करनेवाले हैं उससे हम स्वर्ग में पहले पहुंच जायंगे।

आदित्यों ने अग्नि को देखते ही सोम यज्ञ को जान लिया जिससे वह स्वर्ग को जा सके। अग्नि ने उनके पास आकर कहा 'कल हम सोम याग करने वाले हैं जिससे हम स्वर्ग पहुंच जायंगे।' उन्होंने उत्तर दिया 'हम भी तुमसे कहते हैं कि हम अभी सोम यज्ञ करनेवाले हैं जिससे हम स्वर्ग लोक में पहुँच जायंगे। लेकिन तुमको होता बनाकर ही हम स्वर्ग लोक में पहुंच सकते हैं', वह अच्छा कहकर लौट आया। और अंगिरसों से यह बात कहकर फिर आदित्यों के पास लौट आया। उन्होंने पूछा तूने कहा? उसने कहा–हाँ मैंने कहा। ये कहने लगे कि क्या तूने हमको वचन दिया था। उसने कहा कि वचन तो दिया था लेकिन आदित्यों को इनकार न कर सका। क्योंकि जो यज्ञ को रोपता है वह यश पाता है और जो यज्ञ में विघ्न डालता है वह यश से वंचित रह जाता है इसलिए मैंने नहीं रोका। इसलिए यदि कोई यज्ञका होता बननेसे इनकार करे तो केवल दो कारणोंसे, एक यह कि किसी अन्य यज्ञ में संलग्न हो, दूसरे यह कि वह यज्ञके लिए अयोग्य हो।

खण्ड ३५--इसलिये अंगिरसों ने आदित्यों को यज्ञ में मदद दी। आदित्यों ने अंगिरसों को दक्षिणा में पूर्ण पृथ्वी दी। परन्तु जब उन्होंने पृथ्वी ली तो उसने इन को तपाडाला। इसलिये उन्होंने इसे त्याग दिया। वह सिंहनी होकर मुंह खोल कर आदमियोंको खाने दौड़ी। जलती पृथ्वी पर दरारें हो गयीं। अतः कहते हैं कि त्यागी हुई दक्षिणा न ले कि शोकयुक्त वह शोकयुक्त न करदे। यदि ले तो शत्रुको दे दें जिससे वह हार जाय।

अब आदित्यों [गुरूओं] के ध्यान में श्वेत अश्व के समान सूर्य आया। वे बोले-- इसे अंगिरसों [प्राणाभ्यासी शिष्यों]के लिये दे दें। अतः देवनीथ मन्त्र हैं।

११६०. [१] आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्। [२] तां ह जरितर्न प्रत्यायन्। [३] तामु ह जरितः प्रत्यायन्॥ (अ २०-१३५-६)

अर्थ- १. हे स्तुत्य ईश्वर; गुरु शिष्यों से दक्षिणा को लेते हैं। २. वे उसको नहीं लेते। वापस कर देते हैं। [३] उसको वे अध्यात्म-शिक्षणके लिए ले लेते हैं।

११६१. [४]तां ह जरितर्न प्रत्यगृभ्णन् [५] तामु ह जरितः प्रत्यगृभ्णन।[६]अहा नेत सन्नविचेतनानि [७] जज्ञा नेत सन्नपुरोगवासः॥ (७)

[४] वे उसे नहीं लेते [५]वे उसे लेते हैं [६]अँधेरे दिनों में न जाओ। यह (ज्ञान-सूर्य) विशेष प्रकाशक है। [७] हे ज्ञानिओ, नेताके बिना न जाओ। दक्षिणा यज्ञों की नेत्री है। जैसे बैल-बिना गाड़ी, वैसे दक्षिणा-बिना यज्ञ नष्ट होता है। अतः कहते हैं कि यज्ञ में दक्षिणा देनी ही चाहिए चाहे वह कम ही हो।

११६२. [८] उत श्वेत आशुपत्वा [९] उतो पद्याभिर्जविष्ठः। [१०] उतेमामाशु मानं पिपर्ति॥ (८)

[८] तथा सात्त्विक शीघ्रगामी होता है. [९] तथा पद्यमयी ऋचाओं से वेगवान् होता हैं [१०] तथा शीघ्र मान को पाता है।

११६३. [११] आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेळते [१२] इदं राधः प्रतिगृभ्णीह्यंगिरः। [१३] इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु॥ (९)

[११] आदित्य, रुद्र, वसु तेरी स्तुति करते हैं। [१२] हे योगी, इस योग-धनको ग्रहण करो, अतः वे उस धन के लेने की इच्छा करते हैं। [१३] यह धन विभूतियुक्त, प्रभावशाली, बड़ा, विस्तृत है।

११६४. [१४] देवा ददत्वा वरं [१५] तद्वो अस्तु सुचेतनद। [१६] युष्मे अस्तु दिवे दिवे [१७] प्रत्येव गृभायत॥ १०॥

[१४] देव इस श्रेष्ठ धन को दें, [१५] वह तुम्हें सु-चेतन करनेवाला हो [१६] वह तुम्हें प्रतिदिन मिले, [१७] उसको अवश्य लो।

इस देवनीथ को निविद के समान पद पर रुक कर पढ़ता है और अन्तिम पद के बाद ओ३म् कहता है।

खण्ड ३६- अब वह भूतेच्छद(अ२०.१३५.११-१३) पढ़ता है। इनसे देवों ने युद्ध-माया से ऐश्वर्यको ढँक कर असुरों को हराया वैसे ही यजमान शत्रुको हराते हैं। इनको प्रतिष्ठाके लिए आधी आधी करके पढ़ताहै।

अब वह आहनस्या [अ २०.१३६] मन्त्र पढ़ता है। मिथुन से वीर्य, उससे सन्तान होती है। उसे यह यजमानके लिए धारण कराता है। यह दस मन्त्र = विराट् = अन्न है जिससे वीर्य बनता है। इन्हें न्यूंखसे पढ़े। वह अन्न है। उससे वीर्य और प्रजा से युक्त करता है।

अब दधिक्रावन् मन्त्र[अ २०.१३७.३; ऋ ४.४०.६] पढ़ता है जो देवों का शोधक है। इससे वह ऐसी-वैसी वाणी शुद्ध करता है। यहअनुष्टुप् छन्द है जो वाणी है वह उसी के छन्द से उसको पवित्र करता है।

अब वह ३ पावमानी मन्त्रों को पढ़ता है--

११६५- सुतासो मधुमत्तमा...(ऋ ९.१०१.४-६)

ये भी पवित्र करनेवाले अनुष्टुप् वाणी के छन्द हैं।

अब यह इन्द्र-बृहस्पति के ३ मन्त्र पढ़ता है--

११६६-६७-- अव द्रप्सो अंशुमतामतिष्ठद्...; विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाह (८.९६)

बृहस्पतिके साथ इन्द्र देव-विरोधियों को हराता है। ऐसे ही यजमान पाप को हरा दे।

प्रश्न- छटे दिन ये सूक्त पढ़े या नहीं?

उत्तर- (षष्ठ अध्याय के अन्तिम खंड के समान है) शस्त्रोंके साथ इन सूक्तोंको न पढ़े॥ १०(३६)[२२३]

वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की षष्ठ पञ्चिका का पञ्चम अध्याय समाप्त।

ऐतरेय ब्राह्मण, पञ्चिका ७ अध्याय १

अध्याय ३१

छात्र के अंगों का विभाग

अब पशु (विद्यार्थी छात्र) के अङ्गों के अध्ययन-निरीक्षण-हेतु विभाग कहेंगे--

क्रम	अंग का नाम	अध्यापक-निरीक्षक
१	जिह्वासहित दो जबड़े	प्रस्तोता
२	श्येन-आकार वक्ष	उद्गाता
३	कण्ठ-तालु	प्रतिहर्ता
४	दक्षिण श्रोणि (ऊरुमूल)	होता
५	बायाँ ,,	ब्रह्मा
६	दक्षिण सक्थि (जाँघ)	मैत्रावरुण
७	बायाँ ,,	ब्राह्मणाच्छंसी
८	कन्धा-सहित दाहिना पार्श्व	अध्वर्यु
९	बायाँ पार्श्व (बगल)	उपगातृगण
१०	बायाँ कन्धा	प्रतिप्रस्थाता
११	दक्षिण बाहु	नेष्टा
१२	बाई ,,	पोता
१३	दक्षिण ऊरु (जाँघ)	अच्छावाक
१४	बायाँ ,,	आग्नीध्र
१५	दक्षिण बाहु का निचला भाग	आत्रेय
१६	बायें ,, ,,	सदस्य
१७	अनूक [मूत्रबस्ति] और रीढ़	गृहपति
१८	दक्षिण पैर [ऊपर-नीचे]	व्रत,,[भोजप्रद]
१९	बायें ,,	,, ,, की भार्या
२०	ओष्ठ	पति-पत्नी का

उस को गृहपति ही प्रशिक्षित करे।

२१	जाघनी	पत्नी (वह ब्राह्मण को दे दे)
२२	कन्धेकी मणियाँ, ३ कीकस	ग्रावस्तुत्
२३	दूसरे ३ कीकस, आधी पीठ	उन्नेता
२४	पीठ का आधा और क्लोम	शमिता

यदि वह अब्राह्मण हो तो ब्राह्मण के लिए दे।

२५	शिर	सुब्रह्मण्या
२६	चर्म	आग्नीध्र
२७	इळा[अन्न]	सब अथवा होता

ये सब ३६ अंग हैं। इनमें प्रत्येक अक्षर यज्ञको वहन करते हैं। बृहती छन्द ३६ अक्षरका होता है। यह सुख देने वाला है। इस प्रकार वह सुख और प्राणों को दिलाता और उनमें प्रतिष्ठित होता है।

जिस पशु [छात्र] को इस प्रकार बाँटते हैं वह सुख देनेवाला होता है। जो अन्यथा बाँटते हैं वे बुरे और पापी हैं और उसे व्यर्थ सताते हैं।

इस प्रकार का बाँट श्रुत ऋषि के पुत्र देवभाग ने निकाला था। वह इसको बिना बताये इस लोक से चलागया। किसी अमनुष्य ने बभ्रु के पुत्र गिरिज को बताया। तब से मनुष्य इस का अध्ययन करते हैं। १[५२४]

सम्पादकीय टिप्पणी-- यह अंश प्रक्षिप्त [बाद को मिलाया हुआ] है क्योंकि इसे 'अमनुष्य' (मनुष्यता-रहित, अनाम व्यक्ति ने बताया था। इसके अतिरिक्त इस में जन्मना जाति-विद्वेष की भावना भी छिपी हुई है।

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३१ (सप्तम पञ्चिका का प्रथम अध्याय) समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ७ अध्याय २

अध्याय ३२

९ ३ प्रायश्चित्त प्रश्नोत्तर

खण्ड २. प्रश्न १–यदि अग्नि स्थापित करनेके बाद यजमान मर जाय तो उसका यज्ञ कैसे हो?

उत्तर– वह यज्ञ न किया जाय क्योंकि वह उसको नहीं मिलता।

प्रश्न २–यदि कोई अग्नि स्थापित कर सान्नाय्य या अन्य हवियोंकी तैयारीके बाद मर जाय तो क्या करे?

उत्तर– सब वस्तुओं को एकत्र कर जला दे।

प्रश्न ३–हवि एकत्र करनेके बाद मरे तो क्या हो?

उत्तर–जिनके लिए हवि हो उनके लिए आहुति दे।

प्रश्न ४— यदि अग्निहोत्री घर से दूर विदेश में मर जाय तो उसके यज्ञ का क्या किया जाय?

उत्तर– ऐसी गाय के दूध की आहुति दे जिसमें अन्य का बछड़ा लगाया गया हो क्योंकि जैसा दूध वैसा यज्ञ या किसी अन्य गाय के दूध की आहुति दे।

या मृत के सम्बन्धी तीनों अग्नियाँ जलती रक्खें जब तक मृतक-अस्थि-संचय न हो। यदि शव न मिले तो ३६० पलाश-लकड़ियाँ लेकर पुरुष-रूप बनाये और उस की अन्त्येष्टि करे। इन बनावटी शरीरोंको अग्नियोंके पास लाकर उनको शान्त करदे। पुरुष ऐसे बनाये–१५० लकड़ियों का धड़, १४० की जाँघें, ५० के ऊरु, शेष २० का सिर। यही प्रायश्चित्त है। १(२) [२२५]

खण्ड ३.प्रश्नोत्तर ५-७ (देखो ५.५.२७, पृष्ठ ९२०)

खण्ड ४· प्रश्न ८– यदि सायंकाल को दुहा हुआ सान्नाय्य खराब होजाय या कोई ले ले तो क्या करे?

उत्तर–प्रातः के आधे दूधका दही बनाकर आहुति दे।

प्रश्न ९–यदि प्रातःका दूध बिगड़ जाय तो क्या करे?

उत्तर-- इन्द्र-महेन्द्र के लिए पुरोडाशकी आहुति दे।

प्रश्न १ --यदि दोनों कालका दूध बिगड़ जाय तो?

उत्तर-- वही पूर्वोक्त करे, पुरोडाश की आहुति दे।

प्रश्न ११--यदि सभी हवियाँ बिगड़जायँ तो क्या हो?

उत्तर-- घी की आहुतियाँ दे और आज्य हवि से दूसरी इष्टि तैयार करे। दूसरा यज्ञ ही उपाय है।

प्रश्न १२–यदि दूधमें अनुचित वस्तु गिरे तो?

उत्तर– उसको स्रुच् में भरकर पूर्व में आहवनीय में डाल दे। उसके उत्तर भाग से गरम भस्म लेकर मन में अग्निहोत्र या प्रजापतिके मन्त्र पढ़कर आहुतियाँ दे दे। इस तरह आहुति हो भी जाती है और नहीं भी होती। दुष्ट पदार्थ फेंक कर श्रेष्ठ पदार्थ से आहुति देनी चाहिए। यही प्रायश्चित्त है।

प्रश्न १३– यदि दूध गिर या उबलकर निकल जाय तो क्या करे?

उत्तर– इस पर शान्ति के लिए जल छिड़क दे। जल ही शान्ति है। उसे सीधे हाथ से छूकर जपे–

दिवं तृतीयं देवान्यज्ञो गात् ततो मा द्रविणमाष्ट, अन्तरिक्षं तृतीयं पितृन्यज्ञो गात्ततो मा द्रविणमाष्ट, पृथिवीं तृतीयं मनुष्यान्यज्ञो गात्ततो मा द्रविणमाष्ट।

इस हवि का हर तीसरा भाग-यज्ञ द्यौमें देवों के, अन्तरिक्षमें पितरों (किरणों) के, पृथिवी पर मनुष्यों के पास पहुंचे, वहाँ से मुझे धन मिले।

अब वह विष्णु-वरुण का मन्त्र पढ़े–

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि... (६६२)

यज्ञ में बुराई से विष्णु, भलाई के वरुण रक्षक हैं।

प्रश्न १४–जब अध्वर्यु हवि तैयारकर आहवनीय के पूर्व में ले जाता है तब यदि वह गिर या उछल जाय तो क्या करे?

उत्तर– यदि वह अपना मुख पीछे करे तो यजमान को सुख से विमुख कर दे। अतः कोई अन्य उसके लिए अन्य हवि लाये और वह यथाक्रम आहुति दे।

प्रश्न १५– यदि स्रुक् टूट जाय तो क्या करे?

उत्तर– दूसरा स्रुक् ले ले, उससे आहुति दे। टूटे स्रुच्को हत्था आगे प्याली पीछे कर अग्निमें छोड़े।

प्रश्न १६–यदि आहवनीय जलती हो और गार्ह-पत्य बुझ गई हो तो क्या करे?

उत्तर– यदि वह आहवनीय के पूर्व भाग को गार्हपत्य के लिए ले आये तो अपनी प्रतिष्ठाको खो देगा। यदि पश्चमी भाग को ले आये तो असुरोंके समान यज्ञ करेगा। यदि फिर अग्नि उत्पन्न करे तो यजमानके लिए शत्रु बनायेगा। यदि अग्निहोत्र को बुझाये तो यजमान के प्राण चले जायँ। अतः पूरी आहवनीय को लेकर गार्हपत्य की राख मिला कर गार्हपत्यमें रखे, फिर पूर्वभागको आहवनीयमें रखे।

खण्ड ३. प्रश्न १७– यदि आहवनीय के होनेपर भी गार्हपत्य से अग्नि ले ली जाय तो क्या करे?

उत्तर– यदि पास में अग्नि दिखाई दे तो उसको पहली के स्थान पर ही रख दे। यदि न दिखाई दे तो अग्निवत् अग्निके लिए ८ कपालों का पुरोडाश दे। इस के लिए याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

अग्निनाग्निः समिध्यते... (१०)

त्वं ह्यग्ने अग्निना... (११)

या केवल अग्नये अग्निवते स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न १८-यदि आहवनीय-गार्हपत्य मिलजायँ तो?

उत्तर– वह वीति अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश दे। याज्या-अनुयाक्या ये हैं–

अग्न आ याहि वीतये...(२)

११६७. यो अग्निं देववीतये... [ऋ १.१२.९]

या केवल अग्नये वीतये स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न १९–यदि ३ अग्नियाँ मिलजायँ तो क्या हो?

उत्तर– वह विविचि अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश दे। याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

११६८. स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि...ऋ ७.१०.२

त्वामग्ने मानुषीरीडते विशः... (ऋ ५.८.३)

या केवल अग्नये विविचये स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न २०– यदि किसी की अग्नियाँ दूसरे की अग्नियों से मिल जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर–क्षामवत् अग्निके लिए ८ कपालोंका पुरोडाश बनाए, उसकी याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

११७०.अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः...ऋ १०.४५.४

११७१. अधा यथा नः पितरः परासः(ऋ ४.२.१६)

या केवल अग्नये क्षामवते स्वाहा से आहुति दे।

खण्ड ७. प्रश्न २१– यदि किसी की अग्नियाँ गाँव की अग्नि के साथ जल उठें तो क्या करे?

उत्तर– तो संवर्ग अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश बनाए, उसकी याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

११७२-७३– कुवित् सु नो गविष्टये...

मा नो अस्मिन्महाधने...(ऋ ८.७५.११-१२)

या केवल अग्नये संवर्गाय स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न २२-यदि किसी की अग्नियाँ दिव्य अग्नि से मिल जायँ तो क्या करे?

उत्तर–वह अप्सुमत् अग्नि के लिये ८ कपाल का पुरोडाश बनावे। याज्य अनुवाक ये हैं —

११७४-७५. अप्स्वग्ने सधिष्टव ...ऋ० ८.४३.९

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो ... (ऋ० ६.१.३)

या केवल 'अग्नये अप्सुमते स्वाहा' से आहवनीय अग्नि में घी की आहुति दे दे।

प्रश्न २३— जब अग्निहोत्री की अग्नियाँ लाश की अग्नि से मिल जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर-- अग्नि शुचि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश बनाये। उसकी याज्या अनुवाक्या ये हैं —

११७६-७७.अग्निः शुचिव्रततमः...ऋ ८.४४.२१

उदग्ने शुचयस्तव... [ऋ० ८.४४.१७]

या केवल 'अग्नये शुचये स्वाहा' से आहवनीय में घी की आहुति करे।

प्रश्न २४– जिसकी अग्नियाँ अरण्य की अग्नि से मिल जायँ उसका क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर– वह अरणियों से उसको पकड़ ले। यदि संभव न हो तो आहवनीय या गार्हपत्य से एक जलती लकड़ी ले, और बचा रक्खे। यह भी संभव न हो तो संवर्ग अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश बनाकर ऊपर लिखी याज्याअनुवाक्याओं का प्रयोगकरे या अग्नये संवर्गाय स्वाहा से आहुति दे।

खण्ड ८, प्रश्न २५– यदि उपवास-दिवस यजहवि पर आंसू बहा दे तो क्या करे?

उत्तर– यह व्रतभृत् अग्नि के लिए ८ कपालोंका पुरोडाश बनाले। उसकी याज्यानुवाक्या ये हैं—

११७८–७९.त्वमग्नेव्रतभृत्,...व्रतानि बिभ्रद्...
आश्वलायन ३.११

या अग्नये व्रतभृते स्वाहा से घृताहुति दे।

प्रश्न २६–उपवास में व्रत-विरुद्ध करने पर क्या हो?

उत्तर— वही, पुरोडाश या घृताहुति। मन्त्र हैं —

११८०-८१- त्वमग्ने व्रतपा असि... ऋ ६.११.१
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि... ऋ १०.२.४
अग्नये व्रतपतये स्वाहा ।

प्रश्न २७- यदि दर्श-पूर्णमास छूटजाय तो क्या हो ?
उत्तर— वही, पुरोडाश वा घृताहुति । मन्त्र हैं—
११८२- वेत्था हि वेधो अध्वन:... ऋ ६ १६.३
आ देवानामपि पथा अगन्म... (८५)
अग्नये पथिकृते स्वाहा ।

प्रश्न २८, यदि तीनों अग्नियाँ बुझजायं तो क्या करें?
उत्तर— ८ कपालों का पुरोडाश बनावे, मन्त्र हैं-
११८३-८४.आयाहि तपसा; आ नो याहि (आ ३.११)
या 'अग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवते';से आहुति ।

खंड९.प्रश्न २९. बिना आग्रयणेष्टि नवान्न खाले तो?
उत्तर- वह दस कपालोंका पुरोडाश बनावे । मन्त्र-
वैश्वानरो अजीजनत्....
११८५.पृष्टो दिवि पृष्टो अग्नि: पृथिव्याम्[१.९८.२]
या अग्नये वैश्वानराय स्वाहा से घृताहुति दे ।

प्रश्न ३०. यदि पुरोडाश का कपाल टूट जाय तो ?
उत्तर.अश्विओं को दो कपालों में पुरोडाश । मन्त्र-
११८६. अश्विना वर्तिरस्मदा...[ऋ १.९२.१६]
आ गोमता नासत्या रथेन .... [६६१]
या अश्विभ्यां स्वाहा से आहवनीयमें घृताहुति दे ।

प्रश्न ३१ यदि पवित्रा कुश खो जायँ तो क्या करे ?
उत्तर. ८ कपालोंका पुरोडाश । याज्यानुवाक्या हैं-
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते... [२५५]
११८७. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे... ऋ ९.८३.२
या अग्नये पवित्रावते स्वाहा से घृताहुति दे ।

प्रश्न ३२.यदि हिरण्य सोना खोजाय तो क्या करे ?
उत्तर. पुरोडाश बनावे । याज्या-अनुवाक्या यह हैं-
११८८-८९.हिरण्यकेशो, आ ते सुपर्णा, ऋ१.७९.१-२
या अग्नये हिरण्यवते स्वाहा से घृताहुति दे ।

प्रश्न ३३. यदि बिना स्नान किए हवन करे तो ?
उत्तर.वह अग्नि-वरुणके लिए पुरोडाश बनावे,मन्त्र
११९०-९१.त्वं नो अग्ने, स त्वं नो...[ऋ ४.१.४-५]
या अग्नये वरुणाय स्वाहा से घृताहुति दे ।

प्रश्न ३४. यदि सूतका- अन्न खा ले तो क्या हो ?
उत्तर. तन्तुमत अग्नि के लिए पुरोडाश दे । मन्त्र-
तन्तुं तन्वन् रजसो...[६६६],
११९२. अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या ऋ १०.५३.७
या अग्नये तन्तुमते स्वाहा से घृताहुति दे ।

प्रश्न ३५. यदि अपने को मरा सुने तो क्या करे ?
उत्तर. ८ कपालोंका पुरोडाश बनावे । मन्त्र ये हैं-
११९३-९४. अग्निर्होतान्यसीदत् ...ऋ ५.१.६
साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य... ऋ १०.५३.३
या अग्नये सुरभिमते स्वाहा से घृत आहुति दे ।

प्रश्न ३६-यदि स्त्री या गौ जुड़वाँ बच्चेदे तो क्याकरे?
उ०-वह १३ कपालों का पुरोडाश बनाये. मन्त्र ये हैं-
मरुतो यस्य हि क्षये ... (देखो १०८७)
११९५- अरा इवेदरचरमा अहेव...[ऋ० ५.५८.५]
या केवल 'अग्नये मरुत्वते स्वाहा'से घीकी आहुति दे ।

प्रश्न ३७-अपत्नीक(स्त्रीरहित)आहुतियाँ दे या न दे?
उत्तर-उसे देनाचाहिए । न देगातो अनद्धा कहलायेगा ।
इस विषय में एक गाथा कही जाती है —
'माता पिता का ऋण चुकाने के लिये यज्ञ करे ।' ९

खण्ड १० प्रश्न ३८- अपत्नीक अग्निहोत्र कैसेकरे?
उत्तर- एक मनुष्य के इस लोक में और उस लोकमें भी पुत्र,पौत्र, नाती हैं उनसे कहे- यह लोक ही स्वर्गलोक है 'इस स्वर्गसे मैं उस स्वर्गको पहुँचा ।'पत्नी की इच्छा न होतो उसके लिए उसकी संतान यज्ञ स्थिर रखतीहै। श्रद्धा पत्नी है । सत्य यजमान है । श्रद्धा और सत्य के जोड़े से स्वर्गलोकों को प्राप्त करता है । (१०)[२३२]

खण्ड ११ प्रश्न ३९— दर्शपूर्णमास यज्ञों के पहले भाग में उपवास करे या बाद के भागमें करे ?
उत्तर. पिछले भागमें करे जो कुहू, राका कहाते हैं।

खण्ड १२. प्रश्न ४०. सूर्यके उदय या अस्त से पहले यदि अग्नि न ला सके और बुझ जाय तो क्या करे ?
उत्तर. सायं स्वर्णको सामने रखकर और प्रातः नीचे चाँदी रखकर अग्नि को अँधेरे से पहले निकाल ले ।

प्रश्न ४१. यदि अग्नि पर होकर गाड़ी, रथ या कुत्ता निकल जाय तो क्या करे ?
उत्तर. इसकी चिन्ता न करे, या लगातार जल डाले और यह मन्त्र बोले-- तन्तुं तन्वन्... (६६६)

प्रश्न ४२.अग्नियोंके आधानमें दक्षिणाग्नि कैसे जलाये?
उत्तर-अवश्य जलाये,अग्नयेऽन्नादायान्नपतये से आहुतिदे ।

प्रश्न ४३--प्रवास में अग्नियों का उपस्थान कैसे करे ?
उत्तर- मनमें करे, या प्रतिदिन आकर यह मन्त्र कहे—
अभयं वो अभयं मे अस्तु ॥ ११ (१२) [२३५]

❀ इति सप्तम पंचिकायां द्वितीयो अध्याय: समाप्त: ❀

ATTEMPT AT INTEGRATION

BY R. D. SHARMA

Santacruz (East), Bombay-55.

The entire Cosmic Creation is governed by Certain Laws. Let us call them Natural Laws. These Laws do not distinguish between one race or another, one oountry or another, nor one climate or another. These Laws are Universal and applicable Universally everywhere, in every clime and to all races.

Suppose a person contracts smallpox and after seven days he developes its symptoms. This period is called Incubation which cannot be avoided. This development is governed by Laws of Nature. This fact is Universal and has to be accepted by all.

Therefore let us collect all such Laws that are common to all at all times. Once this common factor is established, peoples all over the World should acknowledge it. There is no room for a "belief," a "faith" or a "dogma". We have to be honest to ourselves in accepting the Common factors.

ओ३म्

विश्व वेदपरिषद्

सदस्यता-प्रपत्र

श्रीयुत मान्य मन्त्री जी, विश्ववेदपरिषद्, सी-८१७, महानगर, लखनऊ।

नमस्ते !

में विश्व वेदपरिषद् के इस उदात्त उद्देश्य से सर्वथा सहमत हूं कि समस्त समुचित साधनों से विश्व में वेदों और वैदिक शिक्षाओं का प्रचार किया जाय। मैं प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय किया करूंगा और उनकी सार्वभौम युक्तियुक्त शिक्षा के प्रचार में यथाशक्ति प्रयत्नशील रहूंगा, तथा तदनुसार आचरण करूँगा। मुझे परिषद् का सदस्य/संरक्षक/पोषक/सम्पोषक बनाकर अनुगृहीत करें। मैं निर्धारित सदस्यता शुल्कवार्षिक सहायता शुल्क १०), + पत्रिका वेदज्योति शुल्क १० = २०), आजीवन संरक्षक २०१), पोषक २५१), सम्पोषक ५०१), अधिरक्षक १००१), इस पत्र के साथ भेज रहा हूं तथा भविष्य में भी सहर्ष देता रहूंगा।

ह० भवदीय—

नाम

कार्य आजीविका

पता

टेलीफोन नं०

तिथि :

This is what Rishi Dayanand Saraswati contemplated in collecting a select gathering of wise and learned men from all faiths and religions, including Sir Syed Ahmed Khan of Islam and others, at time of the Delhi Darbar of Queen Victoria. The Rishi felt that if those men of different faiths would be honest and true to themeslves, there is no reason why the fundamental teachings of the Vedas, enshrined with natural Laws would not be acceptable to all those assembled and through them to all the mass of our people. This was the Rishi's most serious attempt at national Integration

The Rishi's contemplation holds good to this day and we must give it a priority to set the foundation of a United India, irrespective of which faith we belong to.

Let Arya scholars therefore prepare a long list of natural Laws applicable to all Mankind and invite the intellectuals and the common men of all faiths and religions and ask whether each of the Listed Natural Laws are commou to them or not ? If they accept that those Natural Laws are common to them as will, for their common good, that appeal to their common sense, then Arya scholars should recite and quote, Vedic Verses in support of the common acceptance and establish a common-weal of all communities for adoption and respect in an India free of communalism.

वेद तथा संस्कृत की परीक्षायें

कृपया आगामी श्रावणी २०४० वि०, अगस्त १९८३ को होने वाली विशारद, भूषण, रत्न किसी परीक्षा में स्वय सम्मिलित हों तथा अन्यों को सम्मिलित करायें और इस प्रपत्र को भरकर भेजें।

केन्द्र के लिये प्रार्थनापत्र तथा परीक्षार्थी सूची

श्री मन्त्री जी, विश्ववेदपरिषद्, वेदसदन, सी ८१७ महानगर, लखनऊ—२२६००६ (उ० प्र०)

श्रीमन् नमस्ते !

कृपया निम्नलिखित केन्द्र स्थापित रक्खें। परीक्षाओं की व्यवस्था पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ की जायेगी। कोई परीक्षार्थी अनुचित व्यवहार न करने पायेगा। श्रावणी वि० सं. २०४० (अगस्त १९८३) /व सन्त पंचमी २०४० वि० की परीक्षा में सम्मिलित होने वाले परीक्षार्थियों की सूची और शुल्क भेजा जाता है

केन्द्र स्थान

डाकघर

परीक्षार्थी संख्या

विशारद जिला

भूषण रत्न

सं०	परीक्षार्थी का नाम	पिता का नाम	परीक्षा नाम	ह० परीक्षार्थी
१				
२				
३				
४				
५				

दिनांक (शेष नाम पृथक् कागज पर इसी प्रकार खाने भर कर लिखिये)

हस्ताक्षर केन्द्राध्यक्ष

होली पर्व विधि

[पृष्ठ २ से आगे]

२१. ओं इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाभिरक्षतु । सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् । स्वाहा ।

सूर्य हल की पद्धति को किरणों से ग्रहण करे, उस की पोषक किसान सब प्रकार रक्षा करे। पानी से सींची हुई वह हमारे लिए प्रति वर्ष अन्न पैदा करे।

२२. ओं शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ।। स्वाहा ।।

अच्छे फाले भूमि को सुखपूर्वक अच्छी तरह से खोदें, किसान बैलों के पीछे सुखपूर्वक चलें। वायु-सूर्य-मेघ और किसान पानी-खाद से उपजाऊ बना कर इस संसार के लिए अच्छे फलों वाली औषधियाँ और अन्न उत्पन्न करें।

२३. ओं शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ।। स्वाहा ।।

हल खीचनेवाले बैल-घोड़े सुखी हों, किसान सुखी हों, हल खेतको अच्छे प्रकार से खोदे, रस्सियाँ अच्छे प्रकार से बाँधी जायें, पैनाचाबुक सुख से ऊपर उठा कर चलाओ।

२४. ओं शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् । यद् दिवि चक्रथुः पयस् तेनेमामुप सिञ्चतम् ।। स्वाहा ।।

हे वायु और सूर्य, तुम दोनों अनुकूल होकर रहो आकाश में जो जल तुमने उत्पन्न किया है उससे इस भूमि को सींचो।

२५. ओं सीते वन्दामहे त्वा अर्वाची सुभगे भव। यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः। स्वाहा

हम हल की पद्धति की प्रशंसा करते हैं। उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली वह इस प्रकार अच्छी तरह प्रयुक्त की जाय कि जिस प्रकार हमारे मन को प्रसन्न करे और अच्छे अन्न-फलों को दे सके।

२६. ओं घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ऊर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ।। स्वाहा ।।

हल में लगी फाल तथा हल की पद्धति मीठे जलसे सींची गई और विद्वानों तथा वैश्यों आदि सभी जनों से स्वीकृत हो। वह अन्न-रस तथा बल से युक्त, घी दूध से तृप्त करने वाली जल, अन्न और दूध के साथ हमारे सब ओर विद्यमान रहे।

२७. ओं इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। इदमिन्द्राग्निभ्याम् इदन्न मम।

इन्द्र और अग्नि को लक्ष्य में रख कर सत्य क्रिया हो।

२८. ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्य इदन्न मम।

सब देवों विद्वानों तथा प्राकृतिक शक्तियों के प्रति सत्य क्रिया हो। इसी को लक्ष्य में रख कर यह आहुति है। यह मेरे लिये नहीं है।'

२९. ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। इदं द्यावापृथिवीभ्याम् इदन्न मम।

द्यौलोक और पृथिवी दोनों के प्रति हमारी सत्य क्रियायें हों। यह आहुति इसी का ध्यान दिलाने के लिये है, स्वार्थ के लिये नहीं।

३०. ओं स्विष्टमग्ने अभि तत्पृणीहि विश्वांश्च देवः पृतना अभिष्यक्। सुगन्तु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद्धेह्यजरं न आयुः ।। स्वाहा ।।

हे परमात्मन्, आप हमारे सब इष्ट कर्मोंको सिद्ध कीजिए। हमारे लिए सुगम मार्गका निर्देश कीजिए जिससे हमारी आयु पूर्ण हो तथा वृद्धावस्था में भी हम हृष्ट पुष्ट रहें।

३१. ओं यदस्य कर्मणो अत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृत् विद्यात् सर्वम् स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान् समर्द्धय ।। स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदं न मम ।। (आश्वलायन १.१०.२२)

इस यज्ञादि कर्म में मैंने जो अधिक अथवा कम किया हो उसको इष्टकर्ता अग्नि (ईश्वर और नेता विद्वान्) जाने तथा मेरी सब आहुतियों को उत्तम इष्ट करे। सब प्रायश्चित्तकी आहुतियोंकी कामना को समृद्धकर्ता अग्नि के लिए (यह है)। वह हमारी सब कामनाएँ पूरी करे। यह सुवचन सत्य क्रिया है। यह अग्नि के लिए है, वह मेरा नहीं।।

—❀—

वेद, संस्कृत की परीक्षाएँ

वसन्त पञ्चमी के पश्चात् होने वाली परीक्षाएँ आगामी २३ मार्च १९८३ को होंगी, इन में सभी को सम्मिलित होना चाहिए। शुल्क केवल ५) रुपये। परीक्षा उत्तीर्णकर वेद-विशारद तथा संस्कृतविशारद की उपाधि लीजिए।

—ओजोमित्र शास्त्री, संयुक्त मन्त्री, विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६

वर्ष-समाप्ति की सूचना

प्रिय महोदय, सादर नमस्ते !

वेदज्योतिकी आपकी ग्राहकता का वर्ष इस अङ्क के साथ समाप्त हो गया। अत: निवेदन है कि नये वर्षका शुल्क बीस रुपये भेजने का कष्ट करें। आप की सुविधा के लिए धनादेश-पत्र गताङ्क में संलग्न किया गया है। संरक्षक महोदय भी २०)का पत्रिका शुल्क भेजनेकी कृपाकरें। जिससे घाटा पूराहो सके।

आगामी योजना

ऐतरेय ब्राह्मण के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के पश्चात् सरल भाषामें अष्टाध्यायी, निघण्टु-निरुक्त, महर्षि दयानन्दकृत चतुर्वेद-भाष्य-भूमिका [श्री करपात्री के पारिजात के मुँहतोड़ उत्तरके साथ], सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या आदि प्रकाशित करने की योजना है। आप अपनी सम्मति कृपया अवश्य प्रदान करें।

यदि आप किसी कारण ग्राहक न रहना चाहें तो भी तत्काल सूचना देने की कृपा अवश्य करें, जिससे पत्रिका न भेजी जाय। सूचना देने में आपके पन्द्रह पैसे व्यय तो होंगे किन्तु इससे परिषद् के २०)बीस रुपये बच जायेंगे। अत: कृपया उत्तर अवश्य दें।

निवेदक:— वीरेन्द्रमुनि शास्त्री, एम. ए., मन्त्री, विश्व वेदपरिषद्, प्रकाशक वेदज्योति, सी ८१७, महानगर, लखनऊ (उ. प्र.) २२६००६

❀ पूर्णिमा-यज्ञ वेद-संगोष्ठी और उत्सव ❀

फाल्गुन पूर्णिमा २७ फरवरी ८३ को सायं ५ बजे से पौर्णमासेष्टि यज्ञ और वेद-संगोष्ठी वेद-सदन, सी ८१७ महानगर लखनऊमें हुई। लखनऊके आर्यसमाज लालबागका वार्षिकोत्सव १८से २० तक और केसरबाग का २५ से २७ फरवरी तक हुआ। ऋषि-बोध उत्सव नगर आर्यसमाज में विशेष रूप में सम्मिलित हुआ।

—रामदुलारे शर्मा, (वेदप्रिय दीक्षित) मन्त्री, लखनऊ शाखा विश्ववेद परिषद्।

हरिद्वार में वेद-संगोष्ठी

१६-१-८३ को सायं ३ बजे वि.वे.प. शाखा की ७वीं गोष्ठी श्री जगदीशप्रसाद विद्यालङ्कार के घरपर श्री वेदप्रकाश शास्त्रीके सभापतित्व में हुई। यज्ञ श्री जयदेव वेदालङ्कारने कराया, २२ विद्वान् उपस्थित थे।

मन्त्री डा. रामेश्वर दयालु ने 'वेदों में सुख का स्वरूप' विषय प्रस्तुत किया कि सुख ऐहिकता में ही नहीं है। प्रो. जयदेव—वेदों में सुख शब्द नहीं, उस के पर्याय हैं। मीमांसक मोक्षमें सुख मानते हैं, नैयायिक नहीं। ऋषि दयानन्द ने आनन्द माना है।

श्री चैतन्य— वेद में स्व: आया है जो आत्मा का भी सुख है। श्री जगदीशप्रसाद—आत्माका सुख ही वास्तविक है। श्री सत्यव्रत राजेश—धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका सामूहिक प्रभाव सुख है। आचार्य प्रियव्रत-सुखकी अनुभूति आत्माको होती है। डा. जगतराम-सांसारिक सुख भी वेद-विहित है। डा. भारतभूषण-वृत्ति का निरोध क्षमता है। श्री शैलानी ने कविता पढ़ी— प्रभु से माँग सुख तू, यहाँ वेदवाणी है। सभाध्यक्ष ने उपसंहार तथा मन्त्रीने धन्यवाद दिया।

— पीताम्बर शर्मा एम०ए०, उपमन्त्री हरिद्वार

सेवायाम् ग्राहकसंख्या १३२६
श्री पुस्तकालय ...
स्थान गुरुकुल कांगड़ी
डाकघर
जिला और प्रदेश (हरिद्वार) (सहारनपुर)

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ७, अंक २, तपस्यः [प्रथम फाल्गुन] २०३९
फरवरी १९८३ ई०, मानव-सृष्टि-वेद-संवत् १९६०८५३०८३, दयानन्दाब्द १५९
सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०, काव्यतीर्थ, मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्
सी ८१७, महानगर, लखनऊ, उ. प्र. २२६००६ दूरभाष ८४१०१

ऐतरेय ब्राह्मण, (अध्याय २८ से ३०)

❀ विशेषांक-सहित वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), विदेश में वार्षिक ४०), एक प्रति २) रुपये ❀

महर्षि दयानन्द



बोध-दिवस शिवरात्रि ११ फरवरी १९८३ ई०

प्यारा प्यारा ऋषिराज !

(श्री वीरेन्द्र कुमार; एम० ए०, मुरादाबाद)

प्यारा प्यारा ऋषिराज ! हमारा वेद-वाला ॥
हमारा वेद-वाला, हमारा वेद-वाला,
प्यारा प्यारा ऋषिराज! हमारा वेद-वाला ॥

जिसने था काँच पिलाया, उसपर भी प्यार दिखाया,
दिया धन तत्काल, विपद देख टाला,
विपद देख टाला, विपद देख टाला,
मिसाल दयानन्द की जहान बीच आला ॥

है वेद प्रभु की वाणी, सब सुनें शूद्र नर-नारी,
घर घर में प्रचार, विशाल कर डाला,
विशाल कर डाला, विशाल कर डाला,
जमाय विश्वास, बनाय मतवाला ॥
प्यारा प्यारा ऋषिराज, हमारा वेदवाला,
हमारा दवाला, हमारा वेदवाला ॥

[३] कटपयादि सूत्र

[गतांक से आगे]

(श्री भय्या साहेब पन्त, ५८ नारायण पेठ, पुणे)

ऋ० १.१६४.८ के दूसरे चरण के धीतिरग्रे मनसा सं हि जग्मे में धीति = ६९ और मनसा = ७०५ का गुणा करनेपर नीचेदिये परिमाणको भाग करना होगा।

ऊपर हमने ०.३३इंच ऐसा एक परिणाम देखा है। अणु गर्भ प्रकिया के वास्ते अति सूक्ष्म परिमाण जरूरी है। इसलिये इसका हम ६० × ३० भाग करें। और हमें सेंटीमीटर में उत्तर प्राप्त करना हो तो उसे २.५४ से गुणा करें। इसलिये —

$$\frac{०.३३}{६० \times ३०} \times \frac{१}{६९ \times ७०५} \times २.५४ \text{ से मी०}$$

$$= ९.५७३ \times १०^{-९} \text{ से०मी०}$$

$$\cong १०^{-८} \text{ से०मी०}$$

यह अंक हमें हैड्रोजन अणु के प्रोट्रान और इलेक्ट्रान का अन्तर बताता है।

अभी हम ६.५७३ × $१०^{-९}$ से मी० यह परिमाण दूसरे स्थिरांक प्रस्थापित करने के लिये लेंगे।

माता पितरं ऋते आ बभाज।

इसमें माता = ६५, पितरम् = २६१ इनके गुणा करने पर भाग देना होगा।

$$\therefore ६.५७३ \times १०^{-९} \times \frac{१}{६५ \times २६१}$$

$$= ५.६४३ \times १०^{-१३} \text{ सें.मी०}$$

$$\cong ५ \times १०^{-१३} \text{ से.मी०}$$

जब दो प्रोट्रान इस अन्तर पर पहुंचेंगे तो उनमें अणुगर्भ प्रक्रिया शुरू होती है, ऐसा अणुशास्त्रज्ञ लोग बतलाते हैं।

सा बीभत्सुः गर्भरसा निविद्धा।

इसमें सा = ७, गर्भरसा = ७२४३ इनको गुणा करके प्रस्थापित परिमाण को भाग देना होगा।

$$\therefore ९.५७३ \times १०^{-९} \times \frac{१}{७ \times ७२४३}$$

$$= १.८८८ \times १०^{-१३} \cong २ \times १०^{-१३}$$

यह प्रोट्रान या इलेक्ट्रान का व्यास विद्वज्जनों ने मान्य किया है। ऐसे ये दो पंक्तियाँ, अणुगर्भ प्रक्रिया कब आरम्भ होती है, उस समय प्रोट्रान का व्यास कितना रहता है इस पर प्रकाश डालती हैं।

नमस्वन्तः इत् उपवाकं ईयुः।

नमस्वन्तः = ६४५०। पहले हम उपवाकं के ऊपर सोचेंगे — ऋग्वेद में 'वाक्' और 'वाक' ऐसे दो शब्द, वाचा या शब्द के लिये आये हैं। कटपयादि से वाक = १४ लेकिन अस्यवामीयं सूक्त में ही :-

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि। जिनकी गिनती की गई है, ऐसी चार तरह की 'वाक्' बताई है। इस में 'उपवाक' एक होने के कारण हम उपवाक = १४ भागे ४ = ३.५ मान लेंगे [ऋग्वेद में सामन्यतः उपपद क्रिया पद का माना जाता है। लेकिन यहाँ पद पाठ के अनुसार यहे 'वाक' में लगा दिया है। अतः उपवाक में उ स्वर होने पर भी उसपर कटपयादि का प्रयोग किया गया है) अतः ६४५०भागे ३.५ = १८४३

और हमें ज्ञात है कि इलेक्ट्रान को १८४० गुणित प्रोटान का जड़त्व है– ऐसा विद्वान् मान लेते हैं। इस तरह चौथा चरण प्रोटान का जड़त्व बतलाता है।

इसी तरह अन्य ३ ऋचाओं से भी १६ स्थिराङ्क निकाले गये हैं, उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं--

स्थिराङ्कका नाम	वर्तमान मान्यता	कटपयादि से
१. भूमि-सूर्य-अन्तर [मध्यम प्रमाण]	९२९५६०२० मील	९२६८१२८० मील
२. प्रकाश-गति	१८६०१०० मी.से.	१८६०००मी. से.
३. मित्रतारा-अन्तर	४.२३ प्रकाशवर्ष	४.२४ प्रकाशवर्ष
४. गाङ्गेय नीहारिका -व्यास	१००००० प्रकाश वर्ष लगभग अंतर	६०२५८ प्रकाश वर्ष
५. पृथ्वीद्रव्यमान	१३.१७×१०^{२४} पौंड	१२.९६×१०^{२४}
६. सूर्यका ,,	३३३००० गुना	३३२३४१ गुना
७. सूर्य का व्यास	८६२७०० मील	८६२५४९ मील

ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ६, अध्याय ३

अध्याय २८

३ सवनोंकी होत्रकयाज्या

खण्ड १—प्रात-सवन में चमसों के सोम से भरे जाने पर मैत्रावरुण वृष, पीत, सुत, मद् शब्दोंवाली १०६७. आ त्वा वहन्तु हरयः...[ऋ १.१६.१]पढ़े। वह इन्द्र विषयक न्यून [६] मन्त्र पढ़ता है [क्योंकि न्यून में ही रेतः सिञ्चन होता है।

मध्यन्दिन में १० मन्त्र पढ़ता है [रेतः मध्य भाग में पहुंच कर स्थूल हो जाता है।

३य सवन में न्यून [६] मन्त्र पढ़ता है [क्योंकि अल्प योनिद्वार से सन्तान उत्पन्न होती हैं।

वह पूरे सूक्त पढ़कर गर्भरूप यजमान को ही देवयोनि यज्ञ से उत्पन्न करता है।

कोई कहते हैं कि ३ सवनों में ७-७ मन्त्र पढ़े, ७ ही ७ याज्या पढ़कर वषट् करते हैं, उनकी ये पुरोनुवाक्या हो जायेंगी।

किन्तु ऐसा न करे, क्योंकि ७ संख्या वादी यजमान के रेतः का, और यजमान का नाश कर देते हैं क्योंकि यजमान ही सूक्त है।

६ से इसको मैत्रावरुण इस लोक से अन्तरिक्ष को १० से अन्तरिक्ष से उस लोक को, जो अन्तरिक्ष से बड़ा है, और ९ से उस लोक से स्वर्ग को ले जाता है। वे उसको स्वर्ग नहीं ले जा सकते जो ७-७ पढ़ते हैं अतः पूरे-पूरे ही सूक्त पढ़े। १(९)[१६९]

खण्ड २— प्रश्न— जब यज्ञ इन्द्र का है तो प्रातः-सवन के प्रस्थित सोमयाग में होता और ब्राह्मणाच्छंसी ये २ ही, १०९८— इदं ते सोम्यं मधु...[ऋ ८.६६ ८] से होता, और १०९९. इन्द्र त्वा वृषभं वयं [ऋ ३.४०.१] से ब्राह्मणाच्छंसी, प्रत्यक्ष ऐन्द्री ऋचा से यज्ञ करते हैं, अन्य ५ ऋत्विज नाना देवताओं-वाली से क्यों ? वे इन्द्रवाली कैसे हो जाती हैं ?

उत्तर—मैत्रावरुण जिससे यज्ञ करता है वह है—
११००. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये।

इसमें 'पीत' शब्द इन्द्र वाला है, इससे उसको तृप्त करता है।

११०१.मरुतो यस्य हि क्षये...स सु गोपा [१.८६]
यह पोता की याज्या है,वह 'गोपा' से तृप्त करता है।

११०२. अग्ने पत्नीरिहावह त्वष्टारं सोमपीतये।
ऋ १.१२.९

इससे नेष्टा यज्ञ करता है। यह त्वष्टा इन्द्र है।

११०३. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
ऋ ८.४३.११

इससे आग्नीध्र यज्ञ करता है, यहाँ वेधा इन्द्र है।

११०४. प्रातर्यावभिरागतं देवेभिर्जेन्यावसू।
इन्द्राग्नी सोमपीतये॥ ऋ ८.३८.७

यह अच्छावाक की ऋचा स्वयं 'इन्द्र'-समृद्ध है।

इस प्रकार ये ऐन्द्री, नाना देवता वाली, गायत्री छन्द से आग्नेयी है। इनसे ३ तरह के देवताओं का सम्बध प्राप्त करता है। २(१०)[१९७)

❀ मध्यन्दिन का उन्नीयमान सूक्त ❀

खण्ड ३— होता मध्य सवन में पढ़ता है—
११०५. असावि देवं गोऋजीकमन्धः [ऋ ७.२१.१]

यह सूक्त वृषन्, पीत, सुत, मद् शब्दों वाला रूप समृद्ध है। इसमें इन्द्र और त्रिष्टुप् होनेसे वह मध्य सवन का है।

प्रश्न— ३य सवन का 'मद्' २य में कैसे आया?

उत्तर— ३य के समान मध्य सवन भी देवों को हर्षित करता है। अतः वहाँ भी मद् वाली ऋचाएँ पढ़ते और उनसे यज्ञ करते हैं।

वे सभी ७ ऋत्विज प्रस्थित सोमों की इन्द्र की प्रत्यक्ष ऋचाओं से यज्ञ करते हैं। पहले ३ के मन्त्र अभि पूर्वक तृदि धातु के रूप से युक्त होते हैं—

१ होता—पिबा सोममभि यमुग्र तर्द [ऋ ६.१७.१]

११०६. २.मैत्रावरुण—स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रः
ऋ ६.१७.२

११०७— ३. ब्राह्मणाच्छंसी— एवा पाहि प्रत्नथा
ऋ ६.१७.३

(४) पोता का याज्य यह है—

११०८. अर्वाङ् हि सोमकामं त्वाहुः (ऋ० १.१०४.९)

(५) नेष्टा का याज्य—

११०९. तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ्। (ऋ० ३.३५.६)

(६) अच्छावाक् का याज्य यह है—

१११०. इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना...... (ऋ० ३।३६।२)

(७) आग्नीध्र का याज्य है—

११११. आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा.......(ऋ० ३।३२।१५)

इनमें 'अभितृण' वाले मन्त्र हैं। इन्द्र ने पहले प्रातः सवन में विजय पाई थी। परन्तु इन मन्त्रों द्वारा मध्य-सवन में भेदन किया (अभितृणत्) इसलिये 'अभितृण' वाले मन्त्र बोले जाते हैं। (१)

खण्ड १२—तृतीय सवन में सोम के उठाने पर होता यह मन्त्र बोलता है:—

१११२. इहोप यात शवसो नपातः (ऋ० ४।३५।१)

इनमें वृषन् पीत, सुत, मद् शब्द आये हैं, इस लिये इनमें रूपसमृद्धता है। यह इन्द्र और ऋभुओं के मन्त्र हैं।

प्रश्न—जब ऋभुओं की स्तुति नहीं की जाती तो यह तीसरे सवन के पवमान मन्त्र ऋभुओं के क्यों कहलाते हैं? उत्तर—पिता प्रजापति ने मर्त्य ऋभुओं को अमर्त्य करके तीसरे सवन में भाग दिया। इसलिए ऋभुओं के मन्त्र तो नहीं बोलते किन्तु पवमान स्तोत्रों को आर्भव कहते हैं।

एक ऋषि का प्रश्न—तीसरे सवन में त्रिष्टुप् छन्द क्यों लाते हैं? प्रातः सवन का छन्द गायत्री है। मध्य सवन का त्रिष्टुप् और तीसरे सवन का जगती। उत्तर—तीसरे सवन में सोमरस प्राप्त हो जाता है। अगर तीसरे सवन में ऐसा छन्द बोला जाय जिसका रस अभी समाप्त नहीं हुआ जैसे त्रिष्टुप् तो ऐसा करने से तृतीय सवन रस-वाला हो जाता है।

इस सवन में इन्द्र को भी भाग मिलता है।

इस पर प्रश्न—जब तीसरा सवन इन्द्र और ऋभुओं का है, और उपस्थित सोम के लिए होता इन्द्र और ऋभुओं का ही याज्य मन्त्र बोलता है तो फिर इतर ऋत्विज नाना देवताओं के याज्य मन्त्र क्यों बोलते हैं?

(१) होता के याज्य में—

इन्द्रः ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितम्। (ऋ० ३.६०.५) ऋभुओं का स्पष्ट लेख है। लेकिन दूसरों में स्पष्ट लेख नहीं।

उत्तर—अन्य ऋत्विजों के याज्य मन्त्रों में भी ऋभुओं का संकेत है—

(२) मैत्रावरुण का याज्य—

१११३. इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतम्। (ऋ० ६।६८।१०)

इसमें एक पद है युवोरथो अध्वरं देववीतये। इसमें देव बहुवचन है। यह ऋभुओं का रूप है।

(३) ब्राह्मणाच्छंसी का याज्य—

१११४. इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते........ (ऋ० ४।५०।१०)

इसमें 'विशन्त्विन्दवः स्वाभुवः' पद आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(४) पोता का याज्य मन्त्र है—

१११५. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो...... (ऋ० १।८५।६)

इसमें 'रघु पत्वानः प्रजिगात बाहुभिः' आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(५) नेष्टा का याज्य मन्त्र यह है—

१११६. अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन........ (ऋ० २.३६.३)

इसमें 'गंतन' बहुवचन है। यह बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(६) अच्छावाक् का याज्य यह है

१११७. इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य........ (ऋ० ६.६९.७)

इसमें 'आवामन्धांसि मदिराण्यग्मन्'....बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(७) आग्नीध्र का याज्य यह है—

१११८. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे (ऋ० १।९४।१)

इसमें 'रथमिव संमहेमा' आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

इस प्रकार यह सब मंत्र ऐन्द्र-आर्भव हो जाते हैं।

दूसरे देवताओं के मन्त्रों से उन उन देवताओं को भी प्रसन्न करता है जो जगत् के विजेता हैं। इसलिये तीसरे सवन को समृद्धि के लिये जगती छन्द की आवश्यकता होती है। (४) (१२) [१९१]

खण्ड १३—प्रश्न—कुछ होत्रों में उक्थ (शस्त्र होता है। कुछ में नहीं होता। फिर सब होत्र बराबर और उक्थ वाले कैसे हो जाते हैं? उत्तर—ये उक्थ्य वाले और अनुक्थ्य वाले साथ साथ पाठ किये जाते हैं। इसलिये वे सब समान कहलाते हैं, और उनकी विषमता दूर हो जाती है।

प्रश्न—होत्रक लोग प्रातःसवन और मध्यसवन में ही शस्त्र पढ़ते हैं। फिर यह तीसरे सवन में पढ़ के बराबर कैसे हो जाता है? उत्तर—क्योंकि वे मध्यसवन में दो-दो सूक्त पढ़ते हैं।

प्रश्न—होत्रक होता के बराबर दो सूक्त क्यों पढ़ते हैं?
उत्तर वे दो देवताओं के लिये होते हैं। (५) (१३) [२००]

खण्ड १४—प्रश्न—जब तीन होत्रक ही उक्थ वाले हैं अन्य नहीं, तो वे उक्थ वाले कैसे समझे जा सकते हैं? उत्तर आग्नीध्र का उक्थ आज्य शस्त्र है। पोता का मरुत्वतीय, नेष्टा का वैश्वदेव, इस प्रकार यह याज्य उक्थ वाले हो जाते हैं।

प्रश्न—अन्य होत्रकों को तो एक बार ही आदेश दिया जाता है तो पोता को और नेष्टा को क्यों दो बार आदेश दिया जाता है? उत्तर—(इसके लिये गाथा है)—

जब गायत्री ने सुपर्ण होकर सोम को निकाला तो इन्द्र ने इन दोनों के उक्थ काट कर होता को दे दिये और कहा, 'तुम न बुलाना। तुम योग्य नहीं हो।' देवों ने कहा "इन दोनों को वाणी से प्रभावित कर दें।" अर्थात् दो बार आदेश देकर उसका बदला चुका दें, इसलिये इन पोता और नेष्टा को दो बार आदेश दिये जाने लगे।

आग्नीध्र के याज्य में एक ऋचा बढ़ा दी। इसलिये उसके याज्य में एक ऋचा अधिक होती है।

कुछ लोग पूछते हैं कि जब मैत्रावरुण आदेश देता है "होता यक्षत्" "होता यक्षत्" (होता याज्य पढ़े) तो यह आदेश केवल होता को ही क्यों नहीं देता। उनको क्यों देता है जो होता नहीं होते, केवल होता के मन्त्रों को उच्चारते मात्र हैं? इसका उत्तर यह है कि होता प्राण है। सब ऋत्विज् भी प्राण हैं। इस आदेश का प्रयोजन यह है कि "प्राण याज्य पढ़ें", "प्राण याज्य पढ़ें।"

प्रश्न—क्या यह आदेश उद्गाताओं के लिये भी हैं

उत्तर—हाँ, हैं। क्योंकि मैत्रावरुण मन्त्र जप करके कहता है 'तुम स्तुति करो।'

प्रश्न—क्या अच्छावाक का कुछ प्रवर (विशेषता) होता है? उत्तर—हाँ होता है। क्योंकि अध्वर्यु उससे कहता है, 'अच्छावाक, कह जो कुछ तुझे कहना है।'

जब मैत्रावरुण तीसरे सवन में इन्द्र-वरुण का शस्त्र कहता है तो अग्नि के लिए स्तोत्रिय और अनुरूप क्यों पढ़े जाते हैं? देवों ने अग्नि को मूर्ख बना के ही असुरों को उक्थों से निकाल दिया। इस लिये स्तोत्रिय और अनुरूप अग्नि के होते हैं।

प्रश्न—जब तीसरे सवन में ब्राह्मणाच्छंसी इन्द्र और बृहस्पति के लिए शस्त्र बोलता है और अच्छावाक इन्द्र और विष्णु के लिए, तो तीसरे सवन में स्तोत्रिय और अनुरूप इन्द्र के कैसे होते हे? उत्तर इन्द्र ने असुरों को उक्थ्यों से निकाल कर पराजित कर दिया और उसने देवों से कहा, 'मेरा साथ कौन देगा?' देवों ने कहा, 'मैं, मैं।' और उन्होंने उसका साथ दिया। लेकिन चूंकि इन्द्र ने पहले विजय पाई इसलिये स्तोत्रिय और अनुरूप इन्द्र के होते हैं। और चूंकि देवों ने कहा, 'मैं साथ दूंगा' और दिया भी इसलिये ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक नाना देवताओं के लिये मन्त्र पढ़ता है। (६)

खण्ड १५ प्रश्न—जब तीसरा सवन विश्वेदेवा का है तो तीसरे सवन के आरम्भ में इन्द्र के और जगती छन्द वाले मन्त्र क्यों बोले जाते हैं? उत्तर—इन्द्र से आरम्भ करके ही चलते हैं। जगती छन्द इसलिये है कि तीसरा सवन जगती से सम्बन्ध रखता है, जगत् की इच्छा के लिये। और जो कोई छन्द पीछे पढ़ा जाता है वह भी जगती से सम्बन्धित हो जाता है, जब तृतीय सवन के आरम्भ में इन्द्र के और जगती छन्द वाले सूक्त पढ़े जाते हैं।

शस्त्रों के अन्त में अच्छावाक त्रिष्टुप् छन्द का सूक्त बोलता है:—स वां कर्मण····(ऋ० ६।६९।१) यहाँ 'कर्म' से तात्पर्य 'सोमपान' की प्रशंसा है। इसमें 'समिषा' पद है। यहाँ 'इस' का अर्थ है अन्न। अन्न की प्राप्ति के लिये। 'अरिष्टैः पथिभिः पारयन्त' इस पद के पढ़ने का तात्पर्य वह है कि वह प्रत्येक दिन कल्याण के लिये स्तुति करता है।

प्रश्न जब तीसरा सवन जगती छन्द वाला है तो तीसरे सवन के अन्त में त्रिष्टुप् छन्द क्यों पढ़ते हैं? इसका उत्तर यह है कि त्रिष्टुप् वीर्य है। अन्त में वीर्य की प्रतिष्ठा हो

जाती हैं।

मैत्रावरुण का अन्त का मन्त्र यह है :—

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः (ऋ० ७।८४।५)

ब्राह्मणाच्छंसी का :

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चात् (ऋ० १०। २।११)

अच्छावाक का :—

उभा जिग्यथुः (ऋ ६।६९।८)

वे दोनों ही जीते थे। कोई पराजित नहीं हुआ। अर्थात् उन्होंने हार नहीं मानी। उनमें से कोई नहीं हारा।

'इन्द्रश्च विष्णो पदं पस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं विनदैरयेथाम्' से तात्पर्य है कि इन्द्र और विष्णु दोनों ही असुरों से लड़े। और उनको जीत कर कहा, "लाओ, बाँट लें।" असुरों ने कहा, "अच्छा"। इन्द्र ने कहा, "यह विष्णु तीन पैर में जितना नाप ले वह हमारा, शेष तुम्हारा"। वह इन लोकों में चला, फिर वेदों में, फिर वाणी में।

प्रश्न—सहस्र का क्या अर्थ है ? इसका उत्तर देना चाहिये कि "यह लोक, वेद और वाक्"।

अच्छावाक उक्थ्य के अन्त में कहता है :—

'ऐरयेथां, ऐरयेथां' तुम दोनों ने जीता।

अच्छावाक् का काम अन्त का है। अग्निष्टोम और अतिरात्र में होता अन्त के भाग को पढ़ता है। 'षोडशी' में सन्देह है कि अन्त के चार अक्षर पढ़े जायँ या न पढ़े जायँ। कुछ कहते हैं कि अवश्य पढ़े जायँ। जब अन्य कृत्यों में पढ़े जाते हैं तो इसमें क्यों न पढ़ा जाय।' (७)

खण्ड १६—प्रश्न—तीसरा सवन नाराशंसी का है तो अच्छावाक् शिल्पों में उन मन्त्रों को क्यों पढ़ता है जो नाराशंसी के नहीं होते ? उत्तर—नाराशसो विकार का सूचक है। वीर्य थोड़ा थोड़ा विकृत होता जाता है। तब पूर्ण विकार के बाद पैदा होता है। नाराशंस छन्द मृदु और शिथिल है। अच्छावाक् सबसे पिछला बोलने वाला है। इस लिये ऐसा है। पिछले भाग को भली भाँति स्थगित कर देना चाहिये। इसलिये अच्छावाक् शिल्पों में नाराशंसी के मन्त्र नहीं बोलता। जिससे अन्त दृढ़ हो जाय। (८)

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

पंचिका ६, अध्याय ४

अध्याय २९

खण्ड १७ प्रातः सवन में अहीन संतति के (अर्थात् वह सोम यज्ञ जिनमें कई दिन लगते हैं और एक दिन तथा दूसरे दिनों सम्बन्ध रखना पड़ता है) जो अगले दिन के स्तोत्रिय को पहले दिन का अनुरूप करते हैं वह उसी प्रकार होता है जैसे एकाह में (जिस सोम यज्ञ में एक ही दिन लगता है उसे 'एकाह' कहते हैं)। जैसे 'एकाह' के ३ सवनों में सम्बन्ध होता है उसी प्रकार 'अहीन' के दिनों में भी। प्रातः सवन में अगले दिन के स्तोत्रिय को पहले दिन अनुरूप इस लिये करते हैं कि 'अहीन' के दिनों में सम्बन्ध हो जाय। इस प्रकार सम्बन्ध हो जाता है।

देवों और ऋषियों ने विचारा कि यज्ञ में दिनों को समान करके सम्बन्ध स्थापित करें। तब उन्होंने यह समानता सोची कि प्रगाथ एक ही हों, प्रतिपद् एक ही हों और सूक्त एक ही हों। इन्द्र घर में चलने वाला सा है। वह यज्ञ में जहाँ पहले दिन चलता है वहीं अगले दिनों में भी। (अर्थात् इन्द्र यज्ञ में सर्वत्र विचारता है)। इस प्रकार यज्ञ के सब दिनों में इन्द्र के विचरने से समानता हो जाती है। (१) (१७) (२०४)

सम्पात सूक्त

खण्ड १८—इन सम्पात सूक्तों का सबसे पहला ऋषि विश्वामित्र हुआ। विश्वामित्र के हुये उन मन्त्रों को वामदेव ने फैलाया असृजत। वे सूक्त ये हैं :—

११२३. एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्····(ऋ० ४।१९)

११२४. यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि···(ऋ० ४।२२)

११२५. कथा महामवृधत् कस्य होतुः (ऋ० ४।२३)

इनको उसने शिष्योंको शीघ्र पढ़ाया अतः सम्पात नाम पड़ा। विश्वामित्र ने कहा कि मेरे देखे मन्त्रों को वामदेवने फैला दिया। मैं ऐसे ही अन्य मन्त्र देखूँ अतः उसने ये सूक्त देखे--

११२६. सद्यो ह जातो वृषभः... ऋ ३.४८
११२७. इन्द्रः पूर्भिद-तिरद् ऋ ३.३४
११२८. इमा मू षु प्रभृतिम्... ऋ ३.३६
११२९. इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः... ऋ ३.३०
११३०. शासद् वह्निर्दुहितुः... ऋ ३.३१
११३१. अभि तष्टेव दीधया मनीषा... ऋ ३.३८
११३२. य एक इद्धव्यः... (भरद्वाजसूक्त) ऋ ६.२२

वशिष्ठ के २ सूक्त--

११३३. यस्तिग्मश्रृङ्गो वृषभो न भीमः... ऋ ७.१९
११३४. उदु ब्रह्माण्यैरत... ऋ ६.२३

नोधा का सूक्त--

११३५. अस्मा इदु प्र तवसे तुराय... ऋ १.६१

अहीन सूक्त

❀ अहीन सूक्त ❀

मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, अच्छावाक षडह के प्रातःसवन में स्तोत्रियों के पढ़ने के पश्चात् मध्य-सवन में नीचे लिखे अहीन सूक्तों को पढ़ते हैं—

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी (देखो १०७६) क्योंकि मित्रावरुण सत्य वाला है।

ब्राह्मणाच्छंसी ऋ १.६१ पढ़ता है जिसमें इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा आये हैं, और

११३६. इदं ब्रह्माणि गौतमासो अक्रन्...

इसमें ब्रह्म शब्द आया है।

अच्छावाक यह सूक्त पढ़ता है—

११३७. शासद् वह्निर्जनयन्त वह्निम् ...

उसमें वह्नि शब्द आया है।

प्रश्न— अच्छावाक इस सूक्त को परांचि और अभ्यावर्ति दोनों दिनों में क्यों पढ़ता है?

उत्तर— अच्छावाक जुआ को खींचनेवाले घोड़े के समान अगुआ होकर इनको दोनों प्रकार के दिनों में पढ़ता है।

ये ५ दिनों में पढ़े जाते हैं—चतुर्विश, अभिजित्, विषुवत्, विश्वजि और महाव्रत। ये दिन 'अहीन' हैं। क्योंकि इनमें कुछ छूटता नहीं। अर्थात् यह बार बार नहीं आते। इसलिये इन दिनों अहीन सूक्त पढ़े जाते हैं। इनको पढ़ते हुए वे समझते हैं, हम स्वर्ग को पूर्णरूप और समृद्धता से प्राप्त होवें। जब वे इनका पाठ करते हैं तो इन्द्र को बुलाते हैं जैसे गाय के पास बैलको बुलाते हैं। यह पाठ सम्बन्ध को स्थित रखने के लिए करते हैं।(१८)२०५

खण्ड१९ — इसलिये मैत्रावरुण षडह के पहले ३ दिनों में से प्रतिदिन इन तीन सम्पातों को उल्टे क्रमसे पढ़ता है। पहले दिन 'एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्' दूसरे दिन 'यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टी' तीसरे दिन 'कथा महामवृधन् कस्य होतुः'।

ब्रह्मणाच्छंसी ३ सम्पात सूक्तों को एक करके एक-एक दिन (दूसरे तीन दिनों में) उल्टे क्रम से पढ़ता है --पहले दिन, 'इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दास-मर्कैः', दूसरे दिन 'एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम्', तीसरे दिन, यस्तिग्मश्रृङ्गो वृषभो न भीमः।

अच्छावाक ३ सम्पात सूक्तों को १-१ करके उल्टे क्रम से १-१ दिन पढ़ता है --

पहले दिन इमामूषु, दूसरे दिन इच्छन्ति त्वा, तीसरे दिन शासद् वह्निः...।

ये ६ और ३ सूक्त प्रतिदिन पढ़े जानेवाले १२ हो जाते हैं। १२ मासोंका संवत्सर प्रजापति है जो यज्ञ है। इस प्रकार संवत्सर-प्रजापति प्रतिदिन के कृत्य को यज्ञ में प्रतिष्ठित कर देते हैं।

इन सूक्तोंके बीच बीचमें विमद ऋषिके विराज मन्त्रों को ४थ दिन बिना न्यूंख के, पंक्ति मन्त्रों को ५म दिन, परुच्छेप मन्त्र छठे दिन पढ़ना चाहिए।

महास्तोम के दिनों में ऋत्विज निम्न मन्त्र पढ़ें-
मैत्रावरुण-११३८.को अद्य नर्यो देवकामः(४.२५.१)
ब्राह्मणाच्छंसी- ११३९--वने न वा यो न्यधायि चाकन्... ऋ १०.२९.१, अच्छावाक-
११४०-- आ याह्यर्वाङुप बन्धुरेष्ठा (१.४२१)

इन आवपन मन्त्रों से देवों-ऋषियों ने स्वर्ग को जीता और इन्हीं से यजमान स्वर्ग को पाता है। २

खण्ड २०--उन अहीन सूक्तों के पहले प्रतिदिन मैत्रावरुण इस सूक्त का पाठ करता है--

११४१. सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः...(ऋ ३.४८)

स्वर्ग-सम्बन्धी इस सूक्तसे यजमान स्वर्ग पाता है।

यह विश्वामित्र का सूक्त है जो सब का मित्र था अतः जो इस रहस्यको समझता है उसके सब मित्र हो जाते हैं। इसमें वृषभ, पशुमत् शब्द पशुओं की वृद्धिके लिए आये है। इसमें ५ ऋचाएँ हैं। पंक्ति छन्द में ५ चरण होते हैं। वह अन्न है। यह उस की प्राप्ति के लिए है।

ब्राह्मणाच्छंसी प्रतिदिन यह ब्रह्मासूक्त पढ़ताहै–

११४२. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्य... (ऋ ७.२३)

इसमे ब्रह्म शब्द आनेसे रूप-समृद्धता है। इससे देवों-ऋषियों ने स्वर्ग पाया, यजमान भी पा सकते हैं।

यह वशिष्ठ का सूक्त है। उसके समान यजमान भी इन्द्र का प्रिय धाम और परम लोक पाता है।

इसमें ६ ऋचाएँ हैं। ये ६ ऋतुओं को पाने के लिए हैं। वह इनका सम्पात सूक्तों के पश्चात् पाठ करता है जिससे यजमान स्वर्ग पाने के लिए इस लोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

अच्छावाक प्रतिदिन यह सूक्त पढ़ता है–-

अभि तष्टेव दीधया मनीषाम्... (देखा ११३१)

इसमें 'अभि प्रयाणि मर्मृशत् पराणि' आया है जिसका अर्थ है कि परलोक (स्वर्ग) में आनेवाले दिन प्रिय हैं जिनको वह प्राप्त कराता है।

कवीरिच्छामि संदृशे सुमेधा का तात्पर्य उन ऋषियों से है जो कवि हैं। यह विश्वामित्र का है जो सबका मित्र था। इस रहस्य को समझने वाले के सभी मित्र हो जाते हैं।

अब वह अनिरुक्त प्रजापतिके सूक्त को प्रजापतिकी प्राप्ति के लिए पढ़ता है। यज्ञका इन्द्रत्व न चला जाय अतः इसमें एकबार इन्द्र आया है। इसमें १० ऋचाएं हैं। विराट् में १० अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है, उसे पाने के लिए यह है। प्राण १० हैं। उनको यजमान प्राप्त कर आत्मा में धारण करता है। वह इसको यहाँ इस लिए पढ़ता है कि इसी लोकमें प्रतिष्ठित यजमानों के लिए स्वर्ग मिल जाय। ४ (२०) [२०७]

खण्ड २१—प्रतिदिन के आरम्भ के मन्त्र कहते हैं–

११४३-११४८—कस्तमिन्द्र त्वा वसुमा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा इत्ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता॥
ऋ ७.३२.१४-१५

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः॥
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आगमः॥
ऋ ८.३.१३–१४

कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा॥
कदूमहीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि
ऋ ८.६६.९–१०

क नाम प्रजापति और अन्न का है। उनको पाने के लिए कद्वन् (क वाले) मन्त्र हैं। ये यजमान प्रति दिन अशान्त अहीन सूक्तों से जुड़े रहते हैं उनको इनसे शान्त करते हैं, शान्त वे स्वर्ग दिलाते हैं।

अहीन सूक्तों का आरम्भ त्रिष्टुप् से करे।

कुछ इन्हें प्रगाथों से पहले पढ़ते और इन्हें धाय्या कहते हैं किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। होता राजा है और होत्रक प्रजा। यदि वे भी पढ़ने लगेंगे तो इसका अर्थ होगा कि प्रजा ने राजा का विरोध किया जो पाप है।

उसे जानना चाहिए कि ये त्रिष्टुप् मेरे प्रतिपद् (नाव की पतवारें) हैं। द्वादशाह या संवत्सर सत्र समुद्र के समान है जिसके पार पहुँचने के लिए अन्न जल आदि लेकर बैठते हैं वैसे ही यजमान त्रिष्टुपों से आरम्भ करे। यह वीर्यवान् छन्द यजमान को स्वर्ग दिलाकर वापस नहीं लौटाता।

किन्तु इनमें आहाव (शोंसावोम्) नहीं कहना चाहिए। छन्द समान गति से पढ़े, धाय्या न पढ़े। प्रसिद्ध सूक्तों से आरम्भ करे। यज्ञ का क्रम स्थिर रखने के लिए इन मन्त्रों को पढ़कर इन्द्रको बुलाता है जैसे गौ के पास बैलको बुलातेहैं। ५ (२१) [२०८]

खण्ड २२–-सूक्तों से पहले मैत्रावरुण प्रतिदिन यह मन्त्र बोलता है–-

११४९. अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभि भूते नुदस्व। अपोदीचो अप शूराधरा च उरौ यथा तव शर्मन् मदेम॥ ऋ १०.१३१.१

अर्थ–- हे इन्द्र, सब अमित्रोंको दूर कर दो। हे

विजयी, उनको भगा दो, चाहे ले दक्षिण में हों चाहे उत्तर में। जिससे हम आपकी विस्तृत शरण से लाभ उठासकें इसमें अभयकी बात है,वह अभय चाहताहै।

ब्राह्मणाच्छंसी प्रतिदिन यह मन्त्र पढ़ता है—

११५०. ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि... ऋ ३.३५.४

युनज्मि में जोड़ का भाव है। अहीन यज्ञोंका यही रूप है।

अच्छावाक प्रतिदिन यह मन्त्र पढ़ता है—

११५१. उरुं नु लोकमनु नेषि विद्वान्...ऋ ६.४७.८

अनु अहीन यज्ञों का और नेषि सत्र का रूप है।

इन मन्त्रों को प्रतिदिन पढ़ें। अन्त के मन्त्र एक-समान हैं। इन्द्र यजमान के घर में व्यापक है। वह यज्ञ में है। जैसे गौ गौशाला में जाती है उसी तरह इन्द्र यज्ञ में जाता है।

अहीन यज्ञ शुनं हुवेम...(३.३०.२२) से समाप्त न करें। क्योंकि जो क्षत्रिय शत्रु को अपने राज्य में आने देताहै उसका राष्ट्र क्षीण होजाता है।६(२२)

अहीन की युक्तिविमुक्ति

खण्ड २३—अहीन यज्ञों की युक्ति-विमुक्ति—ब्राह्मणाच्छंसी के इन मन्त्रों से युक्त होता है—

व्यन्तरिक्षमतिरद् (ऋ ८.१४.७-९ देखो १०९३)

और इन मन्त्रों से विमुक्त होता है—

११५२. एवेदिन्द्रम्.... (ऋ ७.२३.६)

अच्छावाक के इस मन्त्र से युक्त होता है—

११५३. नाहं सरस्वती वतोः... (ऋ ८.३८.१०)

इस से विमुक्त होता है—

११५४. नूनं सा ते... ऋ २.११.२१

मैत्रावरुण इस मन्त्र से युक्त होता है—

११५५. ते स्याम देव वरुण... ऋ ७.६६.९

और इससे विमुक्त होता है—

११५६. न ष्टुत... ऋ ४.१६.२१

जो अहीनों की युक्ति-विमुक्ति जानता है वही उन के क्रमको स्थित रख सकता है। २४वें दिन जोड़ना युक्ति और अन्तिम अतिरात्र के दिन अलग करना विमुक्ति है। यदि एकाह के मन्त्रोंसे समाप्त करते हैं तो अहीन यज्ञका कृत्य नहीं हो सकता। यदि अहीन का कृत्य करके समाप्त करते हैं तो थके बैलके समान यजमान भी यज्ञ से अलग हो जाता है अतः एकाह-अहीन दोनों कृत्यों से समाप्त करना चाहिए जैसे दूर की यात्रा वाले मंज़िल पर बैल बदल देते हैं। इस तरह यज्ञ क्रमबद्ध हो जाता है और यजमान विश्राम ले लेते हैं।

दोनों सवनों में स्तोमों में नियत मन्त्रों से एक या दो से अधिक न बोले। अधिक बोलनेसे वनके समान हो जाता है। तीसरे सवन में स्वर्ग पाने के लिए अपरिमित मन्त्र बोले क्योंकि स्वर्ग अपरिमित है।

इस रहस्य को समझनेवालेका अहीन यज्ञ आरम्भ होकर बिना विघ्न के समाप्त होता है। ७(२३)२१०

बालखिल्य

खण्ड २४—देवोंने वल में गौओं [अज्ञानमें इन्द्रियों] को देखा, यज्ञ के द्वारा ही उनको वशमें किया, पृष्ठ्य षडह के षष्ठ दिन प्राप्त किया। प्रातः सवन में नभाक ऋषि के मन्त्र से वल की ताड़ना की और शिथिल कर दिया। उन्होंने ही तीसरे सवनमें वालखिल्य मन्त्ररूपी वज्रके वाचःकूट पद से वलको तोड़कर गौएँ निकालीं।

वैसे ही यजमान प्रातः सवन में नभाक-मन्त्र से वल की ताड़ना कर शिथिल करदेते हैं। अतः होत्रक प्रातः सवन में नाभाक तृचों को पढ़ते हैं—

मैत्रावरुण— यः ककुभो नि धारयः [८.४१.४-६]

ब्राह्मणाच्छंसी—पूर्वोष्ट इन्द्रोपमातयः [८.४०.९-११]

अच्छावाक— ता हि मध्यं भराणाम् [८.४०.३-५]

वालखिल्य सूक्त ६ हैं, जिनको ३ बार में पढ़े—१म चरण-चरण करके, फिर आधी-आधी ऋचा करके, फिर ऋचा बार। प्रथम बार प्रत्येक प्रगाथमें एक-एक चरण वाली रक्खे, वह 'वाचःकूट' है। ये एक-चरण ५ हैं— ४ दशाह से और १ महाव्रत से।

८ अक्षरोंवाले महानाम्नी के चरणों में से आवश्यकतानुसार ले ले और शेष का आदर न करे।

जब आधी आधी या पूरी ऋचा पढ़े तो ५ एक-पदाओं और महानाम्नी पदोंको मिलाकर पूरा करले।

होता जब ६ वालखिल्यों को पहली बार पढ़ता है तो प्राण-वाणी का, दूसरी बार आँख-मन का और

तीसरी बार कान-आत्मा का विहार करता है। इस प्रकार विहार, वज्र वालखिल्य,वाचःकूट एकपदा और प्रणों के विहार की कामना पूरी होती है।

होता वालखिल्य प्रगाथों को बिना विहार के चौथी बार पढ़ता है। प्रगाथ पशु हैं। उनकी प्राप्ति के लिए।

यहाँ बीच में एकपदा नहीं मिलानी चाहिए। अगर मिलायेगा तो वाचःकूट के द्वारा पशुओंको मारकर उन से अलग कर देगा। यदि होत्रक ऐसा करे तो उसे मना करे। ऐसा हो ही जाता है, अतः ऐसे अवसर पर एकपदा को मिलाना नहीं चाहिए।

वालखिल्य के पिछले २ (७, ८) सूक्तों को पर्यास के रूप में मिला देता है। वत्स के पुत्रसर्प ने सुबल नामी यजमान के लिए ईनको इसी प्रकार पढ़ा था। उसने कहा— मैंने बहुत अच्छे पशु पकड़ लिये, बहुत अच्छे मुझको मिलेंगे। उसे उतनी ही दक्षिणा दीगयी जितनी बड़े ऋत्विजों को। इस शस्त्रसे पशु और स्वर्ग मिलता है अतः इसका पाठ किया जाता है। ८(२४)[२११]

दूरोहण सूक्त

खण्ड २५— अब होता दूरोहण पढ़ता है जिसके विषय में पहले (४.२० में) कहा जा चुका है। जिस को पशुओंकी कामना हो वह इन्द्रका सूक्त पढ़े क्यों कि वे उस के हैं। ये जगती छन्द में हों, क्योंकि वे जागत (गतिशील) हैं। यह महान् हों जिससे बहुत पशु मिलें। वरु ऋषि का सूक्त (प्र ते हवामहे ऋ० १०.६६) पढ़े जो महान् और जगती छन्द में भी है।

प्रतिष्ठा की कामना हो तो इन्द्र-वरुण का सूक्त पढ़े क्योंकि यह होत्र उसीका है, यह उसकी प्रतिष्ठा है। उसकी याज्या उसकी अपनी ही प्रतिष्ठामें स्थित है। उसका सूक्त निविद के समान है जिससे कामना पूरी होजाती है। जब सूक्त चुनें तो सुपर्ण ऋषि का (इमानि वां भागधेयानि ....ऋ ८.५९) चुनें जिससे इन्द्र-वरुण तथा सुपर्ण सम्बन्धी कामना एक साथ पूरी हो सकती है। ६ (२५)[२१२]

खण्ड २६. प्रश्न— दूरोहण के साथ छठे दिनके अहीन सूक्त पढ़े या नहीं?

उत्तर— अवश्य पढ़े, जब अन्य दिन पढ़ता है तो आज क्यों न पढ़े?

कुछ विद्वान् कहते हैं कि न पढ़े। छठादिन स्वर्ग लोक है जो असमायी है। सब नहीं पा सकते कोई विरला ही पहुँचता है। यदि दूरोहण के साथ अन्य सूक्त भी पढ़े जायँगे तो सभी बराबर हो जायँगे। अतः न पढ़े। स्तोत्रिय आत्मा और वालखिल्य प्राण हैं। जब अहीन सूक्तों का दूरोहण के साथ पाठ करता है तो इन २ देवताओंके द्वारा मानो यजमान के प्राण ले लेता है। अतः न पढ़े।

अगर मैत्रावरुण सोचे कि मैंने वालखिल्य पढ़ लिया, अब दूरोहण के पूर्व एकाह सूक्त पढ़ूं तो उसे ऐसा न करना चाहिए। यदि अभिमान हो तो पढ़ले किन्तु न पढ़ना अच्छा है। वालखिल्य इन्द्र के हैं उनमें बारह अक्षरों के चरण होते हैं। जगती छन्द के इन्द्रके सूक्त से जो कामना पूरी हो सकती है वह इनसे भी हो सकती है। न पढ़ने के लिए एक हेतु यह भी है कि ये इन्द्र-वरुण के सूक्त हैं जिसकी ही याज्या से यज्ञ की समाप्ति होती है।

प्रश्न— स्तोत्रों में विहृत वालखिल्यों की गणना है या अविहृत की?

उत्तर— विहृतों की। १२ अक्षरों का चरण ८ अक्षरों के चरण से मिल जाता है।

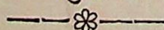
प्रश्न— यदि शस्त्र में अग्नि, इन्द्र, वरुण ३ देवता हों तो केवल इन्द्र वरुण की याज्या कैसे पढ़े, अग्नि को कैसे छोड़ दें?

उत्तर— अग्नि और वरुण तो एक ही हैं। मन्त्र भी यही कहता है—

११५८. त्वमग्ने वरुणो जायसे....(ऋ ५.३.१)

अतः इन्द्र-वरुण-याज्या में अग्नि नहीं छूटता।

वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की षष्ठ पञ्चिका का चतुर्थ अध्याय समाप्त।



सम्पादकीयम्—

महर्षि दयानन्द के वेदविषयक कार्य और मन्तव्य

१९ फरवरी १८२४ ई० को उत्पन्न महर्षि दयानन्द ने शिवरात्रि सन् १८३८ को बोध प्राप्तकिया जिसे ११ फरवरी १९८२ को १४५ वर्ष हो गये। स्वामी विरजानन्द से विद्या प्राप्त कर उनका कार्यकाल लगभग २० वर्ष १८६३ से १८८३ ई० तक रहा। अपना जीवन वेदों के लिए बलिदान करनेवाले महर्षि के लिए शतशः श्रद्धांजलि और प्रणाम समर्पित हैं।

उनका प्रमुख कार्य वेद-भाष्य संवत् १९३३ (सन १८७६ ई०) में ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका की रचना से आरम्भ होता है। उससे पहले ऋग्वेद-भाष्य का नमूना, पहला सूक्त, प्रकाशित कर विद्वानों के समीप सम्मति के लिए भेजा। इसमें अग्नि के २ अर्थ– ईश्वर और भौतिक अग्नि देखकर क्वीन्स कालिज बनारस के प्रिंसिपल आर. टी. ऐच. ग्रिफिथ और संस्कृत कालिजा कलकत्ताके प्रिंसिपल महेशचन्द्र तर्करत्न को आपत्ति हुई जिसका उत्तर ऋषि दयानन्द ने 'भ्रान्तिनिवारण' द्वार दिया। 'भूमिका' पर राजा शिवप्रसाद द्वारा किये प्रश्नों का उत्तर ऋषि ने 'भ्रमोच्छेदन' द्वारा दिया।

संवत् १९३४, मार्गशीर्ष शुक्ल ६ (१८७७ ई०) को ऋग्वेद-भाष्य, और उसी के साथ साथ श्री गोपालराव हरि देशमुख की सम्मति से यजुर्वेद-भाष्य १९३४ वि. पौष शुक्ल १३ को (१ मास ७ दिन बाद)आरम्भ हुआ जिनका प्रकाशन क्रमशः अङ्क रूप में हुआ। यजुर्भाष्य पूरा होगया किन्तु ऋग्वेद-भाष्य मण्डल ७, सूक्त ६१, मन्त्र २ तक ही हो पाया कि ऋषि का विष-प्रयोग से दीपावली १९४० वि० (३० अक्टूबर १८८३ ई०) को बलिदान होगया, जिसकी इस वर्ष शताब्दी होगी।

❀ स्ववेदभाष्य के विषय में ऋषि का कथन ❀

ब्रह्मासे लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, जैमिनिपर्यन्त ऋषियों के रचे ग्रन्थों की सहायता लेते हुए मैं अपने भाष्य में सत्य अर्थ का प्रकाश कर रहा हूं, कोई भी बात अप्रामाणिक और कपोलकल्पित नहीं लिखरहा हूं।

भूमिका के भाष्यकरण-शंका-समाधान प्रकरण में वे लिखते हैं—

रावण, उवट, सायण-महीधर आदियों ने जो वेद-विरुद्ध भाष्य किये हैं और उन्हीं का अनुसरण करते हुए इंग्लैंड व जर्मनी देश में उत्पन्न यूरोपखंड निवासियों ने अपने अपने देश की भाषाओं में जो स्वल्प व्याख्यान किये हैं तथा उन्ही की देखा-देखी आर्यावर्तदेशस्थ किन्हीं लोगोंने आर्यभाषामें जो व्याख्या न किये हैं और किये जा रहे हैं, वे सब अनर्थ से भरे हुए हैं-- ऐसा सज्जनों के हृदयों में यथावत् प्रकाश हो जाएगा और उन टीकाओंमें क्योंकि दोष अधिक हैं अतः उनका त्याग किया जा सकेगा।

❀ महर्षि के वेद-विषयक मन्तव्य ❀

वेद केवल यज्ञ के लिए ही नहीं हैं, उनके पारमार्थिक (आध्यात्मिक) और व्यावहारिक (भौतिक-दैविक) अर्थ भी होते हैं। व्यावहारिक अर्थ ऋषि की विशेष देन है। तदनुसार वेदकी उषा और गौ= विदुषी नारी, अग्नि= शिल्पाग्नि तथा विद्वान्, इन्द्र =राजा, सेनापति, अश्वि= अध्यापक-उपदेशक, सभापति-सेनापति, प्राण-अपान, रुद्र= परमेश्वर, प्राण, वैद्य, सेनापति आदि हो जाते हैं।

२. वेदों के सविता, सरस्वती आदि देवता ईश्वरीय प्राकृतिक शक्तियों के अतिरिक्त विशिष्ट पुरुष-स्त्रियों के भी वाचक हैं।

३. देव विशेष स्थान में रहने वाले व्यक्ति नहीं, किन्तु ईश्वर, आत्मा, प्राण, इन्द्रिय, सूर्य, चन्द्र तथा विद्वान् आदि हैं। आर्य-दस्यु-युद्ध आर्य-द्रविडों का नहीं, श्रेष्ठों-दुष्टों का संघर्ष है।

४. पितर जीवित पालनकर्ता हैं, मरे हुए नहीं।

५. वेद पढ़नेका अधिकार प्रत्येक मनुष्य को है।

६. यज्ञों में मन्त्रों का विनियोग वही मान्य है जो युक्ति-सिद्ध हो, वेदार्थ में यह अनिवार्य नहीं।

७. वेदोंमें नर-पशु-बलि, मांस खाना, शराबका पीना तथा अश्लील बातें नहीं हैं।

८. वेदों में मनुष्यों का अनित्य इतिहास नहीं है।

९. वेदोंके शब्द यौगिक, योगरूढ हैं, रूढि नहीं।



१०. वेदों में अनेक देवों की पूजा नहीं, अनेक शक्तियों का वर्णन है। एक ईश्वर के अनेक नाम हैं, जिनका प्रकरणानुसार दूसरा अर्थ भी होता है।

११. वेदोंमें मूल रूप से सब सत्य छिपाए हैं।

१२. वेद ज्ञान-रूप में नित्य हैं, उन्हें ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में अग्नि-वायु-आदित्य-अंगिरा ऋषियों की आत्मा में आविर्भूत करता है।

१३, ऋग, यजु, साम, अथर्व संहिताएँ मूल वेद हैं शेष तैत्तिरीय आदि ११२७ शाखायें, ऐतरेय आदि ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् व्याख्याएँ हैं, वेद नहीं।

वर्ष-समाप्ति की सूचना

प्रिय महोदय, सादर नमस्ते !

वेदज्योतिकी आपकी ग्राहकता का वर्ष इस अङ्क के साथ समाप्त हो गया। अतः निवेदन है कि नये वर्षका शुल्क बीस रुपये भेजने का कष्ट करें। आप की सुविधा के लिए धनादेश-पत्र गताङ्क में संलग्न किया। उत्तर न आनेपर अगला अङ्क २० रुपयोंकी वी. पी. से भेजा जायगा। आप उसे अवश्य ले लें।

आगामी योजना

ऐतरेय ब्राह्मण के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के पश्चात् सरल भाषामें अष्टाध्यायी, निघण्टु-निरुक्त, महर्षि दयानन्दकृत चतुर्वेद-भाष्य-भूमिका [श्री करपात्री के पारिजात के मुँहतोड़ उत्तरके साथ], सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या आदि प्रकाशित करने की योजना है। आप अपनी सम्मति कृपया अवश्य प्रदान करें।

यदि आप किसी कारण ग्राहक न रहना चाहें तो भी तत्काल सूचना देने की कृपा अवश्य करें, जिससे वी. पी. न भेजी जाय। सूचना देने में आपके पन्द्रह पैसे व्यय तो होंगे किन्तु इससे परिषद् के वी. पी. के तीन रुपये बच जायेंगे। अतः कृपया उत्तर अवश्य दें।

निवेदकः— वीरेन्द्रमुनि शास्त्री, एम. ए.,
मन्त्री, विश्व वेदपरिषद्, प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७, महानगर, लखनऊ (उ. प्र.) २२६००६

❀ १२००) का उपाध्याय पुरस्कार ❀
स्वामी विद्यानन्द सरस्वती को दिया गया, बधाई!

❀ टङ्कारामें शिवरात्रिपर ११फर. को ऋषिमेला ❀
१ सप्ताह पूर्व वेद-पारायण यज्ञ होगा।

❀ज्वालापुरमें ७म वेदगोष्ठी १७जन० को हुई।❀

वेद, संस्कृत की परीक्षाएँ

वसन्त पञ्चमी के पश्चात् होने वाली परीक्षाएँ आगामी २३ फरवरी १९८३ को होंगी, इनमें सभी को सम्मिलित होना चाहिए। शुल्क केवल ५) रुपये। परीक्षा उत्तीर्णकर वेद-विशारद तथा संस्कृतविशारद की उपाधि लीजिए।

— ओजोमित्र शास्त्री, संयुक्त मन्त्री,
विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ६

लखनऊ-समाचार

❀ पूर्णिमा-यज्ञ और वेद-संगोष्ठी ❀

माघ पूर्णिमा २८ जनवरी १९८३ को सायं ५ बजे से पौर्णमासेष्टि यज्ञ और वेद-संगोष्ठी वेद-सदन, सी ८१७ महानगर, लखनऊ में हुई लखनऊके अधिकांश सदस्य मित्रों सहित सपरिवार सम्मिलित हुए।

गोष्ठी उपरान्त अधिकारियों का निर्वाचन और जलपान हुआ।

—रामदुलारे शर्मा, (वेदप्रिय दीक्षित)
मन्त्री, लखनऊ शाखा विश्ववेद परिषद्।

सेवायाम्
ग्राहकसंख्या २४०८
श्री डा० बलभद्र कुमार हूजा
स्थान कुलपति विश्वविद्यालय
डाकघर गुरुकुल कांगड़ी
जिला
प्रदेश (हरिद्वार)

ओ३म्

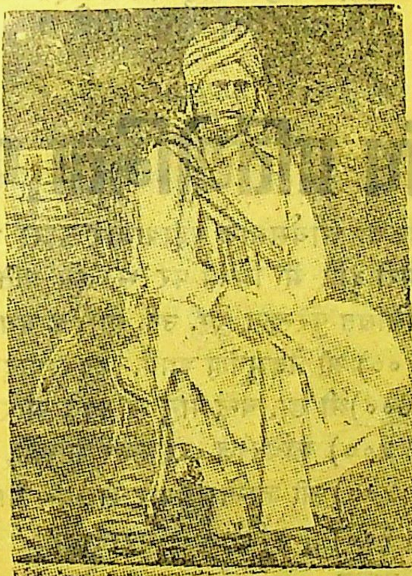
वेद-ज्योति

वर्ष ६ अङ्क १-२
माघ, फाल्गुन २०३८
जनवरी, फरवरी १९८२
वेदसंवत्-१९६०८५३०८२

सम्पादक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री
ऐम. ए. काव्यतीर्थ
सी ८१७ महानगर लखनऊ
दूरभाष ८४१०१

वेदांग शिक्षा अंक

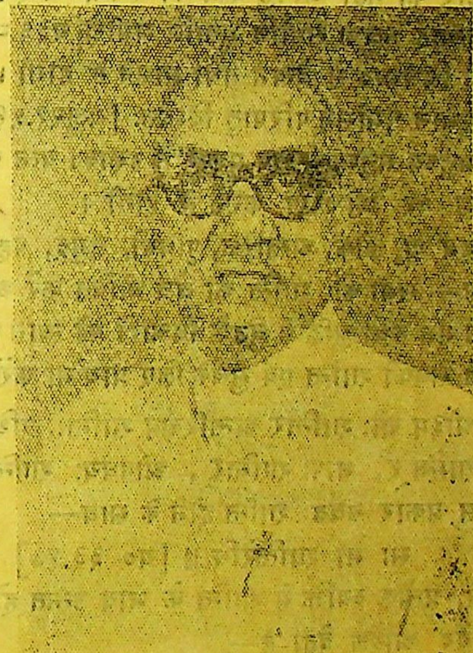
वेदसूर्य क्रान्तिकारी ऋषि



स्वामी दयानन्द सरस्वती

धन्य है तुझको ऐ ऋषि, तूने हमें जगा दिया।
बोध-दिवस—शिव-रात्रि २२ फरवरी १९८२

विश्व वेद परिषद् के नये अध्यक्ष



पण्डित वीरसेन वेदश्रमी, वेद-विज्ञानाचार्य
वेदसदन, महारानी पथ, इन्दौर [मध्य प्रदेश]

आपका ईसवी नववर्षपर वेदका सन्देश पृष्ठ २ पर है

❀ विशेषांकों-सहित वार्षिक मूल्य २० रुपये । विदेश में ४०) । एक प्रति २) ❀

ईसाई नव वर्ष पर
युद्धोन्माद से पीड़ित मानव जाति एवं राष्ट्रों के लिए

वेद का शांति-संदेश

शं योरभि स्रवन्तु नः ॥
(यजुर्वेद ३६-१२ ऋ १०-९-४ साम ३३ अ १.६.१)

हमारे चारों ओर सुख,शान्ति,आनन्दकी वर्षा हो वैज्ञानिक एवं राजनीतिक प्रतिस्पर्धाओं ने भीषण नर संहार के लिए चक्र व्यूह रच कर संसार को युद्ध क्षेत्र बना दिया है। रणभेरी बजने में है। ऐसी स्थिति में वेद का सन्देश—

मा हिंसीः पुरुषं जगत् [यजुर्वेद १६.३]

का पालन करने से ही रक्षा होगी । प्रयत्न मानव के संहार का नहीं अपितु रक्षा का करना चाहिए।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे[य३६.८८]

सबको मित्रभाव से देखने तथा मानने से होगी।

पुमान् पुमांसम् परिपातु विश्वतः [यजु२१.५१]

मनुष्य मनुष्यकी सब प्रकार से रक्षाका यत्न करें —इस पर आचरण करने से होगी।

हम द्यु लोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, समुद्र, पहाड़, जङ्गल— सभी को शान्ति का क्षेत्र घोषित करें और अपने मन तथा बुद्धि से युद्धके विचारों को त्याग कर प्रभु से सबकी शान्ति एवं सुखके लिए प्रार्थना करें—

ओ३म् द्यौः शान्तिर् अन्तरिक्षम् शान्तिः, पृथिवी शान्तिर्, आपः शान्तिर्, ओषधयः शान्तिः
—इस प्रकार सर्वत्र शान्ति होने के साथ—

सा मा शान्तिरेधि ॥ [य० ३३.१७]

मुझमें, प्रत्येक व्यक्ति में शान्ति के भाव उन्नत हों।

वेद आदेश देता है—

स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः [अथर्व १,३२,४]

हमारे विचार एवं कर्मों से गौ आदि पालनकर्ता पशुओं और संसार के मनुष्यों का कल्याण हो।

—वीरसेन वेदश्रमी, वेदसदन महारानी पथ इन्दौर
अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद् १ जनवरी १९८२ ई०

-❀-

साम वेद का पद्यानुवाद

श्री रामचरणसिंह, दिलदारनगर (गाजीपुर)

(आपने पूरे सामवेद, गीता उपनिषदोंका पद्यानुवाद किया है। सामवेद का १ मन्त्र यहाँ दिया जाता है)

अग्न आ याहि वीतये, गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥
(साम १, ६६०, ऋग्वेद ६.१६.१०)

अग्निरूप परमेश्वर व्यापक
विश्व तथा ब्रह्माण्ड सभी ।
जल-थल-नभ सर्वत्र व्याप्त हो
पर लखते नहिं आप कभी ॥
होता दाता आप अतः फिर
स्तुति क्रिया ज्ञान दीजै ।
तथा श्रेष्ठ वस्तु-प्राप्ति-हित
हमें आप सद् बुधि दीजै ॥

—❀—

निबंध प्रतियोगिता फल

कलकत्ता आर्यसमाज बड़ाबाजार द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश मेरी दृटि में' विषय पर सम्पन्न प्रतियोगिता में निम्नलिखित पुरस्कृत हुए, उन्हें हार्दिक बधाई है—

प्रथम ११००) श्री वेदभूषण आर्य, हैदराबाद
द्वितीय ७००)श्री डा. चन्द्रभानु सोनवने औरङ्गाबाद
तृतीय क ५००) कविराज रत्नाकर शास्त्री, इटावा
ख ५००) श्री ज्वन्तलकुयार शास्त्री, वाराणसी
अतिरिक्त १००) ,, हरिशङ्कर, मुरादाबाद
प्रत्येक ,, वेदप्रिय शास्त्री, केलबाड़ा कोटा
,, जी० पी० विद्यार्थी, ज्वालापुर
,, निरञ्जनसिंह, मुकुन्दगढ़
,, भवानीलाल भारतीय, चंडीगढ़
,, महावीरनीर विद्यालङ्कार, गु० का०
,, ओङ्कारनाथ मिश्र, पलिया कलाँ

—चाँदरतन दम्माणी, संयोजक

❀ ओ३म् ❀

वेदांग शिक्षा

आपिशलि, चन्द्रगोमि, महामुनि पाणिनि कृता सूत्ररूपा

जीवा: ज्योतिरशीमहि हम वेदज्योति पा सकें

❀ वैदिक प्रार्थना गीत ❀

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए., उपाध्यक्ष विश्ववेद-परिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ]

ओम् इन्द्र क्रतुं नः आ भर, पिता पुत्रेभ्यो यथा। इन्द्र, हमें भर ज्ञान से, जैसे पिता पुत्रों के लिए।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।। शिक्षा दे हमको इस पहर, सब जीव ज्योति पासकें।।

(ऋ ७.३२.२६साम २५९,१४५६,अ १८.३.६७; २०.७९.१)

—❀—

❀ प्रस्तावना ❀

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सब से पहले शिक्षा पढ़ने का निर्देश किया है--

'शिक्षा पाणिन्यादि मुनिकृता'

(ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय)

'प्रथम पाणिनि मुनि कृत शिक्षा जोकि सूत्ररूप है उस की रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न यह करण है ---माता-पिता-आचार्य सिखलावें।'

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

'यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो तो आचार्य बालकों को और कन्याओं को स्त्री पाणिनि मुनि कृत वर्णोच्चारणशिक्षा एक महीने के भीतर पढ़ा दें'।

(संस्कारविधि वेदारम्भ संस्कार)

माण्डूक्य उपनिषद् (१.१.५) में वेदों के ६ अङ्ग बताए गये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष। अंग का अर्थ उपकारक साधन है। शिक्षा शुद्ध उच्चारण सिखाने के कारण पहिला साधन (अंग) है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के ६ अंग बताये हैं -- वर्ण, स्वर (उदात्त-अनुदात्त-स्वरित), मात्रा (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत), बल (स्थान-प्रयत्न), साम (उच्चारण में साम्य) और सन्तान (संहिता)।

प्रातिशाख्य भी शिक्षा के ग्रन्थ हैं जिन्हें पार्षद् भी कहते हैं। इस समय निम्नलिखित उपलब्ध हैं---

१. ऋक् प्रातिशाख्य-(शौनक कृत)। इसमें ऐतरेय आरण्यक के संहितोपनिषद् का अनुसरण किया गया है।

२. यजुर्वेद प्रातिशाख्य (कात्यायन कृत)।

३. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य।

४. साम प्रातिशाख्य, पुष्प ऋषि कृत सूत्र। इस में साम-गानों का वर्णन है।

५. ऋक् तन्त्र (शाकटायन कृत)।

६. अथर्ववेद प्रातिशाख्य शौनकीय चतुरध्यायिका

७ अथर्ववेद प्रातिशाख्य सूत्र विश्वबन्धुशास्त्री सम्पा०

८. अथर्व प्रातिशाख्य, डा० सूर्यकान्तशास्त्री सम्पादित

सूत्र रूप में ३ शिक्षासूत्र उपलब्ध हैं---

१. आपिशलि, २. पाणिनि, और ३. चन्द्रगोमि कृत।

आपिशलि ने अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादि कोष रचे थे जो पाणिनि ने स्वीकार किये। न्यास-कार जिनेन्द्र बुद्धि ने अष्टाध्यायी-वृत्ति १.१.९ पर आपिशलि के अष्टम प्रकरण के २० सूत्र उद्धृत किये हैं जो पाणिनि-शिक्षा के खण्डित अष्टम प्रकरण में नहीं मिलते। सम्भव है वे उसमें रहे हों। अत: उन्हें भी इसमें सम्मिलित कर दिया है। चन्द्रगोमि ने सूत्रों की संख्या कम अवश्य कर दी है किंतु कोई मुख्य बात नहीं लिखी।

इनके पश्चात् बने छोटे बड़े २३ शिक्षा–ग्रन्थ और मिलते हैं जो वाराणसी से प्रकाशित सग्रह में संग्रहीत हैं—

१. पाणिनीय शिक्षा (६० श्लोककी अन्यकृत रचना)
२. याज्ञवल्क्य ,, (२३२ ,,)
३. वासिष्ठी ,, । इसके अनुसार यजुर्वेदमें १४६७ ऋचाएँ और २८२३ यजु हैं।
४. कात्यायनी ,, १३ श्लोक। ५. मांडव्य शिक्षा(यजु)
६. पाराशरी ,, १६० ,, । ७. मल्लशर्म ,,
८. अमोघानन्दिनी ,, (१३० ,, संक्षिप्त में १७)
९. माध्यन्दिनी ,, बड़ी गद्य में छोटी पद्य में
१०. क्रमसन्धान ,, ११.वर्णरत्नप्रदीपिका अमरेशकृत
१२. केशवी ,, एक गद्य में दूसरी २१ पद्यों में
१३. स्वरांकुश ,, (जयन्ती कृत २५ पद्य)
१४. षोडशश्लोकी ,, (रामकृष्ण कृत १६ पद्य)
१५.अवसाननिर्णय ,, (अनन्त देव कृत यजुर्वेदीय)
१६.स्वरभक्तिलक्षण शिक्षा (कात्यायन कृत)
१७.प्रातिशाख्यप्रदीप शिक्षा (बालकृष्ण रचित)
१८. नारदीय ;; (सामवेदीय; विस्तृत उपादेय)
१९. गौतमी ;; ;; २०. लोमशी शिक्षा
२१. गलदृक् ;; २२ मनःस्वार ;;
२३. माण्डूकी ;; (अथर्ववेदीय ; १७९ श्लोक)

रूपक अलङ्कार से वेद को पुरुष रूप में कल्पित करते हुए शिक्षा को नाक, कल्प को हाथ, व्याकरण को मुख, निरुक्त को कान, और ज्योतिष को आँख बताया गया है। अतः हमें चाहिए कि शिक्षा वेदाङ्ग का अध्ययन करके वर्णों का शुद्ध उच्चारण करें। वेद की और अपनी नाक को ऊँची करके वेद की सुगन्ध का सेवन करें, अशुद्ध उच्चारण कर अपनी और वेद की नाक को न कटने दें ॥

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
—पाणिनीय शिक्षा

वेदांग शिक्षा भूमिका

आकाश-वायुप्रभवः शरीरात्
समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो
वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ॥१॥

आकाश और वायु से उत्पन्न होनेवाला जो नाद मध्य शरीर से अच्छे प्रकार ऊपर उठता हुआ मुख तक आता है जो मुख के अन्य अन्य स्थानों में पहुंच कर वर्ण के रूप में हो जाता है वह 'शब्द' है।

तमक्षरं ब्रह्मपरं पवित्रं
गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव
सम्यक्प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ॥२॥

बुद्धिमान् उस अविनाशी, व्यापक, परम पवित्र, बुद्धि में स्थित अक्षर की कामना करते हैं। अच्छे प्रकार प्रयुक्त वह अक्षर पुरुष को श्रेय (आध्यात्मिक कल्याण, मोक्ष) तथा अभ्युदय सांसारिक ऐश्वर्य से युक्त कर देता है।

स्थानमिदं करणमिदं प्रयत्न एषो द्विधाऽनिलः स्थानम्
पीडयति वृत्तिकारः प्रक्रम एषोऽथ नाभितलात् ॥४॥

प्रकरण ४ हैं—१. स्थान, २. करण, ३. आभ्यन्तर प्रयत्न, ४- बाह्य प्रयत्न, ५. स्थान–पीडन ६ वृत्तिकार, ७. प्रक्रमः एषः, ८. नाभितलात्।

त्रिषष्टिः ॥ ३ ॥ संस्कृत में वर्ण ६३ हैं—

❀ २२ स्वर ❀ ❀ ३३ व्यञ्जन ❀

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत							
अ	आ	अ३	कुँ	कवर्ग	क	ख	ग	घ	ङ
इ	ई	इ३	चुँ	चवर्ग	च	छ	ज	झ	ञ
उ	ऊ	उ३	टुँ	टवर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण
ऋ	ॠ	ऋ३	तुँ	तवर्ग	त	थ	द	ध	न
ऌ	—	ऌ३	पुँ	पवर्ग	प	फ	ब	भ	म
—	ए	ए३		अन्तःस्थ		य	र	ल	व
—	ऐ	ऐ३		ऊष्म		श	ष	स	ह
—	ओ	ओ३							
—	औ	औ३							

❀ ८ अयोगवाह ❀

: विसर्जनीय (विसर्ग) ❀ ४ यम ❀

≍ जिह्वामूलीय ं अनुस्वार

≍ उपध्मानीय ॐ कम गहरा अनुस्वार

ँ अनुनासिक ँ दीर्घ ,, ,,

लँक्‌ ख्‌ँ ग्‌ँ घ्‌ँ

(उसी दूसरे वर्ण के साथ अनुनासिक)

इन ६३ वर्णों के अतिरिक्त अ (संवृत), लृ दीर्घ; ए ऐ ओ औ (ह्रस्व आधे), क़ ख़ ग़ ज़ ड़ ढ़ फ़ हैं।

स्थान प्रकरणम्

(तत्र वर्णानां केषां किम् स्थानं किम् करणं, प्रयत्नश्च कः केषामित्युच्यते। तत्र स्थानं तावत्–आ०)

अ कु ह विसर्जनीयाः कण्ठ्याः । ५ ।

कण्ठो अ कु ह विसर्जनीयानाम् । (चन्द्रगोमि)

अ क ख ग घ ङ : (विसर्ग) का स्थान कण्ठ है।

ह विसर्जनीयौ उरस्यौ एकेषाम् । ६ ।

किन्हीं के मत में ह, : उरःस्थल से बोले जाते हैं।

जिह्वामूलीयो जिह्व्यः । ७ ।

≍ जिह्वामूलीय का स्थान जीभ की जड़ है।

[यह : के बाद क ख आने पर बोला जाता है जैसे— क≍करोति क≍खादति आदि ।]

कवर्गावर्णानुस्वारजिह्वामूलीया जिह्व्या एकेषाम् ८

कुछ के मत में कवर्ग अ ं ≍ का स्थान जीभ है।

सर्व मुख स्थानम् अवर्णम् । ९ ।

कुछ के मत से अ का स्थान पूरा मुख है।

(महाभाष्य तथा सृष्टिधर की भाषावृत्तियिधृति १-१-९)

कण्ठ्यान् आस्यमात्रान् इति एके । १० ।

कुछ आचार्य कण्ठ्यों का स्थान पूरा मुख मानते हैं।

(यह सूत्र आपिशलि शिक्षा में नहीं है)

इ चु य शास्तालव्याः । ११ ।

तालु इचुयशानाम् —चन्द्रगोमि

इ च छ ज झ ञ य श का स्थान तालु है।

ऋ टु र षाः मूर्धन्याः । १२ ।

मूर्धा ऋटुरषाणाम्— चन्द्रगोमि

ऋ ट ठ ड ढ ण र ष का स्थान मूर्धा (तालु दाँतों के बीच में ऊपर का उठा स्थान) है।

रेफो दन्तमूलीयः एकेषाम् । १३ ।

कुछ के मत में र का स्थान दाँतों की जड़ है।

दन्तमूलस्तु वर्गः । १४ ।

कुछ के मत से तवर्ग का स्थान दन्तमूल है।

लृ तु ल साः दन्त्याः । १५ ।

(दन्ताः लृतुलसानाम्— चन्द्रगोमि)

लृ त थ द ध न ल स का स्थान दाँत हैं।

वकारो दन्त्यौष्ठ्यः । १६ ।

(दन्तौष्ठम् वकारस्य) चन्द्रगोमि)

व का स्थान दाँत और ओठ हैं।

सृक्किणी (सृक्व) स्थानम् एके । १७ ।

कुछ के मत में व का स्थान सृक्किणी (सृक्व) है। जो दात और ओठ का मध्य भाग है।

उपूपध्मानीयाः ओष्ठ्याः । १८ ।

(ओष्ठौ उपूपध्मानीयानाम् —च०)

उ प फ ब भ म ≍ उपध्मानीय का स्थान ओठ है।

अनुस्वार यमाः नासिक्याः । १९ ।

(नासिका अनुस्वारस्य —चन्द्रगोमि)

अनुस्वार और यमों का स्थान नाक है।

कण्ठ–नासिक्यम् अनुस्वारम् एके । २० ।

कोई आचार्य अनुस्वार का स्थान कण्ठ-नासिका बताते हैं।

यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीयाः एकेषाम् । २१ ।

कुछ के मत में यमों का स्थान नाक–जिह्वामूल हैं।

एद् ऐतौ कण्ठतालव्यौ । २२ ।

(कण्ठतालुकमिदेदैताम् —च०)

ए ऐ का स्थान कण्ठ–तालु है। क्योंकि ए अ–इ से और ऐ अ-ए से मिलकर बने हैं।

ओदौतौ कण्ठौष्ठ्यौ (कण्ठौष्ठमुदोदौताम्(च०) ।२३

(सूत्र ५, ११, १५, १८, २२, २३ उद्धृत न्यास पृष्ठ ५८)

ओ औ का स्थान कण्ठ–ओष्ठ है। क्योंकि अ–उ मिलकर ओ और अ–ओ मिलकर औ बनते है।

ङ ञ ण न माः स्वस्थान नासिकास्थानाः । २४ ।

ङ् ञ् ण् न् म् का स्थान अपने अपने स्थान के साथ नासिका भी है। अर्थात् ङ का कण्ठ–नाक, ञ का तालु–नाक, ण का मूर्धा–नाक, न का दाँत–नाक, म का ओठ–नाक स्थान है।

द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणाम् आरम्भके भवतः। २५

[द्विवर्णानि सन्ध्यक्षराणि— च०]

दो दो अक्षर सन्ध्यक्षरों के बनाने वाले होते हैं, जैसे ए ऐ ओ औ आदि। उनके स्थान भी २ होते हैं।

सरेफ ऋवर्णः (सलकारः ऌवर्णः) ॥ २६ ॥

ऋ र के साथ और ऌ ल के साथ सुनी जाती हैं।

एवमेतानि स्थानानि। करणमपि—[आ०] ।२७

इस प्रकार ये स्थान हैं। करण[बोलने के साधन—]

करण प्रकरणम्

जिह्व्यतालव्यमूर्धन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम् २८

जीभ, तालु, मूर्धा, दाँतों से बोले जाने वाले अक्षरों का करण जीभ है।

जिह्वामूलेन जिह्व्यानाम् [तद्येषामभ्यासम्]२९

जीभ से बोले जाने वाले[कवर्ग]का करण जिह्वामूल है। वैसा जिनका अभ्यास हो।

जिह्वा–मध्येन तालव्यानाम् ॥ ३० ॥

तालव्यों का करण जीभ का मध्य भाग है।

जिह्वा–उपाग्रेण मूर्धन्यानाम् ॥ ३१ ॥

मूर्धन्यों [ऋ ट ठ ड ढ ण र ष] का करण जीभ का ऊपर का अग्र भाग है।

जिह्वाग्राधः करणं वा ॥३२ ॥

अथवा उनका करण जीभ का अगला नीचा भाग है।

जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम् ॥ ३३ ॥

दन्त्य[ऌ त थ द ध न ल स]का करण जीभ का अगला भाग है।

शेषाः स्वस्थानकरणाः [आ०] ॥ ३४ ॥

शेष अक्षरों का करण अपना उच्चारण–स्थान है।

इति एतदन्तः करणम् ॥ ३५ ॥

यह मुख के अन्दर अक्षरों के करण बताये गये।

आभ्यन्तर प्रयत्न प्रकरण

प्रयत्नो द्विविधः, आभ्यन्तरो बाह्यश्च ॥ ३६-३७

प्रयत्न[अक्षरों के बोलने में अन्दर की कोशिश] दो प्रकार के हैं— १.आभ्यन्तर [कण्ठ तक] २. बाह्य।

आभ्यन्तरस्तावद् ॥ ३८ ॥

अब आभ्यन्तर प्रयत्न बताते हैं—

स्पृष्ट करणाः स्पर्शाः ॥ ३९ ॥ १

स्पर्शों [पाँचों वर्गों के क से म तक २५ अक्षरों] के आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट हैं। ये अक्षर अपने अपने स्थान में जीभ से स्पर्श करके बोले जाते हैं।

ईषत्स्पृष्ट करणाः अन्तःस्थाः ॥ ४० ॥

अन्तःस्थ [य र ल व] का अन्तः प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट है। इनके उच्चारण में जीभ का कम स्पर्श होता है।

ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः विवृतकरणा वा ४१-४२

ऊष्म [श ष स ह] का आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद्विवृत अथवा विवृत है। ये जीभ को कम अथवा पूरा फैलाकर (दूर रख कर) बोले जाते हैं।

विवृतकरणाः स्वराः ॥ ४३ ॥ २

स्वरों का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। ये जीभ को अलग दूर रख कर (न छूते हुए) बोले जाते हैं।

एभ्यो विवृततरत्वमेदौतोः। ताभ्यामैदौतोः[आ०]

ताभ्याम् अपि अकारस्य [च०] ॥ ४४–४६ ॥

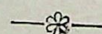
स्वरों और ऊष्मों से अधिक विवृत ए ओ, उन से भी अधिक विवृत ऐ औ, और सबसे अधिक विवृत अ है जब यह १८ प्रकार में किसी से बोला जाता है।

संवृतस्त्वकारः ॥ ४७ ॥

केवल छोटे अ का प्रयत्न संवृत है। यह कण्ठ को संकुचित करके बोला जाता है।

इति एषो अन्तः प्रयत्नः ॥ ४८ ॥

यह आभ्यन्तर प्रयत्न का वर्णन समाप्त हुआ।



टिप्पणी १,२ न्यास भाग १ पृष्ठ ५८, ५९

बाह्य प्रयत्न प्रकरण

अथ बाह्याः प्रयत्नाः । ४९ ।

अब बाह्य प्रयत्नों का वर्णन करते हैं।

वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः श ष स विसर्जनीय जिह्वामूलीय उपध्मानीयाः यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासानुप्रदानाश्च अघोषाः । ५० ।

वर्गों के पहले दूसरे (क ख च छ ट ठ त थ प फ) श ष स : विसर्ग ≍ जिह्वामूलीय ≍ उपध्मानीय पहले दूसरे यम ँ ये १८ वर्ण विवार (कण्ठ फैलाकर) श्वास (साँस के साथ अव्यक्त ध्वनि) अघोष (सूक्ष्म-ध्वनि) बाह्यप्रयत्न वाले हैं।

एके अल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः । ५१ ।

वर्गोंके पहले क च ट त प अल्पप्राण शेष महाप्राण हैं

वर्गाणां तृतीय चतुर्था अन्तःस्था हकारानुस्वारौ यमौ च तृतीय चतुर्थौ नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तश्च । ५२ ।

वर्गों के तीसरे चौथे ग घ ज झ ड ढ द ध ब भ य र ल व ह ं तीसरे चौथे यम और नासिक्य वर्ण संवार (कण्ठ–सङ्कोची) नाद (अव्यक्तध्वनि) घोष(गम्भीर) हैं।

वर्गयमानां तृतीया अन्तस्स्थाश्च अल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राणाः । ५३ ।

इन में वर्गो के तीसरे (ग ज ड द ब) य र ल व ये अल्पप्राण हैं शेष महाप्राण हैं।

यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः । ५४ ।

आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः । ५५ ।

वर्गों के तीसरे के समान पाँचवें ङ ञ ण न म अल्पप्राण हैं। नाक से बोला जाना इनका विशेष गुण है।

शादय ऊष्माणः सस्थानेन द्वितीया हकारेण चतुर्था इति एष बाह्य प्रयत्नः । ५६–५८ ।

ऊष्म श ष स ह और वर्गों के दूसरे वर्ण ख फ छ ठ थ और चौथे घ झ ढ ध भ ये ह के समान महा प्राण हैं।

(५० से ५८ तक सूत्र महाभाष्य १-१-९; न्यास भाग १ पृष्ठ ५७; ९६ और पदमंजरी भाग १ पृष्ठ ५६ में हैं)

यह बाह्य प्रयत्न का वर्णन समाप्त हुआ।

स्थान-पीडन प्रकरण

तत्र स्पर्श यम वर्णकरो वायुः अयः पिण्डवत् स्थानमभिपीडयति । ५९ ।

स्पर्श क से लेकर म तक २५ और यम वर्णों को प्रकट करने वाली वायु लोहे के गोले के समान कंठ आदि स्थानों तक अभि पीडन करती है।

अन्तःस्थ वर्णकरो वायुर्दारुपिण्डवत् । ६० ।

अन्तःस्थ य र ल व को प्रकट करनेवाली वायु लकड़ी के गोले के समान स्थान को पीडित करती है।

ऊष्म वर्णकरो वायुरूर्णापिण्डवत् । ६१ ।

ऊष्म श ष स ह और स्वरों को प्रकट करनेवाली वायु ऊन के गोले के समान स्थान को पीडित करती है।

उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः । ६२ ।

यह स्थान-करण-प्रयत्नों का वर्णन समाप्त हुआ।

वृत्तिकार प्रकरण

एवं व्याख्याने वृत्तिकाराः पठन्ति— अष्टादशप्रभेदमवर्णकुलमिति तत् कथमुक्तम् ? अत्र अवर्णः । ६३

ह्रस्व दीर्घ प्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन च ।

आनुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः । ६४

ऐसे व्याख्यान में वृत्तिकार पढ़ते हैं कि अ का कुल १८ भेद वाला कैसे कहा गया ? इसका उत्तर—

यहाँ अ ह्रस्व दीर्घ प्लुत गुणित उदात्त अनुदात्त स्वरित गुणित सानुनासिकनिरनुनासिक भेदसे १८ प्रकार है।

❀ अ के १८ भेद ❀

	सानुनासिक			निरनुनासिक		
स्वर	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
उदात्त	अँ	आँ	अँ३	अ	आ	अ३
अनुदात्त	अँ॒	आँ॒	अँ॒३	अ॒	आ॒	अ॒३
स्वरित	अँ॑	आँ॑	अँ॑	अ॑	आ॑	अ॑३

एवमिवर्णादयः ॥ ६५ ॥

इसी प्रकार इ उ ऋ के १८–१८ प्रकार होते हैं।

लवर्णस्य दीर्घा न सन्ति, तं द्वादशभेदमाचक्षते ६६

लृ का दीर्घ नहीं होता। इस के १२ भेद होते हैं।

यदृच्छाशब्दे अशक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घा स्युस्तदा अष्टादशप्रभेदम् ब्रुवते क्लृ्पक इति। ६७

दीर्घ लॄ वाला नाम रखने या ठीक न बोलने पर जब दीर्घ बोला जाय जैसे क्लॄपक तो उसके १८ भेद होते हैं।

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति, तान्यपि १२प्रभेदानि

सन्ध्यक्षरों ए ऐ ओ औ के ह्रस्व नहीं होते, इसलिए इन के भी १२-१२ भेद होते हैं।

छन्दोगानां सात्यमुग्रि राणायनीया ह्रस्वानि [अर्धमेकारमर्धमोकारञ्च] पठन्ति। तेषामप्यष्टादश प्रभेदानि। ६९।

वेद-पाठियों में सात्यमुग्रि और राणायनीय शाखावाले ए ओ को ह्रस्व पढ़ते हैं इससे इनके भी १८ भेद होते हैं। [टि० महाभाष्य एओङ् सूत्र और १-१-४७। आजकल द्रविड अंग्रेजी आदि भाषाओं में ह्रस्व ओ बोला जाता है]

अन्तःस्थाः द्विप्रभेदाः रेफवर्जिताः सानुनासिकनिरनुनासिकाश्च ७० अन्तःस्थ दो प्रकार हैं यँ रँ लँ वँ--यरलव

रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति। ७१।

र श ष स ह के सवर्ण नहीं होते [महाभाष्य हयवरट् सूत्र]

वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः। ७२।

एक वर्ग का अक्षर उसी वर्ग के दूसरे अक्षर का सवर्ण होता है। [भर्तृहरि-विरचित महाभाष्य-दीपिका पृष्ठ १८४]

प्रक्रम प्रकरण

इति एष क्रमो वर्णानाम्। ७३।

इस प्रकार यह अक्षरों का क्रम है...

तत्र एते कौशिकीयाः श्लोकाः। ७४

सर्वान्तेऽयोगवाहत्वाद् विसर्गादिरिहाष्टकः।

अकार उच्चारणार्थो व्यञ्जनेष्वनुबध्यते। ७५

ᳵक ᳶपयोः कपकारौ च तद्वर्गीयाश्रयत्वतः।

तेषामुकारो वर्णानां स्थानवर्गीयलक्षकः ७६।

पलिक्ँ क्नी चण्ँ खनुः जगिँ ग्मजंघँ त्वुरित्यत्र यद्वपुः [यदेव] नासिक्येतोक्तम् कादीनां ते इमेयमाः। ७७।

ये कौशिकके श्लोक हैं। अन्तमें : आदि ८ अयोगवाह हैं। अ उच्चारणार्थ व्यञ्जनों में पीछे लगा दिया जाता है।

टिप्पणी-- सूत्र ७४-७७ प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं क्योंकि ये आपिशलि शिक्षा में नहीं मिलते। श्लोक ७७ छन्द की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण था जिसमें यदेव और वर्णानां बढ़ाकर सम्पादक ने पूरा किया है। इसमें यदि इमे यमाः पाठ मानें तो विदित होगा कि कँ खँ गँ घँ यम हैं और यदि इमेऽयमाः पाठ मानें तो यह सिद्ध होगा कि इन्हें शौनक और पाणिनि से पहिले यम माना जाता था।

यत्रस्था वर्णा उपलभ्यन्ते तत्स्थानं। येन निर्वृत्यते तत्करणम्। प्रयतनम् प्रयत्नः। ७८-८०

इन स्थान करण प्रयत्नों की व्याकरण-प्रसिद्धि यह है—

जिस स्थान में अक्षर उपलब्ध होते हैं वह 'स्थान' है।

जिस भाग से वे बोले जाते हैं वह 'करण है'।

बोलने में उत्तम कोशिश करना 'प्रयत्न' है।

(टि०--सूत्र ७८ से ८० तक वर्णोच्चारणशिक्षा में भूल से नाभितल प्रकरण में छप गये हैं।)

नाभि तल प्रकरण

नाभि-प्रदेशात् प्रयत्न-प्रेरितः प्राणो वायुः ऊर्ध्वमाक्रामन् उर आदीनां स्थानानाम् अन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते...। ८१।

नाभि के स्थान से जीवात्मा के प्रयत्न से प्रेरणा लेकर प्राणवायु ऊपर उठता हुआ उरस्थल आदि में से किसी स्थान पर उत्तम यत्न से विशेष रूप से धारण किया जाता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती— 'सब मनुष्यों को उचित है कि जिस जिस प्रकरण में जिस अक्षर के उच्चारण के लिए जो जो बात लिखी है उसको ठीक ठीक जानकर और विद्यार्थियों को बताकर तथा शब्दाक्षरों के प्रयोग ज्यों के त्यों कर, प्रशंसित हों, सदा आनन्द से युक्त रहें और सब विद्यार्थियों को भी वर्णोच्चारण शुद्ध कराकर आनन्द में रक्खें।'

इति पाणिनिमुनिकृता वेदाङ्गशिक्षा समाप्ता।

आगे के २७ सूत्र केवल आपिशल शिक्षा में मिलते हैं सम्भव है ये पाणिनि-शिक्षा में भी हों। ८१-१०३ सूत्र न्यास पृष्ठ५६, हैम शब्दानुशासनवृत्ति पृष्ठ ६, वाक्यपदीय पृष्ठ १०४, वृषभदेव-टीका पृष्ठ १०५ में हैं।

आपिशलि शिक्षा

स विधार्यमाणो वायुः स्थानमभिहन्ति। तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यते आकाशे, सा वर्णश्रुतिः स वर्णस्यात्मलाभः ॥ ८१

धारण किया हुआ वायु भी उन स्थानों का अभिघात करता है। उस स्थान-अभिघात से आकाशमें ध्वनि पैदा होती है वह अक्षर का सुनना है, वह अक्षरकी प्राप्ति है।

तत्र ध्वनावुत्पद्यमाने यदा स्थान-करण-प्रयत्नाः परस्परं स्पृशन्ति तदा सा स्पृष्टता ॥ ८२

वहाँ अक्षरों के उत्पन्न होने पर जब स्थान-करण-प्रयत्न एक दूसरे को छूते हैं वह स्पृष्टता है।

यदेषत् स्पृशन्ति तदेषत्स्पृष्टता ॥ ८३

जब कम छुते हैं वह ईषत्स्पृष्टता है।

दूरेण यदा स्पृशन्ति सा विवृतता ॥ ८४

जब दूर से स्पर्श होता है वह विवृतता है।

सामीप्येन यदा स्पृशन्ति सा संवृतता ॥ ८५

जब पास से स्पर्श होता है वह संवृतता है।

इत्येषो अन्तःप्रयत्नः ॥ ८६

यह आभ्यन्तर प्रयत्न हुआ।

स इदानीं प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन् मूर्ध्नि निवृत्तो यदा कोष्ठमभिहन्ति तदा कोष्ठेऽभिहन्यमाने गलबिलस्य विवृतत्वाद्विवारः संवृतत्वात्संवारो जायते तौ संवार-विवारौ ॥ ८७—८८

वही प्राण नामक वायु ऊपर टकराता हुआ मूर्धा में टकराने पर जब लौटता है तब कोष्ठ पर अभिघात होने पर गले के फैल जाने से विवार और संकुचित होने से संवार हो जाता है, वे दोनों संवार–विवार कहाते हैं।

तत्र यदा कंठबिलं संवृतं भवति तदा नादो जायते विवृते तु कंठबिले श्वासो जायते। ८९—९०

वहाँ जब गला संवृत होजाता है तब नाद पैदा होता है और गला के विवृत होने पर श्वास उत्पन्न होता है।

तौ श्वासनादौ अनुप्रदानमित्याचक्षते ॥ ९१

वे नाद और श्वास अनुप्रदान कहाते हैं।

अन्ये तु ब्रुवते अनुप्रदानमनुस्वानो घंटानिर्ह्रादवत् ९२

अन्य जन कहते हैं कि अनुप्रदान घंटा बजने की गूँज के समान है।

तत्र यदा स्थानाभिघातजे ध्वनौ नादो अनुप्रदीते तदा नाद-ध्वनि-संसर्गाद् घोषो जायते। ९३

वहाँ जब स्थान के अभिघात से पैदाहुई ध्वनि में नाद किया जाता है तब नाद की ध्वनि के मेल से घोष होता है।

यदा श्वासोऽनुप्रदीयते तदा श्वासध्वनिसंसर्गाद् अघोषः ॥ ९४

जब श्वास किया जाता है तब श्वास की ध्वनि के मेल से अघोष पैदा होता है।

सा घोषवदघोषता। ९५।

यह घोष के समान अघोषता हुई।

महति वायौ महाप्राणः ॥ ९६

वायु के अधिक होनेपर महाप्राण होता है।

अल्पे वायावल्पप्राणः ॥ ९७

सा अल्पप्राणमहाप्राणता ॥ ९८

वायु के कम होने पर अल्पप्राण होता है।

महाप्राणत्वाद् ऊष्मत्वम् ॥ ९९

महाप्राण होनेसे ऊष्मता होती है।

यदा सर्वाङ्गानुसारी प्रयत्नस्तीव्रो भवति तदा गात्रस्य निग्रहः कंठबिलस्य चाणुत्वं स्वरस्य च वायोस्तीव्रगति-वाद् रौक्ष्यं भवति तमुदात्तमाचक्षते। १००

जब सब अंगों का अनुसारी प्रयत्न तीव्र होता है तब शरीरका निग्रह, गले का संकोच और वायुकी गति तीव्र होनेसे स्वर रूखा हो जाता है उसको उदात्त कहते हैं।

यदा तु मन्दः प्रयत्नो भवति तदा गात्रस्य स्रंसनं कंठबिलस्य महत्त्वं, स्वरस्य च वायोर्मन्दगतित्वात् स्निग्धता भवति तमनुदात्तमाचक्षते ॥ १०१

जब प्रयत्न मन्द होता है तब शरीर ढीला, कंठबिल बड़ा और वायु की गति मन्द होने से स्वर चिकना हो जाता है उसको अनुदात्त कहते हैं।

उदात्तानुदात्तसन्निपातात् स्वरितत्वम्। १०२।

उदात्त और अनुदात्त के मेल से स्वरित होता है।

इत्येषं प्रयत्नोऽभिनिर्वृत्तः कृत्स्नः प्रयत्नो भवति। १०३

इस प्रकार की गयी पूरी कोशिश बाह्य प्रयत्न होता है।

शिक्षा का अतिसंक्षेप

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु च ॥१०४

अक्षरों के ८ स्थान हैं—उर, कंठ, सिर, जिह्वामूल, दांत.नाक, ओठ, तालु ।

स्पृष्टत्वमीषत्स्पृष्टत्वं संवृतत्वं तथैव च ।
विवृतत्वञ्च वर्णानामन्तःकरणमुच्यते ॥ १०५ ॥

स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, संवृत, विवृत अन्तःकरण हैं ।

कौलो विवार-संवारौ श्वास-नादौ अघोषता ।
घोषोऽल्पप्राणता चैव महाप्राणः स्वरास्त्रयः ॥ १०६
बाह्यं करणमाहुस्तान् वर्णानां वर्णवेदिनः ॥१०७॥

विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्प-प्राण, महाप्राण; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित— इन ११ को अक्षरों का बाह्य करण कहते हैं ।

—❀—

ऊँचा स्वर उदात्त है,इसमें कोई चिह्न नहीं लगता, नीचा अनुदात्त है इसमें नीचे पड़ी रेखा लगती है, दोनों का समाहार स्वरित है इसमें ऊपर खड़ी रेखा लगती है । पाद के अन्तिम भाग की एकश्रुति में कोई चिह्न नहीं लगला ।

८९ ँ को ग्वङ बोलना अशुद्ध है । यह ऐच्छिक है । म् को अनुस्वार, और यदि श ष स ह र में कोई अक्षर परे हो तो ह्रस्व के बाद आये अनुस्वार को दीर्घ ँ (जैसे शतँ हिमाः, और दीर्घके बाद आये अनुस्वार को ह्रस्व ८९ होजाता हैं जैसे सम्भृत्या८९रताः ।

वेदसंस्कृत की परीक्षाएँ

वेद-विश्व-विद्यालय की आगामी परीक्षाएं शिवरात्रि के बाद २८ फरवरी १९८२ को होंगीं । परीक्षार्थी अपना नाम, पिता का नाम, पता की सूचना के साथ परीक्षा-शुल्क ५) शीघ्र भेजें । नियमावली-पाठविधि पूर्ववत् । केवल 'संस्कृत-विशारद' की नई परीक्षा में शिक्षा, अष्टाध्यायी १ अध्याय, मूलरामायण, विदुरनीति योग-दर्शन, चाणक्यसूत्र,नीति-वैराग्यशतक, मनुस्मृति हैं ।

बजा वेद की बाँसुरिया

ऋषि दयानन्द आए, सोते उठाए भारत के नरनारि जी
बजा वेद की बाँसुरिया ।
सत्यार्थ-प्रकाश को लिखकर, दे गए, अनुपम ज्योति
नहीं आते तो आज देश की दीन दुर्दशा होती
यज्ञ रचाये, वेद पढ़ाये, दूर किया अन्धकार जी
बजा वेद की बाँसुरिया ॥

—पृथ्वीसिंह वेधड़क

स्वामी दयानन्द बोधरात्रि

छा जाता तम बृहत् आवृतमय, एक समान सभी में ।
दीख न पाता सत्य प्रकाशन गहन अज्ञान सभी में ॥
जितना वेग बढ़े हों बढ़ता, लौट न सके कदापि ।
जब सीमा आ जाती है तब बढ़ न सकते कदापि ॥
इस युग में था एक संन्यासी वेदज्योति ले आया ।
उसअँधेरी यामिनि युग में, शंकर का ध्यान लगाया ॥
शिव शिव करते रहे प्रेमयुत, शिव सद्रूप न पाया ।
आश्चर्य हो देखे 'इत-उत', कहाँ है शिव, न आया ॥
कब आएँगे खाना खाने, है इन्तजार हमारा ।
रह गई है रात्रि अन्धेरी, आना नही विचारा ॥,,
टकराई थी तम की सीमा, मूलशंकर भी जागे ।
जागा भारत भ्रम-शिव भागा, बोध रात्रि के आगे ॥

कवि कस्तूर चन्द "घनसार" पीपड़ शहर(राज०)

कृपया उत्तर अवश्य दें

प्रिय संरक्षक तथा सदस्यगण,

सादर नमस्ते !

निवेदन है कि महगाई और आर्थिक सङ्कट के कारण आपकी वेदज्योतिका मूल्य आप सभी केलिए २०)किया गया है। कृपया स्वीकार करें व शीघ्र भेजें। वर्ष इस अङ्क से माना जायेगा । यदि किसी कारण स्वीकार न हो तो भी कृपया आप उत्तर अवश्य दें ।

—निवेदक आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

वेदज्योति की नयी योजना

देवी इतरा के पुत्र महर्षि महीदास-कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

का

शुद्ध सरल हिन्दी अनुवाद

सम्पादक–आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम.ए., काव्यतीर्थ

साथ में अष्टाध्यायी; निघण्टु, निरुक्त भी छपेगा।

ऋग्वेद के लगभग १००० (एक हजार) मन्त्रों की व्याख्यासहित 'वेदज्योति' में मार्च १९८२ से प्रतिमास क्रमशः प्रकाशित किया जायेगा।

पूरा छपने पर मूल्य ३०) तीस रुपये होगा।

अग्रिम मूल्य २०) रु०, बीस रुपये। सदस्यों को सदस्यता शुल्क १०) रु० के अतिरिक्त केवल १०) में दिया जायेगा।

इस समय ऐतरेय ब्राह्मण [हिन्दी] कहीं नहीं मिलता। यह ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रथम है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका तथा संस्कार-विधि में इसका पढ़ना अनिवार्य बताया है। इसमें ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम आदि सोम यागों का, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, षडह (६ दिनों का यज्ञ), द्वादशाह (१२ दिनों का यज्ञ), राजसूय आदि यज्ञों का और दीक्षणीय, प्रायणीय, उदयनीय, आतिथ्य, प्रवर्ग्य आदि इष्टियों की विधियाँ और उनका रहस्य, रहस्यों को बताने वाले आख्यान (जैसे सौपर्ण, अजीगर्त और शुनःशेप की कथा) तथा आख्यायिकायें पढ़ने को मिलेंगी।

इस अवसर को न चूकिये। सभी वैदिकधर्मियों को अपने लिये और अपनी संस्था के लिये इसको अवश्य लेना चाहिए।

कृपया २०) बीस रुपये तत्काल भेजिये। सदस्य-गण भी १०) सदस्यता शुल्क के साथ १०) रु० = कुल बीस रुपये मनीआर्डर से शीघ्र भेजें।

—वीरेन्द्रमुनि शास्त्री, उपाध्यक्ष विश्ववेदपरिषद्
सी ८१७ महानगर, लखनऊ–२२६००६

शोक समाचार

गत मासों में हुए निम्नलिखित आर्य महानुभावों के देहावसान पर विश्ववेदपरिषद् और वेदज्योति शोक प्रकट करती है और परमात्मा से उनकी शान्ति और सद्गति की प्रार्थना करती है—

१–सर्वश्री डा० पं० वी० डी० लक्ष्मण, फीजी
२–नैष्ठिक ब्रह्मचारी महावीर गु. झज्झर १६-७-८१
३–पं. शंकरलालजी, हलद्वानी [नैनीताल] २६-७-८१
४–गोपालदत्त शास्त्री, कोटद्वार ३०-८-८१
५–दीवानसिंह आर्य, आर्यसमाज रामगढ़ १३-८-८१
६–बहादुरराम आर्य, रामगढ़ [नैनीताल]
७–लाला जगतनारायण, लुधियाना ९-९-८१
८–लक्ष्मीचन्द्र वानप्रस्थी; चंडीगढ़ २७-९-८१
९–डा० चन्द्रभानु जी, हरिद्वार २१-९-८१
१०–श्रीमती सत्यभामा आर्या, बरेली २८-९-८१
११–धर्मपत्नी श्री सच्चिदानन्द एम० एस-सी०, बरेली
१२–श्री धर्मप्रकाश आर्य, बरेली २५-९-८१
१३–श्री भद्रपालसिंह आर्योपदेशक, हाथरस २९-९-८१
१४–श्रीमती कमलादेवी प्रधाना, लखनऊ २-१०-८१
१५–ब्रह्मचारी वसुकान्त आर्य, हैदराबाद ९-१०-८१
१६–श्री महेन्द्रदेव शास्त्री, दरियागंज दिल्ली
१७–श्री परम वेदालंकार, दिल्ली १०-१०-८१
१८–वैद्य सत्यपाल उपाध्याय, चंडीगढ़ २०-१०-८१
१९–श्रीमती सुखदा गौतम, कानपुर ३०-१०-८१
२०–श्री सुरेन्द्रकुमार कपूर, अमृतसर २५-१०-८१
२१-२२–श्रीमती शुद्धोदेवी, चौ० लखीराम, मटिण्डू
२३–सुदेश ब्रह्मचारिणी आ.क.गुरु.नरेला १८-१०-८१
२४–श्रीमती मायादेवी रायपुर १२-१०-८१
२५–श्री रामदयालु शास्त्री अलीगढ़ २१-११-८१
२६–श्री सखाराम तुङ्गार नांदेड़ २६-११-८१
२७–श्रीसेठ दीपचन्द आर्य, आर्षट्रस्टदिल्ली २८.१२.८१
२८–श्री त्रिलोकचन्द्र शास्त्री जालन्धर २६-१२-८१
२९–श्री चन्द्र मणि पाठक शास्त्री लखनऊ १३.१२.८१
३०–श्री डा० गुरुदत्त शिकोहाबद १६.१२.८१
३१–श्री स्वामी ओमाश्रित सरस्वती दिल्ली ९.१.८२

चंडीगढ़ शाखा समाचार

११-१२-८१ को मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर वेद-गोष्ठी और यज्ञ श्री देवराज वर्मा के घर पर हुआ। प्रो० पी० डी० शास्त्री ने ऋग्वेद के कुछ सूक्तों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। ३१) तीन परिषद् को मिला। यजमान ने सबका सत्कार किया। कुछ नये सदस्य भी बने।

पौष पूर्णिमा ९-१-८२ को पौर्णमासेष्टि यज्ञ और वेदगोष्ठी श्रीमती सत्यवती आर्या के घर पर हुई। प्रो० बालकृष्ण दीवान वेदालङ्कार ने यजुर्वेद के ईश उपनिषद् पर अपने विचार रक्खे। गृहपति ने सब का सत्कार किया। परिषद् को यजमान और दान-पात्र से २५ रुपये प्राप्त हुए।

—आशुराम आर्य, मन्त्री विश्ववेदपरिषद्, चंडीगढ़

❀ योग-साधना शिविर ❀

स्वामी नन्द योग साधना (ब्रह्मयज्ञ) एवं चिकित्सा शिविर, नर्मदा प्रपात बड़केश्वर (खंडवा) में २६ दिसम्बर ८१ से १४ जनवरी ८२ तक हुआ।

पौष की वेद-गोष्ठियां

मार्गशीर्ष व पौष पूर्णिमा को आर्यसमाज संयोगितागंज इन्दौर में पौर्णमासेष्टि और वेद-गोष्ठी हुई। स्थानीय सभी आर्यसमाजों ने भाग लिया। श्री प्रेमकिरण शर्मा और अध्यक्ष श्री वीरसेन वेदश्रमी जी ने अथर्ववेद के उच्छिष्ट देवता पर विशेष विवेचन किया। अन्त में वामदेव्य गान हुआ।

❀ लखनऊ में वेद-संगोष्ठी ❀

११ दिसम्बर १९८१ और ९-१-८२ मार्गशीर्ष तथा पौष पूर्णिमा को वेद-सदन में विशेष यज्ञ और वेद-संगोष्ठी हुई जिस में श्री वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, श्री पवन कुमार, श्री वेदप्रिय शर्मा, श्री महावीर प्रसाद आदि ने अथर्व के कुन्ताप सूक्त पर विचार किया।

विदेश में वेद-प्रचार

(परिषद् के संयुक्त मन्त्री श्री संजयकुमार बी०ई० सपरिवार लीसोथो [दक्षिण अफ्रीका के निकट] गये हुए हैं उनका दस दिसम्बर का पत्र इस प्रकार है—

"यहाँ पर हमारा रविवार का सत्संग नियमित रूप से चल रहा है। मेरे पास वेद, अंग्रेजी की संस्कार विधि, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका और सत्यार्थ-प्रकाश हैं। अभी हम डरबन नहीं जा पाये। शायद जनवरी में जायें।"

—ॐ—

❀ सदस्यों से प्रार्थना ❀

आपका वर्ष पूर्ण हो गया है कृपया आगे के लिए २० रुपये शीघ्र भेजें, अन्यथा पत्रिका न भेजी जायेगी।

—ओ३मित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व-वेद-परिषद्

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ [उ.प्र.]
मुद्रक—आदर्श प्रेस लखनऊ दूरभाष ८४१०१

सेवायाम् श्री

ओ३म्

वर्ष ६ अङ्क ५
शुक्र, ज्येष्ठ, २०३९ वि०
मई १९८२ ई०
वेदसंवत्— १९६०८५३०८३

वेद-ज्योति

सम्पादक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री
ऐम. ए. काव्यतीर्थ
सी ८१७ महानगर लखनऊ ६
दूरभाष ८४१०१

ऐतरेय ब्राह्मण (अध्याय ३) सोम आतिथ्येष्टि अंक

भगवती माता गायत्री

ओ३म् भूर्भुव स्वः। तत् सवितुर् वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥
यजु० अ० ३६। मन्त्र ३

श्रद्धा से सब जपो, बुद्धि की दात्री, गायत्री माता।
जिसका भूः, फिर भुवः और स्वः तीनों लोकों से नाता॥
अक्षर ओं त्रिमात्रिक, ऋक्-यजु-साम सभी की व्याख्याती।
अचल अथर्व, ब्रह्म, भूमा में जो साधक की ध्रुव धात्री॥
सविता के वरणीय भर्ग, उस श्रेष्ठ तेज का ध्यान करो।
ध्यान-धारणा द्वारा जिससे, भीतर भाव-विभूति भरो॥
प्रज्ञा प्रेरित रहे सत्य में ऋत-चिन्मय आनन्दमयी।
प्राकृत अंशों से ऊपर उठ बनो वीर विश्रुत विजयी॥
पल-पल प्राण-अपान स्वरों में ओं नाम का जप चलता।
अवयव-अवयव देह-देह का जिसकी ध्वनि-ध्वनिमें पलता॥
'गायन्तं त्रायते' मधुर वाणी – वीणा लेकर गाओ।
प्रातः सायं प्रतिदिन साधक, माँ की चरण-शरण जाओ॥
वेद ज्ञान का कोष, वेद का सार भरा गायत्री में।
होकर एक, अमेय शक्ति का स्रोत इसी सावित्री में॥
ऋषि, मुनि, साधक, भक्त इसी के अवलम्बन से सिद्ध हुए।
भीत अभीत, अरक्षित रक्षित, दलित-दरिद्र समृद्ध हुए॥

—डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' आर्यनगर-कानपुर

मंगल ग्रह में ओं व ॐ

श्री सूरज गुप्त, लक्ष्मीबाई नगर दिल्ली ने हि० टाइम्स १७-८-७६ में लिखा है कि मंगलके फोटो व नक्शतश्तरीसे मिले पत्थर पर छपा अक्षर ॐ या ओं है।

वैदिक संध्या योग साधना



इन्दौर में १८ से २७ मार्च तक विश्व वेदपरिषद् के अध्यक्ष श्री वीरसेन वेदश्रमी द्वारा शिविर सम्पन्न हुआ। अब आप रिवाड़ी में आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री के साथ २३-४-८२ से ७-५-८२ तक ऋग्वेद से विशाल ब्रह्म-पारायण महायज्ञ सम्पन्न करा रहे हैं।

❀ चारों वेदों के मन्त्रों की संख्या ❀

	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद	❀ योग
सब-	१०५२२	१९७५	१८७५	५९७७	२०३४९
पुनः-	७००	८५०	१७८५	१८५०	५१८५
शेष-	९८२२	११२५	९०	४१२७	१५१६४

❀ विशेषांकों-सहित वार्षिक मूल्य २०) आजीवन २००)। विदेश में वार्षिक ४०) एकप्रति २ रुपये ❀

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका में तीसरा अध्याय

सोम की आतिथ्य इष्टि

खण्ड १—सोम का खरीदना

पूर्व दिशा में देवों ने सोम राजा को खरीदा था। इसलिये यह पूर्व में ही खरीदा जाता है। उन्होंने १३ वें मास (मलमास) में खरीदा था इसलिये वह अनुकूल नहीं है। सोम-विक्रयी अनुकूल नहीं होता, वह पापी होता है।

खरीदकर मनुष्यों के पास लाये जाते हुए सोम की दिशाएँ, वीर्य और इन्द्रियाँ नष्ट होने लगीं। उन्हें एक ऋचा से, फिर दो से, तीन से, चार से, पाँच से, छः से, सात ऋचाओं से रोकना चाहा किन्तु न रोक सके। (अन्त में) उन्हें आठ ऋचाओं से रोका और प्राप्त किया, इसलिये अश् धातु से बना 'अष्ट' शब्द यथार्थ सार्थक है।

जो यह जानता है वह अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेता है। इसलिये इन (सोम प्रवहण) आदि कर्मों में ८-८ ऋचायें, इन्द्रियों और वीर्यों के रोकने के लिये बोली जाती हैं ॥१॥

खण्ड २—विधि १

अध्वर्यु ब्रह्मा के लिये प्रैष (आदेश) देता है—"खरीदकर लाये जाते हुए सोम के लिये मन्त्र बोलिये।" होता निम्नलिखित मन्त्र ३ बार बोलता है—

१४९-१५० [१-३] (१) भद्राद् अभि श्रेयः प्रेहि,
बृहस्पतिः पुर एता ते अस्तु।
अथ ईम् अवस्य वर आ पृथिव्या
आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः ॥
[तैत्तिरीय संहिता १.२.३.३]

टिप्पणी—उपलब्ध शौनक संहिताके अथर्ववेद ७.८.१ में इस मन्त्र में 'अभि' के स्थान पर 'अधि', 'अथ ईम् अवस्य' के स्थान पर 'अथ इमम् अस्या', 'शत्रून्' के स्थानपर 'शत्रून्' 'सर्ववीर:' के स्थानपर सर्ववीरा: है।

अर्थ—इस कल्याणकारी स्थान से चलकर तू श्रेय (दूसरे सुखस्थान) को प्राप्त हो—इस प्रथम चरण के द्वारा (सोम को प्राचीनवंश स्थान पर पहुंचाकर) यजमान को श्रेयलोक प्राप्त कराता है। बृहस्पति तेरा आगे से चलनेवाला हो—इस द्वितीय चरण से बृहस्पति=ब्रह्मवेत्ता को (सोम का) नेता बनाने से यज्ञकर्म नष्ट नहीं होता।

तीसरा चरण 'अब इसको पृथिवी के श्रेष्ठ स्थान पर रक्खो'-कह कर, सोम को देवयजन स्थान पर रखकर, चौथा चरण 'तू सर्वप्रकार वीर और वीरों-वाला होकर शत्रुओं को दूर कर'—यह यजमान के लिये कहकर पापरूपी शत्रु को दूर करता और नीचे दबाता है।

१५१ [४] (२) सोम यास्ते मयोभुवः ऊतयः सन्ति
दाशुषे। ताभिर्नो अविता भव ॥
(देखो पृष्ठ ७, सं० ३०)

अर्थ—हे सोम, दानी के लिये जो तेरी सुखकारी रक्षायें हैं, उनसे तू हमारा रक्षक हो।

१५२ [५] (३) इमं यज्ञमिदं वचो, जुजुषाण उपागहि।
सोम त्वं नो वृधे भव ॥

अर्थ—हे सोम, इस यज्ञ और वचन को सेवन करता हुआ तू आ और हमारी वृद्धि के लिये हो।

१५३ [६] (४) सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचो-
विदः। सुमृडीको न आविश ॥

अर्थ—हे सोम, वेदवाणी जाननेवाले हम तुझे वेदवाणियों से बढ़ाते हैं। तू हमारे लिए अच्छा सुखकारी हो। [ऋ० १.९१, ९-११]

ये तीनों सोम देवतावाली, गायत्री छन्द की तीन ऋचायें हैं। सोम राजा के लाते समय स्वयं गायत्री

इस तृच् को सोम देवता के साथ गायत्री छन्द से समृद्ध करती है।

१५४ [७] (५) सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन,
सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विष-स्पृत् पितुषणिर्हि एषाम्,
अरं हितो भवति वाजिनाय ॥
(ऋ० १०.७१.१०)

अर्थ—(प्रथम पाद) सर्वे०—यश ही सोम राजा है। इसके खरीदने से सब मित्र प्रसन्न होते हैं—जो यज्ञ में धन पाने का इच्छुक होता है और जो नहीं होता (केवल यज्ञ देखने को ही आता है)।

(द्वितीय पाद) सभा०—यह सोम राजा ही ब्राह्मणों का सभासाह=सभा में जीतने वाला सखा है।

(तृतीय पाद में) किल्विषस्पृक्=पाप से बचाने वाला। यह सोम ही किल्विष से रक्षा करनेवाला है।

यज्ञ में जो श्रेष्ठता को प्राप्त किये हुए है, वही (कुछ त्रुटि से) किल्विष हो जाता है। इसीलिये कहते जाते हैं—"हे होता, अन्यचित्त होकर मन्त्र न पढ़ो।" "(हे अध्वर्यु), व्यग्र होकर अनुष्ठान मत करो—पाप को न प्राप्त होओ।" पितुषणिः=अन्न और दक्षिणा पितु है, उसे इस सोम के निमित्त (यजमान) ऋत्विजों के लिये देता है। इस प्रकार सोम को इनका अन्नसनि बनाता है।

(चतुर्थ पाद) अरं०—वह वाजिन (इन्द्रिय-शक्ति और वीर्य) के लिये पर्याप्त समर्थ हितकारी होता है।

जो ऐसा जानता है उसकी इन्द्रियाँ और वीर्य वृद्ध अवस्था तक नष्ट नहीं होते।

१५५ [८] (६) आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयम्,
दधातु नः सविता सुप्रजाम् इषम्।
स नः क्षपाभिर् अहभिश्च जिन्वतु,
प्रजावन्तं रयिम् अस्मे समिन्वतु ॥
[ऋ० ४.५३.७]

अर्थ—वह देव [परमात्मा, सूर्य, सोम] हमें सब प्रकार से प्राप्त हो और ऋतुओं से घर को बढ़ाये। वह सोम उस समय प्राप्त हुआ होता है। ऋतुएँ सोम राजा के भाई हैं, जैसे मनुष्य के भाई होते हैं। [होता] उनके साथ ही इस [सोम] को बुलाता है। वह सविता [उत्पादक परमात्मा, सूर्य, सोम] अच्छी सन्तान और अन्न दे—यह आशीर्वाद को माँगना है। वह दिन-रात कृपा करे और सन्तानयुक्त धन दे—यह आशीर्वाद है।

१५६-१५७ [९] (७) या ते धामानि हविषा यजन्ति,
ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो,
अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥
[ऋ० १.९१.१९—य० ४.३७]

अर्थ—हे सोम [परमात्मा, विद्वान्, सोम ओषधि] जो तेरे स्थान और पदार्थ, हवि से, यज्ञ को संगत करते हैं वे सब यज्ञ के चारों ओर वर्तमान हों। हमारे धन और प्राणों को बढ़ानेवाला, दुःख से तारनेवाला, उत्तम वीर और वीरों से युक्त, वीरों को न मारता हुआ, कायरों को भी सुख देता हुआ तू घरों में अच्छे प्रकार गति कर [प्राप्त हो]।

दुर्य का अर्थ है घर। आते हुए सोम राजा से यजमान के घरवाले डरते हैं। होता इस ऋचा को पढ़कर शान्ति से उस [सोम] को शान्त करता है। वह शान्त होकर इस यजमान की सन्तान और पशुओं की हिंसा नहीं करता।

१५८ [१०-१२] (८) इमां धियं शिक्षमाणस्य देव,
क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम,
सुतर्माणम् अभि नावं रुहेम ॥
[ऋ० ८.४२.३]

अर्थ—हे वरुण देव [परमेश्वर और अध्यापक], आप शिक्षा प्राप्त करनेवाले की इस धी [बुद्धि, कर्म], क्रतु [यज्ञ, वीर्य] और दक्ष [बल, प्रज्ञान] को और अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कीजिये। जिस [धी, क्रतु, दक्ष] से सब दुरितों [पापों, व्यसनों, दुःखों] को हम पार कर जायें और अच्छी प्रकार तारनेवाली [सुक्रिया-विज्ञान, यज्ञ, वेदवाणी रूपी] नाव पर चढ़ जायें।

होता वरुण देवतावाली इस ऋचा को तीन बार पढ़कर समाप्त करता है। जब तक सोम [वस्त्र में] बँधा रहता है और यज्ञशाला के प्राचीनवंश आदि स्थानों में रहता है तब तक वरुण देवतावाला रहता है। होता स्वयं ही इस मन्त्र को पढ़कर सोम को उसी के

[वरुण] देवता और उसी के छन्द [त्रिष्टुप्] से समृद्ध करता है।

(मन्त्र में) शिक्षमाण से अभिप्राय यज्ञकर्ता से है। वरुण हमें क्रतु=वीर्य, दक्ष=प्रज्ञान दे। यज्ञ, की आकर्षक क्रियाएँ और वाणी ही सुतर्मा नाव है। (वहाँ) वेदवाणी रूपी नाव पर चढ़कर यजमान उसके द्वारा स्वर्गलोक (सुख-स्थान) को प्राप्त करता है।

होता उपर्युक्त रूप-समृद्ध ८ मन्त्रों को पढ़ता है। जो मन्त्र किये जाने वाले यज्ञकर्म को बताये वह रूप-समृद्ध कहाता है। उसी से यज्ञ सफल होता है। उन ८ मन्त्रों में पहले को ३ बार और अन्तिम को ३ बार पढ़ने से ८ मन्त्र १२ हो जाते हैं। १२ ही महीने संवत्सर होते हैं और संवत्सर प्रजापति होता है।

जो ऐसा जान लेता है वह इन ही प्रजापति से सम्बन्ध रखनेवाली ऋचाओं से समृद्ध हो जाता है। पहली और अन्तिम ऋचा को ३-३ बार पढ़कर होता स्थिरता (प्रबलता और अविच्छेद) के लिये यज्ञ (रूपी रस्सी) की ही गाँठों को (दोनों सिरों पर) बाँधता है ॥२॥

खण्ड ३ (सोम को गाड़ी से उतारना)

विधि २—जब सोम को गाड़ी से उतारें तो एक बैल गाड़ी में जुता रहता है और दूसरा खोल दिया जाता है। यदि दोनों को खोल दिया जाय तो यह सोम पितृ देवता वाला (पितरों के काम में आने-वाला-घरेलू) हो जाय (देवयोग्य नहीं रहे), यदि दोनों को गाड़ी में जुते रखें तो पुत्र आदि योग-क्षेम न पा सकें। वे तितर-बितर हो जायें। खुला हुआ बैल घर में स्थित मनुष्यों का रूप है और जुता हुआ बैल क्रियाओं का रूप है। इसलिये एक बैल को जुता रखते हुए दूसरे को खोलकर वे सोम को गाड़ी से उतारते हैं और योग-क्षेम दोनों को प्राप्त करते हैं।

देवों और असुरों ने इन चारों दिशाओं में युद्ध किया। वे इस प्राची दिशा में लड़े। वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे दक्षिण दिशा में लड़े, वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे उत्तर दिशा में लड़े, वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा में लड़े, वहाँ देव नहीं हारे। यह दिशा अपराजिता है। इसलिए इस दिशा (ईशान) में सोम को गाड़ी से उतारने का यत्न करे-करावे। इस प्रकार ऋणरहित करने वाला स्वामी यत्न करे-करावे।

वे देव बोले— राजा के न होने से ही हम नहीं जीत पाते' अतः राजा बनावें—यह निश्चय कर उन्होंने सोम को राजा बनाया। उन्होंने सोम राजा के द्वारा सब दिशाओं को जीता। जो यज्ञ करता है वह सोम राजावाला है। गाड़ी और यजमान के पूर्व में स्थित होने पर सोम रक्खा जाता है। इससे वह पूर्व दिशा को जीतता है। उसको दक्षिण में ले जाते हैं, उससे दक्षिण दिशा को जीतता है। उसे पश्चिम की ओर मोड़ते हैं, उससे पश्चिम दिशा को जीतता है। उसको उत्तर की ओर स्थित करके सोम को गाड़ी से उतारते हैं। उससे वह उत्तर दिशा को सोम राजा के द्वारा जीत लेता है।

जो इस प्रकार जान लेता है वह सब दिशाओं को जीत लेता है ॥३॥

खण्ड ४ (सोम की आतिथ्य-हवि)

विधि ३—(पुरोडाश निर्माण)

सोम राजा के आ जाने पर उसके आतिथ्य के लिये हवि बनायी जाती है।

क्योंकि सोम राजा यजमान के घरों में आता है इसलिये यह हवि निरूपित की जाती है। सोम के अतिथि होने के कारण यह आतिथ्य है।

नौ कपालों पर संस्कृत पुरोडाश बनाया जाता है। प्राण ९ हैं (७ शीर्षस्थ प्राण और २ नीचे के भाग में स्थित)। उन प्राणों के सामर्थ्य के लिये और प्रज्ञान के लिये (पुरोडाश ९ कपालों पर बनाया जाता है)। यह पुरोडाश विष्णु देवता का होता है। विष्णु ही यज्ञ है। उसी विष्णु देवता से और उसी के अपने छन्द (गायत्री और त्रिष्टुप् की अनुवाक्या और याज्या) से यज्ञ को समृद्ध करते हैं—

पुरोऽनुवाक्या—

१५९-१६३ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे ॥

(५ बार— ऋ० १.२२.१७; यजु० ५.१५; साम २२२, १६६९; अ० ७.२६.४)

अर्थ—विष्णु [व्यापक परमात्मा तथा सूर्य] ने

यह संसार बनाया। तीन प्रकार से स्थान निश्चित किया [द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी]। समूढ [परमाणुमय जगत्] इसके पांसुर [परमाणुयुक्त आकाश] में है।

१६४ याज्या—तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम्,
नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था,
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
[ऋ० १.१५४.५]

अर्थ—मैं उस पराक्रमी विष्णु के प्रिय मार्ग को प्राप्त करूँ जहाँ दिव्य गुण चाहनेवाले—मनुष्य प्रसन्न होते हैं। वही इस प्रकार से हमारा बन्धु है। विष्णु के परमपद [मोक्ष] में मधु [आनन्द] का उत्स [कुआँ, जलाशय, स्रोत] है॥

खरीदे हुए सोम राजा के साथ सभी छन्द और पृष्ठ [बृहद्, रथन्तर, वैरूप आदि सामवेदोक्त पृष्ठ स्तोत्र] उसके पीछे [अनुचर होकर] आते हैं। राजा के पीछे जितने आया करते हैं उन सबके लिये आतिथ्य किया जाता है।

['अग्नेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा'—इससे गायत्री का 'सोमस्यातिथ्यमसि विष्णवे त्वा'—इससे त्रिष्टुप् का आतिथ्य किया जाता है।]

सोम राजा के आ जाने पर अग्नि का मन्थन करते हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे किसी मनुष्य राजा अथवा अन्य किसी योग्य के आने पर उसे बैल [गाड़ी में जोतने और खेती के लिये] और गौ [पालन के लिये] दिया करते हैं। उसी प्रकार यहाँ अग्निमन्थन करते हैं, क्योंकि अग्नि ही देवों का पशु है॥४॥

खण्ड ५

विधि ४—अग्नि-मन्थन

[अग्नि के लिये १३ मन्त्र—पहले तथा अन्तिम को ३-३ बार पढ़े जाने से १७ मन्त्रों का पाठ]

विधि ५—अध्वर्यु [होता से] कहता है—"मथी जाती हुई अग्नि के लिये मन्त्र बोलिए"—

वह होता सविता देवतावाली निम्नलिखित ऋचा को ३ बार पढ़ता है—

१६५ [१-३] (१) अभि त्वा देव सवितः,
ईशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे॥
(ऋ० १.२४.३)

प्रश्न करते हैं कि मथ्यमान अग्नि के लिये मन्त्र पढ़ने को कहा था। फिर सविता देवता का मन्त्र क्यों पढ़ दिया? इसका उत्तर—

क्योंकि सविता [परमात्मा और सूर्य] सब उत्पन्न पदार्थों का स्वामी है और सविता से प्रेरित होकर ही इस अग्नि को मथते हैं, इसलिये सविता देवता की ऋचा को पढ़ते हैं।

अर्थ—हे देव सविता, सभी स्वीकरणीय पदार्थों के स्वामी, सदा रक्षक, सेवनीय तुझको लक्ष्य करके ही हम सदा याचना करते हैं।

१६६-१६८ [४] (२) मही द्यौः पृथिवी च न,
इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः॥
(ऋ० १.२२.१३, य० ८.३२, १३.३२)

अर्थ—बड़ी द्यौ और पृथिवी इस यज्ञ को पूर्ण करें और हमें पोषक गुणों से पूर्ण करें॥

प्रश्न करते हैं कि 'जब मथ्यमान अग्नि के लिये मन्त्र पढ़ना है तो द्यावा-पृथिवी वाला मन्त्र क्यों पढ़ा?' उत्तर यह है कि 'इस उत्पन्न अग्नि को देवों ने द्यावा-पृथिवी [सूर्य और पृथिवी] से ही ग्रहण किया और आज भी ग्रहण करते हैं, इसलिये द्यावा-पृथिवी वाला मन्त्र पढ़ना उचित है।

अब अग्नि देवता और गायत्री छन्द की तीन ऋचाएँ होता पढ़ता है। अग्नि के मथने के समय अपने ही अग्नि देवता से और अपने [गायत्री] छन्द से उसे समृद्ध करता है।

१६९-१७२ [५] (३) त्वामग्ने पुष्करादधि,
अथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥
(ऋ० ६.१६.१३; य० ११.३२, १५.२२; साम ९)

अर्थ—हे अग्नि तथा विद्युत्, तुझको बुद्धिमान् अथर्वा=अहिंसक वैज्ञानिक विश्व के सिर के समान वर्तमान अन्तरिक्ष से मन्थन करके प्राप्त करता है।

१७३-१७४ [६] ४. तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः।
वृत्रहणं पुरन्दरम्॥

अर्थ--वृत्रों को नष्ट करनेवाले, शत्रु-नगर विदारक तुझ अग्नि को अथर्वा का रक्षक शिष्य सुख-कारक अग्नि आदि का ज्ञाता वेद-वेत्ता ऋषि प्रकाशित करे।

१७५-७६(७)५ तमु त्वा पाथ्यो वृषा समींधे दस्युहन्तमम्।
धनञ्जयं रणे रणे ॥

(ऋ० ६।१६।१४-१५ य० ११.३३-३४)

अर्थ—प्रत्येक रण में धन जीतने वाले, रोग आदि दस्युओं को नष्ट करनेवाले तुझ अग्रणी को ही जल-अन्न-मार्गों का प्रयोक्ता, सुख-वर्धक, बलवान् पुरुष अच्छी प्रकार से प्रकाशित करता और कराता है।

इसी प्रकार वह अग्नि को उसीक देवता और उसी के छन्दों द्वारा समृद्ध करता है। "अथर्वा निरमन्थत" ऐसा कहने से मन्त्र रूप-समृद्ध हो जाता है। अर्थात् जो क्रिया करनी होती है यदि वही मन्त्र में भी वर्णित हो तो उस मन्त्र को रूप-समृद्ध कहते हैं। रूप-समृद्ध मन्त्र से ही क्रिया सफल होती है।

यदि अग्नि न उत्पन्न हो तो बाधकों को दूर करने वाली नीचे की ऋचायें पढ़ीं जाती हैं--

❀ विधि ६—अतिरिक्त विधि ❀

अग्नि मन्थन में विघ्न निवारक ९ मन्त्र --

१७७. अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन् मर्त्येष्वा।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥१॥

अर्थ- शुद्ध कर्म वाला यह अग्नि अपनी यज्ञवेदी में मनुष्यों में प्रकाशमान हुआ, प्राणियों के शरीर को खाने वाले रोगाणुओं को नष्ट करता है।

१७८. उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे।
यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२॥

अर्थ- यह अग्नि तब अच्छी प्रकार हवि आदि से युक्त किया हुआ बढ़ता है, घृतों के प्रति प्रसन्न होता है जब इस अग्नि को जुहू आदि पात्र संगत होते हैं।

१७९. स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३॥

अर्थ- हवि से युक्त, मन्त्रमयी वाणी द्वारा प्रशंसनीय वह अग्नि अति दीप्त होता है, स्रुवा से सभी यज्ञ देवों से पूर्व ही घृत से सिक्त किया जाता है।

१८०. घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः।
रोचमानो विभावसुः ॥४॥

अर्थ—मधुर पदार्थ-युक्त, आहुति दिया हुआ, दीप्त प्रकाशमान अग्नि घी से समृद्ध किया जाता है।

१८१ जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।
तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५॥

अर्थ— हव्य को सर्वत्र पहुंचाने वाला; स्तुति के योग्य अग्नि देवों के लिए प्रज्वलित किया जाता है। मनुष्य उसकी प्रशंसा करते हैं।

१८२. तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत।
अदाभ्यं गृहपतिम् ॥६॥

अर्थ-- हे मनुष्यो, तुम अधर्षणीय, घर के पति उस अमर अग्नि की घी तथा प्रेम से सेवा करो।

१८३. अदाभ्येन शोचिषाऽग्ने रक्षस् त्वं दह।
गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥७॥

अर्थ-- हे अग्नि, तू अदम्य तेज से रोग-कृमियों को जला दे और यज्ञ का रक्षक होकर प्रदीप्त हो।

१८४. स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥८॥

अर्थ— वह तू अग्नि, अपने तेज से रोग-कृमियों को जला दे और बड़ी यज्ञ-वेदियों में दीप्तिमान हो।

१८५. तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥९॥ [ऋ० १०.११८.१-९]

अर्थ-विस्तृत निवास वाले यजमान लोग हवि के वाहक, मनुष्य सम्बन्धी संघ में अत्यन्त यज्ञ-योग्य उस अग्नि को वेद-मन्त्रों के साथ प्रज्वलित करते हैं।

ये मन्त्र रोगजन्तु आदि के मारने के लिये पढ़े जाते हैं क्योंकि जब अग्नि उत्पन्न नहीं होता है तो बाधक तत्त्व उसे रोक लेते हैं। जब एक या दो या अधिक मन्त्र पढ़ने पर अग्नि उत्पन्न हो जाय तो नीचे का मन्त्र पढ़ें—

१८६-१८७.(८)६. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि।
धनञ्जयो रणे रणे ॥ [ऋ० १.७४.३ साम१३८२]

अर्थ-जो प्रत्येक युद्ध में धन से जितानेवाला, वृत्र को नष्ट करनेवाला, परमेश्वर, विद्वान् तथा अग्नि दाती के धन उत्पन्न करता है, सब मनुष्य हिंसा रहित उसी के विचार को परस्पर उपदेश करें।

जो यज्ञ का रूप समृद्ध होता है उसी से यज्ञ सफल होता हैं। अब यह मन्त्र पढ़ते हैं —

१८८(९)७.आयं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ (ऋ० ६.१६.४०)

मन्त्र में 'हस्त' आया है। हाथ से ही अग्नि को मथते हैं। अग्नि शिशु के समान उत्पन्न होती है।

१८६ (१०) ८. प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् ।
आ स्वे योनौ निषीदतु ॥
—ऋ० ६.१६.४१

अर्थ—हे विद्वानो ! आप विद्वानों की रक्षा के लिये, ज्ञान वा धन के देनेवाले, तेजस्वी प्रजाओं और ऐश्वर्यों को भली प्रकार प्राप्त कराने वाले, अग्नि और अग्रणी पुरुष को अच्छी प्रकार पुष्ट करो वह अपने उचित स्थान पर स्थित हो।

यह मन्त्र उस समय के लिए उपयुक्त है जब अग्नि आहवनीय कुण्ड में डाला जाता है।

'आ स्वे योनौ निषीदतु' [वह अपने घर बैठे] का तात्पर्य यह है कि कुण्ड आहवनीय अग्नि का उचित स्थान है।

१९० (११) ९. आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥
—ऋ० ६.१६.४२

अर्थ—नाना विद्याओं में प्रसिद्ध-गुरु के अधीन विद्या से सम्पन्न, प्रिय, अतिथि के समान पूज्य, गृह के पालक अग्रणी को सुखकारी स्थान पर आदर से स्थापित करो।

इस मन्त्र में 'जातं' एक (अर्थात् अग्नि) है और 'जातवेद' दूसरा (अर्थात् आहवनीय)। 'प्रियं शिशीतातिथिम्' में यह जो (मथा हुआ) अग्नि है वह दूसरे अग्नि (अर्थात् आहवनीय) का प्यारा अतिथि है। 'स्योन आ गृहपतिम्' से (ऋत्विज) अग्नि को शान्ति के साथ (आहवनीय) में स्थापित करता है।

१९१–१९२ (१२) १०.
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥
—साम ८४४, ऋ० १.१२.६

अर्थ—जैसे एक आग से दूसरी आग को प्रज्वलित कर लिया जाता है और वही आहुति योग्य हवि को ग्रहण कर उसको नाना देश में पहुंचाता तथा ज्वाला रूप मुख से ग्रहण करता है। वैसे ही [कवि] क्रान्तदर्शी विद्वान् भी अग्नि के समान ज्ञानी पुरुष के साथ रहकर स्वयम् ज्ञानी हो जाता है तथा जीवात्मा के द्वारा परमात्मा का साक्षात् किया जाता है।

यह मन्त्र तो यज्ञ का अभिरूप ही है और ठीक है।

१९३ (१३) ११. त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥
—ऋ० ८.४३.१४

अर्थ—हे सर्वगतिप्रद परमात्मन् ! जिस हेतु तू अग्नि के साथ, अग्नि होकर भाषित होता है, मेधावी विद्वान् के साथ विद्वान् होकर, साधु के साथ साधु होकर, मित्र के साथ मित्र होकर प्रकाशित हो रहा है; अतः तू अगम्य और अबोध्य हो रहा है।

इस मन्त्र में एक अग्नि एक विप्र है और दूसरा अग्नि दूसरा विप्र। एक अग्नि एक सत्ता है और दूसरी अग्नि दूसरी सत्ता। 'सखा सख्या समिध्यसे' में एक सखा एक अग्नि है और दूसरा सखा दूसरी अग्नि है।

१९४ (१४) १२. तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरो यावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥
—ऋ० ८.८४.८

अर्थ—उत्तम कर्म एवं ज्ञानवाले, संघर्ष के स्थल व समय पर अथवा प्रतिद्वन्द्विताओं में आगे-आगे चलनेवाले, उस ज्ञान एवं कर्म शक्ति के प्रतीक अग्नि को उपासकजन अपने-अपने गृह तथा स्थान में अलंकृत करते हैं।

इस मन्त्र में 'स्वेषु क्षयेषु' का अर्थ यह है कि एक अग्नि दूसरी अग्नि का अपना ही घर है।

१९५–१९८ (१५–१७) १३.
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
—अथर्व० ७.५.१; य० ३१.१६; ऋ० १.१४.५०; १०.९०.१६।

इस मन्त्र से समाप्त करता है। देवों ने यज्ञ द्वारा ही यज्ञ किया। अग्नि द्वारा ही अग्नि में यज्ञ करके देव स्वर्ग को गये थे। 'यह पहले धर्म थे।' 'वे बड़े लोग [महिमानः] उसी स्वर्ग को प्राप्त हो गये जहाँ पहले साध्य लोग हैं। छन्द ही 'साध्य देव' हैं जो पहले अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ किया करते, व स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं। वे आदित्य और अंगिरा हैं जो अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ करके स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं। यह जो अग्नि की

आहुति है वह स्वर्ग में ले जानेवाली आहुति है। यदि यज्ञ करनेवाला ठीक ब्राह्मण न हो, तो भी यह आहुति देवताओं तक पहुंच जाती है। पापी से मिलकर दूषित नहीं होती।

यह तेरह मन्त्र हैं और सभी 'रूप समृद्ध' हैं। यज्ञ तभी सफल होता है जब मन्त्र यज्ञ का 'रूप समृद्ध' हो अर्थात् उसमें वही वर्णन हो जैसी क्रिया करनी है। इन तेरह मन्त्रों में पहला और अन्तिम तीन-तीन बार बोला जाता है। इस प्रकार यह सत्रह हो जाते हैं। 'प्रजापति' भी सत्रह अंगों वाला है। एक सम्वत्सर या बारह मास और पाँच ऋतुयें। प्रजापति ही संवत्सर है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजापति सम्बन्धी ऋचाओं द्वारा सफल हो जाता है। पहले और पिछले मन्त्र को तीन-तीन बार पढ़कर वह यज्ञ के आगे और पीछे में गाँठ लगा देता है जिससे वह यज्ञ बीच में से फिसल न सके।

खंड ६—आतिथ्य इष्टि

❀ विधि ७—आज्य भाग ❀

दोनों आज्य भागों की पुरोनुवाक्या यह हैं—

१९९-२०१. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥
—ऋ० ८.४४.१; यजु० ३.१; १२.३०

अर्थ—हे मनुष्यो, तुम लोग वायु औषधि और वर्षा जल की शुद्धि से सबके उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम वा ढाक आदि काष्ठों से अतिथिरूप अग्नि को नित्य प्रकाश करो फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट मधुर सुगन्धित अर्थात् दुग्ध, घृत, शर्करा, गुड़, केशर कस्तूरी आदि और रोगनाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं उनका अच्छी प्रकार नित्य अग्निहोत्र करके सबका उपकार करो।

२०२-२०४. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे ॥
—ऋ० १.९१.१६; ९.३१.४, यजु० १२.११२

अर्थ—हे राजन्! विद्वन्! छात्र! सोम औषधि तू सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो, तुझे सब तरफ से वीर्यवान् पुरुषों में होनेवाला उत्पादक बल प्राप्त हो। तू बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्ति करने में सहायक और यत्नवान् हो।

इन दोनों ऋचाओं में आतिथ्य का वर्णन हैं। इसलिये यह दोनों रूप-समृद्ध हैं। ऋचा की रूप-समृद्धता यही है कि जो क्रिया करनी हो उसका उसमें विधान हो। पहली 'अतिथि' वाली ऋचा का देवता अग्नि है। दूसरी का देवता सोम है, उसमें 'अतिथि' शब्द नहीं आया। यदि सोम को सम्बोधित करनेवाली किसी ऋचा में 'अतिथि' शब्द आता तो उस ऋचा का प्रयोग किया जाता। परन्तु यह ऋचा (ऋ० १.९१.१६) भी अतिथि के ही लिये हैं क्योंकि इसमें 'आपीन' अर्थात् मोटे होने की ओर संकेत करते हैं। जब अतिथि का सत्कार करते है तो मानो उसे मोटा करते हैं।

प्रधान होम

❀ विधि ८—प्रधान हवि की याज्या ❀

अग्नि और सोम की पुरोऽनुवाक्या ऋचा निम्नलिखित है—

२०५. जुषाणोऽग्निः आज्यस्य वेतु स्वाहा ॥१॥

अर्थ—सेवन किया जाता हुआ अग्नि आज्य (घृत) को प्राप्त करता हैं।

२०६. जुषाणः सोमः आज्यस्य हविषो वेतु ॥२॥

अर्थ—सेवन किया जाता हुआ सोम आज्य की हवि को प्राप्त करता है।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ ऋ० १.२२.१७
(अर्थ देखो पृष्ठ २१, मन्त्रसंख्या १५९–१६३)

और याज्या ऋचा यह है—

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥
—ऋ० १.१५४.५

अर्थ— (देखो पृष्ठ २२)

यह दोनों ऋचायें विष्णु सम्बन्धी हैं। पहली में तीन पद हैं। उसको बोलकर दूसरी के चार पदों को बोलता है। इस प्रकार सात पद हो जाते हैं।

आतिथ्य यज्ञ का सिर है। सिर में सात प्राण होते हैं। इस कृत्य को करके होता यजमान के सिर में मानों सातों प्राणों को रखता है।

विधि ६

स्विष्टकृत संयाज्य

स्विष्टकृत के दो संयाज्य मन्त्र यह हैं :—

२०७. होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्य यज्ञस्य केतुं रुशन्तम्। प्रत्यर्धि देवस्य देवस्य मह्ना, श्रिया त्व: अग्निमतिथिं जनानाम् ॥१॥

—ऋ० १०.१.५

अर्थ—हिंसारहित प्रत्येक यज्ञ के प्रकाशक, ग्रहण करनेवाले, प्रकाश से दीप्तिमान्, श्री से बढ़ानेवाले, प्रत्येक यज्ञ देवता के लिए, विचित्र रथ के समान हव्य-वाहक, लोगों के यज्ञादि कर्म में सेवनीय तुझ अग्नि (परमात्मा, अग्रणी शासक, भौतिक अग्नि तथा यज्ञाग्नि) को हम जानें।

२०८-२०९. प्र द्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भा:। अभि य: पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि: शुशोच ॥२॥ –ऋ. ७.८.४; यजु. १२.३४

अर्थ—जो दीप्तिमान् होकर, सूर्य के समान प्रकाशित होता, महान् होकर वह मनुष्यमात्र का मार्गदर्शक प्रकाशक रूप से विख्यात सुना जाता है, जो मनुष्यों में पालक जनों को प्राप्त कर अध्यक्ष रूप से विराजता है, वह दीप्तियुक्त होकर, देवों विद्वानों में प्रशंसित, अतिथिवत् पूज्य अग्नि (परमेश्वर, सेनापति और यज्ञाग्नि) सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि चमकता है।

यह दोनों अतिथि सम्बन्धी ऋचायें हैं। इसलिये रूप-समृद्ध हैं। जो ऋचायें रूप-समृद्ध होती हैं वे यज्ञ के लिए ठीक होती हैं। क्योंकि ऋचाओं में वही बात होती है जिसको कहना होता है।

यह दोनों त्रिष्टुभ् हैं इसलिये इन्द्र की शक्ति पाने के लिये ठीक हैं।

इला भाग

विधि १०—इळा का भक्षण

यह अवशिष्ट इडा भाग खाने से कृत्य समाप्त हो है। देवों ने अतिथि-इष्टि के अन्त में यज्ञ शेष खाया। उसी से वह सन्तुष्ट हो गये। इसलिये इस इष्टि की अन्तिम क्रिया यज्ञ-शेष इळा का भक्षण है।

इस इष्टि में प्रयाज आहुतियाँ दी जाती हैं, अनुयाज नहीं। प्रयाज और अनुयाज दोनों ही प्राण हैं। शिर के प्राण प्रयाज हैं। जो शरीर के निचले भाग के प्राण हैं वह अनुयाज हैं। जो अनुयाज आहुतियाँ देना वह ऐसा ही होगा मानों नीचे के प्राणों को काटकर शिर में रख दे। अर्थ यह है कि शिर के प्राण और निचले प्राण सब एक ही स्थान पर मिलें। इसलिये इस इष्टि में यदि अनुयाज न हों, केवल प्रयाज ही हों तो अनुयाज करनेवाले का अभिप्राय भी सिद्ध हो ही जाता है।

❀ पहली पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त ❀

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री कृत ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

—❀—

कृपया उत्तर अवश्य दें

प्रिय संरक्षक तथा सदस्यगण,

सादर नमस्ते ।

निवेदन है कि महगाई और आर्थिक सङ्कट के कारण आपकी वेदज्योतिका मूल्य आप सभी केलिए २०) किया गया है। कृपया स्वीकार करें व शीघ्र भेजें वर्ष इस अङ्क से माना जायेगा। यदि किसी कारण स्वीकार न हो तो भी कृपया आप उत्तर अवश्य दें

निवेदक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

वेदसंस्कृत की परीक्षाएँ

वेद-विश्व-विद्यालय की आगामी परीक्षाएँ श्रावणी के बाद ११ अगस्त १९८२ को होंगीं। परीक्षार्थी अपना नाम, पिता का नाम, पता की सूचना के साथ परीक्षा-शुल्क ५) शीघ्र भेजें। नियमावली–पाठविधि पूर्ववत् है। केवल 'संस्कृत-विशारद' की नई परीक्षा में शिक्षा, अष्टाध्यायी १ अध्याय, मूलरामायण, विदुरनीति योग-दर्शन,चाणक्यसूत्र, नीति-वैराग्यशतक, मनुस्मृति हैं। पौरोहित्य-विशारद में संस्कारविधि पाठ्य ग्रन्थ है।

पूर्ण शुद्ध हवन सामग्री

आर्य पर्व पद्धति के अनुसार ऋतुओं के अनुकूल बनी, सुगन्धित हवन सामग्री मँगाइये। मूल्य ४) किलो।

सुन्दर सस्ती छपाई

आदर्श प्रेस लखनऊ आपकी सेवाके लिए तैयार है

रोगोंकी अचूक चिकित्सा

सभी रोगों की, विशेषकर बच्चों और स्त्रियों की अचूक चिकित्साके लिए हमसे परामर्शकर लाभ उठायें।

—डा० अनिल कुमार, बी० एम० एस०

प्रबन्धक आदर्श प्रेस

वेद–सदन, सी ८१७ महानगर लखनऊ २२६००६

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वैदिकधर्म का झण्डा, घर घर में है लहराना।
"कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ,, का पाठ है पढ़ाना॥
भूले हैं वेदों को जो, अज्ञानता के वश हो।
उनको दिखाके मार्ग, उस पर है फिरचलाना॥
जितने विरोधी इसके उनको समझायेंगे हम।
पाखण्ड झूठ से फिर, सबको है अब बचाना॥
विषयों में फंस के मूर्ख, हीरा जन्म गंवाया।
कुछ भी नहीं बनेगा जब बिगड़ जाय ताना॥
कितने हैं दुःख उठाये फिर भी न होश आया।
वेदों को पढ़-पढ़ाकर सुनना है और सुनाना॥

—इन्द्रसेन विश्वप्रेमी गाजियाबाद

बनो बहादुर अरे वैदिकों, श्रम करने से नहीं डरो।
ध्येय सदा नजरों में रखकर सब आवश्यक काम करो।
समय आगया अरे आर्यो, संगठन प्रबल बनाना है।
वैदिक धर्म ओ३म् का झंडा घरघर में फहराना है॥
जग में पूज्य वही हो जाते याद सभी को आते हैं।
वेद-धर्म की रक्षा में जो अपने शीश कटाते हैं॥
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का नारा तुम्हें लगाना है।
विधर्मी बने जा अपने भाई उनको आर्य बनाना है॥

—कविराज श्री बनवारीलाल शादाँ ,दिल्ली

—ओ३म्—

सदस्योंसे प्रार्थना

आपका वर्ष पूर्ण हो गया है कृपया आगे के लिए। २० रुपये शीघ्र भेजें, यदि न भेजें तो कृपया सूचित करें।

— ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व-वेद-परिषद्

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ [उ.प्र.]
मुद्रक— आदर्श प्रेस, लखनऊ ६। दूरभाष ८४१०१

ग्रा० सं० 1222

सेवायाम् श्री

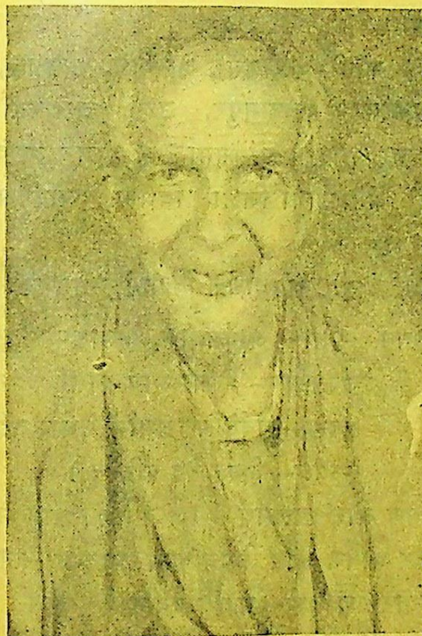
डा० [handwritten address] गुरुकुल कांगड़ी

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ४ अङ्क १०; इष(आश्विन)२०३७वि०; अक्टूबर १९८० ई०; दयानन्दाब्द १५६; वेदसंवत् १९६०८५३०८१

विश्व-वेद-परिषद् के प्रथम अध्यक्ष



ब्रह्मनिष्ठ स्वामी धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड
जन्म १२-२-१९०१ ई० देहान्त ८-११-१९७८ई०

—ओ३म्—❀

सम्पादक:—
आचार्य: वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०. काव्यतीर्थ:
सहायक-सम्पादक:—
आचार्य: सुधीन्द्रनाथशास्त्री एम० ए०

इस अङ्क में पढ़िये—

वार्षिक मूल्य भारत में १०.०० रुपये भारत से बाहर २५.०० रुपये इस अङ्क का मूल्य १.०० रुपया

वर्तमान अध्यक्ष का संक्षिप्त परिचय



१. नाम—वीरेन्द्र (जन्मपत्र में अङ्कित नाम 'सिद्धीश्वर'। प्रमाणपत्र में अङ्कित—वीरेन्द्र अग्निहोत्री)।

२. जन्मतिथि—आषाढ़ कृष्ण ५, १९७२ वि०, गुरुवार, १-७-१९१५ ई०।

३. जन्मस्थान—हाथरस (अलीगढ़ उ०प्र०)।

४. पूर्वजों का स्थान—उसहत (बदायूँ उ०प्र०)। पूर्वज-प्रपितामह श्री हरलाल (काम्पिल्य फर्रुखाबाद से आये)। पितामह श्री मङ्गलीलाल।

५. पिता—श्री हरिशङ्कर 'अग्निहोत्री', प्रधानाचार्य सरस्वती विद्यालय, बरेली। 'अग्निहोत्री' उपाधि आर्यसमाज बिहारीपुर, बरेली ने दी।

६. शिक्षा—सम्पूर्ण अष्टाध्यायी और यजुर्वेद कण्ठस्थ किया। साहित्याचार्य, एम० ए० (संस्कृत तथा हिन्दी), काव्यतीर्थ, एल० टी०।

७. गुरुजन—(१) श्री बिहारीलाल शास्त्री (२) प० रामचन्द्र सिद्धान्तालङ्कार (३) प० विद्यासागर वेदालङ्कार, एम० ए० आचार्य (४) आचार्य विश्वश्रवाः वेदाचार्य।

८. पूर्व-सेवा-कार्य—अध्यापक, असिस्टैण्ट रजिस्ट्रार गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस, सहायक निरीक्षक संस्कृत पाठशाला उ०प्र०, प्रिंसिपल और जिला विद्यालय निरीक्षक (सेवानिवृत्त १९७३ ई०)।

९. साहित्यिक कार्य—सम्पादक 'संव' (१९३९), वेदवाणी (वाराणसी) १९४८-४९, वेदज्योति, संस्कृत देववाणी। लेखक—सामवेद का सरल हिन्दी अनुवाद, यजुर्वेद का ३१ तथा ४०वाँ अध्याय, वैदिक धर्म शिक्षा (५ भाग), स्वास्थ्य शिक्षा, सत्यार्थ-सार, दीपावली-पर्व-परिचय, श्राद्ध-तर्पण का स्वरूप, संस्कृत-कलिका-विकास, भारतवर्षस्य भूगोल शास्त्रम्, संस्कृत-वाक्य-प्रबोध (विशिष्ट परिवर्द्धित), वैदिक छन्दः शास्त्र।

१०. विगत जीवन में सामाजिक कार्य—(१) आर्यसमाज की सदस्यता, १९३३ से आर्यसमाज बरेली के मन्त्री।

(२) झाँसी, वाराणसी, अल्मोड़ा, फतेहगढ़, रुद्रपुर, रायबरेली, बलरामपुर, उरई, अलीगढ़, बदायूँ, लखनऊ आदि में आर्यसमाज के प्रधान आदि रहे।

(३) अधिष्ठाता शिक्षा विभाग, आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र०।

(४) मन्त्री, सार्वदेशिक विद्यार्य सभा, नई दिल्ली।

वर्तमान—प्रधान, आर्यसमाज, कैलाशपुरी, लखनऊ।
उपप्रधान— जिला आर्य प्रतिनिधि सभा „
सदस्य—सार्वदेशिक धर्मार्य सभा, नईदिल्ली।
अध्यक्ष— विश्व वेद परिषद्।

११. भाषण और शास्त्रार्थ—१५ वर्ष की आयु में शास्त्री होकर भाषण और लेखन कार्य प्रारम्भ किया।

१२. वेद-पारायण यज्ञ—महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी मथुरा में सर्वप्रथम १० वर्ष की आयु में यजुर्वेद पारायण यज्ञ में पिताजी ने चारों वेद देकर सम्मिलित किया। १०० से अधिक यज्ञ सम्पन्न कराये। अजमेर में दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी पर चतुर्वेद-पारायण यज्ञ में वेदपाठी ऋत्विज् रहे जिसकी पूर्णाहुति पर शाहपुराधीश ने पैर छूकर चारों आदि दक्षिणा में दिये।

१३. पिताजी का मृत्यु समय सन्देश—"जीवन पर्यन्त वेद और आर्यसमाज का कार्य करते रहना"।



वेद-ज्योति

जीवा ज्योतिरशीमहि ।

(ऋ० ७.३२.२६; साम २५९; १४५६; अ० १८.३.६७; २०.७९.१)

हम सभी जीवात्मा ईश्वर और वेद की ज्योति को प्राप्त करें।

गाऊँ परम शान्ति के गान

ओ३म् द्यौः शान्तिर्, अन्तरिक्षँ शान्तिः, पृथिवी शान्तिर्, आपः शान्तिर्, ओषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्, विश्वे देवाः शान्तिर्, ब्रह्म शान्तिः, सर्वँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि ॥ ओ३म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

(यजुर्वेद ३६.१७)

पद्यानुवाद

ओ३म् रखे सुख-शान्ति-युक्त ही
द्यौ को सब के लिए सदा।
अन्तरिक्ष को भी सु शान्ति की
दे सम्पदा सदा सुखदा ॥
पृथिवी तथा जलों से अनुपम
शान्ति—सुमन सर्वदा खिलें।
औषधि और वनस्पतियों से
जग भर को सुख शान्ति मिलें ॥
विश्वे-देव रूपिणी सब हों
दिव्य शक्तियाँ शान्तिमयी।
ब्रह्म—प्रेरिका भव्य भावना
रहे न किंचिन् क्लान्तिमयी ॥
हों सब दिशा अशान्ति—रहित ही
स्वयं शान्ति भी शान्त रहे।
कहीं न उस की धारा कोई
हो अशान्त, दिग्भ्रान्त बहे ॥
उसी शाश्वती श्रेय-शान्ति का
प्रभो ! मुझे भी दो वरदान।
रख कर जीवन श्रम-श्रद्धामय
गाऊँ परम शान्ति के गान ॥
त्रय तापों से त्राण दिलादे
शान्ति अनूठी ऐसी हो।
म्रियमाणों में जीवन ला दे
उस संजीवनि जैसी हो ॥
तुष्टि पुष्टि से सदा समन्वित
शान्ति-भक्त हों गौरववान्।
सु कल्याण का पथ प्रशस्त हो
ऐसी कृपा करें भगवान् ॥
गाऊँ परम शान्ति का गान ॥

—❀—

— श्री रामनारायण माथुर ओ३म्प्रेमी, वानप्रस्थ, शाजापुर (म० प्र०)

राज्य-क्रान्ति के वैदिक सूत्र

(प्रो०आचार्य रमेशचन्द्र शास्त्री एम० ए० अजमेर)

जब मनुष्यों की उत्पत्ति हुई तो न कोई राज्य था न राजा। सभी मानव परस्पर धर्म के द्वारा शासित थे। परमेश्वर ने वेदों के द्वारा राज्य–शासन की विधि बतलाई। इसका वर्णन अथर्व वेद के आठवें काण्ड के दशम सूक्त में किया गया है—

विराड् वा इदमग्र आसीत्। तस्याः जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदम् भविष्यतीति। १

सोदक्रामत्। सा गार्हपत्ये न्यक्रामत्। २।

गृहमेधी भवति य एवं वेद।३।

सोदक्रामत् साऽऽह्वनीये न्यक्रामत्। ४

यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद।५

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्। ६

यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ७

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत्। ८

यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद। ९

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत्। १०

यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ११

सोदक्रामत् साऽऽमन्त्रणे न्यक्रामत्। १२

यन्त्यस्यामन्त्रणम् आमन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥१३॥

इन मन्त्रों में वैराज्यके पश्चात् क्रमश. नीचे लिखी ६ क्रान्तियों (शासन–क्षेत्रों) का निर्देश किया गया है—

१— गार्हपत्य. २— आहवनीय, ३ —दक्षिणीय, ४— सभा, ५— समिति, ८— आमन्त्रण।

१. गार्हपत्य क्रान्ति—(पारिवारिक शासन)

गृहपति अपने घर में गार्हपत्य अग्नि की स्थापना करके अपने यज्ञ आदि कार्य सम्पादित करता है। वह स्व परिवार में शासक के रूप में तथा पुत्र पौत्र आदि अन्य समस्त पारिवारिक जन शास्य के रूपमें रहते हैं।यहीं पर कर्तव्य, अभक्ष्य, दोष–अदोष आदि का विचार होता है। पति–पत्नी, पिता–पुत्र, भाई–बहिन आदि सम्बन्धों के नियम निर्धारित होते हैं। यही विधान अथवा संविधान का आरम्भ है। जैसा कि वेद में कहा गया है—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करे और माता के साथ मन मिला कर रहे। पत्नी अपने पति के प्रति ऐसी मधुर वाणी का प्रयोग करे कि जिससे घर का वातावरण शान्तिमय रहे। (अथर्व वेद ३—३०—२)

२. आह्वनीय क्रान्ति (सामाजिक शासन–क्षेत्र)

यह क्रान्ति आहवनीय अग्नि में होती है; समस्त परिवारों को एकत्र किया जाता है। सभी अपना अपना भाग ले लेकर यज्ञ-वेदि पर पहुंचते हैं। आहवनीय का अर्थ है जहाँ सब को बुलाकर एकत्र किया जाय। यह सामूहिक यज्ञ पूरे समाज और राष्ट्र का है। इसका वर्णन ऋग्वेद में दशम मण्डल के अन्तिम सूक्त में निम्नलिखित रूपमें है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते॥ १॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥ २॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ४॥

इन मन्त्रों में निम्नलिखित तत्त्व बताये हैं—

१—संघ और संगठन। २—संवदन और वाद–विवाद।
३—मानसिक संस्कार। ४— कर्तव्य–निष्ठा।
५—समान विचार। ६— समान उद्देश्य।
७—समान भाव, मन। ८— समान भोग्य पदार्थ।

तृतीय शासन-विस्तार— दक्षिणाग्नि क्रान्ति

तीसरी क्रान्ति दक्षिणाग्निमें होती है। यह समाजमें उत्पन्न होनेवाला दक्षतारूप तप है जिसे अंग्रेजी में इंटेलिजेन्शिया कहते हैं। दक्षता के अनुसार ही समाज में कार्य का विभाजन होता है। यही वर्ण-व्यवस्था है। वेद के पुरुष-सूक्त में इसी की ओर संकेत किया गया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(यजु० ३१.११)

समाज में सुव्यवस्था के लिए जिनको ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का कार्य दिया जाय वे ब्राह्मण हैं। वे मुखस्थानीय हैं। जो रक्षा का भार लें वे (पुलिस और फौज) राजन्य (क्षत्रिय) कहलायें। उनको बाहु-स्थानीय माना जाय। जो लोग गो-पालन, कृषि,, व्यापार आदि में संलग्न हैं उन्हें वैश्य कहा जाय और उरु (जंघा-स्थानीय(स्वीकार किया जाय। सेवा और श्रम द्वारा सुव्यवस्था करनेवालों को शूद्र कहा जाय। वे चरण-स्थानीय अर्थात् सामाजिक व्यवस्था के आधार स्तम्भ माने जायें। सब लोग अपनी अपनी कुशलता के अनुसार समाज के अंग हों। यह तीसरी क्रान्ति है।

चतुर्थ शासन-विस्तार—सभा-क्रान्ति

गुण-कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था स्थापितकर नगरों और ग्रामों में अनेक संघ बनें। ये मिलकर सभा बनावें। इस के सदस्य निर्वचन के आधार पर चुने गये हों। वेद में निम्नलिखित मन्त्र में इसी की ओर सङ्केत किया है—

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।
ये ते के च सभासदः ते मे सन्तु सवाचसः॥
(अथर्ववेद ७.१२.२)

सभा के व्यक्ति को वरिष्ठ माना जाय और उसका मान और आदर हो। इसका सङ्केत नीचे लिखे मन्त्र में मिलता है—

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो॥
(यजुर्वेद १६.१४)

यही सभा पंचायत और स्थानीय स्वशासन है।

पञ्चम शासन-विस्तार— समिति-क्रान्ति

सभा के व्यक्तियों के द्वारा समिति का निर्माण हो जिसके सदस्य सत्य असत्य का निर्णय करनेमें समर्थ हों। यही समिति राजा [राष्ट्रपति] का निर्वाचन करे। अथर्व वेद में इस समिति की ओर भी एक मन्त्र में संकेत है—

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रून्
शत्रूयतोऽधरान् पादयस्व।
सर्वाः दिशः संमनसः सध्रीचीर्
ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥
[६.८८.३]

इस समिति के सदस्य ध्रुव अर्थात् अचल हों और इसमें निरन्तरता बनी रहे। ये समान विचारवाले होकर राष्ट्र को शत्रुओं से सुरक्षित रखें। अथर्व वेद से यह भी पता चलता है कि सभा और सतिनिमें समन्वय होना भी आवश्यक है—

सभा च मा समितिश्चावतां
प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना सं गच्छादुप मा शिक्षात्
चारु वदानि पितरः संगतेषु॥ ७.१२.१

इस मन्त्रमें सभा तथा समिति दोनों को प्रजापति की पुत्री बताने का भाव यही है कि दोनों मिल कर प्रजा की रक्षा करें। इनसे सहमत न होनेपर शासकको राज्य-च्युत किये जाने के उदाहरण इतिहास में बहुत मिलते हैं।

षष्ठ शासन-विस्तार— आमन्त्रण क्रान्ति

सभा तथा समिति से चुनकर मन्त्रि-परिषद् का निर्माण आमन्त्रण क्रान्ति है। इस का उल्लेख पूर्व उद्धृत

समानो मन्त्रः समितिः समानी०

मन्त्र में किया गया है जिस का भाव यह है कि मन्त्रियों का उद्देश्य, आचरण, मनन और चिन्तन समान हो तथा निश्चय अटल हो। वे समान सम्मति वाले होकर कार्य करेंगे और राष्ट्र के प्रति उनका सामूहिक उत्तर-दायित्व होगा। वे अपने व्यक्तित्व को राष्ट्रके लिए समर्पित करें।

इस प्रकार राज्य-क्रान्ति परिवार से उत्क्रान्त हों कर मन्त्रि-परिषद में आकर सम्पूर्ण हो जाती है।

—०—

ऋग्वेदिक इण्डिया का गो-मांस-भक्षण का प्रलाप

[डा० शिवपूजनसिंह कुशवाह एम० ए०, साहित्यालङ्कार, विद्या-वाचस्पति, कानपुर]

कलकत्ता विश्व-विद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रवक्ता डा० अविनाशचन्द्र दास ने आंग्ल भाषामें ऋग्वेदिक इंडिया नामक ग्रन्थ लिखा है जिसका तृतीय संस्करण दिल्लीसे प्रकाशित हुआ है।

इसमें दासजी ने आर्यों का निवास सप्त-सिन्धु सिद्ध किया है किन्तु आर्यों पर गोमांसभक्षण का जो दोषारोपण किया है वह सारे ग्रन्थ पर पानी फेर देता है। अब दासजी के प्रमाणों पर विचार किया जाता है —

गौ की प्रशंसा के पश्चात् श्री दास की लेखनी-रूपी छुरी गोवंश पर यों चलती है—

'परन्तु साची है कि इसे यज्ञों में मारा जाता था और इस के मांस को पका कर देवताओं विशेषकर उस इन्द्र को भेंट चढ़ाया जाता था जो इस के स्वाद की विशेष इच्छा रखता था।'(ऋ० १०.८६.१३-१४)

समीक्षा — श्रीदास को उचित था कि वे इनपर किसी प्रामाणिक भाष्यकार का भाष्य देते। वैसे तो इस मन्त्र पर सायणाचार्य का भी भाष्य अशुद्ध है।

ऋ० १०.८६.१३ —

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविः।
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

यहाँ उक्षणः शब्द देखकर दासजी को भ्रम हुआ है।

चतुर्वेदभाष्यकारश्रीजयदेव शर्मा विद्यालङ्कार —

हे (वृषाकपायि) समस्त सुखों को मेघ के तुल्य वर्षण करनेवाले प्रभु की अपार शक्ति, हे (रेवति) अनेक ऐश्वर्यों की स्वामिनि, हे (सुपुत्रे) उत्तम पुत्रों जीवों वाली, हे (सुस्नुषे) उत्तम सुखपूर्वक विराजने-वाली सुखदायिनि, (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (उक्षणः) सेचन करनेवाले मेघ से उत्पन्न अथवा जगत् को धारण करनेवाले सूर्य आदि लोकों को (प्रियं) प्रीति कारक (काचित्करं) अनेक सुखोंके देनेवाले (तेहविः) तेरे उत्तम अन्न के सदृश ही इस जगत् को (घसत) खा जाता है, इसको प्रलय काल में लील लेता है वही ऐश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) देहमें प्रवेश करने वाले आत्मा से कहीं उत्कृष्ट शक्तिशाली है।

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्रीका भी ऐसा ही अर्थ है।

पौराणिक पण्डित श्री गोपाल प्रसाद कौशिक गोवर्द्धन और श्री श्रीराम आचार्य इसका अर्थ करते हैं— हे वृषाकपिकी पत्नी, तुम धनी और पुत्रवती हो, इन्द्र तुम्हारे भव्य हव्य को स्वीकार करते हैं। इन्द्र श्रेष्ठ हैं।

शास्त्रार्थ-महारथी प० बिहारीलाल शास्त्री काव्य तीर्थ अपनी ऋग्वेद के दशम मण्ड ल रहस्य में पृष्ठ ३४ पर इस मन्त्रका आध्यात्मिक अर्थ करते हैं कि जैसे इन्द्र (सूर्य) ओसको खा जाता है उसी प्रकार आत्मा में रहनेवाली इन्द्र-शक्ति उक्षा नीहार-समूह तम को खा जाती है; नीहार आत्मा पर आवरण है. आत्म-ज्ञान को ढांपनेवाला पदार्थ है, उक्षा का अर्थ सर्वत्र बैल नहीं होता है। देखो, यजु० १७.६ में उक्षा समुद्रः में उक्षा समुद्र का विशेषण है।

२—ऋ० १०.८६.१४ का भी अर्थ श्रीदास ने ठीक नहीं समझा—

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदु उभा कुक्षी पृणन्ति मे ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

समीक्षा—स्वामी धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड अपने वेदों के यथार्थ स्वरूप में पृष्ठ २८४ पर लिखते हैं—आध्यात्मिक दृष्टिसे इसका अर्थ निम्न प्रकार है—

(मे) मेरे लिए विद्वान् लोग (उक्षणः) वीर्य-सेचन या सुख-वर्षण में समर्थ (पंचदश) १५ और (विंशति) २० प्राणों को या उनमें प्रविष्ट आत्मा को (साकं) एक साथ परिपक्व करते हैं, तपस्या द्वारा उनको दृढ़ करते हैं (उत अहं) और मैं उनका भोग करता हूं इनको स्वीकार करता हूं,(पीवः इत्) अति बलवान् रहता हूं। (मे उभौ कुक्षी) मेरे दोनों कोखों को (पृणन्ति) वे नेर्ण करते हैं। (इन्द्रः विश्वऽमात् उत्तरः) परमेश्वर सबसे श्रेष्ठ है। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ प्राण—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान — ये मिलकर १५ हुये, इनके भीतर प्रविष्ट होकर रहनेवाला आत्मा विंशति है।

भौतिक दृष्टिसे उक्षाका अर्थ सोम वा ऋषभक औषधि है अतः अर्थ यह होगा कि ऋत्विक् वा वैद्य मुझ इन्द्र राजा के लिए सोम के १५ पत्तों को पकाते हैं और उसके द्वारा ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और १० प्राण — इन २० को मिल कर परिपुष्ट करते हैं। मैं उन्हें खाता हूं और खाकर पुष्ट होता हूं ओर मेरी दोनों कोखें सोम रस से पूर्ण हो जाती हैं।

सोमरस वा ऋषभक ओषधि के १५ पत्तों का विधि-पूर्वक सेवन मनुष्य को बलवान् बनाता है— ऐसा मन्त्र में उपदेश किया गया है। बैल के माँस का अर्थ लेना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि उसको वेदमें अघ्न्य, (अहन्तव्य, — न मारने योग्य) कहा है।

२— प० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड वेदोपाध्याय—

लिखते हैं कि ऋ० १०.८६.१-२३ मन्त्र ज्यौतिष सम्बन्धी हैं। इनमें वृषाकपि, मृग, श्वा, वराहयु, उक्षा,वृषभ, धन्व, कुन्तव, उदंचोगृहम्, पर्शुः — इत्यादि शब्द राशि-चक्र के भिन्न भिन्न भागों का वर्णन करते हैं। इनमें वर्षा का वर्णन है। सूर्य जब वृष राशि में होकर वर्षा करता है तब का यह वर्णन है। वृष राशि को ही उक्षा कहा है। इसके मुख्य तारे १५ हैं, शेष मिलाकर २० के लगभग हैं। जब सूर्य वृष राशि में तपता है यही मानो उन उक्षाओंका परिपचन है, परिपाक है। जब सूर्य वृष राशि में होता है तब वृष के तारे दृष्टि-गोचर न हीं होते यही मानो उनका भक्षण-सा है। यह सब अलङ्कर है।

३— स्वामी ब्रह्म मुनिजी विद्यामार्तण्ड अपने वैदिक ज्योतिष शास्त्र मेंपृष्ठ ४१ पर लिखते हैं—इन्द्र ध्रुव सबसे उत्तरमें है। वह कहता है कि मेरे लिए ही, मेरे खगोलरूपी उदर को भरने के लिए ही १५ के साथ २० अर्थात् ३५ उक्षाओं को, तेरे वीर्य-सेचक ग्रहों उपग्रहों को, प्राकृतिक नियम सम्पन्न करते हैं — व्यक्त करते हैं। अतः (पीवः) प्रवृद्ध होपया हूं, मेरी दोनों कोखें, दोनों गोलार्ध पार्श्व, ग्रह-उपग्रहों से पूर्ण करते हैं।

४— प० रामगोपालजी शास्त्री वैद्य अपने ग्रन्थ— क्या वेदमें आर्यों और आदिवासियों के युद्ध का वर्णन है? पृष्ठ १११ पर लिखते हैं —

पाश्चात्य लेखक ने ऋ० १०.८६.१४ मन्त्र के आधार से लिखा है कि इन्द्र उक्षा अर्थात् बैल का भक्षण करता है, उनका यह अर्थ भी भ्रामक है। इस मन्त्र में उक्षा पद का अर्थ बैल नहीं, प्रत्युत सोम है —

—मेरे लिए १५ तथा २० उक्षों अर्थात् सोमके डंठलों को याज्ञिक पकाते हैं, मैं उन्हें खाता हूं ओर स्थूलहो जाता हूं। इस प्रकार याज्ञिक लोग मेरी दोनों कुक्षियों को भर देते हैं। ऋ० ९.६९.४ में भी उक्षा रेद सोम के अर्थमें है।

५—चतुर्वेद-भाष्यकार श्री जयदेवशर्मा विद्यालङ्कार का अर्थ भी स्वामी धर्मानन्द के अर्थ के समान है।

६— प० बिहारीलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ अपने पशु-बलि और वेद ग्रन्थ के पृष्ठ ८-९ पर लिखते हैं —

मन्त्र में पँचदश, विंशति और साकं शब्द रहस्यपूर्ण हैं। ५ को १० से गुणा करने पर ५०, और ५० को २० से गुणा करनेपर १००० होता है। १००० उक्षाओंको पचा लेने पर इन्द्र जीवात्मा पूर्ण तृप्त हो जाता है, उसकी दोनों कोखें, ऐहिक और आमुष्मिक वासनाएं तृप्त हो जाती हैं। वे १००० उक्षा हैं सहस्रार चक्र, सहस्र-दल कमल, मस्तिष्क का वह स्थान जहाँ सुरत ले जाने पर योगी अमर पद का अधिकारी बनता है।

७—श्री जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ वाराणसी

८— श्री सत्यानन्द शास्त्री एम० ए०

९— आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री बड़ौदा,

१०—श्री श्रीराम शर्मा आचार्य मथुरा

११—श्री गोपालप्रसाद (दोनों पौराणिक भाष्यकार)

ये सभी बैल-भक्षण का अर्थ नहीं करते॥ [क्रमशः]

विजय दशमी का पर्व

[आश्विन शुक्ल दशमी संवत् २०३७ वि०; मानव वेद सृष्टि सवत् १९६०८५३०८१' दि० १९.१०.८०]

विजय दशमी (दशहरा) आर्य जाति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्व है। यह सब जगह आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। वर्षा के पश्चात् ब्राह्मण वेद-प्रचार के लिए, क्षत्रिय विजय-यात्रा के लिए, वैश्य व्यापार के लिए और शूद्र श्रम के लिए निकल पड़ते थे— यही विजय-पर्व था। मध्य-काल में इसका सम्बन्ध दुर्गा देवी के साथ भी होगया जिसने शुम्भ और निशुम्भ का वध किया था।

कभी वह समय था जब हम आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य था और हमारी सेनाएं दूसरे देशों को अत्याचारों से मुक्त करने के लिए इस पर्व पर प्रस्थान करती थीं। आज तो हम अपने देश को ही अखण्ड नहीं रखपाये। जिससमय भारतमें पौराणिक मत फैल गया उस समय इस पर्व पर राम-लीला आदि प्रचलित हो गईं। आश्विन शुक्ल दशमी न तो रावण-वध की तिथि है और न लङ्का-विजय की।

प्रचलित अपराजिता (पायता) देवी के पूजन की प्रथा भी पौराणिक है। असंख्य निरपराध भैंसों और बकरों को इस पर्व पर बलि चढ़ाना अपने जंगलीपन का परिचय देना है। हाँ, अपराजिता देवी का विशुद्ध वैदिक रूप यदि हम समझ सकें तो अति उत्तम हो। आज तो स्वातन्त्र्यरक्षा ही भारतकी अपराजिता देवी है, जिसकी पूजा के लिए निर्दोष पशुओंका नहीं, अपितु त्यागी वीरों का बलिदान आवश्यक है।

❀पर्व की पद्धति❀

प्रातः काल प्रत्येक वैदिक परिवार में विशेष रूप से पारिवारिक यज्ञ होना चाहिए जिसमें नीचे लिखे अर्थ-सहित मन्त्र से विशेष आहुति दी जाये —

ओ३म् वयं जयेम त्वया युजा वृतम्
अस्माकम् अंशम् उदवा भरे भरे।
अस्मभ्यम् इन्द्र वरिवः सुगम् कृधि
प्र शत्रूणाम् मघवन् वृष्ण्या रुज ॥
[ऋग्वेद १. १०२. ४; अथर्व वेद ७.५०.४]

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती-भाष्य—

(इन्द्र) हे शत्रुओं के दल को विदीर्ण करनेवाले सेना आदि के अधीश! आप (भरेभरे) प्रत्येक संग्राममें (अस्माकं वृतं) हम लोगोंके स्वीकार करनेयोग्य (अंशं) सेवा, भोजन छादन धन यान शस्त्र, कोश के विभागों की (अव) रक्षा करो, जानो, प्राप्त होओ (अस्मभ्यम्) हम लोगोंके लिए (वरिवः) अपना सेवन (सुगम् कृधि) सुगम करो। (मघवन्) हे प्रशंसित बलवाले, आप (वृष्ण्या) शस्त्र वर्षानेवालों की शस्त्रवृष्टिके लिए हित कारी अपनी सेना से (शत्रूणाम् प्र रुज) शत्रु-सेनाओं को अच्छी प्रकार काटो। (त्वया युजा वयम्) आपसे युक्त हुए युद्ध करनेवाले हम लोग (उद् जयेम) शत्रुओं को उत्तम प्रकार से जीतें।

यज्ञोपरान्त पौष्टिक भोजन आदिसे निवृत्त होकर सायं किसी बाग में एकत्र हो शारीरिक बल-प्रदर्शक कार्य किये जायें जैसे मल्ल युद्ध, भाला बरछी तलवार चलाना, आसनोंका प्रदर्शन आदि और समाप्ति-समय सब मिलकर ईश्वरसे बल-पौरुष-वृद्धि की प्रार्थना करें, तथा वैदिक धर्म और वीर महा पुरुषों का जय-घोष करें। प्रातः घरों और मन्दिरों पर ओ३म् की तथा पाखण्ड-खण्डनी पताका को फहराकर नगर नगर और ग्राम ग्राम में जयति ओ३म्-ध्वज व्योम-विहारी इस उत्साह-वर्धक गीत की गूंज होनी चाहिए।

—आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री

—❀—

वेदार्थ पारिजात-खण्डनम्

[आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,]

प्रत्नात् मानाद् अधि आ ये समस्वरन्
श्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत
ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥
(ऋ० ६.७३.६)

अर्थ—जो प्राचीन मान्य ईश्वर से मिले वचनों को पालन करते हैं वे वेदज्ञान से व्यवस्थित होकर उस की आज्ञा को मानते हैं,और जो बिना आँख के तथा बहरे (अविवेकी) सत्य के पथ को छोड़ देते हैं वे दुष्कर्मी नहीं तर सकते, पार नहीं जा सकते।

इस मन्त्रका पूर्वार्ध महर्षि दयानन्द सरस्वती पर और उत्तरार्ध स्वामी हरिहरानन्द करपात्री पर लागू होरहा है। (आगे सुविधा की दृष्टि से दयानन्द को द और करपात्रीको क लिखागया है) क ने वेदार्थके पारिजात वृक्ष को रचा, वह कल्पना का ठूंठ ही रह गया, यथार्थ और सफल नहीं हुआ। उसकी प्रथम पंक्ति में जहाँ ओ३म् होना चाहिए था वहाँ श्री लक्ष्मी चढ़ बैठी जो पुराणों के अनुसार उलूकवाहिनी है। उल्लू पर चढ़ी लक्ष्मीवाले इस पारिजात में विद्या तीसरे स्थानपर है। तीसरी पंक्ति में गणेशाय: नम: सरस्वत्यै: नम: और तीसरे स्थानपर वेदपुरुषाय नम: देखकर चित्त खिन्न होगया। अशुद्ध छपा गणेशाय: और सरस्वत्यै: क्या लेखक की ही त्रुटि है? प्रथमे ग्रासे मक्षिकापात:! पहली पंक्ति में ही २ अशुद्धियाँ! फिर तीसरी अशुद्धि वेद को पुरुष बना देना! वेदके ग्रन्थ में तो पहले ओं के साथ वेदमंत्र से मंगलाचरण होना चाहिए था। महर्षि पाणिनि ने ओमभ्यादाने सूत्र से यही निर्देश किया है। अथवा फिर अथ से आरम्भ करते, जैसी ऋषियोंकी परम्परा है, जिसे द ने ओ३म् अथ सत्यार्थप्रकाश: लिखकर पालन किया है। द लिखते हैं— श्री गणेशाय नम:..........इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों के विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं। क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थोंमें कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता।

—सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लासपृष्ठ ६१

यदि वेदपुरुषायनम: लिखना ही था तो गणेशाय नम: से पहले लिखते क्योंकि वेद तो गणेश के पिता दादे, परदादे से भी पहले हमेशा से हैं।

२—पृष्ठ १पर गजानन एकदन्त की उपासना १म श्लोक:में की गई है वह वेद-विरुद्ध है। क उसे वेदानुकूल प्रमाणित करें।

३— ३य श्लोकमें त्रिपुरसुन्दरी-आलिंगित शिव को प्रणाम करना भी वेद-विरुद्ध है क त्रिपुरसुन्दरी को वेदानुकूल प्रमाणित करें।

४—पृष्ठ २ पर क ने द पर नीचे लिखे अनुचित दोष अपशब्द लगाये हैं,क को इस अनुचित कार्यके लिए क्षमा मांगनी चाहिए—

[१] द ने वेद-पद्धति को दूषित किया।

[२] द चार्वाक के समान नास्तिक है।

[३] द का कार्य अपनी प्रसिद्धि, लोक-सम्मान और संसार को ठगने के लिए है।

[४] द का भाष्य प्रमाण-रहित, सारहीन है।

[५] द का भाष्य संदर्भके बिना भाष्याभास है।

[६] द वञ्चना-कुशल है।

क के ये उपर्युक्त आक्षेप पूर्णत: निराधार हैं—

[१] वेद-पद्धति को क ही नष्ट कररहे हैं, द ने तो उसका पुनरुद्धार किया है।

[२] मनुके अनुसार वेदका निंदक नास्तिक है। ईश्वर को न माननेवाला भी नास्तिक कहाता है, अब क बतावें कि द ने कब, कहाँ पर वेदोंकी निन्दा की और ईश्वरको नहीं माना? आर्यसमाज के नियम १ में परमेश्वरको आदिमूल बतानेवाले, सत्यार्थप्रकाश

में उस के १०० नामों की व्याख्या, तथा ईश्वर और वेद का वर्णन करनेवाले वेद-रक्षक द को नास्तिक बताना क का नितान्त असत्य, सफेद झूठ और घोर अक्षम्य अपराध है।

[३] द ने सभी कार्य परोपकार के लिए किये। सत्य के प्रचारार्थ विष-पान किया। अपनी प्रसिद्धि के लिए कोई काम नहीं किया। क जैसे स्वयं हैं वैसा ही द को बताकर बड़ा अनुचित और जघन्य कार्य कररहे हैं। क बतावें कि द ने अपनी सेवा कहां पर किससे कब कराई?

[४] द का वेद-भाष्य पूर्णतया सारवान् और प्रमाण-सहित है। उसे अप्रमाण बताना असत्य है।

[५] द का वेद-भाष्य सन्दर्भ के अनुसार सच्चा भाष्य है जिसमें पदार्थ भावार्थ आदि सब लक्षण हैं।

[६] अपनी वञ्चना को छिपाने के लिए द को वञ्चना-कुशल बताना--क की वञ्चकता को ही सिद्ध करता है।

महर्षि द पर ऐसे झूठे आरोप लगाने के लिए क को क्षमा मांगनी चाहिए।

५— क ईश्वरको वेदों का कर्ता नहीं मानते [पृष्ठ १, ८४, ८७, २२४, ६०४] इस प्रकार तो क स्वयं ही नास्तिक हुए। ठीक है कि वेद नित्य हैं किंतु इसीलिए तो क्योंकि उनका कर्ता ईश्वर नित्य है। करोति धातु का अर्थ अभूत-प्रादुर्भाव भी है। जब मनुष्य- सृष्टि हुई तो वेदों का प्रादुर्भाव करनेवाला ईश्वर था, इसी लिए वह कर्ता है, सभी आस्तिकदर्शन यही बात कहते हैं। सृष्टिके आरम्भमें पैदा हुए मनुष्यों तक वेदज्ञान को पहुँचाना एक क्रिया हुई, उसका कर्ता कोई अवश्य होना चाहिए, वही परमेश्वर है।

यहाँ क का बताया सुप्त-प्रबुद्ध न्याय नहीं लगता, क्योंकि सोया मनुष्य जब जागता है तब उसका शरीर वही रहता है जो सोने से पहले था मगर मानव-शरीर तो प्रलय के समय जो और जैसा था वही और वैसा चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष प्रलय-काल के बीतनेपर नहीं रहता, अतः उन जीवात्माओं को पिछला वेद-ज्ञान स्मरण नहीं रह सकता। अतः सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर को वेद-ज्ञान का कर्ता, प्रकट करनेवाला अवश्य मानना पड़ेगा। इसमें नीचे लिखे प्रमाण हैं—

१—तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे (ऋ० य० अ० तैत्ता०) उस ईश्वर से वेद पैदा हुए।

२— शास्त्रयोनित्वात् (वेदांत दर्शन)

वेद की योनि, कारण ब्रह्म है। अतः ब्रह्म कर्ता हुआ।

३ — एष पूर्वेषामपि गुरुः (योग दर्शन)

परमेश्वर आदि गुरु है अतः वेद-शिक्षक कर्ता हुआ।

४—तद् वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् । (वैशेषिक) उस ईश्वरका वचन होने से वेद का प्रामाण्य है। अतः ईश्वर वेद के वचन का कर्ता सिद्ध हुआ।

५— तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् । आप्तोपदेशः शब्दः। (न्याय दर्शन १.१.६) वेद आप्त ईश्वर का उपदेश है अतः उस उपदेशका कर्ता ईश्वर सिद्ध हुआ।

६— बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रम्
यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषाम् श्रेष्ठम् यदरिप्रमासीत्
प्रेणा तदेषाम् निहितम् गुहाविः ॥

ऋग्वेद १०. ७१. १

वेद ईश्वर की सबसे पहली वाणी है। इस से सिद्ध हुआ कि वेदवाणी का कर्ता ईश्वर है।

७— ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्। (श्रीमद् भगवद्गीता और उस पर स्वामी शंकराचार्य का भाष्य) ब्रह्म अर्थात् वेद अक्षर अविनाशी परमात्मा से समुद्भूत हुए। इससे सिद्ध हुआ कि वेद का समुद्भावक, प्रकट करनेवाला कर्ता ईश्वर है।

उपर्युक्त अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्री स्वामी हरिहरानंद करपात्री का कथन निराधार, अयथार्थ और असत्य है, तथा महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन पूर्णतः सत्य है।

(क्रमशः)

विश्ववेद परिषद् का द्विवार्षिक विवरण

१-६-१६७७ से १५-३-१६८० ई० तक, संवत् २०३५ तथा ३०३६ विक्रम

पहला विवरण ३१-८-७७ को प्रकाशित

स्थापना—आर्यसमाज स्थापना शताब्दी दिल्ली में २७-१२-७५ को डा० सुधीर कुमार गुप्त के प्रधानत्व में हुई। रजिस्ट्रेशन ७-२-७७ को लखनऊमें किया गया उसकी संख्या १७५६ दि० ७६-२-७७ है। नवीकरण ३०-८-७६ को हुआ जिसकी संख्या ३८१६ है।

वैदिक वाचनालय तथा पुस्तकालय

लखनऊ में परिषद् के वाचनालय में १४-१५ पत्र पत्रिकाएँ आती हैं और पुस्तकालय में इस समय लगभग चार हजार रुपये मूल्यकी ५७८ पुस्तकें हैं।

निश्शुल्क वेद-संस्कृत -विद्यालय

इसका समय प्रातःसायं ७ से ६ तक है, श्री वेद-य शर्मा प्रबन्धक, श्री ओजोमित्र शास्त्री अध्यापक, श्री सुधीन्द्र नाथ शास्त्री आचार्य हैं।

प्रकाशन

परिषद्ने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित कीं—

१— वेदों का महत्त्व समाप्त
२— दी वेदाज ऐण्ड देयर टीचिंग्स ,,
३— वैदिक छन्दः शास्त्र ,,
४— संस्कृत वाक्य प्रबोध (परिवर्धित) मूल्य २ रुपये
५— यज्ञ सामान्य विधि ,, १.२५

वेदों की विशारद, भूषण, रत्न परीक्षाएँ

परिषद् की परीक्षाओं का विवरण —

परीक्षा समय	पंजीकृत	सम्मिलित	उत्तीर्ण
१ श्रावणी २०३३	१६	१५	१४
२ वसन्तपंचमी ,	१०	६	६
३ श्रावणी २०३४	६	८	८
४ वसन्तपंचमी ,,	१५	७	७
५ श्रावणी २०३५	१२	१२	१२
६ वसन्तपंचमी ,,	८	७	७
७ श्रावणी २०३६	१२	१०	१०
८ वसन्तपंचमी ,,	१४	१२	१२

सदस्य-संख्या

इस समय परिषद् के सदस्यों की संख्या १०१७ है। (अधिरक्षक ३, सम्पोषक १, पोषक ५, संरक्षक ५८)

❀विधान, नियमावली और प्रबन्धसमितिके सदस्य❀

१ संस्था का नाम— विश्व वेद परिषद्।

२ मुख्य कार्यालय—सी ८१७ महानगर, लखनऊ

३ उद्देश्य— विश्व में वेदों का, प्रवचन और साहित्य द्वारा, प्रचार एवं वैदिक संस्कृति-स्थापना और वैदिक शिक्षा तथा संस्कृत भाषा का प्रसार।

४ स्थायी प्रबन्ध-कारिणी के सदस्योंके नाम, पता व्यवसाय तथा पद जिनको संस्थाके नियमों के अनुसार कार्य-भार सौंपा गया है—

क्रमसंख्या नाम पता कार्य पद

१ आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री,
सी ८१७ महानगर लखनऊ प्रचार अध्यक्ष

२ पंडित विहारी लाल शास्त्री,
आहाता रामपुर गार्डेन बरेली ,, उपाध्यक्ष

३ श्री सुधीन्द्रनाथ शास्त्री
डी २१ महानगर विस्तार लखनऊ ,,प्रधानमन्त्री

४ श्री संजय कुमार
३७ए ऐलआइजी राजौरीगार्डेन नईदिल्ली उपमन्त्री

५ श्री प्रज्ञामित्र शास्त्री
१० महापालिका फ्लैट राजेन्द्रनगर लखनऊ

६ श्री सतीश चन्द्र वर्मा
सी १०७ महानगर लखनऊ सेवा परीक्षा-मन्त्री

(साधारण सदस्यों के प्रतिनिधि)

७ विज्ञानशङ्कर डिपुटी मैनेजर सेवा कोषाध्यक्ष
डी टू टी १७ सबस्टेशन रोड अर्मापुर, कानपुर ६

८ श्रीमती विभारानी ,, ,,

९ वेदप्रिय (रामदुलारे) शर्मा उपमन्त्री
५०३। १२३ बरौलिआ, लखनऊ

१० श्री अनिलकुमार सी ८१७ महानगर ;;
११ श्रीमती विमला शास्त्री ;; ;;
१२ ओजोमित्र शास्त्री आर्यसमाज अलीगंज ;;
१३ श्री जानकी प्रसाद सी ११६ महानगर ;;
(सहायक कोषाध्यक्ष) ;;
१४ श्रीमती कमला प्रधान न्यू हैदराबाद ;;
१५ श्रीमती आभारानी पुस्तकाध्यक्ष रा गा दिल्ली
१६ ;; विद्यावती शास्त्री ;; कैलाशपुरी लखनऊ
१७ प्रो०विजयशङ्कर गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार
१८ श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार चन्द्रेश्वर भवन
२ । १७० सायन वेस्ट बम्बई २२

१९ पोषक-प्रतिनिधि डा क्लीमेंसीजुंग पश्चिमजर्मनी
२० सम्पोषक ;; ;; देवलाल सौवर्ण मारिशस
२१ अधिरक्षक ;; श्री चाँदरतन दम्माणी
मन्त्री आर्यसमाज बड़ा बाजार कलकत्ता

❀ नियमावली ❀

४ संस्थाकी सदस्यता के लिए पात्रता की शर्तें
अ १ जो परिषद्‌के उपरिलिखित उद्‌देश्यसे सहमत
२ जो प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय करता हो।
३ जो परिषद् को न्यूनतम दस रुपये वार्षिक शुल्क देता हो अथवा जो आजीवन सदस्य हो।
४ जिसे प्रबन्ध-समिति स्वीकृति दे।
इ सदस्य ५ प्रकार के होंगे—
१ साधारण— दस रुपये वार्षिक देनेवाले
२ संरक्षक— एक सौ एक रुपये देनेवाले
३ पोषक— दो सौ इक्यावन ;;
४ सम्पोषक— पाँच सौ एक ;;
५ अधिरक्षक— एक हजार एक ;;

५ सदस्यताकी समाप्तिकी शर्तें —नियम ४ न मानना पागल अथवा न्यायालयसे नैतिक अपराधमें दंडित होना। त्यागपत्र और निष्कासन प्रबन्ध- समिति के निर्णयानुसार होगा।

६ संख्या की सदस्यता का रजिस्टर तथा कार्यवाही रजिस्टर की व्यवस्था -प्रधान मंत्री द्वारा स्थायी कार्यालय सी८१७ महानगर; लखनऊमें की जायेगी।

७ सदस्यों की नियुक्ति और हटाया जाना, स्थायी प्रबन्ध समितिकी सर्वसम्मतिसे होगा।

८(क) प्रबन्धकारिणी समितिकी शक्ति—अधिकारियों का द्विवार्षिक निर्वाचन तथा अन्य आवश्यक प्रबन्ध

(ख) प्रबन्धकारिणी समितिके कर्तव्य— परिषद की सर्वांगीण समुन्नति तथा प्रगति का निरीक्षण और अन्य समस्त आवश्यक प्रबन्ध करना।

९ सभी प्रकार के सदस्यों से गठित साधारण सभा कीद्विवार्षिक बैठक दो वर्ष में एक बार लखनऊ या दिल्ली में श्रावणी अथवा विजयादशमी अथवा दीपावली पर्व के लगभग, वार्षिक आख्या तथा अनुमति आय व्यय की स्वीकृति हेतु एवं परामर्श दात्री अंतरंग सभा के निर्माण हेतु होगी।

अंतरंग सभा में प्रबन्ध कारिणी के सदस्यों को सम्मिलित कर विभिन्न प्रदेशोंसे ३० तक सदस्य होंगे, जिसकी बैठक अवश्यकता नुसार प्रधान मंत्री द्वारा १५ दिन पूर्व सूचना पर बुलायी जायगी। द्विवार्षिक सभा की गणपूर्ति ३० सदस्यों की होगी। अंतरंगसभा की गणपूर्ति १ । ३ अर्थात् दस सदस्यों की होगी।

१०— नियमों और विनियमों के बनाने; परिवर्तित; परिवर्धित और संशोधित करने का अधिकार स्थाई प्रबन्ध-समिति को सर्व सम्मति होने पर होगा।

प्रबन्धकारिणी के सोलह सदस्य स्थाई रहेंगे और ५ सदस्य (पाँचों प्रकारके सदस्यों से एक एक) प्रबन्ध कारिणी द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। इस प्रकार कुल इक्कीस सदस्य रहेंगे।बैठक आवश्यकतानुसार प्रधानमन्त्री द्वारा दस दिन की पूर्वसूचना पर बुलाई जायगी। गणपूर्ति ७ सदस्यों की होगी।

;२—प्रबन्धकारिणी के निम्नलिखित अधिकारी होंगे जिनके आगे लिखे कर्तव्य और अधिकार होंगे

१. अध्यक्ष —परिषद् के कार्यों का निरीक्षण और नियन्त्रण।

२. प्रधानमन्त्री—परिषद्‌के कार्यों और कार्यालय का संचालत; विज्ञापन सूचना निकालना. कार्यवाही

(शेष पृष्ठ १४ पर)

वेद तथा पौरोहित्य की परीक्षाएँ

प्रत्येक संस्था, विद्यालय और गुरुकुल को अपने यहां इन परीक्षाओं का केन्द्र स्थापित करना चाहिए और पूरा यत्न करना चाहिए कि समस्त सदस्य तथा छात्र-छात्राएं इन परीक्षाओं में सम्मिलित हों।

आगामी परीक्षायें वसन्त पंचमी के पश्चात् ३१ मार्च १९८१ को होंगी, जिसके लिए परीक्षार्थी सूची और शुल्क २० मार्च १९८१ तक आ जाना चाहिये। इस नियमावली को अपने पास सम्भाल कर रखिये और केन्द्र की स्थापना के लिए पत्र--व्यवहार मन्त्री से कीजिये।

दिल्ली कार्यालय

संजय कुमार, असिस्टैण्ट डाइरेक्टर, टी. आर. सी., मन्त्री दिल्ली शाखा ३७ ए, डी. डी. ए., एल. आई. जी., राजौरी गार्डन विस्तार, नई दिल्ली-२७। फोन—५०२२४०

नियमावली (सन् १९८१ से पुन: परिवर्तन पर्यन्त)

१—किसी भी परीक्षा में कोई भी व्यक्ति बैठ सकता है।

२—कम से कम ५ परीक्षार्थी होने पर किसी विद्यालय के आचार्य अथवा संस्था के प्रधान की अध्यक्षता में केन्द्र स्थापित होगा।

३—परीक्षायें प्रति वर्ष दो बार—श्रावणी पूर्णिमा के पश्चात् (अगस्त में) तथा वसन्त पंचमी पर (फरवरी में) ली जायेंगी। आवेदन-पत्र शुल्क के सहित साधारणत: एक मास पूर्व भेजना चाहिये।

४—परीक्षायें प्रत्येक वेद तथा संस्कृत विषय में होंगी। परीक्षाओं की उपाधि तथा शुल्क आदि का विवरण निम्नलिखित है—

नाम उपाधि	शुल्क	प्रश्न-पत्र	पूर्णांक
१. विशारद	५)रु०	१	१००
२. भूषण	१०)रु०	२	२००
३. रत्न	१५)रु०	३	३००

५—परीक्षा का माध्यम संस्कृत अथवा हिन्दी होगा।

६—उत्तीर्णता प्रथम श्रेणी न्यूनतम ६०, द्वितीय ५०, तृतीय श्रेणी ४० प्रतिशत अंकों पर होगी।

७—परीक्षा पत्राचार प्रणाली से पुस्तकें देखकर भी हो सकेगी, उसके लिए ७० प्रतिशत अंक आवश्यक है।

८—उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को उपाधि-पत्र प्रदान किया जायेगा।

वेद परीक्षाओं की पाठविधि

१. वेद-विशारद एक प्रश्नपत्र सौ अङ्क

१—ऋग्वेद प्रथम मण्डल

अथवा २—यजुर्वेद १, ३१, ३२, ३६, ४० अध्याय

अथवा ३—सामवेद आग्नेयकाण्ड ११४ मन्त्र तथामहानाम्न्यार्चिक दस मन्त्र

अथवा ४—अथर्ववेद प्रथम काण्ड २०

और सभी वेदों की विशारद परीक्षा के लिए सामान्य पुस्तकें—प्रत्येक के लिए दस अङ्क

१—ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका [वेद सम्बन्धी प्रारम्भिक ५ विषय]

२—सत्यार्थप्रकाश सप्तम-समुल्लास

३—पंचमहायज्ञविधि

४—आर्याभिविनय

५—संस्कारविधि का सामान्य-प्रकरण

६—संस्कृत-वाक्य-प्रबोध

७—वर्णोच्चारण शिक्षा [वेदाङ्ग शिक्षा परिचय]

८—वैदिक धर्म शिक्षा

२. वेद-भूषण

प्रथम पत्र—कोई एक वेद [विशारद का अंश छोड़कर] व्याख्या ५०, आलोचना ४०। ऋग्वेद १ से ५ मण्डल अथवा यजुर्वेद १ से बीस अध्याय अथवा सामवेद पूर्वार्चिक ६५६ मन्त्र अथवा अथर्ववेद १ से दस काण्ड।

वैदिक निघण्टु १०

दूसरा पत्र—सभी वेदों के लिए सामान्य पुस्तकें—

१—संस्कार विधि। (२०) २—ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका ३—सत्यार्थ प्रकाश (दोनों में तीस तीस)

४—योगदर्शन (साधनपाद तथा समाधिपाद) १०

५—संस्कृत की सन्धि, नामिक, कारक, समास १०

३ वेद-रत्न परीक्षा

सौ सौ अङ्क के तीन प्रश्नपत्र

प्रथम पत्र—एक वेद सम्पूर्ण, व्याख्या, आलोचना आख्यातिक, उणादि कोष

दूसरा पत्र—एक वेद के ब्राह्मण ग्रन्थआदि

	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद	अङ्क
ब्राह्मण	ऐतरेय	शतपथ	मन्त्रब्राह्मण	गोपथ	३०
आरण्यक	,,	वृहदारण्यक	तवलकार		दस
उपनिषद्	,,	,,	छान्दोग्य, केन	प्रश्न	बीस
श्रोतसूत्र	आश्वलायन	कात्यायन	लाट्यायन	वैतान	,,
गृह्यसूत्र	,,	पारस्कर	गाभिल	कौशिक	दस
उपवेद	आयुर्वेद	धनुर्वेद	गान्धर्ववेद	अर्थवेद	,,
अथ०चिकित्साशास्त्र	मनु ७,८	सामगान	कौटिल्य		

तीसरा पत्र—निरुक्त, वदिक अलङ्कार, छन्द, मीमांसादर्शन, मीमांसाप्रदोप, वेदोंका यथार्थ स्वरूप वैदिक ज्योतिष शास्त्र[स्वामी ब्रह्ममुनि] सब सौ अङ्क

....❀....

वेदसंगोष्ठियाँ

गत दो वर्षोंमें पूना, बम्बई, सहारनपुर, हरद्वार, हैदराबाद, लखनऊ; दिल्ली; चण्डीगढ़; ज्वालापुर; गुरुकुल कांगड़ी; कन्या गुरुकुल हाथरस; देहरादून तपोवन; मुरादाबाद; इलाहाबाद; जम्मू श्रीनगर; दूर्गा डिवाई; बदायूँ; गोंडा; इटावा; रायपुर आदि में पचाससे अधिक वेदसंगोष्ठियाँ विभिन्न विषयोंपर की गयीं जिनमें बड़े बड़े विद्वानों ने भाग लिया।

आय-व्यय

वर्ष	आय	व्यय	अन्तिम शेष
१६७७ई	६५३२.५४	४१८२.७८	२४२६.७६
२०३५ वि०	७७३४.२६	११७३०६६	३५०२.७२
२०३६ वि०	५७०२.१४	३७६८.०३	२४३६.८३

पत्र-व्यवहार

गत दो वर्षोंमें लगभगसत्रह हजार पत्रभेजे गये।

परिषद् के अधिवेशन

गत दो वर्षों में दसअधिवेशन हुए।

(पृष्ठ १२ के आगे नियमावली का शेष भाग)

अङ्कित करना तथा अन्य समस्त कार्यों का निर्देशन।

३. कोषाध्यक्ष—कोषसम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था करना

४. पुस्तकाध्यक्ष—लखनऊ और दिल्ली के पुस्तकालय की और विक्रयसम्बन्धी पुस्तकों के आदान-प्रदान की व्यवस्था करना।

५. कार्यालयाध्यक्ष—कार्यालय की व्यवस्था रखना।

अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, प्रधान-मन्त्री की अनुपस्थिति में उपमन्त्री, कोषाध्यक्ष की अनुपथिति में सहायक कोषाध्यक्ष कार्य करेंगे।

१३ प्रबन्धकारिणी में रिक्त स्थान-पूर्ति प्रबन्ध-समिति के शेष सदस्यों द्वारा सर्वसम्मति से होगी।

१४—निधियों का विनियोजन, लेखा का रख-रखाव और तुलनापत्र कोषाध्यक्ष द्वारा मन्त्री के साहाय्य से सम्पन्न होगा। लेखा-परीक्षणार्थ आय-व्ययनिरीक्षक की नियुक्ति प्रबन्धसमिति करेगी।

१५ संस्था द्वारा अथवा उसके विरुद्ध मुकदमों केलिए व्यवस्था लखनऊ में संस्था के प्रधानमन्त्री के नाम से होगी।

१६ संस्था के विघटन होनेपर सम्पत्ति के निस्तारण की प्रक्रिया सोसाइटी रजिस्ट्रेशन अधिकरण की धारा तेरह चौदह के अन्तर्गत सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा नई दिल्लीकी व्यवस्थाके अनुसार होगी।

१७ परिषद् को विभिन्न प्रदेशों और विदेशों में न्यूनतम दस सदस्यों की शाखा स्थापित करने तथा वेदसम्बन्धी संस्थाओंको स्वसम्बद्ध करने का अधिकार होगा। सम्बद्धता शुल्क पच्चीस रुपये वार्षिक होगा।

१८ परिषद् का धन बैंकमें रखा जायगा। खाते का सञ्चालन कोषाध्यक्ष और प्रधान मन्त्री के संयुक्त हस्ताक्षरसे होगा। आवश्यक व्ययार्थ अध्यक्ष प्रधान मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष दो सौ सौ रुपये तक अपने पास रखने का अधिकार होगा।

१९ पुस्तकालय तथा उपकार्यालय दिल्ली में भी रखा जायगा।

२० इस नियमावली में परिषद् तथा संस्था से अभिप्राय विश्व-वेद-परिषद् से है।

समाचार और सूचनायें

१— श्रावणी पर्व, और संस्कृत-दिवस तथा वेद-प्रचार-सप्ताह, कृष्ण जन्माष्टमी पर्व सब जगह मनाया गया।

२— वेद-प्रचार-सप्ताह में आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री ने आर्यसमाज रायपुर म०प्र० में और श्री सुधीन्द्रनाथ शास्त्री ने लखनऊ में वेदसम्बन्धी व्याख्यान दिये।

३— गुरुकुल कांगड़ी में न्यायालय के निर्णयानुसार आय प्र० सभा पंजाबके अधिकार से श्री बलभद्रकुमार हूजा पुनः कुलपति हुए। श्री निरूपण विद्यालङ्कार आचार्य हुए। आशा है कि अब वेदों की शिक्षा अच्छी होगी।

४. १३-६-८६को हिन्दी-दिवस पर पंजाबमें हिन्दी को उचित स्थान दिलाने का अभियान आरम्भ हुआ।

५—लदन्न में आर्य महा सम्मेलन श्री सत्यदेव जी वेदालङ्कार की अध्यक्षता में १६ से २५ अगस्त तक सम्पन्न हुआ, जिसमें विश्व वेद परिषद् के प्रतिनिधि रूप में श्रीमती कमला प्रधान और विद्यावती आर्य ने भाग लिया। पुराने चर्च को खरीद कर बनाये गये नये आर्य समाज मन्दिर में विशाल यज्ञ में हजारों नर नारियों ने वेद-मन्त्रों का पाठ किया और विश्व में वेद प्रचार की योजना बनायी।

६—आर्यसमाज अनारकली मन्दिर मार्ग नयी दिल्ली का ५६वाँ वार्षिकोत्सव ८, ६, १० नवम्बर को होगा।

७— आर्य नवयुवक संघ हरफरी बदायूं के मन्त्री श्री राजेन्द्र सिंह आर्य ने १६ से १६ अगस्त तक यजुर्वेद-पारायण यज्ञ किया।

८— आर्यसमाज चन्द्रनगर लखनऊमें १६ से २१ सितम्बर तक यजुर्वेद-पारायण यज्ञ हुआ।

६— दिल्ली आ० प्र० सभा के चुनाव में प्रधान श्री सरदारी लाल वर्मा और मन्त्री श्री विद्यासागर विद्यालङ्कार सर्वसम्मति से चुने गये।

१०—आर्य वैदिक विद्वान्, आर्य कालेज पानीपत के सेवा-निवृत्त प्रधानाचार्य श्री लक्ष्मीदत्त दीक्षित ने संन्यास ग्रहण कर विद्यानन्द सरस्वती नाम रखा है।

❀ शोक-समाचार ❀

निम्नलिखित महानुभावों के देहावसान पर विश्व वेद परिषद् के द्वारा शोक प्रकट किया गया और आत्मा की शान्तिके लिए प्रार्थना की गयी—

१.श्री जानकीप्रसाद धर्माचार्य, गायना। १३.६.८०
२. ७५ वर्षीय पं० नन्दलाल ,कर्तारपुर। १३.७.८०
३. श्रीमती शान्ता आर्या अलवर : २३.७.८०
४.श्री सुशीलकुमार, द०सेवा० वोघाजान। २६.७.८०
५. श्री सुशीलसिंह प्रधान विद्या० ,, ,,
६. आचार्य प्रेमशरण प्रणत, आगरा। २५-८-८०
७. श्री भानुचरण आर्येय, वाराणसी।
८. श्री रमेशचन्द्र शास्त्री अजमेर के वृद्ध पिताजी।
६. ७६वर्षीय प्रिं० सूरजभान, प्रधान आ०प्रा०सभा नई दिल्ली।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

११—परिषद् की चण्डीगढ़ शाखा में प्रतिमास वेद-संगोष्ठी होती है। पिछली गोष्ठीमें पं धर्मदेव वेद-वाचस्पति और आशुराम आर्य के व्याख्यान हुए।

१२— उ० प्र० सरकार ने शराबबन्दी और नैतिक शिक्षा को हटाकर बड़ा अनुचित काम किया है। वेद, दयानन्द और गांधी के आदेशोंके अनुरूप यह काम पिछली जनता सरकारने किये थे।

१३— काश्मीर सरकार ने पुस्तकालयों में गीता और सत्यार्थप्रकाश रखने पर लगाया प्रतिबन्ध वापस लेलिया है।

१४— आकाशवाणी से १५-७-८० को रात के ६ बजे प्रसारित मुफ्ती आजादकी वेदविषयक वार्ता निराधार और अनुचित थी। परिषद् ने सूचना-मन्त्री से पूछा है कि ऐसे प्रसारण की अनुमति क्यों दी गयी। प्रसारण में कहागया था कि वेद तीनचार साल पुरानी किताब है। काले यजुर्वेद में जादू टोना भरा है; हवन यज्ञ में घोड़े और बकरे की कुरबानी कीजाती है इत्यादि।

—❀।

वर्ष ४ अङ्क १० अक्टोबर १९८० ई० **वेदज्योति** पंजीकरणसंख्या ६९२१।६२ डाक लख२०९

१— वेद सस्वर पाठ शिक्षण इन्दौर में २२-१०-८० से २ ११-८०तक श्री वीरसेन वेदश्रमीके आचार्यत्वमें होगा।

२— कन्या गुरुकुल हाथरस का हीरक जयन्ती महोत्सव अब ७ से ११ फरवरी १९८१ तक समारोहसे होगा।

३—आर्योपदेशक सम्मेलन रोहतकमें २९-११-८० को है।

४— अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन का ३०वाँ अधिवेशन शान्ति-निकेतन बंगाल में १, २, ३ नवम्बर को होगा। उसमें भाग लेने के लिए वैदिक परमार्थ आश्रम गोपाल निवास, सान्ताक्रूज पूर्व बम्बई५५ ने १. आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री लखनऊ, २. डा० भवानीलाल भारतीय, अजमेर, ३. श्री डा० पी० एन० ओक देहली और ४. डा० प्रज्ञादेवी आचार्या वाराणसी इन ४ वैदिक विद्वानों को आर्थिक साहाय्य [सदस्यता शुल्क और मार्ग-व्यय] प्रदान किया है जैसा उन्होंने २ वर्ष पहले पूनामें सम्पन्न २९वें अधिवेशन पर किया था। इसके लिए धन्यवाद।

५—उपर्युक्त अधिवेशन में विश्ववेदपरिषद् के प्रतिनिधि के रूप में उसके अध्यक्ष और मन्त्री भाग लेंगे।

६— कलकत्ता आर्यसमाज बड़ा बाजार के मन्त्री और विश्ववेदपरिषद् के अधिरक्षक श्री चाँद रतन दम्माणी जी ने २५ से ३१ अक्टूबर १९८० तक कलकत्ता में वेद-संगोष्ठियों का आयोजन किया है, इसमें परिषद्के अध्यक्ष और मन्त्री व्याख्यान प्रस्तुत करेंगे। उसी समय वंगप्रदेशीय शाखा का संगठन किया जायेगा।

❀ सदस्यों से प्रार्थना ❀

आप का वर्ष पूर्ण होगया है। कृपया आगे के लिए १० रुपये धनादेश से शीघ्र भेजें।

❀ विश्ववेदपरिषद् का द्विवार्षिक अधिवेशन ❀

वेदसदन सी ८१७ महानगर लखनऊ में आश्विन शुक्ल ९ शनिवार, १८-१०-८० को प्रातः ११ बजे से विश्व-वेद-परिषद् की प्रवन्ध-समिति और साधारण सभा की द्वि वार्षिक बैठक वार्षिक आख्या तथा आनुमानिक आय-व्यय की स्वीकृति और आगामी दो वर्षों के लिए अधिकारियोंकी नियुक्ति के लिये होगी। कृपया सभी सदस्य सम्मिलित हों।

१२ से १७ अक्टूबर १९८० तक वेदसदन में प्रातः ७ से १० तक ऋग्वेद-पारायण ब्रह्म-महायज्ञ और वेद-संगोष्ठियां होंगी। सभी वेदप्रेमी सादर आमन्त्रित हैं।

❀ वेद-प्रेमियों से निवेदन ❀

१— कृपया १०१ रु० देकर आजीवन संरक्षक अथवा १० रु० वार्षिक शुल्क देकर सदस्य बनें। सदस्यों को वेदज्योति पत्रिका भेंट में दी जायेगी।

२—सदस्य-गण परिषद् की वेद-परीक्षाओंमें अवश्यमेव सम्मिलित हों। आगामी परीक्षाएं वसंत पंचमी के पश्चात् फरवरी १९८१ में होंगी।

३— वेदसदन लखनऊ में निश्शुल्क वेद-संस्कृत-विद्यालय पुस्तकालय और वाचनालय प्रातः सायं चल रहे हैं स्थानीय जन उनसे लाभ उठायें।

— सुधीन्द्रनाथ शास्त्री मन्त्री विश्ववेदपरिषद्

सेवायाम् श्री



१२८

श्री बलभद्र कुमार हूजा
५ अबुलफजल रोड
नई दिल्ली १

प्रेषक — प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ (उ० प्र०)
मुद्रक— आदर्श प्रेस लखनऊ। दूरभाष ८४१०१

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ५ अङ्क ४–५, मधु, माधव (चैत्र वैशाख) २०३८ वि०; अप्रैल, मई १९८१ ई०; दयानन्दाब्द १५७;
वेदसंवत् १९६०८५३०८२
सम्पादक—आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम. ए. कार्यालय— सी ८१७ महानगर, लखनऊ दूरभाष ८४१०१
श्री सुधीन्द्रनाथ शास्त्री एम. ए. वार्षिक मूल्य दस रुपये विदेश में पच्चीस रुपये

आर्यसमाज के संस्थापक



स्वामी दयानन्द सरस्वती

नवसंवत्सरोत्सव—चैत्र शुक्ल १ संवत् २०३८ वि.
आर्यसमाज-स्थापना-दिवस
" " " चैत्र शुक्ल ५ " ९-४-८१
" " " अंग्रेजी तारीख १०-४-८१

विषय-सूची

—❀—

❀ आर्यसमाज का तीसरा नियम ❀

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेदका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

इस नियम का पालन करने कराने के लिए ही विश्ववेदपरिषद् स्थापित हुई जिसके ३ उद्देश्य हैं—

१—विश्व में वेदों का प्रचार।
२—वैदिक योगमय जीवन का निर्माण।
३—विश्व में वैदिक संस्कृत भाषा का प्रसार।

वेदार्थपारिजात - पर्यालोचन

[श्री युधिष्ठिर मीमांसक, सम्पादक वेदवाणी, बहालगढ़]

मेरी शाबर-भाष्य-मीमांसा व्याख्या के प्रकाशन से अवैदिक परम्परा को चालू रखने में अपना हित समझने वाले, जनता के और वैदिक मान्यताओं के अहित की परवाह न करनेवाले कतिपय पौराणिक विद्वान् अत्यन्त उद्वेजित हो उठे हैं। इसका प्रमाण श्री स्वामी करपात्री जी के लिखे 'वेदार्थ-पारिजात' नामक ग्रन्थ के उस प्रकरण से मिलता है, जो उक्त निबन्धों के खण्डन में लिखा गया है। वेदार्थ-पारिजात के दूसरे भाग के पृष्ठ १८२४ से २१४१ तक ३१८ पृष्ठ जिन बातों को प्रमाणित करने में व्यय किये हैं, उनमें से कतिपय इस प्रकार हैं—

१—ब्राह्मण-ग्रन्थों की भी वेद संज्ञा है।

२—यज्ञों में पशु का होम शास्त्रानुमोदित है। यज्ञ में पशु को मारना इसलिये हिंसा नहीं है कि यज्ञ में मारे गये पशु का उससे उपकार होता है। वह निकृष्ट योनि से छुटकारा पाकर सुवर्णमय शरीर को धारण कर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

३—अश्वमेध में यजमान की महिषी (=पटरानी) का अश्वशिश्न से संयोग और राजा की उपपत्नियों से ऋत्विजों का अश्लील भाषण वेदादि-शास्त्र-विहित है। शास्त्रविहित होने से ये कर्तव्य हैं।

४—वेदों का प्रयोजन केवल अग्निहोत्रादि यज्ञों की सिद्धि ही है। उनमें अन्य ज्ञान-विज्ञान कुछ भी नहीं है।

५—मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही अपौरुषेय हैं। शाखाएँ तथा ब्राह्मण ग्रन्थ ऋषि-मुनियों से प्रोक्त व रचित नहीं हैं।

६—पुराण भी वेद के समान ही प्रमाण हैं।

७—मूर्तिपूजा नवग्रह-पूजादि वेद-प्रतिपादित हैं।

[टिप्पणी—मीमांसा के नवम अध्याय में इन्द्रादि देवों के विग्रहवान् (शरीरधारी) होने का प्रबलरूप से खण्डन किया है। जब इन्द्रादि देव विग्रहवान् ही नहीं हैं, तो उनकी मूर्ति कैसे बन सकती है? मूर्ति के अभाव में उसकी पूजा कैसे होगी? मन्त्र, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, प्रामाणिक उपनिषद्, कल्पसूत्र और षड्दर्शनों में कहीं भी मूर्ति-पूजा-विधायक वचन उपलब्ध नहीं होते हैं।]

८—स्त्री और शूद्र को वेदाध्ययन का अनधिकार, बाल-विवाह, दहेज लेना और देना, विधवा स्त्रियों का सती होना (अग्नि में जलना या जलाना) आदि सभी बातें शास्त्रानुमोदित हैं।

९—राम-गायत्री, गणेश-गायत्री आदि तथा तान्त्रिक मन्त्र भी शास्त्रीय हैं।

१०—वेदों में इतिहास है, परन्तु वह प्रतिकल्प वैसा ही घटित होने से नित्य है।

आदि अनेक ऐसे विषयों को वेदादिशास्त्रों से प्रमाणित करने का दुःसाहस किया गया है, जिन्हें वेदादिशास्त्रों का अनुशीलन करनेवाले मनस्वी पौराणिक विद्वान् भी स्वीकार नहीं करते। उदाहरणरूप में पं० सत्यव्रत सामश्रमी, जो काशीमें वहाँ के पण्डितों और स्वामी दयानन्द सरस्वती के सं० १९२६ के प्रसिद्ध ऐतिहासिक शास्त्रार्थ के समय उभयवादि-सम्मत लेखक थे, को प्रस्तुत किया जा सकता है। उनके ऐतरेयालोचन और निरुक्तालोचन ग्रन्थों में उक्त विषयों में से अनेक विषयों की अमान्यता प्रतिपादित की है।

इसके साथ ही वेदार्थ-पारिजात ग्रन्थ आदि से अन्त तक छल, जाति, निग्रहस्थान और पूर्वापर-विरोध आदि दोषों से भरा हुआ है, जो इस ग्रन्थ के लेखक की मनोवृत्ति को दर्शाने के लिये पर्याप्त है। ऐसे ग्रन्थ से उनके पौराणिक मत की रक्षा होगी, अथवा उसका नाश होगा?—इसका बोध भी इन्हें नहीं है। वैदिक सिद्धान्तों का विरोध और पौराणिक मान्यताओं का पोषण करना ही इनका एकमात्र लक्ष्य है।

हम भट्ट कुमारिल के और आचार्य शङ्कर के मत

[शेष पृष्ठ २३ पर]

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती का अभिभाषण

[गतांक से आगे]

आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थों के स्थान पर आधिभौतिक अर्थों को प्रश्रय मिलने लगा। वेद में आस्था तो रही, किन्तु याज्ञिक प्रक्रिया की जकड़न के कारण इस आस्था का उपयोग कुत्सित कृत्यों और अन्धविश्वासों के समर्थन में किया जाने लगा।

सायण से पूर्ववर्त्ती वेदभाष्यकारों में स्कन्दस्वामी, दुर्गाचार्य, उद्गीथ, हरिस्वामी, उव्वट, वररुचि, भट्ट-भास्कर, वेंकटमाधव, आत्मानन्द, आनन्दतीर्थ, माधव, भरतस्वामी, देवपाल तथा आनन्दबोध के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वेदार्थ करने वाले ये सभी भाष्यकार याज्ञिकवाद की कीली के चारों ओर घूमते रहे। त्रिविध प्रक्रिया में अर्थ न करने का इन भाष्यकारों का मुख्य कारण उनकी वेद के सर्वज्ञानमयत्व में निष्ठा का अभाव ही समझना चाहिए। फिर भी, सायण से पूर्ववर्त्ती आचार्यों के वेदार्थ देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यास्क आदि आप्त ऋषियों के वेदार्थ के सिद्धान्तों की परम्परा न्यूनाधिक रूप में इन आचार्यों तक बनी रही। परन्तु धीरे-धीरे ह्रासोन्मुख होकर वह लुप्तप्राय सी हो गई। शताब्दियों तक समस्त वैदिक साहित्य याज्ञिकवाद के इर्द-गिर्द घूमता रहा। सायण के काल तक ऐसी स्थिति हो गई कि आध्यात्मिक तत्त्वों का स्पष्ट निर्देश करनेवाले मन्त्रों को भी पकड़-पकड़ कर बलात् यज्ञक्रिया में घसीटा जाने लगा। इतना ही नहीं, शतपथ ब्राह्मण आदि वेद के व्याख्यान ग्रन्थों तक में प्रक्षेप कर उन्हें दूषित करने की चेष्टा की जाने लगी। यजुर्वेद के २३वें अध्याय के राजधर्म का प्रतिपादन करनेवाले १९ से ३१ तक के (१३) मन्त्रों का इतना अश्लील और बेहूदा अर्थ किया गया है कि वैसा करने पर स्वयं महीधर ग्लानि अनुभव कर २३वें मन्त्र का अर्थ करते हुए कहते हैं—

'अश्लीलभाषणेन दुर्गन्धं प्राप्तानि अस्माकं
मुखानि सुरभीणि यज्ञः करोतु।'

अर्थात् इस अश्लील भाषण के कारण जो हमारे मुख दुर्गन्धित हो गये हैं उन्हें यज्ञ सुगन्धित कर दे। मन्त्र में न अश्लील शब्द है और न मन्त्रों के अर्थों में कहीं अश्लीलता है। स्वयं ही पहले अश्लीलता आरोपित कर दी और स्वयं ही उस अपराध के लिये प्रायश्चित्त की बात कह डाली। यह ठीक है कि शतपथ ब्राह्मण में भी इन मन्त्रों का वैसा अर्थ उपलब्ध है। परन्तु शतपथ ब्राह्मण में ही अन्यत्र इन मन्त्रों का अत्यन्त शुद्ध, युक्तियुक्त एवं उपादेय अर्थ भी उपलब्ध है। इससे स्पष्ट है कि मांसभक्षण, मदिरापान, पशुबलि, गुप्तेन्द्रिय-पूजन आदि आसुरी प्रवृत्तियों का ब्राह्मणादि ग्रन्थों में प्रक्षेप कर दिया गया और उन्हें वेद की संज्ञा देकर अपनी मान्यताओं की वेद के नाम पर पुष्टि करदी गई। क्या वेद इसी प्रकार के कुकृत्यों का प्रतिपादन करता है? यदि इसका उत्तर 'हां' में है तो बुद्ध जैसे पवित्रहृदय महात्मा के स्वर में स्वर मिलाकर लोग यही कहने को विवश होंगे कि हम ऐसे वेदों को नहीं मानते। परन्तु इसमें वेद का दोष नहीं है। दोष उस ऐनक का है जिसमें से देखने पर सब हरा ही हरा दीख पड़ता है।

इसमें सन्देह नहीं कि सायणाचार्य ने अपने समय में वैदिक साहित्य में महान् प्रयास किया। इस प्रयास के लिये हम उन्हें साधुवाद दिये बिना नहीं रह सकते। परन्तु मूलभूत धारणा के भ्रान्त होने के कारण उन्होंने स्वयं ही अपने किये कराये पर पानी फेर दिया।

'सर्वं वेदात् प्रसिध्यति'—मानों भगवान् मनु (१२.९७) के इस वचन की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य ने तैत्तिरीय-संहिता-भाष्य के उपोद्घात में स्पष्ट घोषणा की—

'प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥'

अर्थात्—प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से जो नहीं जाना जाता वह वेदों से अवश्य जाना जाता है। यही वेद का वेदत्व है।

परन्तु 'राजा कालस्य कारणम्'—शासन व्यवस्था का प्रभाव साधारणतया छोटे-बड़े सभी पर पड़ता है। सायणाचार्य विजयनगरम् राज्य में प्रधानमन्त्री

थे। वह यज्ञप्रधान युग था और यज्ञों में हिंसा अनिवार्य मानी जाती थी। उसी को लक्ष्य करके उन्होंने वेदभाष्य किया। कारण कुछ भी रहा हो, जब सायणाचार्य के मन में यह धारणा घर कर गई कि वेदमन्त्र यज्ञ-क्रिया का ही प्रतिपादन करते हैं और याज्ञिक अर्थ को ही कहते हैं तो यह स्वाभाविक था कि वेद के सर्वज्ञानमयत्व विषयक अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर वह अपना समस्त बौद्धिक वैभव यज्ञक्रिया के लिये समर्पित कर बैठते। विविध प्रक्रिया में याज्ञिक प्रक्रिया भी एक है, तदनुसार भी मन्त्र का अर्थ होना चाहिये। पर सायणाचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा का परित्याग कर वेदमन्त्रों का केवल याज्ञिक-प्रक्रियापरक ही अर्थ किया। कर्मकाण्ड की भँवर में फँसा होने के कारण उसने वेदार्थविषयक मूलभूत सिद्धान्तों की अवहेलना करके वेद के आशय को बलपूर्वक कर्मकाण्ड के संकुचित साँचे में ढालने की चेष्टा की, जिससे प्रभु की पवित्र वाणी वेद का गौरव जाता रहा। वस्तुतः यज्ञविषयक मिथ्या धारणा ने सायण को वेदमन्त्रों के यथार्थ तक पहुँचने ही नहीं दिया। महीधर आदि का भाष्य वाममार्ग के रंग में रंगा है। इन भाष्यों को पढ़ने के बाद वेद में किसी की श्रद्धा नहीं रह सकती और पढ़नेवाला कभी नहीं मान सकता कि वेद परमेश्वर की बुद्धिपूर्वक रचना है (बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे—वैशेषिक दर्शन), तथा उसमें उत्कृष्ट भावनाओं, उच्च आदर्शों या ज्ञान-विज्ञान का प्रतिपादन है। वेदार्थ के विषय में भ्रान्ति उत्पन्न करके संसार को वेद से विमुख करने में सबसे बड़ा हाथ सायण का रहा है। सायण का नाम बार-बार इसलिये भी आता है कि वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों पर सबसे अधिक भाष्य सायण के ही उपलब्ध हैं।

विदेशियों का वेदभाष्य

इधर अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने सायणादि भाष्यकारों के आधार पर अथवा तुलनात्मक भाषाशास्त्र और निजी उद्भावनाओं के आधार पर वेदों के अर्थ किये। विदेशी विद्वानों का उद्देश्य ही भारतीय जनता में अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता तथा साहित्य के प्रति अश्रद्धा और घृणा पैदा करना था। इस दृष्टि से उन्हें सायण का भाष्य अपने अनुकूल जान पड़ा। उन्होंने वेद और वैदिक वाङ्मय के जो अर्थ अंग्रेजी में किये, वे सब सायण के आधार पर ही किये और इस प्रकार वे वेदों को गड़रियों के गीत या जंगलियों की बड़बड़ाहट सिद्ध करने में सफल हुए। यह ठीक है कि विदेशी विद्वानों ने भारतीय न होते हुए भी संस्कृत साहित्य में, विशेषतः वैदिक वाङ्मय में अनुकरणीय उद्योग किया। परन्तु जातीय पक्षपातके तथा शास्त्र-विषय में गहरा ज्ञान न होने के कारण वे वैदिक साहित्य को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत न कर सके। विदेशियों ने जिस ध्येय को लक्ष्य में रखकर हमारे साहित्य में इतना घोर परिश्रम किया उसका पता मोनियर विलियम्स संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी की भूमिका में लिखे इन शब्दों से लग जाता है—

'मिस्टर बोडन के ट्रस्ट द्वारा संस्कृत के ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य भारतीयों को ईसाई बनाने में अपने देश (इंग्लैंड) वासियों को सहायता पहुंचाने के लिए हो रहा है।' यही बात मोनियर विलियम्स अपनी पुस्तक दि स्टडी आफ संस्कृत इन रिलेशन टु मिशनरी वर्क इन इंडिया (१८६१) में लिखते हैं।

इससे स्पष्ट है कि मोनियर विलियम्स का सारा परिश्रम हिन्दुत्व को नष्ट करके भारत में ईसाईमत की पताका फहराने का था।

समूचे भारत को ईसाई बना डालने का स्वप्न देखने वाले लार्ड मेकाले के जरखरीद गुलाम प्रो० मैक्समूलर का स्थान संस्कृत के यूरोपियन विद्वानों में सर्वोपरि माना जाता है। वेद के अनुसंधान और अनुवाद कार्य में प्रवृत्त होने का क्या उद्देश्य था, यह उन्होंने अपनी पत्नी के नाम लिखे एक पत्र में स्पष्ट किया है—'मेरा यह संस्करण और वेदों का अनुवाद भारत के भाग्य को दूर तक प्रभावित करेगा। यह उनके धर्म का मूल है, और उन्हें यह दिखा देना कि यह मूल कैसा है, गत तीन हजार वर्षों में इससे उत्पन्न होने वाली सब बातों को जड़मूल से उखाड़ फेंकने का एकमात्र उपाय है।'

(मैक्समूलर के पत्र वाल्यूम १, चैप्टर १५, पृष्ठ ३४)

इतना ही नहीं, भारत-सचिव के नाम १६ दिसम्बर १८६८ को लिखे अपने पत्र में मैक्समूलर ने लिखा—

'भारत का धर्म नष्टप्राय है, अब यदि ईसाईमत इसका स्थान नहीं लेता तो यह किसका दोष होगा ?'

(वही, चैप्टर १६, पृष्ठ ३७८)

सन् १८३३ में अपनी पुस्तक 'रिलीजस ऐंड फिलासोफिकल सिस्टम आफ दि हिन्दूज' के लिखने का उद्देश्य प्रो० विलसन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है —'संस्कृत के महान् विद्वान् जान म्यूर ने हिन्दू धर्म का खण्डन करनेवाले सर्वश्रेष्ठ निबन्ध-लेखक को २०० पौंड का पुरस्कार देने की घोषणा की। उन लेखकों की सहायता के लिए विलसन ने अपने भाषणों को लेखबद्ध किया।'

पाश्चात्यों के अनुयायी

कीथ, वैबर, विण्टरनित्ज, बुहलर, ग्रिफिथ, मैकडानल आदि सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे। सभी ने अपने-अपने ढंग से वैदिक साहित्य एवं संस्कृति को विकृत रूप देने का प्रयास किया। वस्तुतः इस सारे अनर्थ की जड़ मध्यकालीन आचार्यों, विशेषतः सायण की वेदार्थविषयक, भ्रान्त धारणायें हैं। यदि इन विदेशी विद्वानों को सायण की अपेक्षा वेद का उत्तम भाष्य मिला होता तो संभवतः वेद की दुर्दशा न होती। पाश्चात्यों के द्वारा प्रस्तुत वेदादि शास्त्रों का वह स्वरूप अवश्य ही न होता, जो अब है। सायण के वेदार्थ ने सबकी आँखों पर पट्टी बांध दी। और अब राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाने पर भी पाश्चात्यों के भारतीय मानस-पुत्रों की आँखों पर वह ज्यों की त्यों बंधी है। ऐसा न होता तो मैं इस विषय का इतना विस्तृत विवेचन न करता। भारतीय विद्याभवन के संस्थापक, गुजराती के महान् साहित्यकार और भारतीय संस्कृति के प्रसिद्ध पोषक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने ऋग्वेद के आधार पर तत्कालीन आर्यों के विषय में लिखा है—

'इनकी भाषा में अब भी जंगली दशा के स्मरण मौजूद थे। मांस भी खाया जाता था, और गाय का भी। 'अतिथिग्व' गोमांस खिलानेवाले की बहुमानास्पद उपाधि थी। सर्वसाधारण सुरा पीकर नशा करते थे। ऋषि सोमरस पीकर नशे में चूर रहते थे। वे रूपवती स्त्रियों को आकर्षित करने लिए मन्त्रों की रचना करते थे। कुमारी से उत्पन्न बच्चे अधम नहीं समझे जाते थे। कई ऋषियों के पिताओं का पता न था। आर्य भेड़िये की तरह लोभी होते थे। बीभत्सता या अश्लीलता का कोई विचार न था, आत्मा का कोई खयाल ही नहीं था। ईश्वर की कल्पना नहीं, नाम नहीं, मान्यता नहीं। भारतवर्ष के मूल निवासी शिवलिंगपूजक दस्यु थे।'

—'लोपामुद्रा' की भूमिका

जब मैंने पत्र लिखकर उनसे ऋग्वेद के उन मन्त्रों को बताने का आग्रह किया, जिनके आधार पर उन्होंने यह सब लिखा था तो उन्होंने अपने पत्र दिनांक २ फरवरी १९५० में मुझे लिखकर भेजा—'मैं वेदों को संस्कृति के प्रारम्भिक काल में मनुष्यों द्वारा रचित ग्रन्थ मानता हूं। मैंने अपनी पुस्तक में आर्यों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसका आधार पाश्चात्य विद्वानों, विशेषतः डा० कीथ द्वारा किया हुआ वेदों का अनुवाद है। मैंने उस समय के लोगों के जीवन और रहन-सहन आदि के सम्बन्ध में उनका प्रामाण्य स्वीकार किया है।'

श्री मुंशी ने अपनी पुस्तक 'दि क्रियेटिव आर्ट आफ लाइफ' में लिखा है कि पाश्चात्यों ने हमें गलत बातें सिखाई हैं। स्वामी दयानन्द की प्रशंसा करते हुए उस पुस्तक में लिखा कि 'दयानन्द की विद्वत्ता का पार मनुष्य नहीं पा सकता।' जब मैंने श्री मुंशी का ध्यान अपने कथन की ओर दिलाकर पूछा कि जब आप स्वामी दयानन्द की इतनी प्रशंसा और पाश्चात्यों की निन्दा करते हैं तो वेद के विषय में आप दयानन्द की बात न मानकर पाश्चात्य विद्वानों की बात को प्रमाण क्यों मानते हैं? तो उन्होंने अपने पत्र दिनांक ३-२-५१ के द्वारा यह कह कर बात को समाप्त कर दिया कि 'हम कभी फुर्सत के समय मिलकर इन साहित्य-सम्बन्धी बातों पर विचार करेंगे।'

लोकमान्य तिलक की देशभक्ति एवं विद्वत्ता पर तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता। तथापि वेद के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण भी सामान्य लोगों के जैसा ही था। 'मानवेर जन्मभूमि' के अनुसार जब उनसे पूछा गया कि आर्यों के मूलस्थान के विषय में आपने जो कुछ

लिखा है वह वेदों में कहाँ है? तो तिलक महोदय ने स्पष्ट कह दिया—'आमि मूल वेद अध्ययन करि नाई। आमि साहिब अनुवाद पाठ करियाछे।' अर्थात् हमने मूल वेद नहीं पढ़े। हमने तो साहब लोगों के अनुवाद पढ़े हैं।

प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् बाबू सम्पूर्णानन्द ने अपनी पुस्तक 'गणेश' में यजुर्वेद (२३-१९) के प्रसिद्ध मन्त्र 'गणानां त्वा······गर्भधम्' के महीधर-कृत भाष्य को और उससे होनेवाले कृत्य को अत्यन्त अश्लील, विचित्र तथा बेहूदा और फिर भी ठीक मानते हुए मेरे नाम अपने पत्र दिनांक १५ फरवरी १९५१ में लिखा—'इस मन्त्र का जो अर्थ आपने लिखा है, सम्भव है, वह ठीक हो। फिर भी मैं ऐसा मानता हूं कि वैदिक काल में मद्य, मांस आदि का व्यवहार होता था। पशुबलि भी होती थी।'

इन विद्वानों की लिखी पुस्तकें लाखों की संख्या में छप कर देश-विदेश के पुस्तकालयों में पहुंचती हैं, जबकि आर्य समाज के विद्वानों की लिखी पुस्तकें बहुत थोड़ी छपतीं और आर्य समाज मन्दिरों तक रह जाती हैं।

दुर्भाग्यवश, प्रकारान्तर से—प्राचीन भारत के इतिहास को निमित्त बनाकर—वेद और वैदिक कालीन आर्यों का जो चित्र वर्तमान और भावी पीढ़ियों के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है उसे पढ़कर, सुनकर किसी के भी हृदय में अपने अतीत के प्रति गौरव की भावना नहीं बनी रह सकती। इस सन्दर्भ में दिल्ली में १३–१४ फरवरी १९६९ को सम्पन्न इंडियन हिस्ट्री ऐंड कल्चर सोसाइटी के वार्षिक अधिवेशन में दिया, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० लल्लनजी गोपाल का इंडियन एक्सप्रेस १४-१५ फरवरी १९७९ में छपा यह वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है कि 'भारत के प्राचीन इतिहास की रचना योजनाबद्ध रूप से साम्यवादी रंग देकर की जा रही है। परिणामतः कुछ समय बाद बुद्धिजीवी वर्ग ही नहीं, साधारण लोग भी वेद की अमूल्य निधि से हाथ धो बैठेंगे!'

सायण और उसके अनुगामी पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के निरुक्त-प्रक्रिया की उपेक्षा करके लौकिक संस्कृत के आधार पर वेदार्थ करने का यह दुष्परिणाम हुआ कि हम सभ्य संसार के सामने मुंह दिखाने योग्य न रहे। इतना ही नहीं, ब्राह्मण ग्रन्थों, शाखाओं, श्रौतसूत्रों आदि अनेकानेक ग्रन्थों को भी वेद मानकर समय समय पर उनमें हुए प्रक्षेपों के सहित सब कुछ वेद के मत्थे मढ़ दिया गया। यौगिक अर्थों को न लेकर रूढ़ अर्थों के आधार पर उन्हें मनोरंजक किस्से कहानियों का पिटारा बना दिया। इस प्रकार हमारी मस्तिष्क रूपी भूमि में वेदों के प्रति अश्रद्धा की चट्टानें खड़ी हो गईं।

वेदज्ञान और विकासवाद

वेद का एक-एक शब्द अपने पेट में न जाने कितने ज्ञात एवं अज्ञात अर्थों को समेटे हुए है और फिर उन अर्थों के विशाल क्षेत्र में जितना विचरण करते चले जायेंगे, उत्तरोत्तर नवीन अर्थ और ज्ञान की उपलब्धि के कारण वैदिक शब्दों के वास्तविक अर्थों से अनभिज्ञ होने के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वान् विकासवाद के खूंटे से भी बंधे थे। यद्यपि मानव में ज्ञान का विकास उसकी चिन्तन शक्ति के साहचर्य से होता है, तथापि जो कुछ वह ज्ञान प्राप्त करता है उसका आदि मूल वह स्वयं नहीं है। वेद की ध्वनि अपने आदि-स्रोत परमेश्वर से निःश्वसित होकर परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा मार्गों से होती हुई वैखरी रूप में हमें प्राप्त हुई। जिन ऋषियों के माध्यम से वह हम तक पहुंची वे उसके रचयिता या प्रणेता न होकर अभिव्यंजक मात्र थे। अनादि काल से मनुष्य वेद रूपी ज्ञान के निरतिशय एवं अक्षय कोष से अपनी बुद्धि की ज्ञान प्राप्त करने की चेतना अथवा शक्ति के अनुसार ग्रहण करता रहा है। विकासवाद को माननेवाले वेदज्ञान के अनादित्व के सिद्धान्त को कैसे स्वीकार कर सकते हैं? सुदूर अतीत में भारतीय आर्यों को एक अत्यन्त सभ्य, सुसंस्कृत तथा ज्ञान-विज्ञान में अत्यधिक उन्नत जाति अथवा समाज के रूप में देखनेमें उनका जातीय पक्षपात भी आड़े आता है।

भारतीय साहित्य के अध्ययनार्थ अपनाई गई अर्वाचीन वैज्ञानिक गवेषणा-पद्धति के उत्साह-बाहुल्य में विदेशीय तथाकथित गवेषक विद्वानों द्वारा प्रस्थापित तथा अन्धाधुन्ध उनका अनुसरण करके 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' इस उक्ति को चरितार्थ करनेवाले भारतीय विद्वानों द्वारा अनुमोदित प्रस्थापनाओं को युक्ति, प्रमाण तथा विवेचन द्वारा निराधार सिद्ध करने का श्रेय युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द को है। उन्हीं के प्रयास से याज्ञिकवाद की मिथ्या धारणाओं रूपी घटाटोप बादलों के छिन्न-भिन्न हो

जाने पर उनके पीछे अन्तर्हित वेदोंके वास्तविक स्वरूप के दर्शन हुए। वस्तुतः ऋषि दयानन्द ने वेदों की अद्भुत तथा अनन्त ज्ञान-राशिको, उसपर पड़े गर्द-गुबार और धूल को झाड़ पोंछ कर, हमारे सामने पुनः प्रस्तुत किया।

वेद संस्कृति के मूल हैं

वेद भारतीय संस्कृति और विचार-धारा के आधारभूत स्तम्भ हैं। उन्हें जाति, मत या सम्प्रदायके साथ सम्बद्ध नहीं किया जासकता। वस्तुतः वे विश्व-वारा प्रथमा संस्कृति का मूल हैं। आज चाहे संसार ने कितनी ही उन्नति कर ली हो, परन्तु मानवीय समस्या का जैसा समाधान वेद में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मानव के लिए जो उपयुक्त है वेद में उस सब का निदर्शन है। उसमें ऐहिक के साथ पारलौकिक, भौतिक के साथ आध्यात्मिक ज्ञान और अभ्युदय के साथ निःश्रेयस का विवेचन है। यदि वह इतना उपयुक्त न होता तो ब्राह्मणों ने अपने प्राणों को देकर रक्षाके लिए प्रयास न किया होता, दाक्षिणात्यों ने उनको कण्ठाग्र करना अपना लक्ष्य न बनाया होता और विना किंचित् लाभ के, उनके पठन-पाठन में सारा जीवन न खपाया होता।

परन्तु अब भारत और नेपाल में कुल मिलाकर १७५० पंडित और ६५० शिष्य रह गये हैं। ११३१ शाखाओं में केवल १० उपलब्ध हैं। कारणहै वेदानुयायियों की उदासीनता। पहले महाराष्ट्र में गणेश-चतुर्थी के अवसर पर तथा अन्य समारोहों में वेद-पाठ के लिए पण्डितों को बुलाया जाता था परन्तु अब उनका स्थान बेहूदा फिल्मी गानों को प्रसारित करनेवाले ध्वनि-विस्तारकों ने ले लिया है। पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाएँ भी आड़े आरहीं हैं। पहले ऐसे लोगों को राजा महाराजाओं का संरक्षण प्राप्त था वह जाता रहा। इस अवस्थामें ब्राह्मणों में वेद के प्रति पूर्ववत् उत्साह कैसे बना रह सकता था?

१९६३ में काँचों के जगद्गुरु चन्द्रशेखरानन्द ने वेद-रक्षण-निधि ट्रस्ट स्थापित किया जिसका उद्देश्य उन शाखाओं के अध्ययन के लिये पाठशालाओं का संचालन करना है जिनके लुप्त होजाने को आशङ्का है। वेदों को सुरक्षित करने के लिए इलेक्ट्रिक उपकरणों की सहायता ली जारही है। संस्कृत संस्थान और तिरुमल तिरुपति देवस्थान पहले ही कुछ मन्त्रों के पाठ को टेप कर चुके हैं। यह सब प्रयत्न वेद के शब्दों को सुरक्षित करने के लिए है। इस तोता-रटन्त का भी अपना महत्त्व है, क्योंकि नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् जड़ ही न होगी तो फूल पत्ते कहाँ लगेंगे? किन्तु यह न भूलना चाहिए कि बीज बोने का अन्तिम ध्येय फल को प्राप्त करना है जो वेदार्थके विना संभव नहीं, किन्तु यदि वह अर्थ सारहीन, संकुचित, दरिद्रतापूर्ण रीतिसे किया जायेगा तो वह वेद और वैदिक वाङ्मय के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाओंको उत्पन्न करके उस के सम्बन्ध में हमारी पवित्र भावनाओं को, वेद की प्रामाणिकता और दिव्य रूप को हेय बना देगा।

१० अप्रैल १८७५ को बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के समय इसका उद्देश्य वेदधर्म को मानना और देश विदेश में उस का प्रसार करना निर्धारित किया गया था।

हमारी मान्यता है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। ज्ञान विज्ञान की ऐसी कोई बात नहीं जो बीजरूप में इसमें न हो। परन्तु मुख्य उद्देश्य को गौण बना, इधर उधर की बातों में फंसे रहने के कारण १०० वर्षसे अधिक बीत जानेपर भी यह सिद्ध न करा पाये। भाष्यकार क्योंकि स्वयं वे विद्याएं नहीं जानते अतः वेदों में आये वैज्ञानिक निर्देश समझ नहीं पाते। वस्तुतः पूर्ण सन्तोषप्रद व्याख्या के लिए सभी विज्ञानों और उनकी शाखाओं का ज्ञान आवश्यक है। ऐसे व्यक्तियों के द्वारा किया भाष्य ही सभी संशय मिटाकर हमारी प्रतिज्ञा को सत्य सिद्ध कर सकता है। जबतक वर्तमान में वैज्ञानिकों द्वारा लिखे गये ग्रन्थोंके समान वेद और तदनुकूल ग्रंथों के आधार पर एक एक विद्या की साङ्गोपांग और

क्रमबद्ध प्रस्तुत नहीं किया जायेगा तब तक हमारी स्थापना को मान्यता नहीं मिलेगी। आवश्यकता इस बात की है कि कम से कम २० ऐसे विद्वान् तैयार करें, जो संस्कृत के तो पूर्ण विद्वान् हों ही, उनमें से प्रत्येक एक-एक विद्या का पारंगत विद्वान् हो। प्रत्येक को वेदों में से एक-एक विद्या की खोज करके क्रमबद्ध विवेचन करते हुए स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने का काम सौंपा जाये।

वेदके प्रति हमारा कर्त्तव्य

विश्वविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाने वाले प्राध्यापक स्वयं सायणादि पौराणिक एवं पूर्वाग्रहों से युक्त अधकचरे पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित हैं। इसलिए अपने छात्रों को वे वही कुछ पढ़ाते हैं जो उन्होंने पढ़ रखा है। आगे चलकर यही छात्र अध्यापक बनते और वही कुछ अपने छात्रों को पढ़ाते हैं। इस प्रकार शिक्षित वर्ग वेदों के उसी स्वरूप को जानता और मानता है। इसलिए आर्यसमाज के नेताओं, विद्वानों, तथा संस्थानों को चाहिए कि वे विश्वविद्यालयों और कालिजों को अपने प्रचार का केन्द्र बनायें और वहाँ अध्यापन-कार्य में लगे संस्कृत तथा इतिहास विभाग के अध्यापकों से सम्पर्क स्थापित कर वेदों के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण ठीक करें। उनके दिमाग बदल जायें तो कालान्तर में सारा सिलसिला बदल जायेगा। एतदर्थ यह भी आवश्यक है कि हमारी वेद-विषयक मान्यताओं के पोषक उच्चस्तरीय मौलिक ग्रन्थों का प्रणयन तथा प्रकाशन सुविचारित योजना के अधीन इस प्रकार कराया जाय कि उनकी पहुँच स्वतः सर्वत्र हो सके।

दिल्ली विश्वविद्यालय में दयानन्द पीठ की स्थापना के लिए सार्वदेशिक सभा, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, प्रादेशिक सभा तथा डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी को एकजुट होकर प्रयास करना चाहिए। मैं सार्वदेशिक सभा से अनुरोध करूँगा कि वह समस्त प्रान्तीय सभाओं को प्रेरणा करे कि वे सब अपने-अपने क्षेत्र में स्थित विश्वविद्यालयों में दयानन्द-पीठों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हों।

विदेशों में वेदों का प्रचार एवं प्रसार करने के लिए आवश्यक है कि वेदों के प्रकाण्ड विद्वानों को जर्मन, फ्रैंच, रशियन, चीनी, जापानी आदि विदेशीय भाषाओं का प्रशिक्षण दिया जाये। और जब वे तत्तद् भाषा को बोलने लिखने में समर्थ हो जायें तो उन्हें स्थायी रूप से उन-उन देशों में नियुक्त किया जाये।

समाज तथा राष्ट्र की अनेक समस्यायें हैं। उनका समाधान करने में अनेक संगठन तथा संस्थायें लगी हुई हैं। ऐसे कार्यों में सहयोग देना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। किन्तु एक काम ऐसा है जिसे आर्यसमाज के सिवा अन्य किसी ने न किया है और न करना है। और वह है प्राचीन ऋषियों की अनुसारिणी ऋषि दयानन्द की मान्यताओं के अनुसार वेद का प्रचार एवं प्रसार। जिस काम को करने वाला दूसरा कोई नहीं, आर्य समाज की सारी शक्ति उसी काम को करने में लगनी चाहिये। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है। इस परम धर्म का पालन करने वाले जितने लोग होंगे वे ही महर्षि के सच्चे अनुयायी होंगे। प्रत्येक आर्यगृह में वेदों की पुस्तकें हों। उनके समझने के लिए प्रत्येक स्त्री-पुरुष संस्कृत सीखें। प्रतिदिन जितना सम्भव हो, वे उतना वेदमन्त्रों का मनन करें और उनके द्वारा प्राप्त शिक्षाओं के अनुकूल आचरण करें।

—❀ ❀ ❀—

प्रणाम बारम्बार हो !

हे ऋषीश्वर, हे मुनीश्वर, वन्दना स्वीकार हो।
ज्ञान के दाता, तुम्हें प्रणाम बारम्बार हो॥
वेद से ही हो सका कल्याण भारत देश में।
हो गया जागृत सारा देश एक सन्देश में॥
आप ही इस देश के दुखियों के तारनहार हो।
ज्ञान के दाता, तुम्हें प्रणाम बारम्बार हो॥

—गुरुदत्त (डी०ए०वी० कालेज, काँगड़ा)

दयानन्द-प्रतिपादित वेद-सृष्टि-संवत्

[आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए०, उपाध्यक्ष विश्ववेद-परिषद्, सी ८१७ महानगर लखनऊ]

'आर्यसेवक' नवम्बर १९८० के तथा सार्वदेशिक ७-१२-८० के अङ्क में श्री काशीनाथ शास्त्री (गोंदिया) ने पुनः 'सृष्टि-संवत्-विवाद' उठाया है, यद्यपि इसे वेदभाष्य-जयन्ती-समारोह दिल्ली में होनेवाली विशाल वेद-संगोष्ठी तथा विद्वत् परिषद् में पूर्णतया समाप्त कर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका और सत्यार्थप्रकाश तथा मेला चाँदापुर के सम्मेलनमें प्रतिपादित वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८१ को ही प्रमाणित स्वीकृत किया गया था। पं. राजवीर शास्त्री आदि के द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा दिल्ली को रजिस्टर्ड पत्र द्वारा ऋषि-विरुद्ध मान्यता (१९७२९४९०८१) को त्याग कर शुद्ध ऋषि-प्रमाणित मान्यता (१९६०८५३०८१) को स्वीकार करने और तदर्थ धर्मार्यसभा की बैठक बुलाने की प्रार्थना गत तीन वर्षों से अनेक बार किये जाने पर भी सार्वदेशिक सभा अपने भ्रमपूर्ण निर्णय को नहीं छोड़ती और धर्मार्यसभा की बैठक भी नहीं बुलाती। अगले वर्ष फिर सार्व० का निर्वाचन और नयी धर्मार्यसभा की नियुक्ति होगी। इस प्रकार पूरे तीन वर्ष बीत जायेंगे और धर्मार्यसभा की कोई बैठक न हो पायेगी तथा यह वेद-सृष्टि-संवत् का विषय तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण विषय बीच में ही लटके रहेंगे।

अब प्रस्तुत विषय पर विचार किया जाता है—

१. श्री काशीनाथ शास्त्री का लेख पक्षपात और आक्रोश से पूर्ण है—यह उनके निम्नलिखित वाक्यों के प्रयोग से सिद्ध होता है—

(१) 'लोग उनके बहकावे में न आवें।'

(२) अपने विचारों को दूसरों से बरबस मनवाना चाहते हैं।

(३) निराधार कोरी कल्पना या बेसिर-पैर की उड़ान है।

(४) आप की लाल बुझक्कड़ की बूझ के अनुसार।

(५) अपने को सिद्धान्ती और महर्षि-पक्षपोषकों को विवादी कहना (जबकि वे स्वयं विवादी हैं और महर्षि के पक्षपाती सिद्धान्ती हैं।)

(६) 'जबर्दस्त खींचातानी करके महर्षि के वचनों के साथ अनर्थ करने का कोई अधिकार नहीं है।' वस्तुतः जबर्दस्त खींचातानी और अपने आचार्य के प्रति विद्रोह और विश्वासघात, उनकी प्रतिपादित वेद-सृष्टि-संवत् को न माननेवाले ही कर रहे हैं।

२—एक ब्राह्मदिन में एक हजार चतुर्युगियाँ (४३२००००००० वर्ष) होती हैं। जबकि १४ मन्वन्तरकी सृष्टि में ९९४ चतुर्युगियाँ ही होती हैं तब स्वतः ही स्पष्ट रूप से ६ चतुर्युगियों का समय सृष्टि रचना में लगा प्रमाणित हो जाता है—इसे निराधार कोरी कल्पना या बेसिर-पैर की उड़ान नहीं कहा जा सकता।

३—जड़ सृष्टि की रचना का समय महर्षि ने मानव-वेदसृष्टि-संवत् में जोड़ना उचित नहीं समझा, क्योंकि वह समय मानव और वेदाविर्भाव से पूर्व का है।

४—ब्राह्मदिन दो प्रकार से है— (१) एक हजार चतुर्युगी वाला और (२) एकदेशि-न्याय से उसके अन्तर्गत ९९४ चतुर्युगी वाला। यह ब्राह्मदिन का एक देश होने पर भी ब्राह्मदिन कहाता है जैसे एक स्थान पर ही फट जाने से 'कपड़ा फट गया'। रात या दिन में कोई कार्य किया—यहाँ रात या दिन के एकदेश में किये गये कार्य को भी रात-दिन के अन्तर्गत होने के कारण रात या दिन में कह दिया जाता है।

५—महर्षि के पक्ष की सबसे भयंकर भूल बताते हुए श्री काशीनाथ शास्त्री स्वयं ही भयंकर भूल कर बैठे। ६ चतुर्युगियाँ जड़सृष्टि-निर्माण में व्यतीत हो

चुकने के पश्चात् मन्वन्तर की गणना आरम्भ होती है और तदनुसार महर्षि की गणना १९६०८५३०८१ वर्ष वेदसृष्टि-संवत् पूरे ठीक बैठते हैं। इसके विरोध में जो गणना की है वह मयासुर के अप्रामाणिक सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर की गयी है। वही मयासुर ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि की रचना में १,७०,६४,००० (एक करोड़, सत्तर लाख, चौसठ हजार) वर्ष मान रहा है। यह वचन तो स्वयं साध्य कोटि में है। इसके आधार पर की गयी गणना भी अप्रामाणिक होगी। श्री काशीनाथ शास्त्री जी बतायें कि श्लोक में वर्णित देव और दैत्य क्या और कौन हैं? फिर उनके पश्चात् जल, पृथिवी तथा वनस्पतिकी उत्पत्तिमें भी कुछ वर्ष लगे होंगे या नहीं? और ग्रहों से पहले महत् तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, आकाश, वायु, अग्नि, आपः की उत्पत्ति में भी पर्याप्त समय लगा होगा, अतः इसका समय ८८ लाख ५६ हजार वर्ष और मान लिया जाय तो वेदसृष्टि-संवत् आरम्भ होने से पहले का पूरा समय २ करोड़ ५९ लाख २० हजार वर्ष (अर्थात् ६ चतुर्युगियाँ) पूरा हो जाता है।

अतः मयासुर का सन्धिकाल और ग्रह, नक्षत्र की रचना में बीते हुए काल के वर्ष दोनों अप्रामाणिक और अमान्य हैं।

महर्षि ने, मन्वन्तर की जो गणना की है वह मानव-सृष्टि और वेदों के आविर्भाव के समय से की है और मानव तथा वेद की, स्थिति ब्राह्मदिन के अन्त तक मानी है अतः अन्त से पीछे की ओर गणना करने पर यह समय ९९४ चतुर्युगियों का होता है और परिणाम स्वरूप ६ चतुर्युगियाँ मानव और वेद के आविर्भाव से पहले ही बचती हुई माननी पड़ती हैं।

पृष्ठ ११ के प्रथम स्तम्भ के आरम्भ में श्री काशीनाथ शास्त्री लिखते हैं कि 'पर्यन्त का आशय होता है आदि से अन्त तक'। यही खींचातानी और अनर्थ है। 'पर्यन्त' का सीधा सरल अर्थ 'अन्त तक' होता है। यही प्रकरण से भी सिद्ध होता है। इसमें 'आदि से' अर्थ कहाँ से आ गया? किस कोष में पर्यन्त का यह अर्थ लिखा है? क्या यह मनमाना कल्पित अर्थ नहीं है? क्या यह ऋषि के वाक्यों से खिलवाड़ और अत्याचार नहीं है? शास्त्री जी कृपया विचार करें।

उसी पृष्ठ पर प्रथम स्तम्भ के अन्त में — 'सर्वप्रथम मुख्य विषय सन्धिकाल एवं जलप्रलय को स्वीकार करना है जो महर्षि के उक्त वाक्यों से स्पष्टतः सिद्ध है'—यह कल्पना भी यथार्थ नहीं। जलप्रलय के वर्णन से सन्धिकाल कैसे सिद्ध हो गया? 'सन्धिः प्रोक्तः जलप्लवः' के अनुसार जलप्लवः और जलप्रलय को एक मानकर मन्वन्तरों के बीच में जलप्रलय और सन्धि को माना जा सकता है किन्तु उस सन्धि का अतिरिक्त काल नहीं माना जा सकता। फिर सभी १४ मन्वन्तरों के प्रारम्भ में और १४ मन्वन्तरों के अन्त में तो सन्धि भी नहीं मानी जा सकती क्योंकि उस समय प्रारम्भ में तो जल होता ही नहीं। सृष्टि के प्रारम्भ तथा सृष्टि के अन्त में मन्वन्तर की सन्धि किससे होगी? प्रलय से सन्धि हो नहीं सकती। सन्धि समान पदार्थों में होती है। फिर जलप्रलय में भी मनुष्यों का और वेदज्ञान का सर्वथा अभाव नहीं होता। अतः संन्धि-काल मानना सर्वथा अयुक्त है और इसीलिये महर्षि ने इसे नहीं माना।

पृष्ठ ११ के ही दूसरे स्तम्भ में श्री काशीनाथ शास्त्री महर्षि की मान्यता के विरुद्ध लिखते हैं कि "वेदों की उत्पत्ति का संवत् सृष्टि-संवत् नहीं हो सकता।" जब महर्षि दोनों को एक मान रहे हैं तो उसका विरोध क्यों? हाँ, यह ठीक है कि वहाँ महर्षि के 'सृष्टि' शब्द से मानव और वेद की सृष्टि का तात्पर्य ग्रहण करना उचित हैं। सृष्टि के दोनों अर्थ हैं—जड़सृष्टि और चेतनसृष्टि। मन्वन्तर वाला संवत्सर चेतन-सृष्टि का संवत्सर है। मानव को तो अपनी ही उत्पत्ति से आगे की गणना मानना और लिखना अभीष्ट है।

मन्वन्तर—मनु और अन्तर इन दो शब्दों से बना है। यह शब्द ही बताता है कि मनु (जो मनुष्य थे) से यह सम्वत्सर आरम्भ होता है। अतः शास्त्री जी का यह कथन ठीक नहीं कि 'सृष्टि-रचना-काल से ही मन्वन्तर की गणना आरम्भ हो जाती है।' हमारा यह कथन कि 'मानवोत्पत्ति तथा वेदोत्पत्ति का काल मन्वन्तर से आरम्भ होता है' सत्य है।

शास्त्री जी मय को राक्षस लिख रहे हैं। उसे राक्षस तो किसी ने नहीं बताया—असुर वह अवश्य था। पहले तो असुर भी अच्छे समझे जाते थे किन्तु जब परवर्त्तीकाल में वे वेदों और आर्यों के विरुद्ध हो गये तब उनके ग्रन्थ भी वेद-विरुद्ध होनेसे अमान्य हो गये। मय भी अनेक हुए हैं। महर्षि ने जिस मय की संहिता को मान्य माना है वह शिल्पशास्त्र का ग्रन्थ है अतः वह मय शिल्पी (इंजीनियर) था, उसके नाम के साथ असुर शब्द नहीं और पौराणिक बातों से पूर्ण वर्तमान सूर्यसिद्धान्त जिस मय ने बनाया है उसके नाम के साथ 'असुर' शब्द लगा है, यह ज्योतिषी था। उसमें अनेक वेद-विरुद्ध बातें हैं, तर्क और सृष्टिक्रम के विरुद्ध भी बातें हैं अतः वह प्रामाणिक और मान्य नहीं हो सकता। यदि शास्त्री जी उसमें प्रक्षेप मानते हैं तो उसमें वर्णित सन्धिकाल को भी प्रक्षेप ही मानना पड़ेगा। सम्भवतः महर्षि ने इसीलिये मयासुर कृत वर्तमान उपलब्ध सूर्यसिद्धान्त को और उसमें वर्णित सन्धिकाल को नहीं माना।

एक कल्प के समय की सम्पूर्ण अवधि में केवल १४ मन्वन्तर की अवधि ही मानना अवश्य कोरी कल्पना है क्योंकि कल्प में १००० चतुर्युगियाँ होती हैं और १४ मन्वन्तरों में केवल ९९४ चतुर्युगियाँ। अगर मन्वन्तरों वाले सम्वत्सरों में जड़सृष्टि-रचना की ६ चतुर्युगियाँ जोड़कर जड़सृष्टि संवत् का प्रयोग किया जाये तब भी ग्रहों की आयु और दूरी आदि का परिज्ञान नहीं हो सकेगा, अतः जड़सृष्टि-रचना-काल जोड़कर सृष्टि-संवत् महर्षि ने नहीं माना।

पं० लेखराम ने महर्षि के देहान्त के पश्चात् ही (सम्भवतः मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या के प्रभाव से) महर्षि की गणना में सन्धिकाल न जोड़ने की भूल बतायी। वास्तव में यह पं० लेखराम की ही भूल थी। यदि वे जीवित होते तो अपनी भूल को समझ जाते। अब उनके लेख के आधार पर ही वर्तमान कुछ व्यक्ति और सार्वदेशिक सभा महर्षि दयानन्द की भूल स्वीकार करते चले जा रहे हैं। यह बड़ी लज्जा और खेद का विषय है। महर्षि की भूल बताने वाले सभी विद्वानों को हमारा शास्त्रार्थ के लिये आह्वान है। यदि उन्हें भय नहीं है तो मैदान में क्यों नहीं आते? शास्त्रार्थ करने से क्यों कतराते हैं?

परम्परा से प्रचलित संकल्प से बीते समय (६ मन्वन्तर, २७ चतुर्युगी, सतयुग, द्वापर, कलि के ५०८१ वर्ष) का योग १९६०८५३०८१ ही आता है। क्या यह वेदमानव-सृष्टि-संवत् का बताना नहीं है? इस संकल्प में सन्धि और सन्धिकाल तो पढ़ा नहीं जाता। अतः महर्षि-प्रतिपादित संवत् ही ठीक है।

आर्यसेवक के पृष्ठ १४ पर श्री काशीनाथ शास्त्री ने श्री राजवीर शास्त्री से पूछा है कि 'क्या सर्वत्र सृष्टि उत्पत्ति से महर्षि का आशय चेतनसृष्टि की उत्पत्ति से है?' इस सम्बन्ध में यह कहना है कि शब्दों का अर्थ प्रकरण के अनुसार होता है। सृष्टि का अर्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकरण में भिन्न-भिन्न होता है। जहाँ-जहाँ वेद की उत्पत्ति के साथ सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है वहाँ निश्चय ही सृष्टि का अर्थ मानव-सृष्टि से है, क्योंकि मानव के लिये ही वेद की उत्पत्ति की जाती है। महर्षि की गणना को 'मोटा हिसाब' बताना अनुचित है। यह सूक्ष्म हिसाब है।

वेदोत्पत्ति के साथ आये जगत् और सृष्टि की उत्पत्ति से मानवसृष्टि की उत्पत्ति का आशय दो बातों के कारण लगाया गया है—

१—जड़सृष्टि की उत्पत्ति के तत्काल साथ में मानव और वेद की उत्पत्ति नहीं हो सकती। दोनों की उत्पत्ति के बीच में ६ चतुर्युगी का समय मानना आवश्यक है। १९७२९४९०८१ सृष्टि-संवत् माननेपर जड़सृष्टि के साथ तत्काल मानव और वेद की उत्पत्ति माननी पड़ेगी जो तर्क-विरुद्ध और अवैज्ञानिक है।

२—मन्वन्तर वाली गणना से ९९४ चतुर्युगियाँ ही पूरी होती हैं अतः शेष ६ चतुर्युगियों का समय जड़सृष्टि की उत्पत्ति में मानना पड़ता है। उसके पश्चात् जो जगत और सृष्टि की उत्पत्ति होगी वह मानव की सृष्टि ही होगी। अतः पं. काशीनाथ शास्त्री जी का लेख मान्य नहीं।

अन्त में सत्य की ही विजय होगी। पं. काशीनाथ शास्त्री ने भी इतना तो मान ही लिया कि 'वेदों की उत्पत्ति का सम्वत् मानव तथा वेदोत्पत्ति सम्वत् हो सकता है।' (आर्यसेवक पृष्ठ ११, स्तम्भ २)। हमारा कहना है कि महर्षि दयानन्द सरस्वतीने उसी वेदोत्पत्ति-संवत् १९६०८५३०८१ को सृष्टि-संवत् भी बताया है, अतः सिद्ध होता है कि उनका बताया यही मानव-वेद-सृष्टि-संवत् सर्वथा ठीक और मान्य है।

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् की गणना

नव नर्ष मधुमास चैत्र शुक्ल १, संवत् २०३८ वि० ५-४-१९८१ (अथवा मेष संक्रान्ति १३-४-८१) को १९६०८५३०८२ प्रारम्भ होगा।

वेद-सृष्टि-संवत् से अभिप्राय उस काल की गणना से है जब से मानव-सृष्टि उत्पन्न कर परमात्मा ने वेदों का प्रकाश किया। इस युग में सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों की उत्पत्ति में वर्षों की गणना अपनी 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' में आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व (फाल्गुन कृष्ण ६, शनिवार, चतुर्थ प्रहर वि० सं० १९३३ के समय), 'भूमिका' का संशोधन करते समय, ३ फरवरी १८७७ को, मेरठ में अन्तिम रूप में की थी।

उसके और मनुस्मृति (१।६८–७३, ७९, ८०) के प्रमाण से संक्षिप्त और सरल वेद-सृष्टि-संवत् के काल की गणना निम्नलिखित प्रकार से है—

कलियुग	४३२०००	वर्ष का कलियुग
इससे दुगुना द्वापर युग	८६४०००	,, द्वापर युग
इससे तिगुना त्रेता युग	१२९६०००	,, त्रेता युग
इससे चौगुना सतयुग	१७२८०००	,, कृत(सत)युग
एक महायुग(चतुर्युगी)	४३२००००	,, चतुर्युगी

७१ चतुर्युगी का एक मन्वन्तर ७१ से गुणित करके ३०,६७,२०००० वर्ष का मन्वन्तर होता है।

१४ मन्वन्तर निम्नलिखित हैं—१. स्वायम्भव, २. स्वारोचिष, ३. औत्तमि, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८. सावर्णि, ९. दक्ष सावर्णि, १०. बृहत् सावर्णि, ११. धर्म सावर्णि, १२. रुद्रपुत्र, १३. रौच्य, १४. भौतव्यक।

१४ मन्वन्तरों की एक मानव-वेद सृष्टि = ९९४ चतुर्युगी होती है। ४,२९,४०,८०००० वर्षों का एक मानव-वेद-सृष्टि-संवत् होता है।

महर्षि के लेख के समय तक व्यतीत हुए वेद-सृष्टि-संवत् का विवरण निम्न प्रकार है—

एक मन्वन्तर	३०,६७,२०००० गुणित६
६ मन्वन्तर के वर्ष	१,८४,०३,२००००
७वें मन्वन्तर की २७ चतुर्युगी	११,६६,४००००
२८वीं चतुर्युगी का सतयुग	१७,२८०००
२८वीं चतुर्युगी का त्रेतायुग	१२,९६०००
२८वीं चतुर्युगी का द्वापरयुग	८,६४०००
२८वीं चतुर्युगी के कलियुग के वर्ष	४९७६
योग–(वेद-सृष्टि-संवत् के भुक्तवर्ष)	१,९६,०८,५२९७६
महर्षि से अब तक के बीते वर्ष जोड़े	१०५
आज तक के वेद-संवत् के वर्ष व्यतीत हुए।	१,९६,०८,५३०८१

वेद-सृष्टि-संवत् के शेष भोग्य वर्ष (महर्षि दयानन्द के लेखके समय तक) ७वें मन्वन्तर की २८वीं चतुर्युगी

में कलियुग के शेष वर्ष	४,२७,०२४ वर्ष
शेष ४३ चतुर्युगियों के वर्ष	१८,५७,६०,००० वर्ष
शेष ७ मन्वन्तरों के वर्ष	२,१४,७०,४०,००० वर्ष
योग —	२,३३,३२,२७,०२४

वेद-सृष्टि-संवत् के शेष भोग्य वर्ष २ अरब, ३३ करोड़, ३२ लाख, २७ हजार २४ वर्ष हुए। महर्षि ने इसी वेद-सृष्टि-संवत् का वर्णन सत्यार्थप्रकाश तथा मेला चांदापुर में किया है। इसमें से तब से बीते १०५ वर्ष घटाने पर अब २,३३,३२,२६,९१९ वर्ष शेष हैं।

ब्राह्मदिन (सम्पूर्ण सृष्टि)

ब्राह्म दिन=सम्पूर्ण जड़सृष्टि में एक हजार चतुर्युगी अर्थात् ४,३२,००,००००० वर्ष होतेहैं। इसके प्रमाणस्वरूप महर्षि ने 'भूमिका' में सहस्रस्य प्रमासि० इत्यादि (यजु० १५-६५) तथा मनु १।६८-७५ को उद्धृत किया है। (यद्यपि वेदभाष्य में यजु० १५-६५ में उनका यह अर्थ नहीं मिलता)।

सर्वप्रथम पं. लेखराम ने निम्नलिखित मन्त्र (अथर्व० ८-२-२१) को सृष्टि-संवत् की गणना में प्रस्तुत किया—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास् तेऽनु मन्यतामहृणीयमानाः॥

अंकाना वामतो गतिः के ज्योतिष-सिद्धान्तानुसार

शतम् (सौ) गुणित	०००
अयुतम् (दस हजार)=	००००००
द्वे	२००००००००
त्रीणि	३००००००००
चत्वारि	४००००००००० वर्ष

योग—४ अर्ब ३२ करोड़ वर्ष

की यह पूरी सृष्टि (१ ब्राह्म दिन) बनायी गयी है, जिसे इन्द्र (सम्राट्) और अग्नि (प्रधानमन्त्री) तथा समस्त विद्वान् संकोच न करते हुए अनुमत किया करें।

"इस ब्राह्म दिन के अन्त तक अर्थात् 'जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे।" —महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के वेदोत्पत्ति विषय के अन्त में लिखे उपर्युक्त वचन के अनुसार जब हम 'वेद-संवत्' की गणना सृष्टि के अन्त से प्रारम्भ कर, पीछे की ओर जाते हैं तो उपर्युक्त वेद-संवत् की मन्वन्तर गणनानुसार ९९४ चतुर्युगियों पार करने पर शेष ६ चतुर्युगियों के बराबर का काल वेदाविर्भाव से पूर्व ही बच रहता है। यही समय महत्तत्त्व, आकाशादि पञ्चभूत, वनस्पति, पशु-पक्षी और मानव के आविर्भाव का है।

दूसरा दोषपूर्ण मत

खेद है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत उपर्युक्त शुद्ध गणना को पं. लेखराम आदि ने त्रुटिपूर्ण बताते हुए कहा कि 'यह भूल है, गणना अशुद्ध हो गयी, इसमें भुक्त वर्षों में ७ संधियों की और भोग्य वर्षों में ६ संधियों की, कुल १५ संधियों की गणना (संधि प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ और अन्त में होती है) छूट गयी है!' तदनुसार एक संधि के वर्ष सतयुग के वर्षों के बराबर १७,२८,००० वर्ष होते हैं और कुल १५ संधियाँ=६ चतुर्युगी अर्थात् २,५९,२०,००० वर्ष की होती हैं। भुक्त (व्यतीत) ७ संधियाँ=७ सतयुग= एक करोड़ बीस लाख छयानवे हजार वर्ष जोड़ने पर १,९७,२९,४८,९७६ वर्ष सृष्टि-संवत् के (महर्षि से अब तक के १०५ वर्ष जोड़ने पर १९७२९४९०८१ वर्ष सृष्टि-संवत् के) इन विद्वानों के अनुसार माने जा रहे हैं।

किन्तु इस मत में निम्नलिखित दोष हैं—

१. जिस मय असुर कृत 'सूर्यसिद्धान्त' ग्रन्थ में संधियों के काल का वर्णन है वह पौराणिक तथा असत्य कल्पनाओं से पूर्ण है, अतः मन्वन्तरों की संधियों का काल मान्य नहीं।

२. महर्षि दयानन्द ने वशिष्ठकृत सूर्यसिद्धान्त को माना है, वर्तमान उपलब्ध मयासुरकृत सूर्यसिद्धान्त को नहीं, क्योंकि महर्षि द्वारा सूर्यसिद्धान्त आदि में वर्णित बताये गये एकं दश शतं आदि श्लोक इस सूर्यसिद्धान्त में नहीं मिलते। अतः सिद्ध हुआ कि महर्षि उस सूर्यसिद्धान्त को नहीं मानते जिसमें मन्वन्तरों के पश्चात संधिकाल माना गया है।

३. वेद का आविर्भाव ब्राह्मदिन के प्रारम्भ में ही नहीं हो सकता क्योंकि मानव पर वेद का प्रकाश हुआ और वह मानव महत् तत्त्व से लेकर पृथ्वी तक की और उस पर वनस्पति, पशु आदि की सृष्टि के पश्चात् ही उत्पन्न और जीवित रह सकता है।

४. मयासुरकृत सूर्यसिद्धान्त में भी सृष्टि के प्रारम्भ से १ करोड़ ७० लाख ६४ हजार वर्ष बीतने पर ग्रह, नक्षत्र; देव-दैत्यादि की सृष्टि मानी है।

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्नो वेधसो गताः॥
(सूर्य० १.२४)

इसमें ग्रहों से पूर्व आकाश, वायु, अग्नि (सूर्य), जल की, और ग्रहों (विशेषतः पृथ्वी) के पश्चात् वनस्पतियों, पशु-पक्षियों आदि की उत्पत्ति में ८८ लाख ५६ हजार वर्षों का समय और लगा मान लेने पर मानव-वेद-सृष्टि से पूर्व का कुल समय २ करोड़ ५९ लाख बीस हजार वर्ष अर्थात् ६ चतुर्युगी हो जाता है। तदनुसार महर्षि दयानन्द-प्रतिपादित मानव-वेद-सृष्टि-संवत् ठीक बैठ जाता है।

५. संधियों के काल को मानने पर प्रत्येक संधि-काल में सत्रह लाख अट्ठाइस हजार वर्ष पर्यन्त की जल-प्रलय मानी जाती है, जिसमें मानव जीवित नहीं रहते।

कहा जाता है कि मानवों को सुप्तप्रबुद्ध-न्याय से वेद स्मरण रहते हैं। यदि इसे मानें तो एक ब्राह्म रात्रि (प्रलय) के पश्चात् भी सुप्तप्रबुद्ध न्याय से वेद स्मरण रह सकते हैं और सृष्टि के प्रारम्भ में ४ ऋषियों पर ४ वेदों के आविर्भाव का सिद्धान्त खण्डित हो जायगा। अतः इस सुप्तप्रबुद्ध-न्याय को कल्पना ठीक नहीं। क्योंकि सुप्त मनुष्य की आत्मा के साथ शरीर विद्यमान रहता है किन्तु प्रलय में जीवात्माओं के साथ स्मृति का साधन शरीर नहीं रहता। अतः स्मरण करने के साधन न रहते से प्रलयकाल में वेद-स्मरण नहीं रह सकते।

यदि इस संधिकाल को मानें तो प्रत्येक संधिकाल के अवान्तर प्रलय के पश्चात् अमैथुनी सृष्टि और वेदों का आविर्भाव मानना पड़ेगा जो महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि किसी आचार्य को अभिमत नहीं है।

अतः संधियों के काल को न मानना ही युक्तियुक्त तथा तर्कसंगत है—जैसाकि महर्षि दयानन्द ने माना है।

६. संधि मानने वाले १५ संधियों में से प्रारम्भिक और अन्तिम संधिकाल की गणना सृष्टिस्थितिकाल (ब्राह्मदिन) में करते हैं। प्रश्न यह हो सकता है कि इन दोनों संधियों की गणना प्रलयकाल में क्यों न की जाये। अथवा इन दोनों संधियों का आधा-आधा काल प्रलयकाल (ब्राह्मरात्रि) में क्यों न गिना जाये ?

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रत्येक मन्वन्तर के पश्चात् प्रकृति में किंचित् परिवर्तन माना है, सत्रह लाख अट्ठाइस हजार वर्ष की संधि के समय और जलप्रलय को नहीं माना।

प्रलयकाल (ब्राह्मरात्रि) के प्रारम्भ और अन्त के समय होनेवाली संधि के काल को मानना और उसे ब्राह्मदिन में गिनना उचित प्रतीत नहीं लगता। सृष्टि के प्रारम्भ और अन्त में एक मन्वन्तर से, दूसरे मन्वन्तर के न होने के कारण, संधि हो ही नहीं सकती।

दोनों संवतोंका समन्वय ?

श्री उदयवीर शास्त्री का कथन है कि 'महर्षि दयानन्द द्वारा मान्य वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८१ का (महर्षि को अमान्य) प्रचलित १९७२९४९०८१ से कोई विरोध नहीं, अपने-अपने स्थान पर दोनों ठीक हैं।' (सार्वदेशिक २०-६-७६)

किन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि दोनों कैसे ठीक हैं। ऋषि ने अपने वेद-सृष्टि-संवत् में मन्वन्तरों के मध्य में संधिकाल नहीं माना किन्तु दूसरे सृष्टि-संवत् में संधिकाल जोड़ा जाता है। यह इतना बड़ा विरोध है कि दोनों सृष्टि-संवतों में एक को अशुद्ध मानना ही पड़ेगा।

यह ठीक है कि ऋषि दयानन्द १ हजार चतुर्युगी वाले जड़-सृष्टि-संवत् और ९९४ चतुर्युगी वाले मानव-वेद-सृष्टि-संवत्—दोनों को मानते हैं। प्रश्न ६ चतु-

युगी = २ करोड़ ५६ लाख २० हजार वर्षों का है कि वे कहाँ पर माने जायें। आरंभ, मध्य, अथवा अंत में। ऋषि के अनुसार निश्चय ही ये वर्ष मानव-वेद-सृष्टि से पूर्व ही माने जाने चाहिए; क्योंकि वे लिखते हैं कि 'हम मानव और वेद सभी १हजार चतुर्युगी के अंत तक रहेंगे।' अतः अंतिम सीमा निश्चित हो जाने पर, अंत से प्रारम्भ की ओर चलने पर, उन ६ चतुर्युगियों का काल वेद-सृष्टि-संवत् आरम्भ होने से पहले मानना पड़ेगा। तदनुसार ऋषि-मान्य वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८१ में २,५६,२०००० वर्ष जोड़ने पर इस समय १,९८,६७,७३,०८१ वर्ष जड़-सृष्टि-संवत् के होते हैं, और यही ठीक है। १९७२९४९०८१ वर्ष कदापि नहीं हो सकते।

इस पक्ष की अन्य बातें

१. महर्षि ने सन्धिकालयुक्त संवत् का खण्डन इसलिए नहीं किया क्योंकि महर्षि की दृष्टि में सन्धिकालयुक्त संवत् प्रचलित तथा मान्य ही नहीं था, क्योंकि वे मयासुर-रचित सूर्यसिद्धान्त को प्रामाणिक नहीं मानते थे। जब उन्होंने अपना मान्य सिद्धान्त ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका और सत्यार्थप्रकाश में तथा मेला चाँदापुर में बार-बार स्पष्ट रूप से कह दिया तब उससे विपरीत अन्य भिन्न सिद्धान्त का खण्डन स्वतः हो जाता है।

२. महर्षि ने स्वयं अपनी देखरेख में किसी अपने ग्रन्थ पर दूसरा सृष्टि-संवत् नहीं छपवाया, उनके उत्तराधिकारियों ने भले ही छपवाया हो। यह बात महर्षि के हस्तलेख तथा प्रेस-कापी से प्रमाणित हो जायेगी।

३. प्रचलित संकल्प से एक अरब सत्तानबे करोड़ वाले सन्धिसहित संवत् की पुष्टि नहीं होती, प्रत्युत महर्षि-प्रतिपादित सन्धिरहित मानव-वेदसंवत् की ही पुष्टि होती है।

४. ऋषि की मान्यता है कि ऐतिहासिक वेद-सृष्टि-संवत् को मानव बहीखाते के समान गिनते-गिनाते आये हैं। यह बात ऋषि-प्रतिपादित संवत् में ही घट सकती है। अतः मानव उत्पत्ति से पूर्व का काल तथा मानवरहित कल्पित सन्धि का काल वेद-सृष्टि-संवत् में जोड़ना ऋषि-सिद्धान्त के विरुद्ध है।

५. सन्धिकाल मानने पर, प्रथम मन्वन्तर (सृष्टि प्रारम्भ) से पूर्व १ सतयुग के बराबर सन्धि में १७ लाख २८ हजार वर्ष होंगे जबकि मयासुरकृत सूर्यसिद्धान्त में चराचर की उत्पत्ति में लगनेवाला काल सन्धिकाल से नौ गुणे से अधिक अर्थात् १ करोड़ ७० लाख ६४ हजार वर्ष माना है। अतः दोनों का समन्वय नहीं हो सकता।

६. 'सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः' के अनुसार सन्धिकाल में जलप्रलय होता है। सृष्टि के प्रारम्भके प्रथम मन्वन्तर से पूर्व पहली सन्धि में जब जल की उत्पत्ति ही नहीं हुई थी तब पहली सन्धि में उसका प्रलय कैसे होगा? सृष्टि के प्रारम्भ से पूर्व की यह पहली सन्धि तो प्रलयकाल में मानी जानी चाहिए।

७. इसी प्रकार १४वें मन्वन्तर के बाद की सन्धि में जलप्लव-सन्धि पूरे १७ लाख २८ हजार वर्ष तक कैसे रह सकती है? उसमें अग्नि, वायु आदि का भी प्रलय होगा या नहीं? मानव-सृष्टि समाप्ति के पश्चात् की यह १५वीं सन्धि तो प्रलयकाल में गिने जाने योग्य है।

८. एक संधिकाल के १७ लाख २८ हजार वर्षों की ६ चतुर्युगी के काल अर्थात् दो करोड़ उनसठ लाख बीस हजार वर्षों से कोई संगति नहीं। मयासुर-प्रतिपादित निर्माणकाल १ करोड़ ७० लाख ६४ हजार वर्षों से भी कोई संगति नहीं। इस काल का चतुर्युगी काल से किसी प्रकार का भी गुणा या भाग नहीं होता। सर्वमान्य चतुर्युगी के विभाग के कारण का भी इससे कोई समाधान नहीं मिलता।

९. ऋषि की उत्तराधिकारिणी 'परोपकारिणी' सभा ने ऋषि-प्रतिपादित संवत् मान लिया किन्तु आश्चर्य है सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली उसे अभी तक नहीं मान रही।

3 चतुर्युगी पहले, 3 बाद

श्री खेमचन्द्र यादव आदि का दूसरा दल, संधियों को न मानते हुए भी एक हजार चतुर्युगी की सम्पूर्ण सृष्टि

में, मन्वन्तर काल (९९४ चतुर्युगी) से बची ६ चतुर्युगी के काल में से तीन चतुर्युगी-काल को मानव-वेद-आविर्भाव से पूर्व और तीन चतुर्युगी-काल को १४ मन्वन्तरों के पश्चात् मानकर १ हजार चतुर्युगी की संख्या पूरी करता है। उनके कथनानुसार जितना काल मानव-वेद के आविर्भाव से पूर्व रचना में लगता है उतना ही काल मानवप्रलय के पश्चात् महाप्रलय पर्यन्त सृष्टि के क्रमशः विनाश में लगता है।

किन्तु इस कल्पना में निम्नलिखित दोष हैं—

१. तीन चतुर्युगी का समय १ करोड़ २९ लाख ६० हजार वर्ष होता है। मानव-वेद संवत्
१९६०८५३०८१ में
तीन चतुर्युगी के १२९६०००० वर्ष जोड़ने पर सृष्टि-संवत् के १ अरब ९७ करोड़ ३८ लाख १३ हजार ८१ वर्ष होते हैं, १९७२९४९०८१ वर्ष नहीं होते।

२. इस मत में प्रस्तुत किया गया—

'या ओषधीः पूर्वाः जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥'

(ऋ० १०.९७.१ तथा यजु० १२.७५) का प्रमाण साधक नहीं हो सकता क्योंकि इस मन्त्र के त्रियुगम् का अर्थ तीन चतुर्युगी करने में कोई प्रमाण नहीं। इसका अर्थ ३ सतयुग, ३ त्रेता, ३ द्वापर अथवा ३ कलियुग भी किया जा सकता है। महर्षि दयानन्द ने 'त्रियुगम्' का अर्थ ३ वर्ष पुरानी औषधि किया है। इसके अतिरिक्त मनुष्यों से ३ चतुर्युगी पूर्व औषधियों की रचना में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता, जबकि उनका भोक्ता मानव विद्यमान न था।

३. परम्परा-प्रचलित संकल्प में मन्वन्तर वाली संधि-रहित मानव-वेद-संवत् की ही गणना की जाती है—जड़सृष्टि-संवत् अथवा संधियुक्त संवत् की नहीं।

४. तीन चतुर्युगी का काल मानवप्रलय के पश्चात् ब्राह्म दिन में मानने पर महर्षि दयानन्द के उस कथन का विरोध होगा जहाँ उन्होंने कहा है कि एक हजार चतुर्युगी पर्यन्त हम मानव और वेद विद्यमान रहेंगे।

५. वैवस्वत मन्वन्तर की समाप्ति को ब्राह्मदिन का मध्यबिंदु मानकर वेद-सृष्टि से पहले ३ चतुर्युगी और पश्चात् ३ चतुर्युगी मानना उचित नहीं। क्योंकि महर्षि दयानन्द ने 'दूसरे प्रहर के ऊपर मध्याह्न के निकट दिन आया है'—यह लिखा है। यह नहीं लिखा कि दोनों सम्वतों का मध्याह्न एक ही बिंदु पर है।

६. किसी रचना में जितना समय लगता है उतना ही समय विनाश में नहीं लगता। मानव-शरीर रचनाहेतु गर्भ काल में ९ मास लगते हैं किन्तु मृत्यु क्षणमात्र में भी हो जाती है। किसी घर के निर्माण में जितना समय लगता है उतना समय उसके विनाश में नहीं।

७. जिस प्रकार सामान्यतः औसतन सौ वर्ष की आयु वाले मानव शरीर को जीवित रहने के लिए न्यूनतम सात मास गर्भ में रहना आवश्यक है उसी प्रकार ९९४ चतुर्युगी अर्थात् ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख ८० हजार वर्ष आयु-वाली मानव-सृष्टि में ६ चतुर्युगी अर्थात् दो करोड़ उनसठ लाख बीस हजार वर्ष का समय सृष्टि से पूर्व लगना आवश्यक प्रतीत होता है।

८. अगर ३ चतुर्युगी अन्त में मानी जायें तो उससे पूर्व १४वें मन्वन्तर की समाप्ति पर मानव और वेद का अंत मान लेने पर, वह समय प्रलयकाल में माना जायगा और इस प्रकार सृष्टिकाल में कमी हो जायेगी।

९. इन विद्वानों द्वारा ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में महर्षि दयानन्द के उपर्युक्त लेख को प्रक्षिप्त बताना कदापि उचित और मान्य नहीं हो सकता। कारण निम्नलिखित हैं—

१—यह अंश महर्षि की शैली में लिखित है और स्वयं उनके हस्तलेख तथा प्रेस कापी में है।

२—यह इस विषय के सम्पूर्ण लेख का उपसंहार है।

३—यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका की हिंदी महर्षि दयानन्द सरस्वती-कृत ही है। ऋषि दयानन्दकृत वेद-भाष्य की हिंदी पण्डितों की है। दोनों की भाषा में बहुत अंतर है।

४—यह प्रसंग पूर्णतया पूर्वापर से मेल खाता है और महर्षि की मान्यता के अनुरूप है। जिस प्रकार उन्होंने प्रश्न न किए जाने पर भी प्रलय होने में शेष रहे वर्षों को बताया उसी प्रकार उन्होंने उपसंहार में भी, प्रश्न न करने पर भी, अपने मन्तव्य का सिद्धांत प्रतिपादित किया।

५—इस अंश का सत्यार्थप्रकाश के उस अंश से कोई विरोध नहीं जहाँ कागज स्याही की छपी पुस्तक की

नित्यता का खण्डन किया गया है। यहाँ ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में, आर्यसमाज के तीसरे नियम में वर्णित 'पुस्तक' शब्द के समान 'ईश्वरोक्त' विशेषण से युक्त 'पुस्तक' का अर्थ ईश्वरीय ज्ञानबद्ध संहिता से है जिसका सृष्टि की अवधि पर्यन्त वर्तमान रहना बताया गया है।

६—जो बात अनुकूल न लगे उसे प्रक्षिप्त बता देना नितांत अनुचित है। मुद्रण की भूल होना अन्य बात है। किंतु पूरे अनुच्छेद को प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं किया जा सकता।

७—यह लेख महर्षि की रफ कापी और प्रेस कापी में भी है। और महर्षि के जीवनकाल में ही अनेक वर्षों तक अंक रूप में प्रकाशित 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' में छपता रहा। कभी महर्षि ने स्वयं अथवा अन्यों ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की।

श्री खेमचन्द्र जी ने 'परोपकारी' में प्रकाशित कराये लेखों में अनुचित अपशब्दों का प्रयोग किया है। 'मधुर-लोक' जनवरी ८१ में भी विरोधी विद्वानों के लिए अनुचित वाक्यों का प्रयोग किया है, जैसे बहाने बनाये, अड़ंगा खड़ा किया, निम्न स्तर के अनैतिक हथकण्डे, छल और अन्याय, आँखों में धूल झोंकना, लेख को भ्रष्ट करना, मिथ्या छल, करतूत आदि। ये सभी अपशब्द हम स्वीकार न करके उन्हीं के लिए वापस करते हैं। मार्गव्यय देकर बुलाने पर भी वे नहीं आये। परमात्मा उन्हें सुबुद्धि दे। हम तो सत्य को तर्क और प्रमाणों से प्रतिपादित कर रहे हैं। किंतु खेद है कि भयभीत श्री वैद्यनाथ शास्त्री ने धर्मार्यसभा में मेरे स्थान पर अपने पक्ष के श्री काशीनाथ शास्त्री को रखा है और ९ मार्च ८१ को बैठक बुलायी है।

अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम महर्षि दयानन्द प्रतिपादित शुद्ध मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८१ का ही स्वयं प्रयोग करें तथा अन्यों से करावें। इसी की स्वीकृति हेतु सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली को पत्र तथा प्रस्ताव भेजकर प्रार्थना करें। विश्ववेद-परिषद्, इस सम्बंध में लखनऊ तथा ज्वालापुर में दो गोष्ठियों के उपरान्त इसे स्वीकृत कर चुकी है तथा इस सम्बंध की समस्त शंकाओं का समाधान करने के लिए सदैव प्रस्तुत है। महर्षि दयानन्द-वेद-भाष्य-शताब्दी दिल्ली में अप्रैल १९७८ में यही महर्षि-प्रतिपादित वेद-सृष्टि-संवत् सर्वसम्मति से स्वीकृत की जा चुकी है अतः अब वह सभी विद्वानों द्वारा मान्य होनी चाहिये। ❀

वैदिक त्रैतवाद

[श्री उदयवीर शास्त्री, संन्यास आश्रम, गाजियाबाद]

"सर्वज्ञानमयो हि सः"—भगवान् मनु के इस वचन के अनुसार भारतीय परम्परागत दृष्टि से वेद ईश्वरीय ज्ञान की शब्दमयी अभिव्यक्ति के रूप में समस्त ज्ञान-विज्ञान का भण्डार है। सायणाचार्य ने अपने तैत्तिरीय-संहिता-भाष्य के उपोद्घात में कहा है—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता॥

अर्थात् प्रत्यक्ष वा अनुमान से जो अर्थ नहीं जाना जाता है वह वेदों से अवश्य जाना जाता है। यही वेदों का वेदत्व है।

हमारे दार्शनिक सिद्धान्त भी वेदमूलक हैं। इस विषय में ऋग्वेद दशम मण्डल के कतिपय सूक्त (७२, ८१, १२९) दृष्टव्य हैं, जहाँ जगत् के उपादान कारण प्रकृति, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय के कर्त्ता परमात्मा तथा भोक्ता जीवात्मा का स्पष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। भारतीय दर्शन के ये मौलिक तत्त्व हैं, जिनके विवेचन में समस्त दर्शनों का पर्यवसान है। ऋग्वेद (१०-८१-३) की एक ऋचा है जिसमें जगत् के गतिशील मूल उपादान तत्त्वों का 'पतत्र' पद द्वारा संकेत किया है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥

ऋचा के पूर्वार्द्ध में परमात्मा के विश्वरूप का दिग्दर्शन कराने के साथ-साथ उत्तरार्द्ध में जगत् का जनयिता एक देव पृथक् बताया गया है। जगत् के उपादान कारणरूप में साधन सामग्री का संकेत 'पतत्र' पद से किया गया है जो रचयिता से सर्वथा भिन्न तत्त्व है। इससे जगत्सर्ग के विषय में यह वैदिक सिद्धान्त स्पष्ट होता है कि जगत् का कर्त्ता चेतन परमात्मा पृथक् और यह जड़ जगत् जिन साधन तत्त्वों से इस रूप में परिणत होता है, वे कर्त्ता से पृथक् हैं।

वेद में स्वधा, अदिति, वृक्ष आदि अनेक नामों से जगत् के मूल उपादान तत्त्व का निर्देश हुआ है। सर्ग-स्थिति-काल में प्रकृति के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध बतानेवाली ऋग्वेद (१-१६४-३८) की ऋचा इस प्रकार है—

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि
चिक्युरन्यम् ।।

अपने भोगापवर्ग के लिए चेतन जीव जड़ प्रकृति के साथ संयुक्त होता है। वही प्रकृति के द्वारा उसका गृहीत होना है। प्रकृति से सम्बद्ध होकर ही वह अपने भोग-अपवर्ग को सम्पन्न कर सकता है। इस सम्बन्ध की पुष्टि के लिए कतिपय विनाशी (मर्त्य) तत्त्व सर्ग-काल में सदा जीव के साथ रहते हैं। यह अठारह तत्त्वों से घटित सूक्ष्म शरीर है। इसी के साथ सम्बद्ध जीव ऊँच-नीच विभिन्न योनियों में आया-जाया करता है। स्वधा (प्रकृति) और अमर्त्य (जीव) दोनों अनादि अनन्त हैं, इसलिये दोनों का सम्बन्ध भी अनादि अनन्त है। इस आवर्त्तमान चक्र में ये कभी परस्पर बिछुड़ भी जाते हैं, पर कालान्तर में उन्हें फिर अपनी उसी स्थिति में आ जाना होता है। इसी रूप में यह प्रकृति-पुरुष सम्बन्ध अनादि अनन्त है। इन दो तत्त्वों में से एक (दृश्यमान कार्य जगत् रूप में स्वधा = प्रकृति) को अच्छी तरह देखा जाता है, अन्य (चेतन जीवात्मा) को इतनी स्पष्टता से नहीं जाना जाता।

अदिति, स्वधा, वृक्ष आदि पदों के समान 'गुण' पद का प्रयोग भी मूल उपादान तत्त्व के लिए वेद में देखा जाता है। प्रायः सब दर्शनों में सारभूत तत्त्व, विशेष रूप से कापिल दर्शन में मूल तत्त्व के लिए इस पद का प्रयोग है। अथर्ववेद (१०-८-४३) में कहा है—

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ।।

मन्त्र में 'पुण्डरीक' पद मानव देह के लिए प्रयुक्त है। लोक और साहित्य में इस पद का अर्थ कमल अथवा पुष्पमात्र प्रसिद्ध है। पुष्परूप में मानव देह का वर्णन उसकी नश्वरता की ओर संकेत करता है। प्रत्येक पुष्प कली की प्रारम्भिक अवस्था से खिलकर, क्षण भर के लिए संसार को आकृष्ट कर अन्त में मुरझा कर नष्ट हो जाता है। ठीक यही दशा इस देह की है। 'पुण्डरीक' पद का प्रयोग पुकार-पुकार कर कह रहा है, कि ऐ पुरुष! इस नौ द्वारवाले देह की नश्वरता को समझने के लिए पुष्प की दशा को सदा अपने सामने रख। भ्रमर के समान इसके रस को तो भोग, पर अपने अस्तित्व को बिसार कर इसमें लीन मत हो।

यह देह, सत्त्व-रजस्-तमस्—इन तीन गुणों का परिणाम है। देह में इसका अधिष्ठाता—चेतन आत्मा निवास करता है। इस आत्मा (जीव चेतन) के समान एक और 'यक्ष' है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् वस्तु में व्याप्त है। इस 'यक्ष' को ब्रह्मज्ञानी ही जान पाते हैं। देह-पर्याय पुण्डरीक पद को यदि कार्य-मात्र का उपलक्षण माना जाये तो यह समस्त जगत् सत्त्व-रजस्-तमस् इन तीन गुणों का परिणाम सिद्ध होता है। फलतः देह प्रतीक में आत्मा (जीव-चेतन) के समान, अखिल ब्रह्माण्ड में यह यक्ष (परमात्म-चेतन) व्याप्त है। इस प्रकार प्रस्तुत मन्त्रों में हमारे दार्शनिक सिद्धान्तों के मूल का संकेत उपलब्ध है। अखिल ब्रह्माण्ड के मूल उपादान सत्त्व-रजस्-तमस् के रूप में प्रकृति का, भोक्ता आत्मा का और सबके नियन्ता परमात्मा का अस्तित्व ही भारतीय दार्शनिक सिद्धान्त 'त्रैतवाद' का मूल आधार है। वैदिक-संहितायें, छह वैदिक दर्शन, उपनिषद् आदि मिलकर इन्हीं तत्त्वों का उपपादन करते हैं। ❀ ❀

—'अनादि तत्त्व दर्शन' के प्राक्कथन से साभार

नमस्ते क्यों नहीं की ?

जब राजकुमार चार्ल्स १ दिसम्बर को बम्बई गए तो उन्होंने स्वागतार्थ आए हुए लोगों को वैदिक भारतीय सभ्यता के अनुसार हाथ जोड़कर 'नमस्ते' की तो राज्य-मंत्री अजहर हुसेन और मुख्य सचिव ताकते रह गए और कोई उत्तर न दिया। यह अनुचित व्यवहार क्यों किया ?

NATIONAL INTEGRATION

(*By* R. D. SHARMA, Santacruz (East), Bombay-55.)

For Peace and Prosperity, Unity of all men in Thought, Word and Deed is as necessary today as it has always been in the past. This is the Law. A Law is Rita and the Rita is Eternal. It is we who break the Law, wean away from and violate it but the Law remains, exists and maintains itself in its original and pure form. Mind you, we are discussing here Natural laws, not man-made laws which inspite of coverage of all possible loopholes that human ingenuity can think or devise by its limited capacity) still continue to contain loopholes that man could not contemplate.

We all know that the Vedas are the Repository of All Laws. The Vedas are the Word of God. As the first Preceptor of the Universe, God imparts knowledge of His Laws to Mankind to live a happy and prosperous life. Knowledge is finally not a subject of the physique or the senses It is a subject of the Spirit. Of all the four Vedas the Rigveda is enshrined with Knowledge of Laws for the Spirit. A spirit that has consumed Knowledges of the remaining Three-Vedas—The Yajur, Sama and Atharva. Thus the Knowledge of the Rigveda is the base to the knowledge of the other Three Vedas.

Having imparted, in the whole of the Rigveda, all the knowledge required for our Spirit, the Almighty God in the end revealed in it the final knowledge or the Antim Hymn in the form of the Sanghathan Sukta (Rigveda 10. 191. 2-3-4) which is Hymn on Unity so that we may practice Unity in Thought, Word and Deed. The Sukta (Hymn) is as follows:—

'O men, walk together, speak together,
Your minds be similar.
As the learned have served
Dharma and Prosperity before you
You also do the same.
Your consultations be common
Your assembly be common
I grant you the one formula
I ordain one Yajna for you all.
May you have one intention
May you have one heart
May you have one mind
May you always co-operate."

Prophets, saints and deep thinkers have presented to us through their faiths, cults and beliefs in their own ways, the importance of Unity in Mankind, down to such proverbs as "United we stand and divided we fall," but their base is Vedic which no one could escape its inclusion in his precepts or teachings.

In spite of the inclusion of the basic Vedic Truths in other known and prevelant faiths, why do we still see Disunity in Thought, word and Deed all around ? Each nation, each community and each individual is pulling against its counterpart. Why ? It is so because the Vedas alone contain the whole Truth while other faiths, Cults and Dogmas contain not the whole Truth but only some Truths which are admixtured with half-truths and Untruths to suit their regional and communal tastes and conveniences, rather than the Universally applicable wholeTruths like that of the Vedas.

Unless therefore mankind reverts back to the Vedas, Unity in Thought, Word, and Deed would be a night-mare to achieve and the Dream of a One Government will never materialise, inspite of the formations of the League of Nations or the UNO and such other Organisations that may follow.

India alone has the chance of fulfilling this Dream and amongst Indians, the Hindus alone have this capacity because the Hindu is the Repository of the Vedas and the Vedas are the Repository of Truth and bedause it is Truth that finally prevails and triumphs the burden for the resurgence and prevelance of Truth rests upon the Hindus.

It is well said "Charity begins at home." Let therefore Hindus take the first initiative and adopt Unity in Thought, Word and Deed amongst themselves. This done, others are bound to be influenced to follow and merge in the mainstream known as National Integration.

A Naturalistic Interpretation of the Legend 'SUNAHSEPA'

Mrs. S.M. VAIDYA, *Research Fellow. Department of Sanskrit, Shivaji University, Kolhapur*

There are various legends given in the Vedas and the Brahmanas. These legends are very important for their meaning, style and history. Many scholars look for contemporary history in these stories. But some occidental scholars do not consider these stories as having any historical background. However, they say that these are allegorical narratives of natural phenomena. The great scholar Sayana accords a ritualistic basis to these legends. In Orion, Lokamanya Tilak connects the legend of Prajapati and Rohini to the then positions of the astro-bodies. These stories are being taken by some as mythical, for their traditional meaning became extinct through ages. This fa t left the learned men groping in darkness to find the real meaning,

If we try to seek history in the Vedas, it would imply a disbelief in the अपौरुषेय origin of the Vedas. This would mean that the Vedas came in to existence during some historical time and that they were composed by human beings. Hence naturalistic interpretation would be in accord with the Vedapauruseyatva theory.

The legend of Sunahsepa in the Aitareya Brahmana is very important, for the foreign experts search a पुरुषमेध or human sacrifice herein.

This legend is as follows: King Harischandra Vaidhasa was unhappy for not having any issue and, on the advice of Narada, he worshipped Varuna, by whose favour he got a son. In return of this favour, he promised Varuna that he would sacrifice this son, named Rohita. After the birth of this son, Varuna demanded of him on several occasions that the sacrifice be preformed, but Haris'chandra, now unwilling to sacrifice his son, postponed the sacrifice each time on some excuse or the other. The time came when Haris'chandra had to tell Rohita about his promise to Varuna, but young Rohita refused and went off and wandered in the forest for a year. Meanwhile, Haris'chandra suffered from "जलोदर" (the swelling of the belly) as a result of the curse of Varuna. On learning this, Rohita started on his journey back home but was refrained for five years by Indra, disguised as a brahmin. Accidentally Rohita met Ajigarta, who agreed to give, for the sake of sacrifice, his son Sunah'sepa in place of Rohita in exchange of a hundred cows. Later, Varuna agreed to accept S'unahs'epa as a victim But R'tviks refused to bind and kill him as पशु Again, Ajigarta came forward to do this job in exchange of cows. S'unahs'epa prayed and worshipped Varuna and was relieved of his bondage by the latter's favour. Haris'chandra also was relieved of जलोदर

The learned men like Mac Donald[1] Hillebrandt[2], Oldenberg, Haug[3] etc, consider this story as a proof of human sacrifice. But Dr. Keith[4] rejects this notion In his *Rgve a Brahmans* Page 62), he says : "But as evidece of a real human sacrifice at the royal consecration no stress can possibly be laid on Sunahsepa tale. Its motive is inexplicable on such a theory for it does not enjoin or approve a sacrifice of this sort, but expressly relates that the sacrifice was not carrid out, and that the priest Ajigarta who was willing to sacrifice his son was deprived of him as punishment. Moreover, the mere fact that the great priests alleged to have been engaged in the offering would not perform the slaying is a proof that

the rite was not an approved one. If the rite was ever one practised at the royal consecration, the moral sense of the priests had repudiated it, and had expressed their repudiation in striking form in the shape of the use of a narrative as a part of the Rajasuya intended to show that such a sacrifice was not to be performed."

Verily, thus we can see the disapproval of the sacrifice of man and animal in the *Aitareya Brahmanam* also. (Adhyaya 2, Panchika 2). This story runs as follows : "Once the gods performed a पुरुषमेघ gods found a man as 'हवि" and the "हवि" went out and entered a horse and it went away and entered the ox. Then it entered the sheep....goat.... and when the gods found the goat, हवि entered the earth. Therefore the earth became fit for the sacrifice. The animals whose हवि is departed are unit for sacrifice. Therefore. one should not eat of them. It then went into this earth and became rice So the "व्रीहि" or "पुरोडास" made from this rice was made a real victim of the sacrifice." Here, the gods did not slay the man as "हवि" but they made an offering of 'पुरोडाश" thus we can trace the idea of disapproval and symbolic offering.

We could very well explain this legend in some other mystical sense, say, 'रहस्य" "गूढविद्या" or in naturalistic or astronomical terms. Acharya Satyavrata Samasrami in his *Aitareyalochanam* proposes that 'रोहित" means "लोहित"-rays of the sun or the moon; "रोहित" also means 'अश्व' and the rays of the sun are the "अश्व" as depicted in the Vedas. हरि: + चंद्र the Sun and the Moon

"लोहित: एव रोहित: वैदिक: स च सूर्यचन्द्रोदय न इति वाहोरात्रजन्य इति वा हरिश्चन्द्रीयो हरिश्चन्द्रिय इति हाख्यात: । रस हरणात् हरि: । तथ च अग्निवाहन रुप शोणित धारिण: सवनिव पुरुषान् संबुध्य ऋषि रश्मिं रोहितम् । रूपदेशमिति फलितम् ।" Satyavrata explains this etymologically.

Here Haris'chandra's जलोदर may stand symbolically for the cloud which contains water in its belly and like the "वृत्र" this "मेघ" or the cloud has accumulated water in itself and does not pour it down in the form of rains, which cause sufferings to the people in the form of 'अनावृष्टि" or draught. Indra is connected with the "विद्युत", the lightening and the "Rohita", being "लोहित", means red colured. Indra and Rohita would mean the red-coloured lightening, which is considered to be the indicator of a bad omen – वाताय कपिला विद्युत् आतपाय तिलोहिता. In the name of S'unahs'epa "शुन:" meaning वायु: or the wind according to निरुक्त, शुनो वायु: शु एति अन्तरिक्षे 9–10. Now this S'unahs'epa representing the wind strikes against the cloud and makes it pour the rains and remove the curse of draught. The word शुन: being formed from the original word श्वा" and the etymology of "श्व" being given by Yaska as "श्व:" "उपाशंसनीय: काल: (निरुक्त 1-3-6). शुन:शेप stands for the high hopes. That was why he himself was hopeful that he would be released from the bondage by the prayers to deities and he stands as a symbol of hopes for welfare and prosperity of सजीव:.

Unlike the society of excessive materialism of the present days, the society in those times was more conscientious, more conscious of human values, ethics and piety and it was an implicit follower of the Vedic culture. Hence, the man-slaughter for one's own prosperity is unbelievable. Man worshipped for the welfare of the whole human community 'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै".

Therefore, it would be more feasible to construe the whole story of the human or animal sacrifice as a symbolic rite, This is supported by the word ऋत्विज" which means ऋतु-याज ऋतुयज्ञ."

1. The Brahmanas of the Vedas Page : 47-48
2. Vedic Mythology–Page–145
3. Aitareya Brahman of Rigved Rites on the vedic religion–Vol. 1–Page : 65
4. Rigved Brahmanas–Page : 62

IS THE SANKHYA ATHEIST ?

Some people assume that the Samkhya of Kapila is Atheist and does not accept the existence of God. They quote (1-92 of the Samkhya) "Ishwarasiddheh" meaning "the existence of Ishwara cannot be proved".

We cannot however overlook the difference between a proof and a contradiction. If we cannot prove the existence of a fact (due to lack of cognisable evidence and other reasons), it does not mean that the fact was not factual. Supposing we come across a murdered man but as the murderer cannot be traced or he is too clever to leave no evidence —real or circumstantial, it does not mean that the murder did not take place. In that case the prosecution will register "a case of murder" but has no proof to prove who did it. Thus the prosecution maintalns the murder but does not contradict it. This is the fine differance beetween a proof and a contradiction.

Similarly the Samkhya does not contradict the existence of God as the Nimitta Karana or the first Efficient Cause of the Universe. In other words it maintains it.

Rishi Dayanand very beautifully solves this riddle in a simple logical way, thus : "What the above aphorism really means is that evidence of direct cognisance of the existence of God is wanting not in order to prove His existence, but to prove him as the Material Cause of the Universe."

In this connection let us consider another aspect whether the Vedas have been revealed by God Here the Samkhya is very emphatic that "no man, whether liberated or unliberated would be competant to compose Vedas (V-47) "Muktamuktayorayogyatvat."

On page 232 of his book "The Six Systems of Indian Philosophy" Prof : Max Mueller says "The Samkhya, whatever we may think of its Vedic character, never denies the authority of the Vedas in so many words—"

If that be accepted in the case of the Samkhya and Max Mueller, a very important question arises "who composed the Vedas ?" Simply because there is no proof of the Composer of the Vedas, does not mean there was no Composer, Thus perforce we have to accept the existence of a Composer and since according to Samkhya itself as quted above, no liberated or unliberated man would be competant to compose the Vedas, where is the harm in concluding that God was the composer ? In other words by declaring (V-47 quoted above) the Samkhya admits God as the Composer of the Vedas and thus also accepts the existence of God. Samkhya therefore is not Atheist.

There is yet another aspect of the Samkhya that needs our consideration namely the Sutra 1-89 which defines "Pratyasha" or direct perception and says "Perception is that cognition which results from a connection or contact of the Sense Organs". As God is Formless it is not a subject of our Sense Organs. Therefore the Samkhya further clarifies in its Sutra 1-90 that "there is no fault, because the Perception of the Yogis is not an external one", and "he who has attained supernatural power (a Yogi) is in connection with the Cause" (1—91).

In this way Kapila is discussing the limitations of his definition of Pratyaksha or Direct Perception, Thus if such a definition of Pratyaksha is propunded by Kapila he is right In his aphorism "Ishvarasiddheh" (1-92) which only means that God remains unproved.

The above quoted Sutras disclose that Kapila was neither proving nor disproving the existence of God. He was simply examining the definition of Pratyaksha. But Kapila does not rest here and definitely accepts the existence of God when he says (III-56 — "for He is omniscient and Omnipotent" and then (III-57) The existence of such a Lord is established". These Sutras clearly refer to God. Therefore the Samkhya is not Atheist.

—R. D. Sharma, Bombay-55.

[पृष्ठ २ का शेष]

से सहमत नहीं हैं। परन्तु इन दोनों आचार्यों ने बौद्धों और जैनियों के द्वारा सर्वथा नष्ट की गई वैदिक परम्परा को पुनः जीवित करने और बौद्ध तथा जैन मत के निराकरण के लिए जो भगीरथ-प्रयत्न किया, उसके लिए प्रत्येक वैदिक धर्मानुयायी, चाहे वह किसी मत का हो, इनका सदा कृतज्ञ रहेगा। परन्तु खेद इस बात का है कि पौराणिक जगत् में इनके अनुयायी सम्प्रति सहस्रों विद्वान् हैं, लाखों संन्यासी हैं, परन्तु इनको आर्य (हिन्दू) जाति के भयंकर ह्रास की चिन्ता नहीं है। ईसाई और मुसलमान आर्य जाति को निरन्तर विधर्मी बना रहे हैं। उनसे आर्यजाति की रक्षा कैसे की जाये? माताओं और बहनों के साथ बलात्कार हो रहा है, निम्न श्रेणी के मानवों पर अत्याचार हो रहे हैं, आर्यजनता में कदाचार व्याप्त हो रहा है, वैदिक संस्कृति का भयंकर नाश हो रहा है, वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का उत्सादन हो रहा है—आदि आदि का प्रतिकार कैसे किया जाये, इसे सोचने-विचारने के लिए इनके पास समय ही नहीं है। इनको तो एकमात्र यही चिन्ता लगी रहती है कि हिन्दुओं में विद्यमान अन्ध-श्रद्धा को कैसे बनाये रखा जाए, जिससे इनके उदरन्दरि की पूर्ति रूप व्यापार में कोई कमी न आवे।

यद्यपि ऊपर जो लिखा गया है, वह कुछ असम्बद्ध सा प्रतीत होगा, परन्तु वेदार्थ-पारिजात ग्रन्थ को पढ़ने से मेरे मन पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसका निदर्शन करना इसलिये आवश्यक हुआ कि उसमें इस व्याख्या को लिखने के सत्प्रयत्न को, जैसे कोई मूर्ख धूलि फेंककर सूर्य को आच्छादित करना चाहे, उसी प्रकार इस ग्रन्थ के लेखक ने शास्त्र-सम्मत विचार-सरणि का परित्याग करके छल, जाति, निग्रहस्थान आदि दोषों से दूषित असद् हेतुओं और प्रमाणाभासों से सत्य को आच्छादित करने का दुस्साहस किया है।

(मीमांसा शाबर-भाष्य भाग ३ की भूमिका से साभार)

वैदिक दाम्पत्य

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास-४]

(श्री रामस्वरूप 'रत्नक', गेंदालाल मार्ग, अजमेर)

[गतांक से आगे]

जन्मना वर्ण-व्यवस्था के विरोधमें ऋषि दयानन्द ने तर्क दिया है कि यदि पिता अन्धा हो तो क्या पुत्र भी आँख फोड़ लेवे? जैसे यह अनुचित है ऐसे ही नई पीढ़ी द्वारा पूर्व पीढ़ी के अनुचित कर्मों को अपनाना। निम्नवर्ण वाला उत्तम कर्म करे तो उत्तम वर्णी हो जावेगा तथा उत्तमवर्ण वाला निम्नवर्ण का कर्म करे तो नीचेके वर्णमें मान लिया जाये। ऐसा होनेसे किसी का शोषण न हो सकेगा। जब कोई अधिकार जन्मना मान लिया जाता है तब ही शोषण होता है।

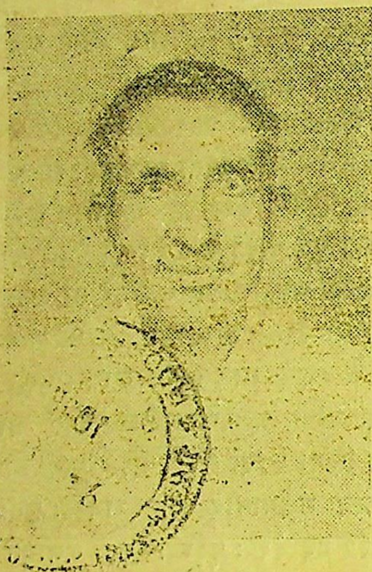
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत्त॥

इस यजु० ३०।११ के अनुवाद में ऋषि ने कहा कि जो सबमें मुख्य हो वह ब्राह्मण, जिसमें बल-वीर्य अधिक हो वह क्षत्रिय, जो सर्वत्र गतिशील हो वह वैश्य इत्यादि। ये ईश्वर के मुख-बाहु-उदर से उत्पन्न नहीं होते हैं। अतः आगे ही ऋषि ने मनु १०।६५ तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।५।११।१०-११ का प्रमाण देते हुए कहा कि ब्राह्मण आदि कुल में से शूद्र एवं शूद्र आदि कुल में से ब्राह्मण बना जा सकता है। पुरुष जिस वर्ण के योग्य होता है वैसी ही स्त्री की भी व्यवस्था समझना। तात्पर्य यह है कि दम्पती समवर्ण हों। दोनों ही ब्राह्मण या क्षत्रिय इत्यादि हों।

जब वर्ण को परिवर्त्तनीय माना गया तो फिर माँ-बाप की सेवा की क्या व्यवस्था रहेगी यह प्रश्न किया गया, जिसके उत्तरमें ऋषिने बताया कि अभिभावकों को उनके वर्णानुसार सन्तान विद्यासभा-राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे। जैसे कोई अभिभावक ब्राह्मण है उसके तीन पुत्र क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र घोषित हुये। अब ब्राह्मण अभिभावक को ब्राह्मण सन्तान चाहिये। इसके तो है नहीं, तो ब्राह्मणवर्ण-युक्त सन्तान की व्यवस्था उपर्युक्त सभायें कर देंगी।

[क्रमशः]

वर्ष ५ अङ्क ४-५ अप्रैल, मई १९८१ ई० **वेदज्योति** पंजीकृत संख्या ६९२१।६२ डाक लख २०९



परिडत आशुराम आर्य मन्त्री चण्डीगढ़ शाखा



आचार्य वीरेन्द्रशास्त्री एम. ए. उपाध्यक्ष विश्ववेद प० वेदप्रचारार्थ विदेशयात्रा के लिए प्रस्तुत

समाचार

चण्डीगढ़ में वेदसंगोष्ठी और डा० भारतीय का स्वागत

पौष पूर्णिमा पर विश्ववेदपरिषद् की वेदगोष्ठी में डा० भवानीलाल भारतीय का आर्यसमाजोंकी ओर से स्वागत करते हुए श्री आशुराम आर्य ने कहा कि हमारा सौभाग्य है कि आप पंजाब विश्व वि० की दयानन्दपीठ के अध्यक्ष होकर आये हैं। आप का धन्यवाद है कि आपने विश्व वेद परिषद् की चण्डीगढ़ शाखा के प्रधान पद को स्वीकार किया।

स्वागत के उत्तर में श्री भारतीय ने कहा कि गत ५ हजार वर्षोंके पश्चात् स्वामी दयानन्द पहले ऋषि थे जिन्होंने मानवता के कल्याण के लिए वेदों के रहस्यको संसारके सामने सरल भाषामें रखा।

❀ महात्मा हंसराज जन्म-दिवस-समारोह ❀

रविवार १९-४-८१ को प्रातः ८ बजे से आर्य समाज मंदिरमार्ग नई दिल्लीमें मनाया जायेगा।

❀ वेद वेदाङ्ग विद्या विस्तार योजना ❀

१२-७-८० को आर्यसमाज ऊना (हिमाचलप्रदेश) में पं० दीनानाथ शर्मा की योजना को फैलाने के लिए वेद विद्या समिति संघटित की गयी।

सदस्यों से प्रार्थना

आपका वर्ष पूर्ण होगया है। कृपया आगे के लिए १०रुपये शीघ्र भेजें। अन्यथा पत्रिका न भेजी जायेगी।

—ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व-वेद-परिषद्

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ (उ. प्र.)
मुद्रक—आदर्श प्रेस लखनऊ। दूरभाष ८४१०१

6342



सेवायाम् श्री
डा० बलभद्रकुमार
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ६ अङ्क १-२
माघ, फाल्गुन २०३८
जनवरी, फरवरी १६८२
वेदसंवत्-१६६०८५३०८२

सम्पादक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री
ऐम. ए. काव्यतीर्थ
सी ८१७ महानगर लखनऊ
दूरभाष ८४१०१

वेदांग शिक्षा अंक

वेदसूर्य क्रान्तिकारी ऋषि



स्वामी दयानन्द सरस्वती

धन्य है तुझको ऐ ऋषि, तूने हमें जगा दिया।
बोध-दिवस—शिव-रात्रि २२ फरवरी १९८२

विश्व वेद परिषद् के नये अध्यक्ष



पण्डित वीरसेन वेदश्रमी, वेद-विज्ञानाचार्य
वेदसदन, महारानी पथ, इन्दौर [मध्य प्रदेश]

आपका ईसवी नववर्षपर वेदका सन्देश पृष्ठ २ पर है

❀ विशेषांकों-सहित वाषक मूल्य २० रुपये । विदेश में ४०) । एक प्रति २) ❀

ईसाई नव वर्ष पर
युद्धोन्माद से पीड़ित मानव जाति एवं राष्ट्रों के लिए

वेद का शांति-संदेश

शं योरभि स्रवन्तु नः ॥
(यजुर्वेद ३६-१२ ऋ १०-९-४ साम ३३ अ १.६.१)

हमारे चारों ओर सुख,शान्ति,आनन्दकी वर्षा हो वैज्ञानिक एवं राजनीतिक प्रतिस्पर्धाओं ने भीषण नर संहार के लिए चक्र व्यूह रच कर संसार को युद्ध क्षेत्र बना दिया है। रणभेरी बजने में है। ऐसी स्थिति में वेद का सन्देश—

मा हिंसीः पुरुषं जगत् [यजुर्वेद १६.३]

का पालन करने से ही रक्षा होगी । प्रयत्न मानव के संहार का नहीं अपितु रक्षा का करना चाहिए।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे[य३६.१८]

सबको मित्रभाव से देखने तथा मानने से होगी।

पुमान् पुमांसम् परिपातु विश्वतः [यजु२१.५१]

मनुष्य मनुष्यकी सब प्रकार से रक्षाका यत्न करें —इस पर आचरण करने से होगी।

हम द्यु लोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, समुद्र, पहाड़, जङ्गल— सभी को शान्ति का क्षेत्र घोषित करें और अपने मन तथा बुद्धि से युद्धके विचारों को त्याग कर प्रभु से सबकी शान्ति एवं सुखके लिए प्रार्थना करें—

ओ३म् द्यौः शान्तिर् अन्तरिक्षम् शान्तिः, पृथिवी शान्तिर्, आपः शान्तिर्, ओषधयः शान्तिः

—इस प्रकार सर्वत्र शान्ति होने के साथ—

सा मा शान्तिरेधि ॥ [य० ३६.१७]

मुझमें, प्रत्येक व्यक्ति में शान्ति के भाव उन्नत हों। वेद आदेश देता है—

स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः [अथर्व १,३१,४]

हमारे विचार एवं कर्मों से गौ आदि पालनकर्ता पशुओं और संसार के मनुष्यों का कल्याण हो।

—वीरसेन वेदश्रमी, वेदसदन महारानी पथ इन्दौर
अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद् १ जनवरी १९८२ ई०

—❀—

साम वेद का पद्यानुवाद

श्री रामचरणसिंह, दिलदारनगर (गाजीपुर)

(आपने पूरे सामवेद, गीता उपनिषदोंका पद्यानुवाद किया है। सामवेद का १ मन्त्र यहाँ दिया जाता है)

अग्न आ याहि वीतये, गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥
(साम १, ६६०, ऋग्वेद ६.१६.१०)

अग्निरूप परमेश्वर व्यापक
विश्व तथा ब्रह्माण्ड सभी।
जल-थल-नभ सर्वत्र व्याप्त हो
पर लखते नहिं आप कभी॥
होता दाता आप अतः फिर
स्तुति क्रिया ज्ञान दीजै।
तथा श्रेष्ठ वस्तु-प्राप्ति-हित
हमें आप सद् बुधि दीजै॥

—❀—

निबंध प्रतियोगिता फल

कलकत्ता आर्यसमाज बड़ाबाजार द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश मेरी दृष्टि में' विषय पर सम्पन्न प्रतियोगिता में निम्नलिखित पुरस्कृत हुए, उन्हें हार्दिक बधाई है—

प्रथम ११००) श्री वेदभूषण आर्य, हैदराबाद
द्वितीय ७००)श्री डा. चन्द्रभानु सोनवने औरङ्गाबाद
तृतीय क ५००) कविराज रत्नाकर शास्त्री, इटावा
ख ५००) श्री ज्वन्तलकुमार शास्त्री, वाराणसी
अतिरिक्त १००) ,, हरिशङ्कर, मुरादाबाद
प्रत्येक ,, वेदप्रिय शास्त्री, केलबाड़ा कोटा
,, जी० पी० विद्यार्थी, ज्वालापुर
,, निरञ्जनसिंह, मुकुन्दगढ़
,, भवानीलाल भारतीय, चंडीगढ़
,, महावीरनीर विद्यालङ्कार, गु०का०
,, ओङ्कारनाथ मिश्र, पलिया कलाँ

—चाँदरतन दम्माणी, संयोजक

❀ ओ३म् ❀

वेदांग शिक्षा

आपिशलि, चन्द्रगोमि, महामुनि पाणिनि कृता सूत्ररूपा

जीवा: ज्योतिरशीमहि हम वेदज्योति पा सकें

❀ वैदिक प्रार्थना गीत ❀

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए., उपाध्यक्ष विश्ववेद-परिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ]

ओम् इन्द्र क्रतुं नः आ भर, पिता पुत्रेभ्यो यथा। इन्द्र, हमें भर ज्ञान से, जैसे पिता पुत्रों के लिए।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।। शिक्षा दे हमको इस पेहर, सब जीव ज्योति पासकें।।
(ऋ ७.३२.२६साम २५९,१४५६,अ १८.३.६७; २०.७९.१)

—❀—

❀ प्रस्तावना ❀

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सब से पहले शिक्षा पढ़ने का निर्देश किया है--

'शिक्षा पाणिन्यादि मुनिकृता'

(ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय)

'प्रथम पाणिनि मुनि कृत शिक्षा जोकि सूत्ररूप है उस की रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न यह करण है ---माता-पिता-आचार्य सिखलावें।'

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

'यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो तो आचार्य बालकों को और कन्याओं को स्त्री पाणिनि मुनि कृत वर्णोच्चारणशिक्षा एक महीने के भीतर पढ़ा दें'।

(संस्कारविधि वेदारम्भ संस्कार)

माण्डूक्य उपनिषद् (१.१.५) में वेदों के ६ अङ्ग बताए गये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। अंग का अर्थ उपकारक साधन है। शिक्षा शुद्ध उच्चारण सिखाने के कारण पहिला साधन (अंग) है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के ६ अंग बताये हैं -- वर्ण, स्वर (उदात्त-अनुदात्त-स्वरित), मात्रा (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत), बल (स्थान-प्रयत्न), साम (उच्चारण में साम्य) और सन्तान (संहिता)।

प्रातिशाख्य भी शिक्षा के ग्रन्थ हैं जिन्हें पार्षद् भी कहते हैं। इस समय निम्नलिखित उपलब्ध हैं--

१. ऋक् प्रातिशाख्य-(शौनक कृत)। इसमें ऐतरेय आरण्यक के संहितोपनिषद् का अनुसरण किया गया है।

२. यजुर्वेद प्रातिशाख्य (कात्यायन कृत)।

३. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य।

४. साम प्रातिशाख्य, पुष्प ऋषि कृत सूत्र। इस में साम-गानों का वर्णन है।

५. ऋक् तन्त्र (शाकटायन कृत)।

६. अथर्ववेद प्रातिशाख्य शौनकीय चतुरध्यायिका

७ अथर्ववेद प्रातिशाख्य सूत्र विश्वबन्धुशास्त्री सम्पा०

८. अथर्व प्रातिशाख्य, डा० सूर्यकान्तशास्त्री सम्पादित

सूत्र रूप में ३ शिक्षासूत्र उपलब्ध हैं--

१. आपिशलि, २. पाणिनि, और ३. चन्द्रगोमि कृत।

आपिशलि ने अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादि कोष रचे थे जो पाणिनि ने स्वीकार किये। न्यास-कार जिनेन्द्रबुद्धि ने अष्टाध्यायी-वृत्ति १.१.९ पर आपिशलि के अष्टम प्रकरण के २० सूत्र उद्धृत किये हैं जो पाणिनि-शिक्षा के खण्डित अष्टम प्रकरण में नहीं मिलते। सम्भव है वे उसमें रहे हों। अतः उन्हें भी इसमें सम्मिलित कर दिया है। चन्द्रगोमि ने सूत्रों की संख्या कम अवश्य कर दी है किंतु कोई मुख्य बात नहीं लिखी।

इनके पश्चात् बने छोटे बड़े २३ शिक्षा-ग्रन्थ और मिलते हैं जो वाराणसी से प्रकाशित संग्रह में संग्रहीत हैं—

१. पाणिनीय शिक्षा (६० श्लोककी अन्यकृत रचना)
२. याज्ञवल्क्य ,, (२३२ ,,)
३. वासिष्ठी ,, । इसके अनुसार यजुर्वेदमें १४६७ ऋचाएँ और २८२३ यजु हैं।
४. कात्यायनी ,, १३ श्लोक । ५. मांडव्य शिक्षा(यजु)
६. पाराशरी ,, १६० ,, । ७. मल्लशर्म ,,
८. अमोघानन्दिनी ,, (१३० ,, संक्षिप्त में १७)
९. माध्यन्दिनी ,, बड़ी गद्य में छोटी पद्य में
१०. क्रमसन्धान ,, ११.वर्णरत्नप्रदीपिका अमरेशकृत
१२. केशवी ,, एक गद्य में दूसरी २१ पद्यों में
१३. स्वरांकुश ,, (जयन्ती कृत २५ पद्य)
१४. षोडशश्लोकी ,, (रामकृष्ण कृत १६ पद्य)
१५.अवसाननिर्णय ,, (अनन्त देव कृत यजुर्वेदीय)
१६.स्वरभक्तिलक्षण शिक्षा (कात्यायन कृत)
१७.प्रातिशाख्यप्रदीप शिक्षा (बालकृष्ण रचित)
१८. नारदीय ;; (सामवेदीय; विस्तृत उपादेय)
१९. गौतमी ;; ;; २०. लोमशी शिक्षा
२१. गलदृक् ;; २२ मनःस्वार ;;
२३. माण्डूकी ;; (अथर्ववेदीय ; १७९ श्लोक)

रूपक अलङ्कार से वेद को पुरुष रूप में कल्पित करते हुए शिक्षा को नाक, कल्प को हाथ, व्याकरण को मुख, निरुक्त को कान, और ज्योतिष को आँख बताया गया है। अतः हमें चाहिए कि शिक्षा वेदाङ्ग का अध्ययन करके वर्णोंका शुद्ध उच्चारण करें। वेद की और अपनी नाक को ऊँची करके वेद की सुगन्ध का सेवन करें, अशुद्ध उच्चारण कर अपनी और वेद की नाक को न कटने दें ॥

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
—पाणिनीय शिक्षा

वेदांग शिक्षा भूमिका

आकाश-वायुप्रभवः शरीरात्
समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः ।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो
वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ॥१॥

आकाश और वायु से उत्पन्न होनेवाला जो नाद मध्य शरीर से अच्छे प्रकार ऊपर उठता हुआ मुख तक आता है जो मुख के अन्य अन्य स्थानों में पहुंच कर वर्ण के रूप में हो जाता है वह 'शब्द' है ।

तमक्षरं ब्रह्मपरं पवित्रं
गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः ।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव
सम्यक्प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ॥२॥

बुद्धिमान् उस अविनाशी, व्यापक, परम पवित्र, बुद्धि में स्थित अक्षर की कामना करते हैं। अच्छे प्रकार प्रयुक्त वह अक्षर पुरुष को श्रेय (आध्यात्मिक कल्याण, मोक्ष) तथा अभ्युदय सांसारिक ऐश्वर्य से युक्त कर देता है।

स्थानमिदं करणमिदं प्रयत्न एषो द्विधाऽनिलः स्थानम्
पीडयति वृत्तिकारः प्रक्रम एषोऽथ नाभितलात् ॥४॥

प्रकरण ४ हैं—१. स्थान, २. करण, ३. आभ्यन्तर प्रयत्न, ४- बाह्य प्रयत्न, ५. स्थान-पीडन ६. वृत्तिकार, ७. प्रक्रमः एषः, ८. नाभितलात् ।

त्रिषष्टिः ॥ ३ ॥ संस्कृत में वर्ण ६३ हैं—

❀ २२ स्वर ❀ ❀ ३३ व्यञ्जन ❀

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत							
अ	आ	अ३	कुँ	कवर्ग	क	ख	ग	घ	ङ
इ	ई	इ३	चुँ	चवर्ग	च	छ	ज	झ	ञ
उ	ऊ	उ३	टुँ	टवर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण
ऋ	ॠ	ऋ३	तुँ	तवर्ग	त	थ	द	ध	न
ऌ	—	ऌ३	पुँ	पवर्ग	प	फ	ब	भ	म
—	ए	ए३		अन्तःस्थ		य	र	ल	व
—	ऐ	ऐ३		ऊष्म		श	ष	स	ह
—	ओ	ओ३							
—	औ	औ३							

❀ ८ अयोगवाह ❀
: विसर्जनीय (विसर्ग) ❀ ४ यम ❀
ᳵ जिह्वामूलीय ं अनुस्वार
ᳶ उपध्मानीय ॱ९ कम गहरा अनुस्वार
ँ अनुनासिक ँ दीर्घ " "
ल्कँ ख्ँ ग्ँ घ्ँ
(उसी दूसरे वर्ण के साथ अनुनासिक)

इन ६३ वर्णों के अतिरिक्त अ (संवृत), लृ दीर्घ; ए ऐ ओ औ (ह्रस्व आधे), क़ ख़ ग़ ज़ ड़ ढ़ फ़ हैं।

स्थान प्रकरणम्

(तत्र वर्णानां केषां किम् स्थानं किम् करणं, प्रयत्नश्च कः केषामित्युच्यते। तत्र स्थानं तावत्–आ०)

अ कु ह विसर्जनीयाः कण्ठ्याः। ५।

कण्ठो अ कु ह विसर्जनीयानाम्। (चन्द्रगोमि)

अ क ख ग घ ङ : (विसर्ग) का स्थान कण्ठ है।

ह विसर्जनीयौ उरस्यौ एकेषाम्। ६।

किन्हीं के मत में ह, : उरःस्थल से बोले जाते हैं।

जिह्वामूलीयो जिह्व्यः। ७।

ᳵ जिह्वामूलीय का स्थान जीभ की जड़ है।

[यह : के बाद क ख आने पर बोला जाता है जैसे— कᳵकरोति कᳵखादति आदि।]

कवर्गावर्णानुस्वारजिह्वामूलीया जिह्व्या एकेषाम् ८

कुछ के मत में कवर्ग अ ं ᳵ का स्थान जीभ है।

सर्व मुख स्थानम् अवर्णम्। ९।

कुछ के मत से अ का स्थान पूरा मुख है। (महाभाष्य तथा सृष्टिधर की भाषावृत्तियिधृति १-१-९)

कण्ठ्यान् आस्यमात्रान् इति एके। १०।

कुछ आचार्य कण्ठ्यों का स्थान पूरा मुख मानते हैं।

(यह सूत्र आपिशलि शिक्षा में नहीं है)

इ चु य शास्तालव्याः। ११।

तालु इचुयशानाम् —चन्द्रगोमि

इ च छ ज झ ञ य श का स्थान तालु है।

ऋ टु र षाः मूर्धन्याः। १२।

मूर्धा ऋटुरषाणाम्— चन्द्रगोमि

ऋ ट ठ ड ढ ण र ष का स्थान मूर्धा (तालु दाँतों के बीच में ऊपर का उठा स्थान) है।

रेफो दन्तमूलीयः एकेषाम्। १३।

कुछ के मत में र का स्थान दाँतों की जड़ है।

दन्तमूलस्तु वर्गः। १४।

कुछ के मत से तवर्ग का स्थान दन्तमूल है।

लृ तु ल साः दन्त्याः। १५।

(दन्ताः लृतुलसानाम्— चन्द्रगोमि)

लृ त थ द ध न ल स का स्थान दाँत हैं।

वकारो दन्त्यौष्ठ्यः। १६।

(दन्तौष्ठम् वकारस्य) चन्द्रगोमि)

व का स्थान दाँत और ओठ हैं।

सृक्किणी (सृक्व) स्थानम् एके। १७।

कुछ के मत में व का स्थान सृक्किणी (सृक्व) है। जो दात और ओठ का मध्य भाग है।

उपूपध्मानीयाः ओष्ठ्याः। १८।

(ओष्ठौ उपूपध्मानीयानाम् —च०)

उ प फ ब भ म ᳶ उपध्मानीय का स्थान ओठ है।

अनुस्वार यमाः नासिक्याः। १९।

(नासिका अनुस्वारस्य —चन्द्रगोमि)

अनुस्वार और यमों का स्थान नाक है।

कण्ठ–नासिक्यम् अनुस्वारम् एके। २०।

कोई आचार्य अनुस्वार का स्थान कण्ठ-नासिका बताते हैं।

यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीयाः एकेषाम्। २१।

कुछ के मत में यमों का स्थान नाक–जिह्वामूल हैं।

एद् ऐतौ कण्ठतालव्यौ। २२।

(कण्ठतालुकमिदेदैताम् —च०)

ए ऐ का स्थान कण्ठ–तालु है। क्योंकि ए अ–इ से और ऐ अ-ए से मिलकर बने हैं।

ओदौतौ कण्ठौष्ठ्यौ (कण्ठौष्ठमुदोदौताम्(च०) ।२३

(सूत्र ५, ११, १५, १८, २२, २३ उद्धृत न्यास पृष्ठ ५८)

ओ औ का स्थान कण्ठ–ओष्ठ है। क्योंकि अ–उ मिलकर ओ और अ–ओ मिलकर औ बनते हैं।

ङ ञ ण न माः स्वस्थान नासिकास्थानाः। २४।

ङ ञ ण न म का स्थान अपने अपने स्थान के साथ नासिका भी है। अर्थात् ङ का कण्ठ–नाक, ञ का तालु–नाक, ण का मूर्धा–नाक, न का दाँत–नाक, म का ओठ–नाक स्थान है।

द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणाम् आरम्भके भवतः। २५

[द्विवर्णानि सन्ध्यक्षराणि — च०]

दो दो अक्षर सन्ध्यक्षरों के बनाने वाले होते हैं, जैसे ए ऐ ओ औ आदि। उनके स्थान भी २ होते हैं।

सरेफ ऋवर्णः (सलकारः लृवर्णः) ॥ २६ ॥

ऋ र के साथ और लृ ल के साथ सुनी जाती हैं।

एवमेतानि स्थानानि। करणमपि—[आ०] ।२७

इस प्रकार ये स्थान हैं। करण[बोलने के साधन—]

करण प्रकरणम्

जिह्व्यतालव्यमूर्धन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम् २८

जीभ, तालु, मूर्धा, दाँतों से बोले जाने वाले अक्षरों का करण जीभ है।

जिह्वामूलेन जिह्व्यानाम् [तद्येषामभ्यासम्]२६

जीभ से बोले जाने वाले[कवर्ग]का करण जिह्वामूल है। वैसा जिनका अभ्यास हो।

जिह्वा-मध्येन तालव्यानाम् ॥ ३० ॥

तालव्यों का करण जीभ का मध्य भाग है।

जिह्वा-उपाग्रेण मूर्धन्यानाम् ॥ ३१ ॥

मूर्धन्यों [ऋ ट ठ ड ढ ण र ष] का करण जीभ का ऊपर का अग्र भाग है।

जिह्वाग्राधः करणं वा ॥३२ ॥

अथवा उनका करण जीभ का अगला नीचा भाग है।

जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम् ॥ ३३ ॥

दन्त्य[लृ त थ द ध न ल स]का करण जीभ का अगला भाग है।

शेषाः स्वस्थानकरणाः [आ०] ॥ ३४ ॥

शेष अक्षरों का करण अपना उच्चारण–स्थान है।

इति एतदन्तः करणम् ॥ ३५ ॥

यह मुख के अन्दर अक्षरों के करण बताये गये।

आभ्यन्तर प्रयत्न प्रकरण

प्रयत्नो द्विविधः, आभ्यन्तरो बाह्यश्च ॥ ३६-३७

प्रयत्न[अक्षरों के बोलने में अन्दर की कोशिश] दो प्रकार के हैं— १ आभ्यन्तर [कण्ठ तक] २. बाह्य।

आभ्यन्तरस्तावद् ॥ ३८ ॥

अब आभ्यन्तर प्रयत्न बताते हैं—

स्पृष्ट करणाः स्पर्शाः ॥ ३९ ॥ १

स्पर्शों [पाँचों वर्गों के क से म तक २५ अक्षरों] के आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट हैं। ये अक्षर अपने अपने स्थान में जीभ से स्पर्श करके बोले जाते हैं।

ईषत्स्पृष्ट करणाः अन्तःस्थाः ॥ ४० ॥

अन्तःस्थ [य र ल व] का अन्तः प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट है। इनके उच्चारण में जीभ का कम स्पर्श होता है।

ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः विवृतकरणा वा ४१-४२

ऊष्म [श ष स ह] का आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद्विवृत अथवा विवृत है। ये जीभ को कम अथवा पूरा फैलाकर (दूर रख कर) बोले जाते हैं।

विवृतकरणाः स्वराः ॥ ४३ ॥ २

स्वरों का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। ये जीभ को अलग दूर रख कर (न छूते हुए) बोले जाते हैं।

एभ्यो विवृततरत्वमेदोतोः। ताभ्यामैदौतोः[आ०]

ताभ्याम् अपि अकारस्य [च०] ॥ ४४–४६ ॥

स्वरों और ऊष्मों से अधिक विवृत ए ओ, उन से भी अधिक विवृत ऐ औ, और सबसे अधिक विवृत अ है जब यह १८ प्रकार में किसी से बोला जाता है।

संवृतस्त्वकारः ॥ ४७ ॥

केवल छोटे अ का प्रयत्न संवृत है। यह कण्ठ को संकुचित करके बोला जाता है।

इति एषो अन्तः प्रयत्नः ॥ ४८ ॥

यह आभ्यन्तर प्रयत्न का वर्णन समाप्त हुआ।

—※—

टिप्पणी १,२ न्यास भाग १ पृष्ठ ५८, ५९

बाह्य प्रयत्न प्रकरण

अथ बाह्याः प्रयत्नाः । ४६ ।

अब बाह्य प्रयत्नों का वर्णन करते हैं।

वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः श ष स विसर्जनीय जिह्वामूलीय उपध्मानीयाः यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासानुप्रदानाश्च अघोषाः । ५० ।

वर्गों के पहले दूसरे (क ख च छ ट ठ त थ प फ) श ष स : विसर्ग ≍ जिह्वामूलीय ≍ उपध्मानीय पहले दूसरे यम ८९ ˘ ये १८ वर्ण विवार (कण्ठ फैलाकर) श्वास (साँस के साथ अव्यक्त ध्वनि) अघोष (सूक्ष्म-ध्वनि) वाह्यप्रयत्न वाले हैं।

एके अल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः । ५१ ।

- वर्गोंके पहले क च ट त प अल्पप्राण शेष महाप्राण हैं

वर्गाणां तृतीय चतुर्था अन्तःस्था हकारानुस्वारौ यमौ च तृतीय चतुर्थौ नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तश्च । ५२ ।

वर्गों के तीसरे चौथे ग घ ज झ ड ढ द ध ब भ य र ल व ह ˙ तीसरे चौथे यम और नासिक्य वर्ण संवार (कण्ठ-सङ्कोची) नाद (अव्यक्तध्वनि) घोष(गम्भीर) हैं।

वर्गयमानां तृतीया अन्तस्स्थाश्च अल्पप्राणा इतरे सर्वे महाप्राणाः । ५३ ।

इन में वर्गो के तीसरे (ग ज ड द व) य र ल व ये अल्पप्राण हैं शेष महाप्राण हैं।

यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः । ५४ ।

आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः । ५५ ।

वर्गों के तीसरे के समान पाँचवें ङ ञ ण न म अल्पप्राण हैं। नाक से बोला जाना इनका विशेष गुण हैं।

शादय ऊष्माणः सस्थानेन द्वितीया हकारेण चतुर्था इति एष बाह्य प्रयत्नः । ५६-५८ ।

ऊष्म श ष स ह और वर्गो के दूसरे वर्ण ख फ छ ठ थ और चौथे घ झ ढ ध भ ये ह के समान महा प्राण हैं।

(५० से ५८ तक सूत्र महाभाष्य १-१-९; न्यास भाग १ पृष्ठ ५७; ९६ और पदमंजरी भाग १ पृष्ठ ५६ में हैं)

यह बाह्य प्रयत्न का वर्णन समाप्त हुआ ।

स्थान-पीडन प्रकरण

तत्र स्पर्श यम वर्णकरो वायुः अयः पिण्डवत् स्थानमभिपीडयति । ५९ ।

स्पर्श क से लेकर म तक २५ और यम वर्णों को प्रकट करने वाली वायु लोहे के गोले के समान कंठ आदि स्थानों तक अभि पीडन करती है।

अन्तःस्थ वर्णकरो वायुर्दारुपिण्डवत् । ६० ।

अन्तःस्थ य र ल व को प्रकट करनेवाली वायु लकड़ी के गोले के समान स्थान को पीडित करती है।

ऊष्म वर्णकरो वायुरूर्णापिण्डवत् । ६१ ।

ऊष्म श ष स ह और स्वरों को प्रकट करनेवाली वायु ऊन के गोले के समान स्थान को पीडित करती है।

उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः । ६२ ।

यह स्थान-करण-प्रयत्नों का वर्णन समाप्त हुआ ।

वृत्तिकार प्रकरण

एवं व्याख्याने वृत्तिकाराः पठन्ति— अष्टादशप्रभेदमवर्णकुलमिति तत् कथमुक्तम् ? अत्र अवर्णः । ६३

ह्रस्व दीर्घ प्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन च ।

आनुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः ।६४

ऐसे व्याखयान में वृत्तिकार पढ़ते हैं कि अ का कुल १८ भेद वाला कैसे कहा गया ? इसका उत्तर—

यहाँ अ ह्रस्व दीर्घ प्लुत गुणित उदात्त अनुदात्त स्वरित.गुणित सानुनासिकनिरनुनासिक भेदसे १८ प्रकार है।

❀ अ के १८ भेद ❀

	सानुनासिक			निरनुनासिक		
स्वर	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
उदात्त	अँ	आँ	अँ३	अ	आ	अ३
अनुदात्त	अँ̱	आँ̱	अँ̱३	अ̱	आ̱	अ̱३
स्वरित	अँ॑	आँ॑	अँ॑	अ॑	आ॑	अ॑३

एवमिवर्णादयः ॥ ६५ ॥

इसी प्रकार इ उ ऋ के १८-१८ प्रकार होते हैं ।

लवर्णस्य दीर्घा न सन्ति, तं द्वादशभेदमाचक्षते ६६

लृ का दीर्घ नहीं होता। इस के १२ भेद होते हैं।

यदृच्छाशब्दे अशक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घाः स्युस्तदा अष्टादशप्रभेदम् ब्रुवते क्लृृप्त इति । ६७

दीर्घ लॄ वाला नाम रखने या ठीक न बोलने पर जब दीर्घ बोला जाय जैसे क्लॄप्त तो उसके १८ भेद होते हैं।

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति, तान्यपि १२प्रभेदानि

सन्ध्यक्षरों ए ऐ ओ औ के ह्रस्व नहीं होते, इसलिए इन के भी १२-१२ भेद होते हैं।

छन्दोगानां सात्यमुग्रि राणायनीया ह्रस्वानि [अर्धमेकारमर्धमोकारञ्च] पठन्ति । तेषामप्यष्टादश प्रभेदानि । ६९ ।

वेद-पाठियों में सात्यमुग्रि और राणायनीय शाखावाले ए ओ को ह्रस्व पढ़ते हैं इससे इनके भी १८ भेद होते हैं। [टि० महाभाष्य एओङ् सूत्र और १-१-४७। आजकल द्रविड अंग्रेजी आदि भाषाओं में ह्रस्व ओ बोला जाता है]

अन्तःस्थाः द्विप्रभेदाः रेफवर्जिताः सानुनासिकनिरनुनासिकाश्च ७० अन्तःस्थ दो प्रकार हैं यँरँलँवँ-यरलव

रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति । ७१ ।

र श ष स ह के सवर्ण नहीं होते[महाभाष्य हयवरट् सूत्र]

वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः । ७२ ।

एक वर्ग का अक्षर उसी वर्ग के दूसरे अक्षर का सवर्ण होता है। [भर्तृहरि-विरचित महाभाष्य-दीपिका पृ० १८४]

प्रक्रम प्रकरण

इति एष क्रमो वर्णानाम् । ७३ ।

इस प्रकार यह अक्षरों का क्रम है...

तत्र एते कौशिकीयाः श्लोकाः । ७४

सर्वान्तेऽयोगवाहत्वाद् विसर्गादिरिहाष्टकः ।

अकार उच्चारणार्थो व्यञ्जनेष्वनुबध्यते । ७५

ᳵक ᳶपयोः कपकारौ च तद्वर्गीयाश्रयत्वतः ।

तेषामुकारो वर्णानां स्थानवर्गीयलक्षकः ७६ ।

पलिक्ँक्नी चरुँरुन्तुः जग्ँग्मर्जंद्ँष्टुरित्यत्र यद्वपुः [यदेव] नासिक्येतोक्तम् कादीनां ते इमेयमाः । ७७ ।

ये कौशिकके श्लोक हैं। अन्तमें : आदि ८ अयोगवाह हैं। अ उच्चारणार्थ व्यञ्जनों में पीछे लगा दिया जाता है।

टिप्पणी— सूत्र ७४-७७ प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं क्योंकि ये आपिशलि शिक्षा में नहीं मिलते। श्लोक ७७ छन्द की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण था जिसमें यदेव और वर्णानां बढ़ाकर सम्पादक ने पूरा किया है। इसमें यदि इमे यमाः पाठ मानें तो विदित होगा कि कँ खँ गँ घँ यम हैं और यदि इमेऽयमाः पाठ मानें तो यह सिद्ध होगा कि इन्हें शौनक और पाणिनि से पहिले यम माना जाता था।

यत्रस्था वर्णा उपलभ्यन्ते तत्स्थानं । येन निर्वृत्यते तत्करणम् । प्रयतनम् प्रयत्नः । ७८-८०

इन स्थान करण प्रयत्नों की व्याकरण-प्रसिद्धि यह है—

जिस स्थान में अक्षर उपलब्ध होते हैं वह 'स्थान' है।

जिस भाग से वे बोले जाते हैं वह 'करण है'।

बोलने में उत्तम कोशिश करना 'प्रयत्न' है।

(टि०—सूत्र ७८ से ८० तक वर्णोच्चारणशिक्षा में भूल से नाभितल प्रकरण में छप गये हैं।)

नाभि तल प्रकरण

नाभि-प्रदेशात् प्रयत्न-प्रेरितः प्राणो वायुः ऊर्ध्वमाक्रामन् उर आदीनां स्थानानाम् अन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते... । ८१ ।

नाभि के स्थान से जीवात्मा के प्रयत्न से प्रेरणा लेकर प्राणवायु ऊपर उठता हुआ उरस्थल आदि में से किसी स्थान पर उत्तम यत्न से विशेष रूप से धारण किया जाता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती— 'सब मनुष्यों को उचित है कि जिस जिस प्रकरण में जिस अक्षर के उच्चारण के लिए जो जो बात लिखी है उसको ठीक ठीक जानकर और विद्यार्थियों को बताकर तथा शब्दाक्षरों के प्रयोग ज्यों के त्यों कर, प्रशंसित हो, सदा आनन्द से युक्त रहें और सब विद्यार्थियों को भी वर्णोच्चारण शुद्ध कराकर आनन्द में रक्खें।'

इति पाणिनिमुनिकृता वेदाङ्गशिक्षा समाप्ता।

आगे के २७ सूत्र केवल आपिशल शिक्षा में मिलते हैं सम्भव है ये पाणिनि-शिक्षा में भी हों। ८१-१०२ सूत्र न्यास पृष्ठ५६, हैम शब्दानुशासनवृत्ति पृष्ठ ६, वाक्यपदीय पृष्ठ १०५ वृषभदेव-टीका पृष्ठ १०५ में हैं।

आपिशलि शिक्षा

स विधार्यमाणो वायुः स्थानमभिहन्ति। तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यते आकाशे, सा वर्णश्रुतिः स वर्णस्यात्मलाभः॥ ८१

धारण किया हुआ वायु भी उन स्थानों का अभिघात करता है। उस स्थान-अभिघात से आकाशमें ध्वनि पैदा होती है वह अक्षर का सुनना है, वह अक्षरकी प्राप्ति है।

तत्र ध्वनावुत्पद्यमाने यदा स्थान-करण-प्रयत्नाः परस्परं स्पृशन्ति तदा सा स्पृष्टता॥ ८२

वहाँ अक्षरों के उत्पन्न होने पर जब स्थान-करण-प्रयत्न एक दूसरे को छूते हैं वह स्पृष्टता है।

यदेषत् स्पृशन्ति तदेषत्स्पृष्टता॥ ८३

जब कम छुते हैं वह ईषत्स्पृष्टता है।

दूरेण यदा स्पृशन्ति सा विवृतता॥ ८४

जब दूर से स्पर्श होता है वह विवृतता है।

सामीप्येन यदा स्पृशन्ति सा संवृतता॥ ८५

जब पास से स्पर्श होता है वह संवृतता है।

इत्येषो अन्तःप्रयत्नः॥ ८६

यह आभ्यन्तर प्रयत्न हुआ।

स इदानीं प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन् मूर्ध्नि निवृत्तो यदा कोष्ठमभिहन्ति तदा कोष्ठेऽभिहन्यमाने गलबिलस्य विवृतत्वाद्विवारः संवृतत्वात्संवारो जायते तौ संवार-विवारौ॥ ८७—८८

वही प्राण नामक वायु ऊपर टकराता हुआ मूर्धा में टकराने पर जब लौटता है तब कोष्ठ पर अभिघात होने पर गले के फैल जाने से विवार और संकुचित होने से संवार हो जाता है, वे दोनों संवार–विवार कहाते हैं।

तत्र यदा कंठबिलं संवृतं भवति तदा नादो जायते विवृते तु कंठबिले श्वासो जायते। ८९—९०

वहां जब गला संवृत होजाता है तब नाद पैदा होता है और गला के विवृत होने पर श्वास उत्पन्न होता है।

तौ श्वासनादौ अनुप्रदानमित्याचक्षते॥ ९१

वे नाद और श्वास अनुप्रदान कहाते हैं।

अन्ये तु ब्रुवते अनुप्रदानमनुस्वानो घंटानिर्ह्रादवत् ९२

अन्य जन कहते हैं कि अनुप्रदान घंटा बजने की गूँज के समान है।

तत्र यदा स्थानाभिघातजे ध्वनौ नादो अनुप्रदीते तदा नाद-ध्वनि-संसर्गाद् घोषो जायते। ९३

वहाँ जब स्थान के अभिघात से पैदाहुई ध्वनि में नाद किया जाता है तब नाद की ध्वनि के मेल से घोष होता है।

यदा श्वासोऽनुप्रदीयते तदा श्वासध्वनिसंसर्गाद् अघोषः॥ ९४

जब श्वास किया जाता है तब श्वास की ध्वनि के मेल से अघोष पैदा होता है।

सा घोषवदघोषता। ९५।

यह घोष के समान अघोषता हुई।

महति वायौ महाप्राणः॥ ९६

वायु के अधिक होनेपर महाप्राण होता है।

अल्पे वायावल्पप्राणः॥ ९७

सा अल्पप्राणमहाप्राणता॥ ९८

वायु के कम होने पर अल्पप्राण होता है।

महाप्राणत्वाद् ऊष्मत्वम्॥ ९९

महाप्राण होनेसे ऊष्मता होती है।

यदा सर्वाङ्गानुसारी प्रयत्नस्तीव्रो भवति तदा गात्रस्य निग्रहः कंठबिलस्य चाणुत्वं स्वरस्य च वायोस्तीव्रगति-वाद् रौक्ष्यं भवति तमुदात्तमाचक्षते। १००

जब सब अंगों का अनुसारी प्रयत्न तीव्र होता है तब शरीरका निग्रह, गले का संकोच और वायुकी गति तीव्र होनेसे स्वर रूखा हो जाता है उसको उदात्त कहते हैं।

यदा तु मन्दः प्रयत्नो भवति तदा गात्रस्य स्रंसनं कंठबिलस्य महत्त्वं, स्वरस्य च वायोर्मन्दगतित्वात् स्निग्धता भवति तमनुदात्तमाचक्षते॥ १०१

जब प्रयत्न मन्द होता है तब शरीर ढीला, कंठबिल बड़ा और वायु की गति मन्द होने से स्वर चिकना हो जाता है उसको अनुदात्त कहते हैं।

उदात्तानुदात्तसन्निपातात् स्वरितत्वम्। १०२।

उदात्त और अनुदात्त के मेल से स्वरित होता है।

इत्येषं प्रयत्नोऽभिनिर्वृत्तः कृत्स्नः प्रयत्नो भवति। १०३

इस प्रकार की गयी पूरी कोशिश बाह्य प्रयत्न होता है।

शिक्षा का अतिसंक्षेप

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु च ॥१०४

अक्षरों के ८ स्थान हैं—उर, कंठ, सिर, जिह्वामूल, दांत, नाक, ओठ, तालु ।

स्पृष्टत्वमीषत्स्पृष्टत्वं संवृतत्वं तथैव च ।
विवृतत्वञ्च वर्णानामन्तःकरणमुच्यते ॥ १०५ ॥

स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, संवृत, विवृत अन्तःकरण हैं ।

कौलो विवार-संवारौ श्वास-नादौ अघोषता ।
घोषोऽल्पप्राणता चैव महाप्राणः स्वरास्त्रयः ॥ १०६
बाह्यं करणमाहुस्तान् वर्णानां वर्णवेदिनः ॥१०७॥

विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्पप्राण, महाप्राण; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित— इन ११ को अक्षरों का बाह्य करण कहते हैं ।

—❀—

ऊँचा स्वर उदात्त है, इसमें कोई चिह्न नहीं लगता, नीचा अनुदात्त है इसमें नीचे पड़ी रेखा लगती है, दोनों का समाहार स्वरित है इसमें ऊपर खड़ी रेखा लगती है । पाद के अन्तिम भाग की एकश्रुति में कोई चिह्न नहीं लगता ।

ॠ ँ को ग्वङ बोलना अशुद्ध है । यह ऐच्छिक है । म् को अनुस्वार, और यदि श ष स ह र् में कोई अक्षर परे हो तो ह्रस्व के बाद आये अनुस्वार को दीर्घ ँ (जैसे शतँ, हिमाः, और दीर्घके बाद आये अनुस्वार को ह्रस्व ॠ होजाता हैं जैसे सम्भूत्याॠरताः ।

वेदसंर-कृत की परीक्षाएँ

वेद-विश्व-विद्यालय की आगामी परीक्षाएँ शिवरात्रि के बाद २८ फरबरी १९८२ को होंगी । परीक्षार्थी अपना नाम, पिता का नाम, पता की सूचना के साथ परीक्षा-शुल्क ५) शीघ्र भेजें । नियमावली-पाठविधि पूर्ववत् । केवल 'संस्कृत-विशारद' की नई परीक्षा में शिक्षा, अष्टाध्यायी १ अध्याय, मूलरामायण, विदुरनीति योग-दर्शन, चाणक्यसूत्र, नीति-वैराग्यशतक, मनुस्मृति हैं ।

बजा वेद की बाँसुरिया

ऋषि दयानन्द आए, सोते उठाए भारत के नरनारि जी
बजा वेद की बाँसुरिया ।
सत्यार्थ-प्रकाश को लिखकर, दे गए, अनुपम ज्योति
नहीं आते तो आज देश की दीन दुर्दशा होती
यज्ञ रचाये, वेद पढ़ाये, दूर किया अन्धकार जी
बजा वेद की बाँसुरिया ॥

—पृथ्वीसिंह वेधड़क

स्वामी दयानन्द बोधरात्रि

छा जाता तम वृहत् आवृतमय, एक समान सभी में ।
दीख न पाता सत्य प्रकाशन गहन अज्ञान सभी में ॥
जितना वेग बढ़े हों बढ़ता, लौट न सके कदापि ।
जब सीमा आ जाती है तब बढ़ न सकते कदापि ॥
इस युग में था एक संन्यासी वेदज्योति ले आया ।
उसअँधेरी यामिनि युग में, शंकर का ध्यान लगाया ॥
शिव शिव करते रहे प्रेमयुत, शिव सद्रूप न पाया ।
आश्चर्य हो देखे 'इत-उत', कहाँ है शिव, न आया ॥
कब आएँगे खाना खाने, है इन्तजार हमारा ।
रह गई है रात्रि अन्धेरी, आना नहीं विचारा ॥
टकराई थी तम की सीमा, मूलशंकर भी जागे ।
जागा भारत भ्रम-शिव भागा, बोध रात्रि के आगे ॥

कवि कस्तूर चन्द "घनसार" पीपड़ शहर (राज०)

कृपया उत्तर अवश्य दें

प्रिय संरक्षक तथा सदस्यगण,

सादर नमस्ते !

निवेदन है कि महगाई और आर्थिक सङ्कट के कारण आपकी वेदज्योतिका मूल्य आप सभी केलिए २०) किया गया है । कृपया स्वीकार करें व शीघ्र भेजें । वर्ष इस अङ्क से माना जायेगा । यदि किसी कारण स्वीकार न हो तो भी कृपया आप उत्तर अवश्य दें ।

—निवेदक आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

वेदज्योति की नयी योजना

देवी इतरा के पुत्र महर्षि महीदास-कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

का

शुद्ध सरल हिन्दी अनुवाद

सम्पादक–आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम.ए., काव्यतीर्थ

साथ में अष्टाध्यायी; निघण्टु, निरुक्त भी छपेगा।

ऋग्वेद के लगभग १००० (एक हजार) मन्त्रों की व्याख्यासहित 'वेदज्योति' में मार्च १९८२ से प्रतिमास क्रमशः प्रकाशित किया जायेगा।

पूरा छपने पर मूल्य ३०) तीस रुपये होगा।

अग्रिम मूल्य २०) रु०, बीस रुपये। सदस्यों को सदस्यता शुल्क १०) रु० के अतिरिक्त केवल १०) में दिया जायेगा।

इस समय ऐतरेय ब्राह्मण [हिन्दी] कहीं नहीं मिलता। यह ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रथम है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका तथा संस्कार-विधि में इसका पढ़ना अनिवार्य बताया है। इसमें ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम आदि सोम यागों का, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, षडह (६ दिनों का यज्ञ), द्वादशाह (१२ दिनों का यज्ञ), राजसूय आदि यज्ञों का और दीक्षणीय, प्रायणीय, उदयनीय, आतिथ्य, प्रवर्ग्य आदि इष्टियों की विधियाँ और उनका रहस्य, रहस्यों को बताने वाले आख्यान (जैसे सौपर्ण, अजीगर्त और शुनःशेप की कथा) तथा आख्यायिकायें पढ़ने को मिलेंगी।

इस अवसर को न चूकिये। सभी वैदिकधर्मियों को अपने लिये और अपनी संस्था के लिये इसको अवश्य लेना चाहिए।

कृपया २०) बीस रुपये तत्काल भेजिये। सदस्यगण भी १०) सदस्यता शुल्क के साथ १०) रु० =कुल बीस रुपये मनीआर्डर से शीघ्र भेजें।

—वीरेन्द्रमुनि शास्त्री, उपाध्यक्ष विश्ववेदपरिषद्

सी ८१७ महानगर, लखनऊ-२२६००६

शोक समाचार

गत मासों में हुए निम्नलिखित आर्य महानुभावों के देहावसान पर विश्ववेदपरिषद् और वेदज्योति शोक प्रकट करती है और परमात्मा से उनकी शान्ति और सद्गति की प्रार्थना करती है—

१–सर्वश्री डा० पं० वी० डी० लक्ष्मण, फीजी
२–नैष्ठिक ब्रह्मचारी महावीर गु. झज्झर १६-७-८१
३–पं. शंकरलालजी, हलद्वानी [नैनीताल] २६-७-८१
४–गोपालदत्त शास्त्री, कोटद्वार ३०-८-८१
५–दीवानसिंह आर्य, आर्यसमाज रामगढ़ १३-८-८१
६–बहादुरराम आर्य, रामगढ़ [नैनीताल]
७–लाला जगतनारायण, लुधियाना ९-९-८१
८–लक्ष्मीचन्द्र वानप्रस्थी; चंडीगढ़ २७-९-८१
९–डा० चन्द्रभानु जी, हरिद्वार २१-९-८१
१०–श्रीमती सत्यभामा आर्या, बरेली २८-९-८१
११–धर्मपत्नी श्री सच्चिदानन्द एम० एस-सी, बरेली
१२–श्री धर्मप्रकाश आर्य, बरेली २५-९-८१
१३–श्री भद्रपालसिंह आर्योपदेशक, हाथरस २९-९-८१
१४–श्रीमती कमलादेवी प्रधाना, लखनऊ २-१०-८१
१५–ब्रह्मचारी वसुकान्त आर्य, हैदराबाद ९-१०-८१
१६–श्री महेन्द्रदेव शास्त्री, दरियागंज दिल्ली
१७–श्री परम वेदालंकार, दिल्ली १०-१०-८१
१८–वैद्य सत्यपाल उपाध्याय, चंडीगढ़ २०-१०-८१
१९–श्रीमती सुखदा गौतम, कानपुर ३०-१०-८१
२०–श्री सुरेन्द्रकुमार कपूर, अमृतसर २५-१०-८१
२१-२२–श्रीमती शुद्धोदेवी, चौ० लखीराम, मटिण्डू
२३–सुदेश ब्रह्मचारिणी आ.क.गुरु.नरेला १८-१०-८१
२४–श्रीमती मायादेवी रायपुर १२-१०-८१
२५–श्री रामदयालु शास्त्री अलीगढ़ २१-११-८१
२६–श्री सखाराम तुङ्गार नांदेड़ २६-११-८१
२७–श्रीसेठ दीपचन्द आर्य, आर्षट्रस्टदिल्ली २८.१२.८१
२८–श्री त्रिलोकचन्द्र शास्त्री जालन्धर २६-१२-८१
२९–श्री चन्द्र मणि पाठक शास्त्री लखनऊ १३.१२.८१
३०–श्री डा० गुरुदत्त शिकोहाबद १६.१२.८१
३१–श्री स्वामी ओमाश्रित सरस्वती दिल्ली ६.१.८२

चंडीगढ़ शाखा समाचार

११-१२-१८ को मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर वेद-गोष्ठी और यज्ञ श्री देवराज वर्मा के घर पर हुआ। प्रो० पी० डी० शास्त्री ने ऋग्वेद के कुछ सूक्तों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। ५१) दान परिषद् को मिला। यजमान ने सबका सत्कार किया। कुछ नये सदस्य भी बने।

पौष पूर्णिमा ६-१-८२ को पौर्णमासेष्टि यज्ञ और वेदगोष्ठी श्रीमती सत्यवती आर्या के घर पर हुई। प्रि० बालकृष्ण दीवान वेदालङ्कार ने यजुर्वेद के ईश उपनिषद् पर अपने विचार रक्खे। गृहपति ने सब का सत्कार किया। परिषद् को यजमान और दान-पात्र से २५ रुपये प्राप्त हुए।

—आशुराम आर्य, मन्त्री विश्ववेदपरिषद्, चंडीगढ़

——

❀ योग-साधना शिविर ❀

ओमानन्द योग साधना (ब्रह्मयज्ञ) एवं चिकित्सा शिविर, मनधारा प्रपात बड़केश्वर (खंडवा) में २६ दिसम्बर ८१ से १४ जनवरी ८२ तक हुआ।

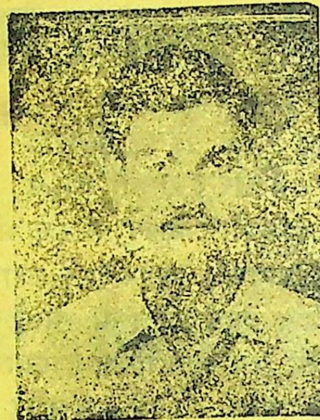
पौष की वेद-गोष्ठियां

मार्गशीर्ष व पौष पूर्णिमा को आर्यसमाज संयोगितागंज इन्दौर में पौर्णमास्येष्टि और वेद-गोष्ठी हुई। स्थानीय सभी आर्यसमाजों ने भाग लिया। श्री प्रभाकर शर्मा और अध्यक्ष श्री वीरसेन वेदश्रमी जी ने अथर्ववेद के उच्छिष्ट देवता पर विशेष विवेचन किया। अन्त में वामदेव्य गान हुआ।

❀ लखनऊ में वेद-संगोष्ठी ❀

११ दिसम्बर १९८१ और ९-१-८२ मार्गशीर्ष तथा पौष पूर्णिमा को वेद-सदन में विशेष यज्ञ और वेद-संगोष्ठी हुई जिस में श्री वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, श्री पवन कुमार, श्री वेदप्रिय शर्मा, श्री महावीर प्रसाद आदि ने अथर्व के कुन्ताप-सूक्त पर विचार किया।

विदेश में वेद-प्रचार



परिषद् के संयुक्त मन्त्री श्री संजयकुमार बी०ई० सपरिवार लीसोथो [दक्षिण अफ्रीका के निकट] गये हुए हैं उनका दस दिसम्बर का पत्र इस प्रकार है—
"यहाँ पर हमारा रविवार का सत्संग नियमित रूप से चल रहा है। मेरे पास वेद, अंग्रेजी की संस्कार विधि, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका और सत्यार्थ-प्रकाश हैं। अभी हम डरबन नहीं जा पाये। शायद जनवरी में जायें।"

—ॐ—

❀ सदस्यों से प्रार्थना ❀

आपका वर्ष पूर्ण हो गया है कृपया आगे के लिए २० रुपये शीघ्र भेजें, अन्यथा पत्रिका न भेजी जायेगी।

— ओ३मित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व-वेद-परिषद्

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ [उ.प्र.]
मुद्रक—आदर्श प्रेस लखनऊ दूरभाष ८४१०१

सेवायाम् श्री

ओ३म्

वर्ष ६ अङ्क ४
माधव, वैशाख २०३८ वि०
अप्रैल १९८२ ई०
वेदसंवत्— १९६०८५३०८२

वेद-ज्योति

सम्पादक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री
ऐम. ए. काव्यतीर्थ,
सी ८१७ महानगर लखनऊ ६
दूरभाष ८४१०१

ऐतरेय ब्राह्मण (प्रायणीय उदयनीय इष्टि अंक)

आर्यसमाज के संस्थापक



ऋषि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज-स्थापना-दिवस चैत्र शुक्ल ५, १९३२ वि०

❀ वही हमारा आर्यसमाज ! ❀

जिस ने महि-मण्डल को फिर से वेदों का सन्देश दिया।
भ्रमित जनोंको मार्ग दिखाकर पावनतम उपदेश दिया।
जिसके संस्थापक थे ऋषिवर दयानन्द से विज्ञाता।
जो आगे बढ़ बना देश का प्रहरी गौरव-उद्गाता।
मनुष्यता-सम्पूरित जो है सत्य अहिंसा जिसकी साज।
सत्य-शिवं-सुन्दरता जिसमें वही हमारा आर्यसमाज॥

—❀—

ओ३म् क्रतो स्मर

(यजुर्वेद ४०.१५)

मेरा प्रभु ओंङ्कार और नहीं कोई।
जो है विभु निराकार, मम प्रिय सोई॥
यस्य नाम महद्यशः, -वेद ने सुनाया।
जिसकी गुण गरिमा को आप्तों ने गाया॥
बिसराये उसे वही जिसने मति खोई॥१
गुरुवर दयानन्द देव बन दयालु बोले।
परमदेव को न भूल रे आत्मन्; भोले।
करुणा कर भक्ति-बेल मम उर में बोई॥२
बेल, अहा, फैल गई, अमृत फल देवे।
मेरा तो जीवन अब ओ३म् को ही सेवे॥
पूजा की थाली भली काया की संजोई॥३
निर्विकार नित्य रहे परमेश्वर मेरा।
फिर क्यों अपने में रखूं मैं विकार-डेरा॥
विषयों में फँसने से चिति क्या न रोई॥४
भक्ति में न भेदभाव नारी नर का हो।
बालक, जवान और बूढ़े, जो चाहो —
बनो भक्त, आओ, विषय-वासना को धोई॥५
देही शुचि देव-भाव धारण जब करले।
अन्तर्यामी कृपालु सुख का तब वर दे॥
करे ओ३म्-प्रेमीकी शिवतर दिलजोई॥६
मेरा तो एक ओ३म् नाम दूसरा न कोई॥

—ओ३म्प्रेमी शाजापुरी

—❀—

❀ विशेषांकों सहित वार्षिक मूल्य २०) रुपये आजीवन २००) । विदेश में ४०) । एक प्रति २) ❀

❀ वैदिक प्रार्थना ❀

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए., उपाध्यक्ष विश्ववेद-परिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ]

रोहित आदित्य सूक्त

(अथर्ववेद १३.३.१-२६)

अथर्व वेद के तेरहवें कांड के तीसरे सूक्त में २६ मन्त्र हैं जिनका द्रष्टा ऋषि ब्रह्मा है। रोहित आदित्य देवता [वर्ण्य विषय] है। रोहित शब्द के यौगिक अर्थ प्रकाशमान, उत्पादक, प्रदीप्त हैं। इसशब्दके आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा, आधिदैविक दृष्टि से सूर्य, आधिभौतिक दृष्टि से विद्वान् और राजा अर्थ हैं। इस सूक्त के १ से लेकर २५वें मन्त्र तक प्रत्येक मन्त्र के उत्तरार्द्ध में निम्नलिखित मन्त्रभाग आया है, जिसके जानने से २५ मन्त्र भागों का ज्ञान प्राप्त होता है ——

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो,
य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि,
ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥

अर्थ-जो इस प्रकार विद्वान् ब्रह्मज्ञानी को सताता है, कष्ट पहुंचाता है, उसके प्रति परमात्मा क्रुद्ध होता है (अपना मन्यु स्वरूप प्रकट करता है)। विद्वान् की हिंसा करना उस परमात्मा के प्रति अपराध है। हे रोहित(परमात्मन् तथा राजा)आप ऐसे ब्रह्मघाती दुष्ट को कंपा दें, नाश कर दें और बन्धनों में बाँध दें। सूर्य भी ऐसे दुष्ट के दिल को दहला दे आर उसे दुख के पाशों में जकड़े दे।

तेरी सुमति हमें मिले

एक मन्त्र से ६ मन्त्रों का ज्ञान

इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः
शश्वत्तमं हवमानाय साध!
स्यान्नः सूनुस् तनयो विजावा,
अग्ने सा ते सुमतिर्भूतु अस्मे॥

[ऋ० ३.१.२३; ५.११; .११; ७.११; १५.७; २२.५; २३.५; साम ७६; यजु० १२.५१]

ऋषि—विश्वामित्र; देवता [विषय]— अग्नि; छन्द—त्रिष्टुप्; स्वर— धैवत।

हे परमात्मन्, आप दान आदान करनेवाले के लिए विद्या प्राप्त कराने वाली, इन्द्रियों की पोषिका, शुभ-कर्म-युक्त, प्रशंसनीय, वेद-वाणी और अन्नसम्पत्ति प्राप्त कराइये। हमारे पुत्र-पौत्र विज्ञान-युक्त हों। आप की वह सुमति हमारे लिए सुखकारी हो।

सूर्य, विद्युत्, यज्ञाग्नि, पाकाग्नि, शरीराग्नि [टेम्परेचर], जठराग्नि, अग्रणी नेता, शासक, राजा विद्वान् अध्यापक, उपदेशक आदि भी अग्नि हैं। उन के उचित सेवन तथा प्रयोग से हममें सुमति प्राप्त हो।

समाचार

—आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बईका ३७वाँ वार्षिक उत्सव २१ से २६ जनवरी तक मनाया गया जिसमें वेद सम्मेलन, यजुर्वेद-पारायण यज्ञ आदि सम्पन्न हुए।

—आर्यसमाज सिलीगुड़ी का वार्षिकोत्सव १८ से २१ फरवरी तक मनाया गया।

—लखनऊमें आर्यसमाज चोक लाजपतनगर और केसरबाग का वार्षिकोत्सव २६ से २८ फरवरी तक मनाया गया।

सन्तोषी माता कौन है ?

वैदिक प्रचार समिति भिवानी के संयोजक श्री पुष्कर लाल आर्य ने 'संतोषी माता एक पाखण्ड' शीर्षक से एक परिपत्र प्रकाशित कर आर्य(हिन्दू)जनताको सूचना दी—

आजकल संतोषी माता के नाम पर प्रचार भारत में बहुत जोर पर है। वास्तवमें संतोषी(संतोखा)एक मुस्लिम महिला है, जिसका जन्म सऊदी अरब के जिला पुनखा में कमलूदीन पठान के घर १९५७ में हुआ। इसके पिता जब बम्बई आये तो फिल्म डाइरेक्टरको विपुलराशि देकर इस लड़की(संतोषी) के नाम से फिल्म तैयार कराई। मुसलमान लोग शुक्रवार रोजेवाले दिन गुड़ और चने बाँटते हैं इस व्रत में भी गुड़-चने बाँटे जाते हैं। संतोषी को

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका दूसरा अध्याय

सोमयागों में ज्योतिष्टोम याग के अग्निष्टोम याग में प्रारम्भिक और अन्तिम इष्टियाँ

प्रायणीय-उदयनीय इष्टियाँ

खण्ड १

यजमान प्रायणीय इष्टि से स्वर्ग [सुख]को प्राप्त होता है, इसीलिए यह प्र-अयन-ईय = प्रायणीय है।

प्राण ही प्रायणीय और उदान ही उदयनीय है। दोनों में होता एक समान होता है। प्राणों के सामर्थ्य और विशेष ज्ञान के लिए प्राण-उदान बराबर हैं।

जब यज्ञ देवताओं के पास से चला गया तब वे न कुछ कर सके, न कुछ जान सके। वे अदिति [पृथ्वी द्यौ] से बोले- 'तेरे द्वारा हम यज्ञ को जानें'। उसने कहा 'अच्छा' स्वीकार है, किन्तु मैं तुमसे वर माँगती हूं। देवों ने कहा — 'माँगो'। उसने यह वर माँगा-- 'यज्ञ मेरे नाम से आरम्भ हो और मेरे नाम से समाप्त हो'। देवांने कहा—अच्छा, ऐसा ही हो। इसीलिए प्रायणीय-उदयनीय दोनों में चरु (भात) अदिति से सम्बन्धित होता है, क्योंकि वह इसके वर द्वारा प्रार्थित है।

यह भी वर अदितिने स्वीकार कराया कि मेरे ही द्वारा पूर्व दिशाको जानो। फिर अग्निके द्वारा दक्षिण को, सोम से पश्चिम को और सविता से उत्तर दिशा को जानोगे।

विधि १—१५ सामिधेनी ऋचाओं से आहुतियाँ (पृष्ठ ५ पर दीहुई १७ में से २ धाय्याओंको छोड़कर)

विधि २— पूर्व में चरु से पथ्या का यज्ञ

होता पथ्या सम्बन्धी अनुवाक्या-याज्या २ मन्त्र लोता है। सूर्य पथ्या (क्रान्ति-वृत्त) का अनुसरण करता है, उससे यज्ञ (सङ्गति) करता है, अतः वह पूर्व में बदय ओर पश्चिम में अस्त होता प्रतीत होता है।

विधि ३—दक्षिण में घी से अग्नि के लिए यज्ञ

होता २ अनुवाक्या-याज्या ऋचाओं से अग्नि के लिए यज्ञ करता है। ओषधियाँ (अन्न आदि) दक्षिण दिशा से पकती हुई आती हैं, क्योंकि वे आग्नेयी हैं।

विधि ४—पश्चिम में घी से सोम का याग

होता सोम का याग करता है। क्योंकि जल सोम से सम्बन्धित है अतः बहुत सी जलधाराएँ पच्छिम से भी बहा करती हैं।

विधि ५—उत्तर में सविता के लिए घी से याग

होता सविता की २ अनुवाक्या-याज्या ऋचाएँ बोलता है। उत्तर-पश्चिम से हवा अत्यधिक चलती है क्योंकि इसका प्रेरक देव सविता उ र में है।

विधि ६ -- मध्य में चरु स अदिति का याग

होता उत्तम अदिति [द्यौ]के लिए यज्ञ करता है। जो उत्तम अदिति के लिए यज्ञ किया जाता अतः व इस पृथिवी को वर्षा से सींचता है और भूमि के रस को ऊपर खींचकर ग्रहण करता है।

क्योंकि ५ देवताओं [पथ्या] अग्नि, सोम सविता, अदिति] का यज्ञ किया जाता है अतः यज्ञ को पांक्त कहते हैं। इससे सब दिशाएँ और यज्ञ भी समर्थ होते हैं। (मन्त्र पृष्ठ १२ पर दिए हैं।)

जहाँ ऐसा विद्वान् होता रहता है वहाँ उस यज्ञसे जनता के लिए सामर्थ्य प्राप्त होती है।

खण्ड २

विधि ७—५ प्रयाज आहुतियाँ(काम्य प्रयाजहोम)

होत-- आ श्रावय। अग्नीध्र--- अस्तु श्रौषट्। अध्वर्यु — यज। होता--ये यजामहे—... वौ३षट्

यह क्रिया प्रत्येक याग में की जाती है।

५ प्रयाज आहुतियां

एकत्र ही या ५ स्थानों में ५ प्रयाज आहुतियाँ

१. ओ३म् समिधो अग्ने आज्यस्य व्यन्तु३ वौ३षट् (पूर्व)
२. तनूनपादग्ने आज्यस्य वेतु३ वौ३षट् (दक्षिण
३. इडो अग्ने आज्यस्य व्यन्तु३ वौषट् (पश्चिम)
४. बर्हिरग्ने आज्यस्य वेतु३ वौ३षट् । (उत्तर)
५ स्वाहा अग्निम् स्वाहा सोमम् स्वाहा अग्निम्
स्वाहा अग्निषोमौ स्वाहा अग्निषोमौ स्वाहा देवाः
आज्यपाः जुषाणाः अग्ने आज्यस्य व्यन्तु३ वौ३षट् ।

(इससे मध्य में आहुति दें। आपस्तम्ब, शतपथ १ ५.५.१२)

जो तेज और ब्रह्मवर्चस् चाहे वह पूर्व में प्रयाज आहुतियाँ दे। पूर्वदिशा तेज और ब्रह्मवर्कस् की है। जो ऐसा जानता हुआ पूर्व को जाता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चसी होता है।

जो अन्न और अन्नाद्य (पाचन-शक्ति) चाहे वह दक्षिण में जाकर प्रयाज आहुतियाँ हैं अग्नि अन्नाद और अन्न-पति है। जो ऐसा समझ कर दक्षिण को जाता है वह अन्नाद-अन्नपति हो जाता है और सन्तान द्वारा अन्नाद्य को प्राप्त होता है।

पशुओं की इच्छावाला प्रयाज आहुतियों के साथ पश्चिम को जाये। आपः (जल) ही पशु हैं। [पान और इससे उत्पन्न घास आदि से पशु बढ़ते हैं]

जो ऐसा जानकर पश्चिम में जाकर यज्ञ करता है वह पशु-युक्त होता है।

जो सोम का पान करना चाहे वह उत्तरमें जाकर प्रयाजों से यज्ञ करे। उत्तर दिशा ही सोम है। जो ऐसासमझ कर उत्तर की ओर जाता है वह सोम को प्राप्त करता है।

ऊपर की दिशा स्वर्ग (सुख) की है। मध्य में प्रयाज होम करनेवाला सब दिशाओं में समृद्ध होता है। ये (भूः, भुवः, स्वः)लोक उचित भोग देनेवाले हैं। ऐसा समझने वाले के लिए ये लोक लक्ष्मी को प्रकाशित करते हैं।

पथ्या आदि पूर्वोक्त ५ देवताओं की प्रशंसा

जो १. पथ्या- का यज्ञ (विधि २) करता है वह यज्ञ के आरम्भ में वाणी को सम्पन्न करता है। २-३. अग्नि-सोम प्राण-अपान हैं। ४. सविता प्रेरणा के लिए और ५. अदिति प्रतिष्ठा के लिए है।

जब १.पथ्या के लिए ही यज्ञ किया जाता है तब यज्ञ को वाणी से ही उचित मार्गपर डाल दिया जाता है। २-३. अग्नि-सोम दो आँखें हैं। ४. सविता प्रेरणा के लिए और ५. अदिति प्रतिष्ठा के लिए है।

देव आँख से ही यज्ञ को समझा करते हैं। जो अज्ञेय है वह आँख से ज्ञेय होता है। इसीलिए मूढ़ मनुष्य घूम-फिर कर विशेष कर्म-प्रयत्न से आँख द्वारा जब समझ लेता है तभी जान पाता है।

जब देवों ने यज्ञ को जाना तो इसी अदिति में जाना, इसी में तय्यारी की। इसी के लिए यज्ञ का विस्तार होता और यज्ञ किया जाता है। यज्ञ-सामग्री का संग्रह जिस के लिए होता है यह यही अदिति है। अतः उत्तम अदिति के लिए जो यज्ञ होता है वह यज्ञ के वज्ञान और स्वर्ग-प्राप्ति के लिए, होता है ॥२॥

खण्ड ३

विधि३में(उक्त ५ देवों की पुरोऽनुवाक्या तथा याज्या)

देवों की वैश्य प्रजा की कल्पना कर ली जाने पर मनुष्य वैश्य-प्रजा की कल्पना की जाती है। इस प्रकार सब प्रजाएँ मिलती हैं और यज्ञ भी सम्पन्न होता है। जहाँ ऐसा विद्वान् होता उपस्थित रहता है वहाँ यज्ञ जनता के लिए समर्थ होता है।

१. पथ्या देवता की पुरोऽनुवाक्या ऋचा—

८१. स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु
स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु
स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥
[ऋग्वेद १०. ६३. १५]

अर्थ—हे मरुतो [गतिशील वायु, प्राणो, सैनिको।। मनुष्यो], हमारे मार्ग में आनेवाले जल-रहित देशों में कल्याण हो। पानी[समुद्र, नदी आदि] में, शस्त्रयुक्त संग्राम में यौर अन्तरिक्ष-द्युलोक में कल्याण हो। पुत्र-उत्पादिका स्त्रियों और पुत्र-कर्म-युक्त घरों में कल्याण हो। तुम हमें ऐश्वर्य के लिए कल्याण धारण कराओ ॥

मरुत् देवों की वैश्य प्रजा हैं। उन्हीं को यज्ञारम्भ में इस मन्त्र से होता प्रेरित करता है।

[विद्वान्] कहते हैं कि सब छन्दों से यज्ञ करे। जैसे देवों ने स्वर्ग को जीता उसी प्रकार

यजमान सब छन्दों से यज्ञ करके सुख पाता है।

पथ्या आदि की ऋचाएँ

उक्त ऋचा और अगली पथ्या की याज्या ऋचा त्रिष्टुप् (११-११ अक्षरों के ४ पाद = ४४ अक्षरों के) छन्द में है—

८२. स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा
रेक्णस्वती अभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे निपातु
सुआवेशा भवतु देवगोपा ।।(ऋ १०.६३.१६)

अर्थ— जो श्रेष्ठ पथ में ही कल्याण-कारिणी है ऐसी श्रेष्ठ धनवाली पृथिवी सेवा करने वाले को प्राप्त होती है वह घर में और अरमणीय वन में हमारी रक्षा करे और हमें अच्छा निवास देकर देव (विद्वानों और प्राकृतिक शक्तियों) के द्वारा सुरक्षित हो।

२. अग्नि की पुरोऽनुवाक्या ऋचा, त्रिष्टुप् छन्द—

८३-८४. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वायुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मद् जुहुराणम् एनो,
भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम ।।
[ऋ० १.१८९.१; यजु० ४०.१६]

अर्थ— हे प्रकाशस्वरूप अग्नि (ईश्वर, विद्वान्), तू हमें ऐश्वर्य के लिए अच्छे मार्ग से आगे बढ़ा। हे सुखदाता, तू हमारे सब कर्मों को जानता है। हमसे कुटिलता-युक्त पाप छुड़ा। हम तेरी बहुत नम्रतायुक्त प्रशंसा करते हैं।

अग्नि की याज्या ऋचा त्रिष्टुप् छन्द में—

८५-८६. आ देवानामपि पन्थाम् अगन्म.
यच्छक्नवाम तदनु प्र वोळ्हुम्।
अग्निर्विद्वान् स यजात् सेदु होता,
सो अध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति ।।
[ऋ० १०.२.३, अथर्व १९.५९.३]

अर्थ— हम विद्वानों के मार्ग को प्राप्त हों और जितना हो सके उसके अनुकूल चलें। विद्वान् ईश्वर सृष्टि-यज्ञ करता और पुरोहित देवयज्ञ करता-कराता है तथा वही होता[दान-आदान-कर्ता] है यह यज्ञों और ऋतुओं को समर्थ बनाता है।

८७-८८ त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा,
त्वं रजिष्ठम् अनुनेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो,
देवेषु रत्नम् अभजन्त धीराः ।।
[ऋ० १.९१.१; यजु० १९.५२

अर्थ— हे सोम [ईश्वर, विद्वान्, सोमरस, चन्द्र] तू बुद्धि-द्वारा चेतना देनेवाला है। तू सुखदायक, और सीधे पथ पर चलानेवाला है। हे आनन्द-दायक, तेरी उत्तम नीति के साथ वर्तमान पितर, धीर योगी जन विद्वानों में उत्तम धन (ज्ञान) को प्रदान करते हैं।

सोम की याज्या ऋचा (त्रिष्टुप् छन्द में)—

८९. या ते धामानि दिवि या पृथिव्याम्,
या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्
राजन् सोम प्रति हव्या गृभाय ।। [ऋ० १.९१.४]

अर्थ— हे राजा सोम (सौम्य शासक, विद्वान्, सोम ओषधि), जो तेरे स्थान द्यौ, पृथिवी, पर्वतों, ओषधियों तथा जल में हैं उन सबसे हमें कष्ट न देता हुआ और प्रसन्न करता हुआ तू हमें ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करना।

४. सविता की अनुवाक्या (गायत्री छन्द)

९०. आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे।
सत्यसवं सवितारम् ।। [ऋ० ५.८२.७]

अर्थ— विश्व-प्रकाशक, सच्चे रक्षक स्वामी, सत्य-सामर्थ्य वाले सविता [परमेश्वर, विद्वान् तथा सूर्य] को हम वेदोक्त वचनों से वरण (स्वीकार) करते हैं।

सविता की याज्या ऋचा—

९१ य इमा विश्वा जातानि आश्रावयति श्लोकेन।
प्र च सुवाति सविता ।। [ऋ० ५.८२.९]

अर्थ— जो इन सब उत्पन्न मनुष्यों को वेदवाणी से ज्ञान सुनाता है वह सविता (परमात्मा और विद्वान्) हमें अच्छी प्रेरणा देता है।

५. अदिति की पुरोऽनुवाक्या [जगती छन्द]—

९२-९४. सुत्रामाणम् पृथिवीं द्यामनेहसम्,
सुशर्माणम् अदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं सुअरित्राम् अनागसम्,
अस्रवन्तीम् आ रुहेमा स्वस्तये ।।
[ऋ० १०.६३.१०; यजु० २१.६, अथ० ७.६.३]

३. सोम की अनुवाक्या [त्रिष्टुप् छन्द में]

अर्थ— हम सुख और कल्याण के लिए उत्तम रक्षक, विस्तृत, प्राप्ति-योग्य, प्रकाशमान, पाप-रहित अखण्डित, उत्तम सुख-युक्त, उत्तम-नीति-गति-युक्त, अच्छे साधनों वाली, शत्रुओं से बचानेवाली, दोषों रहित, दिव्य नाव [पृथिवी, शरीर, वेदवाणी, यज्ञ जल-नौका, विमान] पर चढ़ें--इसका प्रयोग करें

अदिति के लिए याज्या ऋचा(जगती छन्द में)--

९५- महीमू षु मातरं सुव्रतानाम्
ऋतस्य पत्नीमवसे हुवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीम्
सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥ (अ० ७.६.२)

अर्थ-- हम पूज्या माता, सुकर्मियों के सत्यधर्म की रक्षिका, बहुत बलवाली, सदा नवीन, सुविस्तृत, उत्तम घर और सुख को देनेवाली; सुन्दर नीतिवाली, अखण्डित पृथिवी को रक्षा के लिए स्वीकार करते हैं।

यही ३ मुख्य छन्द हैं-- १. गायत्री, २. त्रिष्टुप और ३, जगती । क्योंकि यज्ञ में ये ही अत्यधिकता से प्रयुक्त होते हैं । जो ऐसा जानता है वह इन्हीं छन्दों से यज्ञ करता हुआ सभी छन्दों का लाभ प्राप्त करता है ।

खण्ड ४

ये हवि की उक्त १० अनुवाक्या-याज्या ऋचाएँ प्र, नय, पथ, स्वस्ति -- इनमें से किसी एक शब्द से युक्त हैं । इनसे ही यज्ञ करके देवों ने स्वर्ग को जीता। वैसे ही यज्ञ-कर्ता इनसे यज्ञ करके स्वर्ग जीतता है।

इनमें एक पद है-- 'स्वस्ति राये मरुतो दधातन'। मरुत् देवों की प्रजा हैं और अन्तरिक्ष में रहते हैं। उनसे निवेदन करनेवाला जब स्वर्गपहुंचे तो वे उसे रोक या मथ सकते हैं। यह मन्त्र पढ़कर मरुतों से निवेदन किया जाता है तब वे इसको न रोकते न मथते हैं।

जो ऐसा जानता है, स्वर्ग जाते हुए उसको मरुत् अत्यधिक सुख-कल्याण प्राप्त कराते हैं।

विधि ८— स्विष्टकृत् संयाज

जो ३३ अक्षरोंके हों ऐसे २ विराट् छन्द [११-११ अक्षरों के ३ पादों के विराड् गायत्री छन्द] इस हवि के स्विष्टकृत संयाज्य मन्त्र होते हैं—

९६. स इदग्निः अग्नीन् अत्यस्तु अन्यान् ,
यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ,
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ (ऋ० ७.१.१४)

अर्थ— जहाँ वेग युक्त, विस्तृत, बलयुक्त मनुष्य अन्य अग्नियों (शरीर-पाचकाग्नि, तथा शासकों) से बढ़कर होता है वहाँ वही अग्रणी होकर हजारों अन्न-युक्त जल और प्रशंसा को पाया करता है ।

९७. सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति,
समेद्धारम् अंहसः उरुष्यात् ।
सुजातासः परिचरन्ति वीराः ॥(ऋ. ७.१.१५)

अर्थ—वही महान् अग्नि है जो भक्तोंकी सहायता और सन्तप्त की कष्ट से रक्षा करे, जिसको सुप्रसिद्ध वीर सब ओर जानते और सेवा किया करते हैं।

विद्वानों ने २ विराट् छन्दों से यज्ञ करके स्वर्ग जीता वैसे ही यजमान २ विराट् छन्दों से यज्ञ कर के स्वर्ग-लोक [सुख और इसके साधनों]को पालेता है

विराट् छन्द ३३ अक्षर का होता है— ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति और १ इन्द्र ।

इस प्रकार विराट् छन्द के ३३ अक्षरों से होता ३३ देवों को, पहले यज्ञ के आरम्भ (आग्रयणीम इष्टि) में ही, अक्षरों का भागी बना लेता है, १-१ अक्षर से १-१ देवताको सन्तुष्ट कर देता है, मानों देवोंके पात्र [फल, फल-भरी तश्तरी] से उसी समय देवताओं को तृप्त करता है ।

खण्ड ५

विधि ९ ३ अनुयाज मन्त्र

अनुयाज आहुतियों के ३ मन्त्र

९८(१)- ओ३न् देवम् बर्हिः वसुवने वसुधेयस्य वेतु३ वौ३षट् । इदं देवाय बर्हिषे, इदं न मम ॥

९९(२)-देवो नराशंसो वसुवने वसुधेयस्य वे३तु वौ३षट् । इदम् देवाय नराशंसाय, इदं न मम ॥

१००(३)- देवो अग्निः स्विष्टकृत् सुद्रविणो मन्द्रः कविः । सत्यमन्माऽऽयजी होताहोतुः होतुरायजीयानग्ने यान्देवान् अयाड् यानपि प्रैये ते होत्रे अमत्सत तां ससनुषीं देवज्ज्यां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेमं स्विष्टकृच्चाग्ने होता भूर्वसुवने वसुधेयस्य नमो वाके वीहि३ वौ३षट् ॥ इदम् देवायाग्नये स्विष्टकृते इदम न मम ॥

कुछ यज्ञकर्ता कहते हैं कि प्रायणीय इष्टि को अनुयाजों से रहित, केवल प्रयाज-युक्त करनी चाहिए क्योंकि अनुयाजों से हीनता और विलम्ब हो जाता है [प्रायणीय इष्टि में प्रयाज ही बोले, अनुयाज नहीं और अन्तिम उदयनीय इष्टि में अनुयाज ही बोले।

किन्तु इस मत का आदर नहीं करना चाहिए। प्रयाजों के समान अनुयाज मन्त्र भी पढ़ने चाहिए, क्योंकि प्रयाज प्राण और अनुयाज प्रजा हैं। अगर प्रयाजों को छोड़ दे तो यजमान के प्राणों का विच्छेद यदि अनुयाजों को छोड़ दे तो यजमान की सन्तान का विच्छेद होगा। अतः दोनों को पढ़ना चाहिए।

पत्नी-संयाज्यों और संस्थित यजुओं को न पढ़े और न उनसे आहुति दे[पत्नीसंयाज उदयनीयमें करे]

[टिप्पणी-- कुहू-अनुमति (अमावास्या) और राका-सिनीवाली (पूर्णिमा)-- ये दो देव-पत्नयाँ हैं, उनकेलिए मन्त्रपढ़कर आहुति देना पत्नी-संयाज्य है। यजुर्वेद २.२१ से आहुति देना संस्थितयजु है। उतने से ही यज्ञ असमाप्त (वर्तमान) रहेगा--

१. प्रायणीय के निष्कास [सँभाल कर रखे पात्र में लगे हविःशेष] को उदयनीय की हवि के हाथ, यज्ञ के अविच्छेद के लिए, मिला दे।

२. जिसी स्थाली में पहली इष्टि का चरु आदि बनाये उसीमें दूसरीका बनाये। इससे ही यज्ञ लगातार चलता रहता है, बीच में छिन्न नहीं होता।

३. कुछ ब्रह्मवादी कहते हैं कि जो 'प्रायणीय की हवि को विचारते, तय्यार करते, आहुति देते हैं, इस लोक से चले ही जाते हैं और दूसरे लोकमें समृद्ध होते हैं, इस लोक में नहीं'-- वे यह बात अज्ञान से ही कहते हैं। होता याज्या-अनुवाक्या में परस्पर परिवर्तन कर दे-- प्रायणीय की पुरोऽनुवाक्याओं को उदयनीय की याज्या बनाकर उनसे आहुति दे और प्रायणीयकी याज्याओं को उदयनीय की पुरोनुवाक्या बनादे। होता इस परवर्तन को दोनों लोकों में समृद्धि और प्रतिष्ठा के लिए करता है। जो ऐसा जानता है वह दोनों लोकों में समृद्ध और प्रतिष्ठित होता है।

❀ अदिति के चरु की प्रशंसा ❀

प्रायणीय और उदयनीय में दिया जानेवाला अदिति का चरु उस यज्ञ के धारण, यज्ञके सिरों के जैसे कि रस्सी के दोनों सिरों को बाँध देने से रस्सी गाँठ से बँधी रहती है और हाथ से नहीं छूटती, ऐसेही यह है। प्रायणीय और उदयनीय में अदिति के चरु दोनों यज्ञों के दोनों सिरों को न छूटने देने के लिए, गाँठ लगाकर बाँध देते हैं।

पथ्या, स्वस्ति देवता से प्रायणीय इष्टि में (स्वस्ति नः पथ्यसु धन्वसु० मन्वसे) आरम्भ करते हैं और इसी से (अन्तिम उदयनीष इष्टिमें) समाप्त करते हैं। इस प्रकार यज्ञको स्वस्तिसे आरम्भकर स्वस्तिसे समाप्त करते हैं।५।।

विधि १० त्रिवृत् स्तोम

त्रिवृत् स्तोम की उद्यती नामक विष्टुति (विशेष स्तुति)

पहला तृच

१०१-१०४.(१)उपास्मै गायता नरः,
पवमानाय इन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते।।
(ऋ०९.१.१.साम०६५१,७६३,यजु०३३.६२)

१०५-१०६(२)अभि ते मधुना पयो,
अथर्वाणो अशिश्रयुः। देवं देवाय देवयु।।
(ऋ०९.९.२ साम ६५२)

१०७-१०८(३)स नः पवस्व शं गवे,
शं जनाय शमर्वते। शं राजन् ओषधीभ्यः।।
(ऋ० ९.९.३,साम ६५३)

दूसरा तृच

१०९-१४(४) दविद्युतत्या रुचा, परिष्टोभन्त्या कृपा।
सोमाः शुक्राः गवाशिरः।।।।
हिन्वानो हेतृभिर्यत, आ वाजं वाज्यक्रमीत्।
सीदन्तो वनुषो यथा।।
ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः।
पवस्व सूर्यो दृशे।।
(ऋग्वेद ९.६४.२८-३०; साम ६५४-६५६)

तीसरा तृच

११५-१२०(७) पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः।।
(८) अच्छा कोशं मधुश्चुतं असृग्रं वारे अव्यये।
अवावशन्त धीतयः।।
(९) अच्छा समुद्रमिन्दवो, अस्तं गावो न धेनवः।
अग्मन् ऋतस्य योनिमा।।
[illegible] साम ६५७-६५९]

६ मन्त्रों के अर्थ

❀ त्रिवृत् स्तोम के ६ मन्त्रों के अर्थ ❀

देवता—सोम, छन्द—गायत्री, स्वर—षड्ज ऋषि—पहली तृच का असित कश्यप देवल, दूसरी का कश्यप मारीच, तीसरी का वैखानस आङ्गिरस।

सोमका अर्थ (आध्यात्मिक) परमात्मा,(आधिभौतिक) सौम्य शासक, विद्वान् और (आधिदैविक) चन्द्रमा तथा सोम औषध [गिलोय; ब्राह्मी आदि] हैं। यहाँ पर केवल परमात्मा और सोम औषध परक अर्थ दिये जाते हैं—

१. हे मनुष्यो, इस पवित्र करनेवाले, विद्वानों के ज्ञान-दान-यज्ञ करानेवाले सोम के लिए गुण गाओ।

२. स्थिर अहिंसक जन दिव्यता के लिए दिव्य रस को मधु [आनन्द-रस को ज्ञान और सोम दूध को शहद या मीठे] के साथ सेवन किया करते हैं।

३. हे राजा सोम, तू हमारी गौ [इन्द्रिय, भूमि, गाय], मानव प्रजा और अश्व [प्राण, घोड़े आदि] तथा ओषधियों [अन्न आदि] के लिए कल्याण और सुख की वर्षा कर।

४. जितेन्द्रिय, शुद्ध, सौम्य जन और सफेद, गौ-दुग्ध-मिले सोमरस प्रकाशमान कान्ति तथा सर्वत्र प्रशंसित सामर्थ्य से चमका करते हैं।

५. प्रेरकों से प्रेरित बलवान् (परमात्मा और सोम) तेज गतिवाले वीरों के समान, सर्व शक्ति से कार्य किया करता है।

६. हे कवि, सोम(ईश्वर तथा उपासक) दूर-दूर तक कल्याण के लिए अपने ज्ञान के बल पर जाते हुए आप, सूर्य के समान, सबको सत्य के दर्शन के लिए साक्षात् प्राप्त होइये।

७. हे कवि तथा ज्ञानवान् (परमेश्वर तथा उपासक) योग मार्ग पर चलने वाले तेरे वे ज्ञान को प्राप्त कराने वाले प्रयत्न उसी प्रकार स्वयं सफल होते हैं जिस प्रकार दौड़ते हुए घोड़े लक्ष्य तक पहुंचते हैं।

८. ध्यान करने वाले उपासक लोग समाप्त न होने वाले तमोगुणी परदे पर मधुर ब्रह्मरस टपकाने वाले आनन्दमय कोश को अच्छे प्रकार से प्रकट किया करते हैं और उसीकी अभिलाषा करते हैं।

९. जिस प्रकार दूध देने वाली गौएँ घरकी ओर लौटती हैं उसी प्रकार ऐश्वर्ययुक्त उपासक जन सत्य-ज्ञान के आधार आनन्द सागर परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं।

त्रिवृत्स्तोत्र की पाठशैली

पहले पर्याय में तीनों सूक्तोंकी पहली ऋचा, दूसरे पर्याय में बीच की दूसरी ऋचा और तीसरे पर्याय में अन्तिम तीसरी ऋचा ३-३ वार पढ़ी जाती है।

यद्यपि स्तोम का सामान्य अर्थ 'स्तुति' है किन्तु विष्टुति विशेष स्तुति-गान है। साम वेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण के दूसरे और तीसरे अध्यायमें इसके भेद वर्णन किये हैं। १. त्रिवृत्, २. पञ्चदश, ३. सप्तदश ४. एकविंश, ५ त्रिणव और ३. त्रयस्त्रिंश — ये ६ स्तोत्र होते हैं। उनमें बहिष्पवमान के साधन त्रिवृत् स्तोत्र की ३ विष्टुतियाँ हैं — उद्यती, परिवर्त्तिनी और कुलायिनी। १. उद्यती—पहला उद्गाता तृच की पहली ऋचा को दूसरा दूसरी को तीसरा तीसरी को ३-३ बार पढ़ता है। २. परिवर्त्तिनी—पहला उद्गाता तीनों ऋचाओं को, फिर दूसरा तीनों को, फिर तीसरा तीनों को पढ़े। ३. कुलायिनी- - पहला उद्गाता तृच की तीनों ऋचाओं को १-२-३ के क्रम से पढ़े, दूसरा २-३-१ के क्रम से और तीसरा ३-१-२ के क्रम से ३-३ ऋचाओं को पढ़े।

❀ विधि ११— शंयुवाक् ❀

अध्वर्यु अग्नीध्र से — ओ३ श्रा३वय।

अग्नीध्र — अस्तु श्रौ३षट्।

अध्वर्यु होता से-- स्वगा दैव्या होतृभ्यः स्वस्तिः मानुषेभ्यः शंयोः ब्रूहि।

होता— तच्छंयोरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः। ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥

[शतपथ १.९.२.२६-२७]

--❀--

उदयनीय इष्टि

उदयनीय सोमयाग की अन्तिम इष्टि है। इसमें सभी विधियाँ प्रायणीय इष्टि के समान होती हैं। केवल विधि १० में त्रिवृत् के स्थान पर एकविंश स्तोम पढ़ा जाता है और अन्त में पत्नी-संयाज किया जाता है।

पत्नी-संयाज

❀ विधि ११— पत्नी-संयाज के ६ मन्त्र ❀

यह कर्म उपांशु (चुपचाप) किया जाता है। क्रमशः सोम, त्वष्टा और देव-पत्नियों के लिए ३ आहुतियाँ दी जाती हैं। यह पत्नी-संयाज दीक्षणीय इष्टि के भी अन्तमें किया जाता है।

होता दर्भ-मुष्टि को, अध्वर्यु जुहू-स्रुव को, अग्नीत् सबसे आगे आज्य-स्थाली को लेकर पश्चिमाभिमुख होकर गार्हपत्य कुण्ड के पास जायें। अध्वर्यु गार्हपत्य से दक्षिण में पत्नीके आगे ईशानाभिमुख बैठे। होता गार्हपत्य के पश्चिम में और अग्नीत् उसके उत्तर में दक्षिणाभिमुख।

अध्वर्यु होता से — सोमाय अनुब्रूहि।

होता (पुरोऽनुवाक्या)—

१२१-१२३. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य संगथे ओ३म् ॥ १ ॥

[ऋ० १.९१.१६; ९.३१.४; यजु० १२.११२]

अर्थ— हे सोम (परमेश्वर, विद्वान्, वैद्य, राजन्, चन्द्र, सोम औषध), तेरा सब प्रकार से सुख-वर्षक बल हमें प्राप्त हो। तू पूर्ण उन्नत और समृद्ध रह तथा अन्न, बल, ज्ञान, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति में सहायक हो और जीवन-संग्राम में विजय करानेवाला हो।

अध्वर्यु आज्यस्थाली में से स्रुवा से जुहू में ४ बार आज्य लेकर अग्नीत् से 'आ श्रावय' कहें। अग्नीत् द्वारा अस्तु श्रौषट् कहनेपर होता 'सोमं यज' कहे। होता द्वारा निम्नलिखित याज्या पढ़े जानेपर अध्वर्यु आहुति दे—

१२४-१२५. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः,
सं वृष्ण्यानि अभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम,
दिवि श्रवांसि उत्तमानि धिष्व३ ॥वौ३षट् ॥

[ऋग्वेद १.९१.१८, यजुर्वेद १२.११३]

यजमान — इदं सोमाय इदं न मम।

अर्थ — हे सोम (योगी, राजन्, सोम औषध), तेरे लिए दूध-जल और अन्न-संग्राम-वेग-बल अच्छे प्रकार से प्राप्त हों। अभिमानी शत्रुओं की नाशक, सुख-वर्षक शक्तियाँ प्राप्त हों। अमृत के लिए सब ओरसे बढ़ताहुआ तू द्यौ (आकाश-मूर्धा) में उत्तम यश-वचन धारण कर।

१२६. त्वष्टा की पुरोऽनुवाक्या —

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ ओ३म् ॥

[ऋग्वेद १.१३.१०]

अर्थ— यहां सब में व्याप्त, सब में अग्रणी त्वष्टा (परमात्मा, यज्ञाग्नि और अभियन्ता इंजीनियर) का आह्वान करता हूं। वह हमारा केवल इष्ट साधन हो।

त्वष्टा की याज्या ऋचा—

होता— ये यजामहे त्वष्टारम्।

१२७-१२८. तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नुः,
देव त्वष्टर्विरराणः स्यस्व।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षः,
युक्तग्रावा जायते देवकामः३ ॥वौषट्।

[ऋ० ३.४.९; ७.२.९]

अर्थ—हे देव त्वष्टा [ईश्वर, विद्वान्, राजा, यान्त्रिक] आप शीघ्र बलकारी, पोषक अन्न-बल-वीर्य-विद्या-यश प्रदान करते हुए, हमें दुःख से छुड़ाइये जिससे हमारे पुत्र और प्रजा वीर, कर्मण्य, उत्तम दक्ष, शस्त्रास्त्रयुक्त; विद्वानों और दिव्य गुणों की कामना करनेवाली उत्पन्न हो।

देव-पत्नियों के लिए पुरोऽनुवाक्या—

१२९-१३०. ओ३म् देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः;
प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते
ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥ ओ३म्।

[ऋ० ५.४६.७; अ० ७.४९.२]

अर्थ— विद्वानों की पालना करती हुई स्त्रियाँ और राष्ट्र के अधिकारियों की पत्नियाँ तथा अग्नि आदि प्राकृतिक देव की शक्तियाँ इच्छापूर्वक हमारी रक्षा करो। वे विशेषतः शिशुओं की रक्षा और तथा संग्राम में विजय और अन्नके संरक्षण-वितरण में हमारी विशेष रक्षा करें।

जो पृथिवी -जल की शक्तियाँ हैं, तथा जो स्थल-जल-सेना में और जो प्रजा में कर्मों के सुधारने में नियुक्त हैं, वे सभी विदुषी स्त्रियाँ उत्तम प्रशंसित होकर हमें सुख-शान्ति प्रदान करें।

पूर्णिमा-अमावास्याएँ भी देवों को पालने वाली हैं। वे सूर्य-चन्द्र की शक्ति और यज्ञ द्वारा रक्षा करें।

देव-पत्नियों के लिए याज्या—

होता— ये यजामहे देवानां पत्नीः

१३१-१३२. उत ग्नाः व्यन्तु देवपत्नीः
इन्द्राणी अग्नायी अश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानीं शृणोतु,
व्यन्तु देवीर्यः ऋतुर्जनीनाम् ॥वौषट्॥
[ऋग्वेद ५.४६.८, अथर्व वेद ७.४९.२]

अर्थ— और ये देव-पत्नियाँ वाणी को प्रकाशित तथा हमारे हित की इच्छा करें। १. इन्द्राणी [विद्युत् शक्ति और स्त्री-सेनापति तथा सेनापति की पत्नी], २. अग्नायी [अग्नि की शक्ति और स्त्री-मन्त्री तथा मन्त्री-पत्नी], ३. राट् अश्विनी [प्रदीप्त प्राण-उदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन और स्त्री-इंजीनिअर तथा इंजीनिअर की पत्नी, ४. रोदसी [वायु-शक्ति और स्त्री-दण्डाधिकारी और दण्डाधिकारी की पत्नी], ५. वरुणानी [जल-शक्ति और स्त्री-न्यायाधीश तथा न्यायाधीश की पत्नी--ये सब जनता की बात को सुनें और अपने कार्य-काल में हमारा हित करें।

एकविंश स्तोम के मन्त्र

३ मन्त्रोंसे सभी प्रकार के स्तोम बनते हैं। एकविंश स्तोम बनानेके लिए ३ ऋचाओंको निम्न प्रकार बोले—

पहले पर्यायमें पहली ऋचा ३ वार, दूसरी ३ वार, तीसरी १ वार=७ वार; दूसरे में पहली ऋचा १ वार, दूसरी - तीसरी ३-३ वार=७ वार; तीसरे में पहली, तीसरी ३ वार, दूसरी १ वार=७ वार। सब मिलाकर ३ ऋचाएँ २१ वार पढ़नेसे एकविंश स्तोम हो जाता है।

सोमयाग के प्रातः सवन में दीक्षणीय इष्टि में त्रिवृत् स्तोम और सायंसवनमें एकविंश स्तोम पढ़ते हैं।

१३३-१३६. यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥
[ऋ० ६.४८,१; साम ३५, ७०३; य० २७.४२]

अर्थ— हे मनुष्यो, तुम्हारे प्रत्येक यज्ञमें तथा प्रत्येक वचनमें समर्थ और महान् अग्नि(परमेश्वर तथा यज्ञाग्नि) का गुण-वर्णन हो। हम सभी मृत्यु-रहित, सर्वज्ञ, मित्र के समान परमात्मा की प्रशंसा करते हैं।

१३७-१३९. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुः,
दाशेम हव्यदातये।
भुवद् वाजेषु अविता भुवद् वृध
उत त्राता तनूनाम् ॥
(ऋ० ६.४८.२ साम ७०४ यजु २७.४४)

अर्थ—जिसका बल कभी नष्ट नही होता ऐसे ईश्वर और यज्ञाग्नि को हम हव्यों के दान के लिए समर्पण करते हैं, क्योंकि वह हमारा हितकारी है, बुद्धि-बल के कार्यों में रक्षक है और हमारी वृद्धि के लिए शरीरों का पालन करनेवाला भी है।

१४०. वृषा हि अग्ने अजरो महान् विभासि अर्चिषा।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥
(ऋ०६.४८.३)

अर्थ— हे पवित्र अग्नि, क्योंकि तू बलवान्, अजर, महान् है और निरन्तर दीप्ति तथा प्रकाशसे पवित्र करता हुआ उत्तम दीप्तियों से सबको विशेषता से प्रकाशित करता है अतः हमको अच्छे प्रकार से प्रकाशित कर।

❀ एकविंश स्तोम के लिए दूसरी तृच ❀

१४१-१४८. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतम्,
सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति,
सोमः कलशे शतयामना पथा ॥

अर्थ— ऐश्वर्यशाली मित्र जीवात्मा मित्र परमात्मा के गन्तव्य परम पद की ओर बढ़ता है, उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करता। जैसे मनुष्य मिली हुई कामनाओं से युक्त होता है वैसे ही वह जीवात्मा सैकड़ों ज्ञान-पथों से कलश(१६ कला-युक्त परमेश्वर)में विचरण करता है।

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः॥

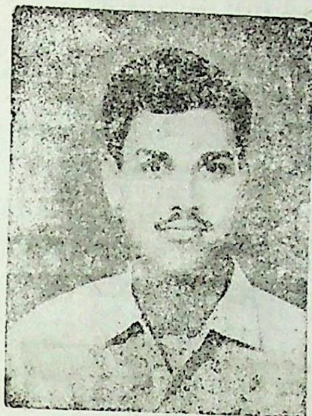
भावार्थ--आप स्तोता सोम-परमेश्वरकी स्तुति करें।

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्वपवमानोअस्रिधम्
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥

भावार्थ-- हे इन्दु सोम, तू हमें संयत इच्छा, अन्न-बल प्राप्त करा जो दिनमें तिगुना यश ज्ञान-सुख दे।

ऋ.९.८६.१६-१८; साम५५७, ११५२-५४, अ. १८.४.६० ❀

९000) का दान



दानदाता—श्री संजयकुमार संयुक्त मन्त्री वि. वे. प.

इंदौर में वेद गोष्ठी

दिनांक ६.३.८२ पूर्णिमा को वेद गोष्ठी आर्य-समाज दयानन्द में आयोजित की थी। विषय पुरुष-सूक्त था। पौर्णमास्येष्टि, वैश्वदेव पर्व चातुर्मास्येष्टि भी सम्पन्न हुई तथा पुरुषसूक्त से भी यज्ञ हुआ।

श्री प्रभाकर शर्मा एडवोकेट ने तथा श्री वीरसेन वेदश्रमी अध्यक्ष विश्व वेद परिषद ने इसी सूक्त पर प्रवचन किया। दि. १८-३ से २७-३ तक यहाँ सन्ध्या-योग साधना सत्र का आयोजन किया गया।

१८से२७ मार्च तक अष्टांगयोगप्रशिक्षण सत्र संपन्न हुआ

वेद मार्ग दिखाओ

कविराज श्री बनवारी लाल 'शादां' नई दिल्ली-५

उठो आर्यो न समय को गँवाओ।
दशा देश की बिगड़ी उसको बनाओ॥
वेदों के पथ पर चलना हैं जो भूले।
उन्हें वेद-पथ पर अब चलना सिखाओ॥
वेदोक्त धर्म-शैली ऋषि ने बताई।
कहने से क्या हो तुम चलकर दिखाओ॥
जाति-पाँति छुआ-छूत जड़ से मिटाकर।
प्रेम की गंगा अब घर-घर बहाओ।
वेद-मार्ग से जो जन विमुख हो रहे हैं।

पुस्तक दिव्य हमारा वेद

(श्री राधेश्याम आर्य एडवोकेट सुल्तानपुर (उ०प्र०)

वेद महान अपौरुषेय हैं, ईश्वरीय शुचि ज्ञान हैं।
मानवता की विमल विभूति, वे सत्प्रेरक विज्ञान हैं॥
देश-काल व इतिहासों की, सीमा से हैं बाहर।
वेद ज्ञान की गरिमा से, मानव उन्नति करता सत्वर॥
सभी सत्य विद्याओं का है; पुस्तक दिव्य हमारा वेद।
आदिकाल से पावन गंगा, धर्म की रहा बहाता वेद॥
दिव्य ज्ञान के पुंज वेद हैं, जिनसे होता जन-कल्याण।
सत्यशिवं-सुन्दरतापूरित, होता जन मानस निर्माण॥
गौरवमण्डित वेद हमारे, करते कण-कण का उत्थान।
सुख-समृद्धिभरा जीवन हो, कर आनन्दसुधा का पान॥
ज्योतिर्मयी ऋचाओं से यह, ज्योतित हो अब साराजग
गहनतिमिर से आच्छादित जो, पुनःप्रकाशित हो जगमग
मंगलमय हो जीवन-जन का, सदा सफलता मृदु सरसे।
जनजन में नवजीवन आये, वेदामृत अन्दर बरसे॥
वेद ऋचाएं गूंज उठें फिर, धरती के शुचि प्रांगण में।
सामगान की मृदुल लहरियां, लहरायें भू आँगन में॥

होली यज्ञ व वेदगोष्ठी

कानपुर में फाल्गुन पूर्णिमा ९-३-८२ को यज्ञ और वेदगोष्ठी श्री विज्ञानशंकर कोषाध्यक्ष वि.वे.प. के घर अरमापुर में सम्पन्न हुई। दिनांक १४-३-८२ रविवार को आर्य समाज अरमापुर में आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री का प्रवचन और वेद संगोष्ठी हुई।

वेद पारायण यज्ञ

लखनऊ में दिनांक ८.३.८२ को प्रातः ६ से सांय ६ बजे तक श्री वीरेन्द्र बहादुर सिंह मन्त्री उ०प्र० विश्व वेद परिषद के घर मेंहदी टोला अलीगंज में वि.वे.प. के तत्वावधान में सामवेद पारायण ब्रह्म महायज्ञ आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, श्री ओजोमित्र शास्त्री के आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ।

१७ से २२ मार्च तक आर्य समाज आदर्शनगर में ऋग्वेद पारायण यज्ञ हुआ। श्री कोहली परिवार ५५५ न्यू हैदराबाद लखनऊ में २३ से २८ मार्च तक

ध्वनि-अंकित कैसेट

हमने अपने स्वर-सहित वेद-पाठ एवं वेद-प्रवचनों के नीचे लिखे कैसेट तैयार किये हैं जिनका उपयोग सर्वत्र सुलभ ही सकेगा—

कैसेट सं० १— सन्ध्या, शुद्ध एवं सस्वर मन्त्र-पाठ-युक्त ईश्वरस्तुति-प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शांति करण के मन्त्र चारों वेदों की रीति से, तथा हवन मन्त्र और महावामदेव्य गान।

कैसेट सं० २(क)—प्रवचन गायत्री एवं यज्ञ विषय पर
२(ख)—मन्त्रपाठ, यजुर्वेद के अध्याय १६, ३१, ३२, ३६ एवं ४०।

कैसेट सं० ३—प्रवचन सन्ध्या का यौगिक एवं क्रियात्मक रहस्य।

कैसेट सं० ४—वेदकथा और शिवशङ्कर दयानन्द।

कैसेट सं० ५—वेदमन्त्रों का सुमधुर गायन वाद्यसहित।

कैसेट सं० ६—गायत्री एवं मृत्युञ्जय मन्त्रों के पद-क्रम-जटा-घनादि पाठ

कैसेट सं० ७ व ८ — आर्याभिविनय सम्पूर्ण मन्त्र एवं महर्षि के अर्थ सहित।

कैसेट सं० २ दो प्रकार के हैं, अतः सब कैसेट ९ होते हैं।

—पण्डित वीरसेन वेदश्रमी, वेद-विज्ञानाचार्य, वेदसदन, महारानी पथ, [इन्दौर मध्य प्रदेश]

—ॐ—

सदस्यों से प्रार्थना

आपका वर्ष पूर्ण हो गया है कृपया आगे के लिए २० रुपये शीघ्र भेजें, यदि न भेजें तो कृपया सूचित करें।

— ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व-वेद-परिषद्

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ [उ.प्र.]
मुद्रक— आदर्श प्रेस लखनऊ ६। दूरभाष ८४१०१

सा० सं०
प्रेवायाम् श्री

कृपया उत्तर अवश्य दें

प्रिय संरक्षक तथा सदस्यगण,
सादर नमस्ते

निवेदन है कि महगाई और आर्थिक सङ्कट के कारण आपकी वेदज्योतिका मूल्य आप सभी केलिए २०) किया गया है। कृपया स्वीकार करें व शीघ्र भेजें। वर्ष इस अङ्क से माना जायेगा। यदि किसी कारण स्वीकार न हो तो भी कृपया आप उत्तर अवश्य दें।

निवेदक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री,

वेदसंस्कृत की परीक्षाएँ

वेद-विश्व-विद्यालय की आगामी परीक्षाएँ श्रावणी के बाद ११ अगस्त १९८२ को होंगी। परीक्षार्थी अपना नाम, पिता का नाम, पता की सूचना के साथ परीक्षा-शुल्क ५) शीघ्र भेजें। नियमावली-पाठविधि पूर्ववत् है। केवल 'संस्कृत-विशारद' की नई परीक्षा में शिक्षा, अष्टाध्यायी १ अध्याय, मूलरामायण, विदुरनीति योग-दर्शन, चाणक्यसूत्र, नीति-वैराग्यशतक, मनुस्मृति हैं।

पौरोहित्य-विशारद में संस्कारविधि पाठ्यग्रन्थ है।

ओ३म्

वर्ष ६ अङ्क ५
शुक्र, ज्येष्ठ, २०३९ वि०
मई १९८२ ई०
वेदसंवत्— १९६०८५३०८३

वेद-ज्योति

सम्पादक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री
ऐम. ए. काव्यतीर्थ
सी ८१७ महानगर लखनऊ ६
दूरभाष ८४१०१

ऐतरेय ब्राह्मण (अध्याय 3) सोम आतिथ्येष्टि अंक

भगवती माता गायत्री

ओ३म् भूर्भुव स्वः। तत् सवितुर् वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यजु० अ० ३६। मन्त्र ३

श्रद्धा से सब जपो, बुद्धि की दात्री, गायत्री माता।
जिसका भूः, फिर भुवः और स्वः तीनों लोकों से नाता ॥
अक्षर ओं त्रिमात्रिक, ऋक्-यजु-साम सभी की व्याख्यात्री।
अचल अथर्व, ब्रह्म, भूमा में जो साधक की ध्रुव धात्री ॥
सविता के वरणीय भर्ग, उस श्रेष्ठ तेज का ध्यान करो।
ध्यान-धारणा द्वारा जिससे, भीतर भाव-विभूति भरो ॥
प्रज्ञा प्रेरित रहे सत्य में ऋत-चिन्मय आनन्दमयी।
प्राकृत अंशों से ऊपर उठ बनो वीर विश्रुत विजयी ॥
पल-पल प्राण-अपान स्वरों में ओं नाम का जप चलता।
अवयव-अवयव देह-देह का जिसकी ध्वनि-ध्वनिमें पलता ॥
'गायन्तं त्रायते' मधुर वाणी – वीणा लेकर गाओ।
प्रातः सायं प्रतिदिन साधक, माँ की चरण-शरण जाओ ॥
वेद ज्ञान का कोष, वेद का सार भरा गायत्री में।
होकर एक, अमेय शक्ति का स्रोत इसी सावित्री में ॥
ऋषि, मुनि, साधक, भक्त इसी के अवलम्बन से सिद्ध हुए।
भीत अभीत, अरक्षित रक्षित, दलित-दरिद्र समृद्ध हुए ॥

—डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' आर्यनगर–कानपुर

मंगल ग्रह में ओं व ॐ

श्री सूरज गुप्त, लक्ष्मीबाई नगर दिल्ली ने हि० टाइम्स १७-८-७६ में लिखा है कि मंगलके फोटो व उड़नतश्तरीसे मिले पत्रपर छपा अक्षर ॐ या ओं है।

वैदिक संध्या योग साधना



इन्दौर में १८ से २७ मार्च तक विश्व वेदपरिषद् के अध्यक्ष श्री वीरसेन वेदश्रमी द्वारा शिविर सम्पन्न हुआ। अब आप रिवाड़ी में आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री के साथ २३ ४-८२ से ७-५-८२ तक ऋग्वेद से विशाल ब्रह्म-पारायण महायज्ञ सम्पन्न करा रहे हैं।

❀ चारों वेदों के मन्त्रों की संख्या ❀

	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद	❀ योग
सब-	१०५२२	१९७५	१८७५	५९७७	२०३४९
पुनः-	७००	८५०	१७८५	१८५०	५१८५
शेष-	९८२२	११२५	९०	४१२७	१५१६४

❀ विशेषांकों-सहित वार्षिक मूल्य २०) आजीवन २००)। विदेश में वार्षिक ४०) एकप्रति २ रुपये ❀

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका में तीसरा अध्याय

सोम की आतिथ्य इष्टि

खण्ड १—सोम का खरीदना

पूर्व दिशा में देवों ने सोम राजा को खरीदा था। इसलिये यह पूर्व में ही खरीदा जाता है। उन्होंने १३ वें मास (मलमास) में खरीदा था इसलिये वह अनुकूल नहीं है। सोम-विक्रयी अनुकूल नहीं होता, वह पापी होता है।

खरीदकर मनुष्यों के पास लाये जाते हुए सोम की दिशाएँ, वीर्य और इन्द्रियाँ नष्ट होने लगीं। उन्हें एक ऋचा से, फिर दो से, तीन से, चार से, पाँच से, छः से, सात ऋचाओं से रोकना चाहा किन्तु न रोक सके। (अन्त में) उन्हें आठ ऋचाओं से रोका और प्राप्त किया, इसलिये अश् धातु से बना 'अष्ट' शब्द यथार्थ सार्थक है।

जो यह जानता है वह अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेता है। इसलिये इन (सोम प्रवहण) आदि कर्मों में ८-८ ऋचायें, इन्द्रियों और वीर्यों के रोकने के लिये बोली जाती हैं ॥१॥

खण्ड २—विधि १

अध्वर्यु ब्रह्मा के लिये प्रैष (आदेश) देता है—"खरीदकर लाये जाते हुए सोम के लिये मन्त्र बोलिये।" होता निम्नलिखित मन्त्र ३ बार बोलता है—

१४९-१५० [१-३] (१) भद्राद् अभि श्रेयः प्रेहि,
बृहस्पतिः पुर एता ते अस्तु।
अथ ईम् अवस्य वर आ पृथिव्या
आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः ॥
[तैत्तिरीय संहिता १.२.३.३]

अर्थ—इस कल्याणकारी स्थान से चलकर तू श्रेय (दूसरे सुखस्थान) को प्राप्त हो—इस प्रथम चरण के द्वारा (सोम को प्राची दिशा स्थान पर पहुँचाकर) यजमान को श्रेष्ठलोक प्राप्त कराता है। बृहस्पति तेरा आगे से चलनेवाला हो—इस द्वितीय चरण से बृहस्पति=ब्रह्मवेत्ता को (सोम का) नेता बनाने से यज्ञकर्म नष्ट नहीं होता।

तीसरा चरण 'अब इसको पृथिवी के श्रेष्ठ स्थान पर रक्खो'-कह कर, सोम को देवयजन स्थान पर रखकर, चौथा चरण 'तू सर्वप्रकार वीर और वीरों-वाला होकर शत्रुओं को दूर कर'—यह यजमान के लिये कहकर पापरूपी शत्रु को दूर करता और नीचे दबाता है।

१५१ [४] (२) सोम यास्ते मयोभुवः ऊतयः सन्ति
दाशुषे। ताभिर्नो अविता भव ॥
(देखो पृष्ठ ७, सं० ३०)

अर्थ—हे सोम, दानी के लिये जो तेरी सुखकारी रक्षायें हैं, उनसे तू हमारा रक्षक हो।

१५२ [५] (३) इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
सोम त्वं नो वृधे भव ॥

अर्थ—हे सोम, इस यज्ञ और वचन को सेवन करता हुआ तू आ और हमारी वृद्धि के लिये हो।

१५३ [६] (४) सोम गीर्भिष्टवा वयं वर्धयामो वचो-
विदः। सुमृडीको न आविश ॥

अर्थ—हे सोम, वेदवाणी जाननेवाले हम तुझे वेदवाणियों से बढ़ाते हैं। तू हमारे लिए अच्छा सुखकारी हो। [ऋ० १.९१, ९-११]

ये तीनों सोम देवतावाली, गायत्री छन्द की तीन ...

टिप्पणी—उपलब्ध शौनक संहिताके अथर्ववेद ७.८.१ में इस मन्त्र में 'अभि' के स्थान पर 'अधि', 'अथ ईम् अवस्य' के स्थान पर 'अथ इमम् अस्या', 'शत्रून्' के

इस तृच् को सोम देवता के साथ गायत्री छन्द से समृद्ध करती है।

१५४ [७] (५) सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन,
सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विष-स्पृत् पितुषणिर्हि एषाम्,
अरं हितो भवति वाजिनाय ॥
(ऋ० १०.७१.१०)

अर्थ—(प्रथम पाद) सर्वे०—यश ही सोम राजा है। इसके खरीदने से सब मित्र प्रसन्न होते हैं—जो यज्ञ में धन पाने का इच्छुक होता है और जो नहीं होता (केवल यज्ञ देखने को ही आता है)।

(द्वितीय पाद) सभा०-यह सोम राजा ही ब्राह्मणों का सभासाह=सभा में जीतने वाला सखा है।

(तृतीय पाद में) किल्विषस्पृक्=पाप से बचाने वाला। यह सोम ही किल्विष से रक्षा करनेवाला है।

यज्ञ में जो श्रेष्ठता को प्राप्त किये हुए हैं, वही (कुछ त्रुटि से) किल्विष हो जाता है। इसीलिये कहते जाते हैं—"हे होता, अन्यचित्त होकर मन्त्र न पढ़ो।" "(हे अध्वर्यु), व्यग्र होकर अनुष्ठान मत करो—पाप को न प्राप्त होओ।" पितुषणिः=अन्न और दक्षिणा पितु है, उसे इस सोम के निमित्त (यजमान) ऋत्विजों के लिये देता है। इस प्रकार सोम को इनका अन्नसनि बनाता है।

(चतुर्थ पाद) अरं०—वह वाजिन (इन्द्रिय-शक्ति और वीर्य) के लिये पर्याप्त समर्थ हितकारी होता है।

जो ऐसा जानता है उसकी इन्द्रियाँ और वीर्य वृद्ध अवस्था तक नष्ट नहीं होते।

१५५ [८] (६) आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयम्,
दधातु नः सविता सुप्रजाम् इषम्।
स नः क्षपाभिर् अहभिश्च जिन्वतु,
प्रजावन्तं रयिम् अस्मे समिन्वतु ॥
[ऋ० ४.५३.७]

अर्थ—वह देव [परमात्मा, सूर्य, सोम] हमें सब प्रकार से प्राप्त हो और ऋतुओं से घर को बढ़ाये। वह सोम उस समय प्राप्त हुआ होता है। ऋतुएँ सोम राजा के भाई हैं, जैसे मनुष्य के भाई होते हैं। [होता] उनके साथ ही इस [सोम] को बुलाता है। वह सविता [उत्पादक परमात्मा, सूर्य, सोम] अच्छी सन्तान और अन्न दे—यह आशीर्वाद को माँगना है। वह दिन-रात कृपा करे और सन्तानयुक्त धन दे—यह आशीर्वाद है।

१५६-१५७ [९] (७) या ते धामानि हविषा यजन्ति,
ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो,
अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥
[ऋ० १.९१.१९—य० ४.३७]

अर्थ—हे सोम [परमात्मा, विद्वान्, सोम ओषधि] जो तेरे स्थान और पदार्थ, हवि से, यज्ञ को संगत करते हैं वे सब यज्ञ के चारों ओर वर्तमान हों। हमारे धन और प्राणों को बढ़ानेवाला, दुःख से तारनेवाला, उत्तम वीर और वीरों से युक्त, वीरों को न मारता हुआ, कायरों को भी सुख देता हुआ तू घरों में अच्छे प्रकार गति कर [प्राप्त हो]।

दुर्य का अर्थ है घर। आते हुए सोम राजा से यजमान के घरवाले डरते हैं। होता इस ऋचा को पढ़कर शान्ति से उस [सोम] को शान्त करता है। वह शान्त होकर इस यजमान की सन्तान और पशुओं की हिंसा नहीं करता।

१५८ [१०-१२] (८) इमां धियं शिक्षमाणस्य देव,
क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि।
यथाति विश्वा दुरिता तरेम,
सुतर्माणम् अभि नावं रुहेम ॥
[ऋ० ८.४२.३]

अर्थ—हे वरुण देव [परमेश्वर और अध्यापक], आप शिक्षा प्राप्त करनेवाले की इस धी [बुद्धि, कर्म], क्रतु [यज्ञ, वीर्य] और दक्ष [बल, प्रज्ञान] को और अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कीजिये। जिस [धी, क्रतु, दक्ष] से सब दुरितों [पापों, व्यसनों, दुःखों] को हम पार कर जायें और अच्छी प्रकार तारनेवाली [सुक्रिया-विज्ञान, यज्ञ, वेदवाणी रूपी] नाव पर चढ़ जायें।

होता वरुण देवतावाली इस ऋचा को तीन बार पढ़कर समाप्त करता है। जब तक सोम [वस्त्र में] बँधा रहता है और यज्ञशाला के प्राचीनवंश आदि स्थानों में रहता है तब तक वरुण देवतावाला रहता है। होता

[वरुण] देवता और उसी के छन्द [त्रिष्टुप्] से समृद्ध करता है।

(मन्त्र में) शिक्षमाण से अभिप्राय यज्ञकर्ता से है। वरुण हमें क्रतु=वीर्य, दक्ष=प्रज्ञान दे। यज्ञ, की आकर्षक क्रियाएँ और वाणी ही सुतर्मा नाव है। (वहाँ) वेदवाणी रूपी नाव पर चढ़कर यजमान उसके द्वारा स्वर्गलोक (सुख-स्थान) को प्राप्त करता है।

होता उपर्युक्त रूप-समृद्ध ८ मन्त्रों को पढ़ता है। जो मन्त्र किये जाने वाले यज्ञकर्म को बताये वह रूप-समृद्ध कहाता है। उसी से यज्ञ सफल होता है। उन ८ मन्त्रों में पहले को ३ बार और अन्तिम को ३ बार पढ़ने से ८ मन्त्र १२ हो जाते हैं। १२ ही महीने संवत्सर होते हैं और संवत्सर प्रजापति होता है।

जो ऐसा जान लेता है वह इन ही प्रजापति से सम्बन्ध रखनेवाली ऋचाओं से समृद्ध हो जाता है। पहली और अन्तिम ऋचा को ३-३ बार पढ़कर होता स्थिरता (प्रबलता और अविच्छेद) के लिये यज्ञ (रूपी रस्सी) की ही गाँठों को (दोनों सिरों पर) बाँधता है ॥२॥

खण्ड ३ (सोम को गाड़ी से उतारना)

विधि २—जब सोम को गाड़ी से उतारें तो एक बैल गाड़ी में जुता रहता है और दूसरा खोल दिया जाता है। यदि दोनों को खोल दिया जाय तो यह सोम पितृ देवता वाला (पितरों के काम में आने-वाला—घरेलू) हो जाय (देवयोग्य नहीं रहे), यदि दोनों को गाड़ी में जुते रखें तो पुत्र आदि योग-क्षेम न पा सकें। वे तितर-बितर हो जायें। खुला हुआ बैल घर में स्थित मनुष्यों का रूप है और जुता हुआ बैल क्रियाओं का रूप है। इसलिये एक बैल को जुता रखते हुए दूसरे को खोलकर वे सोम को गाड़ी से उतारते हैं और योग-क्षेम दोनों को प्राप्त करते हैं।

देवों और असुरों ने इन चारों दिशाओं में युद्ध किया। वे इस प्राची दिशा में लड़े। वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे दक्षिण दिशा में लड़े, वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे उत्तर दिशा में लड़े, वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा में लड़े, वहाँ देव नहीं हारे। यह दिशा अपराजिता है। इसलिए इस दिशा (ईशान) में सोम को गाड़ी से उतारने का यत्न करे-करावे। इस प्रकार ऋणरहित करने वाला स्वामी यत्न करे-करावे।

वे देव बोले— राजा के न होने से ही हम नहीं जीत पाते' अतः राजा बनावें—यह निश्चय कर उन्होंने सोम को राजा बनाया। उन्होंने सोम राजा के द्वारा सब दिशाओं को जीता। जो यज्ञ करता है वह सोम राजावाला है। गाड़ी और यजमान के पूर्व में स्थित होने पर सोम रक्खा जाता है। इससे वह पूर्व दिशा को जीतता है। उसको दक्षिण में ले जाते हैं, उससे दक्षिण दिशा को जीतता है। उसे पश्चिम की ओर मोड़ते हैं, उससे पश्चिम दिशा को जीतता है। उसको उत्तर की ओर स्थित करके सोम को गाड़ी से उतारते हैं। उससे वह उत्तर दिशा को सोम राजा के द्वारा जीत लेता है।

जो इस प्रकार जान लेता है वह सब दिशाओं को जीत लेता है ॥३॥

खण्ड ४ (सोम की आतिथ्य-हवि)

विधि ३—(पुरोडाश निर्माण)

सोम राजा के आ जाने पर उसके आतिथ्य के लिये हवि बनायी जाती है।

क्योंकि सोम राजा यजमान के घरों में आता है इसलिये यह हवि निरूपित की जाती है। सोम के अतिथि होने के कारण यह आतिथ्य है।

नौ कपालों पर संस्कृत पुरोडाश बनाया जाता है। प्राण ९ हैं (७ शीर्षस्थ प्राण और २ नीचे के भाग में स्थित)। उन प्राणों के सामर्थ्य के लिये और प्रज्ञान के लिये (पुरोडाश ९ कपालों पर बनाया जाता है)। यह पुरोडाश विष्णु देवता का होता है। विष्णु ही यज्ञ है। उसी विष्णु देवता से और उसी के अपने छन्द (गायत्री और त्रिष्टुप् की अनुवाक्या और याज्या) से यज्ञ को समृद्ध करते हैं—

पुरोऽनुवाक्या—

१५९-१६३ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे ॥

(५ बार— ऋ० १.२२.१७; यजु० ५.१५; साम २२२, १६६९; अ० ७.२६.४)

अर्थ—विष्णु [व्यापक परमात्मा तथा सूर्य] ने

यह संसार बनाया। तीन प्रकार से स्थान निश्चित किया [द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी]। समूढ [परमाणुमय जगत्] इसके पांसुर [परमाणुयुक्त आकाश] में है।

१६४ याज्या—तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम्,
नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था,
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
[ऋ० १.१५४.५]

अर्थ—मैं उस पराक्रमी विष्णु के प्रिय मार्ग को प्राप्त करूँ जहाँ दिव्य गुण चाहनेवाले—मनुष्य प्रसन्न होते हैं। वही इस प्रकार से हमारा बन्धु है। विष्णु के परमपद [मोक्ष] में मधु [आनन्द] का उत्स [कुआँ, जलाशय, स्रोत] है॥

खरीदे हुए सोम राजा के साथ सभी छन्द और पृष्ठ [बृहद्, रथन्तर, वैरूप आदि सामवेदोक्त पृष्ठ स्तोत्र] उसके पीछे [अनुचर होकर] आते हैं। राजा के पीछे जितने आया करते हैं उन सबके लिये आतिथ्य किया जाता है।

['अग्नेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा'—इससे गायत्री का 'सोमस्यातिथ्यमसि विष्णवे त्वा'—इससे त्रिष्टुप् का आतिथ्य किया जाता है।]

सोम राजा के आ जाने पर अग्नि का मन्थन करते हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे किसी मनुष्य राजा अथवा अन्य किसी योग्य के आने पर उसे बैल [गाड़ी में जोतने और खेती के लिये] और गौ [पालन के लिये] दिया करते हैं। उसी प्रकार यहाँ अग्निमन्थन करते हैं, क्योंकि अग्नि ही देवों का पशु है॥४॥

खण्ड ५

विधि ४—अग्नि-मन्थन

[अग्नि के लिये १३ मन्त्र—पहले तथा अन्तिम को ३-३ बार पढ़े जाने से १७ मन्त्रों का पाठ]

विधि ५—अध्वर्यु [होता से] कहता है—"मथी जाती हुई अग्नि के लिये मन्त्र बोलिए"—

वह होता सविता देवतावाली निम्नलिखित ऋचा को ३ बार पढ़ता है—

१६५ [१-३] (१) अभि त्वा देव सवितः,
ईशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे॥
(ऋ० १.२४.३)

प्रश्न करते हैं कि मथ्यमान अग्नि के लिये मन्त्र पढ़ने को कहा था। फिर सविता देवता का मन्त्र क्यों पढ़ दिया? इसका उत्तर—

क्योंकि सविता [परमात्मा और सूर्य] सब उत्पन्न पदार्थों का स्वामी है और सविता से प्रेरित होकर ही इस अग्नि को मथते हैं, इसलिये सविता देवता की ऋचा को पढ़ते हैं।

अर्थ—हे देव सविता, सभी स्वीकरणीय पदार्थों के स्वामी, सदा रक्षक, सेवनीय तुझको लक्ष्य करके ही हम सदा याचना करते हैं।

१६६-१६८ [४] (२) मही द्यौः पृथिवी च न,
इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः॥
(ऋ० १.२२.१३, य० ८.३२, १३.३२)

अर्थ—बड़ी द्यौ और पृथिवी इस यज्ञ को पूर्ण करें और हमें पोषक गुणों से पूर्ण करें॥

प्रश्न करते हैं कि 'जब मथ्यमान अग्नि के लिये मन्त्र पढ़ना है तो द्यावा-पृथिवी वाला मन्त्र क्यों पढ़ा?' उत्तर यह है कि 'इस उत्पन्न अग्नि को देवों ने द्यावा-पृथिवी [सूर्य और पृथिवी] से ही ग्रहण किया और आज भी ग्रहण करते हैं, इसलिये द्यावा-पृथिवी वाला मन्त्र पढ़ना उचित है।

अब अग्नि देवता और गायत्री छन्द की तीन ऋचाएँ होता पढ़ता है। अग्नि के मथने के समय अपने ही अग्नि देवता से और अपने [गायत्री] छन्द से उसे समृद्ध करता है।

१६९-१७२ [५] (३) त्वामग्ने पुष्करादधि,
अथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥
(ऋ० ६.१६.१३; य० ११.३२, १५.२२; साम ९)

अर्थ—हे अग्नि तथा विद्युत्, तुझको बुद्धिमान् अथर्वा=अहिंसक वैज्ञानिक विश्व के सिर के समान वर्तमान अन्तरिक्ष से मन्थन करके प्राप्त करता है।

१७३-१७४ [६] ४. तमु त्वा दध्यङ ऋषिः पुत्रईधे अथर्वणः।
वृत्रहणं पुर-दरम्॥

अर्थ--वृत्रोंको नष्ट करनेवाले, शत्रु-नगर-विदारक तुझ अग्नि को अथर्वा का रक्षक शिष्य सुख-कारक अग्नि आदि का ज्ञाता वेद-वेत्ता ऋषि प्रकाशित करे।

१७५-७६(७)५. तमु त्वा पाथ्यो वृषा समींधे दस्युहन्तमम्।
धनञ्जयं रणे रणे ॥

(ऋ० ६।१६।१४-१५ य० ११.३३-३४)

अर्थ—प्रत्येक रण में धन जीतने वाले, रोग आदि दस्युओं को नष्ट करनेवाले तुझ अग्रणी को ही जल-अन्त-मार्गों का प्रयोक्ता, सुख-वर्धक, बलवान् पुरुष अच्छी प्रकार से प्रकाशित करता और कराता है।

इसी प्रकार वह अग्नि को उसीके देवता और उसी के छन्दों द्वारा समृद्ध करता है। "अथर्वा निरमन्थत" ऐसा कहने से मन्त्र रूप-समृद्ध हो जाता है। अर्थात् जो क्रिया करनी होती है यदि वही मन्त्र में भी वर्णित हो तो उस मन्त्र को रूप-समृद्ध कहते हैं। रूप-समृद्ध मन्त्र से ही क्रिया सफल होती है।

यदि अग्नि न उत्पन्न हो तो बाधकों को दूर करने वाली नीचे की ऋचायें पढ़ीं जाती हैं--

❀ विधि ६—अतिरिक्त विधि ❀

अग्नि मन्थन में विघ्न निवारक ९ मन्त्र --

१७७. अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन् मर्त्येष्वा।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥१॥

अर्थ- शुद्ध कर्म वाला यह अग्नि अपनी यज्ञवेदी में मनुष्यों में प्रकाशमान हुआ, प्राणियों के शरीर को खाने वाले रोगाणुओं को नष्ट करता है।

१७८. उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे।
यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२॥

अर्थ- यह अग्नि तब अच्छी प्रकार हवि आदि से युक्त किया हुआ बढ़ता है, घृतों के प्रति प्रसन्न होता है जब इस अग्नि को जुहू आदि पात्र संगत होते हैं।

१७९. स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३॥

अर्थ- हवि से युक्त, मन्त्रमयी वाणी द्वारा प्रशंसनीय वह अग्नि अति दीप्त होता है, स्रुवा से सभी यज्ञ देवों से पूर्व ही घृत से सिक्त किय जाता है।

१८०. घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः।
रोचमानो विभावसुः ॥४॥

अर्थ—मधुर-पदार्थ-युक्त, आहुति दिया हुआ, दीप्त प्रकाशमान अग्नि घी से समृद्ध किया जाता है।

१८१ जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।
तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५॥

अर्थ— हव्य को सर्वत्र पहुंचाने वाला; स्तुति के योग्य अग्नि देवों के लिए प्रज्वलित किया जाता है। मनुष्य उसकी प्रशंसा करते हैं।

१८२. तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत।
अदाभ्यं गृहपतिम् ॥ ६ ॥

अर्थ-- हे मनुष्यो, तुम अधर्षणीय, घर के पति उस अमर अग्नि की घी तथा प्रेम से सेवा करो।

१८३. अदाभ्येन शोचिषा अग्ने रक्षस् त्वं दह।
गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥ ७ ॥

अर्थ-- हे अग्नि, तू अदम्य तेज से रोग-कृमियों को जला दे और यज्ञ का रक्षक होकर प्रदीप्त हो।

१८४. स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥ ८ ॥

अर्थ— वह तू अग्नि, अपने तेज से रोग-कृमियों को जला दे और बड़ी यज्ञ-वेदियों में दीप्तिमान हो।

१८५. तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥६॥ [ऋ. १०.११८.१-९]

अर्थ—विस्तृत निवास वाले यजमान लोग हवि के वाहक, मनुष्य सम्बन्धी संघ में अत्यन्त यज्ञ-योग्य उस अग्नि को वेद-मन्त्रों के साथ प्रज्वलित करते हैं।

ये मन्त्र रोगजन्तु आदि के मारने के लिये पढे जाते हैं क्योंकि जब अग्नि उत्पन्न नहीं होता है तो बाधक तत्त्व उसे रोक लेते हैं। जब एक या दो या अधिक मन्त्र पढ़ने पर अग्नि उत्पन्न हो जाय तो नीचे का मन्त्र पढ़ें—

१८६-१८७(८)६. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि।
धनञ्जयो रणे रणे॥ [ऋ० १.७४.३ साम१३८२]

अर्थ—जो प्रत्येक युद्धमें धन से जितानेवाला, वृत्र को नष्ट करनेवाला, परमेश्वर, विद्वान् तथा अग्नि दाता के धन उत्पन्न करता है, सब मनुष्य हिंसा रहित उसी के विचार को परस्पर उपदेश करें।

जो यज्ञ का रूप समृद्ध होता है उसी से यज्ञ सफल होता हैं। अब यह मन्त्र पढ़ते हैं —

१८८(९)७. आयं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरम्॥ (ऋ० ६.१६.४०)

मन्त्र में 'हस्त' आया है। हाथ से ही अग्नि को मथते हैं। अग्नि शिशु के समान उत्पन्न होती है।

१८६ (१०) ८. प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् ।
आ स्वे योनौ निषीदतु ॥
—ऋ० ६.१६.४१

अर्थ—हे विद्वानो ! आप विद्वानों की रक्षा के लिये, ज्ञान वा धन के देनेवाले, तेजस्वी प्रजाओं और ऐश्वर्यों को भली प्रकार प्राप्त करानेवाले, अग्नि और अग्रणी पुरुष को अच्छी प्रकार पुष्ट करो वह अपने उचित स्थान पर स्थित हों।

यह मन्त्र उस समय के लिए उपयुक्त है जब अग्नि आहवनीय कुण्ड में डाला जाता है।

'आ स्वे योनौ निषीदतु' [वह अपने घर बैठे] का तात्पर्य यह है कि कुण्ड आहवनीय अग्नि का उचित स्थान है।

१९० (११) ९. आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥
—ऋ० ६.१६.४२

अर्थ—नाना विद्याओं में प्रसिद्ध-गुरु के अधीन विद्या से सम्पन्न, प्रिय, अतिथि के समान पूज्य, गृह के पालक अग्रणी को सुखकारी स्थान पर आदर से स्थापित करो।

इस मन्त्र में 'जातं' एक (अर्थात् अग्नि) है और 'जातवेद' दूसरा (अर्थात् आहवनीय)। 'प्रियं शिशीतातिथिम्' में यह जो (मथा हुआ) अग्नि है वह दूसरे अग्नि (अर्थात् आहवनीय) का प्यारा अतिथि है। 'स्योन आ गृहपतिम्' से (ऋत्विज) अग्नि को शान्ति के साथ (आहवनीय) में स्थापित करता है।

१९१–१९२ (१२) १०.
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥
—साम ८४४, ऋ० १.१२.६

अर्थ—जैसे एक आग से दूसरी आग को प्रज्वलित कर लिया जाता है और वही आहुति योग्य हवि को ग्रहण कर उसको नाना देश में पहुँचाता तथा ज्वाला रूप मुख से ग्रहण करता है। वैसे ही [कवि] क्रान्तदर्शी विद्वान् भी अग्नि के समान ज्ञानी पुरुष के साथ रहकर स्वयम् ज्ञानी हो जाता है तथा जीवात्मा के द्वारा परमात्मा का साक्षात् किया जाता है।

यह मन्त्र तो यज्ञ का अभिरूप ही है और ठीक है।

१९३ (१३) ११. त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥
—ऋ० ८.४३.१४

अर्थ—हे सर्वगतिप्रद परमात्मन् ! जिस हेतु तू अग्नि के साथ, अग्नि होकर भाषित होता है, मेधावी विद्वान् के साथ विद्वान् होकर, साधु के साथ साधु होकर, मित्र के साथ मित्र होकर प्रकाशित हो रहा है; अतः तू अगम्य और अबोध्य हो रहा है।

इस मन्त्र में एक अग्नि एक विप्र है और दूसरा अग्नि दूसरा विप्र। एक अग्नि एक सत्ता है और दूसरी अग्नि दूसरी सत्ता। 'सखा सख्या समिध्यसे' में एक सखा एक अग्नि है और दूसरा सखा दूसरी अग्नि है।

१९४ (१४) १२. तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरो यावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥
—ऋ० ८.८४.८

अर्थ—उत्तम कर्म एवं ज्ञानवाले, संघर्ष के स्थल व समय पर अथवा प्रतिद्वन्द्विताओं में आगे-आगे चलनेवाले, उस ज्ञान एवं कर्म शक्ति के प्रतीक अग्नि को उपासकजन अपने-अपने गृह तथा स्थान में अलंकृत करते हैं।

इस मन्त्र में 'स्वेषु क्षयेषु' का अर्थ यह है कि एक अग्नि दूसरी अग्नि का अपना ही घर है।

१९५–१९८ (१५–१७) १३.
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
—अथर्व० ७.५.१; य० ३१.१६; ऋ० १.१४.५०; १०.९०.१६।

इस मन्त्र से समाप्त करता है। देवों ने यज्ञ द्वारा ही यज्ञ किया। अग्नि द्वारा ही अग्नि में यज्ञ करके देव स्वर्ग को गये थे। 'यह पहले धर्म थे।' 'वे बड़े लोग [महिमानः] उसी स्वर्ग को प्राप्त हो गये जहाँ पहले साध्य लोग हैं। छन्द ही 'साध्य देव' हैं जो पहले अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ किया करते, व स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं। वे आदित्य और अंगिरा हैं जो अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ करके स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं। यह जो अग्नि की

आहुति है वह स्वर्ग में ले जानेवाली आहुति है। यदि यज्ञ करनेवाला ठीक ब्राह्मण न हो, तो भी यह आहुति देवताओं तक पहुंच जाती है। पापी से मिलकर दूषित नहीं होती।

यह तेरह मन्त्र हैं और सभी 'रूप समृद्ध' हैं। यज्ञ तभी सफल होता है जब मन्त्र यज्ञ का 'रूप समृद्ध' हो अर्थात् उसमें वही वर्णन हो जैसी क्रिया करनी है। इन तेरह मन्त्रों में पहला और अन्तिम तीन-तीन बार बोला जाता है। इस प्रकार वह सत्रह हो जाते हैं। 'प्रजापति' भी सत्रह अंगों वाला है। एक सम्वत्सर वा बारह मास और पाँच ऋतुयें। प्रजापति ही संवत्सर है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजापति सम्बन्धी ऋचाओं द्वारा सफल हो जाता है। पहले और पिछले मन्त्र को तीन-तीन बार पढ़कर वह यज्ञ के आगे और पीछे में गाँठ लगा देता है जिससे वह यज्ञ बीच में से फिसल न सके।

खंड ६—आतिथ्य इष्टि

❀ विधि ७—आज्य भाग ❀

दोनों आज्य भागों की पुरोनुवाक्या यह हैं—

१९६-२०१. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन॥
—ऋ० ८.४४.१; यजु० ३.१; १२.३०

अर्थ—हे मनुष्यो, तुम लोग वायु औषधि और वर्षा जल की शुद्धि से सबके उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम वा ढाक आदि काष्ठों से अतिथिरूप अग्नि को नित्य प्रकाशित करो फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट मधुर सुगन्धित अर्थात् दुग्ध, घृत, शर्करा, गुड़, केशर कस्तूरी आदि और रोगनाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं उनका अच्छी प्रकार नित्य अग्निहोत्र करके सबका उपकार करो।

२०२-२०४. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे॥
—ऋ० १.९१.१६; ६.३१.४, यजु० १२.११२

अर्थ—हे राजन्! विद्वन्! छात्र! सोम औषधि वीर्यवान् पुरुषों में होनेवाला उत्पादक बल प्राप्त हो। तू बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्ति करने में सहायक और यत्नवान् हो।

इन दोनों ऋचाओं में आतिथ्य का वर्णन है। इसलिये यह दोनों रूप-समृद्ध हैं। ऋचा की रूप-समृद्धता यही है कि जो क्रिया करनी हो उसका उसमें विधान हो। पहली 'अतिथि' वाली ऋचा का देवता अग्नि है। दूसरी का देवता सोम है, उसमें 'अतिथि' शब्द नहीं आया। यदि सोम को सम्बोधित करनेवाली किसी ऋचा में 'अतिथि' शब्द आता तो उस ऋचा का प्रयोग किया जाता। परन्तु यह ऋचा (ऋ० १.९१.१६) भी अतिथि के ही लिये है क्योंकि इसमें 'आपीन' अर्थात् मोटे होने की ओर संकेत करते हैं। जब अतिथि का सत्कार करते हैं तो मानो उसे मोटा करते हैं।

प्रधान होम

❀ विधि ८—प्रधान हवि की याज्या ❀

अग्नि और सोम की पुरोऽनुवाक्या ऋचा निम्नलिखित है—

२०५. जुषाणोऽग्निः आज्यस्य वेतु स्वाहा॥१॥

अर्थ—सेवन किया जाता हुआ अग्नि आज्य (घृत) को प्राप्त करता है।

२०६. जुषाणः सोमः आज्यस्य हविषो वेतु॥२॥

अर्थ—सेवन किया जाता हुआ सोम आज्य की हवि को प्राप्त करता है।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूळ्हमस्य पांसुरे॥ ऋ० १.२२.१७
(अर्थ देखो पृष्ठ २१, मन्त्रसंख्या १५९-१६३)

और याज्या ऋचा यह है—

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
—ऋ० १.१५४.५

अर्थ— (देखो पृष्ठ २२)

यह दोनों ऋचायें विष्णु सम्बन्धी हैं। पहली में तीन पद हैं। उसको बोलकर दूसरी के चार पदों को बोलना है। इस प्रकार सात पद हो जाते हैं।

आतिथ्य यज्ञ का सिर है। सिर में सात प्राण होते हैं। इस कृत्य को करके होता यजमान के सिर में मानों सातों प्राणों को रखता है।

विधि ९

स्विष्टकृत संयाज्य

स्विष्टकृत के दो संयाज्य मन्त्र यह हैं :—

२०७. होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्य यज्ञस्य केतुं रुशन्तम्। प्रत्यर्धि देवस्य देवस्य मह्ना, श्रिया त्व: अग्निमतिथिं जनानाम् ॥१॥

—ऋ० १०.१.५

अर्थ—हिंसारहित प्रत्येक यज्ञ के प्रकाशक, ग्रहण करनेवाले, प्रकाश से दीप्तिमान्, श्री से बढ़ानेवाले, प्रत्येक यज्ञ देवता के लिए, विचित्र रथ के समान हव्य-वाहक, लोगों के यज्ञादि कर्म में सेवनीय तुझ अग्नि (परमात्मा, अग्रणी शासक, भौतिक अग्नि तथा यज्ञाग्नि) को हम जानें।

२०८-२०९. प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भा:। अभि य: पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि: शुशोच ॥२॥ —ऋ. ७.८.४; यजु. १२.३४

अर्थ—जो दीप्तिमान् होकर, सूर्य के समान प्रकाशित होता, महान् होकर वह मनुष्यमात्र का मार्गदर्शक प्रकाशक रूप से विख्यात सुना जाता है, जो मनुष्यों में पालक जनों को प्राप्त कर अध्यक्ष रूप से विराजता है, वह दीप्तियुक्त होकर, देवों विद्वानों में प्रशंसित, अतिथिवत् पूज्य अग्नि (परमेश्वर, सेनापति और यज्ञाग्नि) सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि चमकता है।

यह दोनों अतिथि सम्बन्धी ऋचायें हैं। इसलिये रूप-समृद्ध हैं। जो ऋचायें रूप-समृद्ध होती हैं वे यज्ञ के लिए ठीक होती हैं। क्योंकि ऋचाओं में वही बात होती है जिसको कहना होता है।

यह दोनों त्रिष्टुभ् हैं इसलिये इन्द्र की शक्ति पाने के लिये ठीक हैं।

इळा भाग

विधि १०—इळा का भक्षण

यह अवशिष्ट इडा भाग खाने से कृत्य समाप्त हो है। देवों ने अतिथि-इष्टि के अन्त में यज्ञ शेष खाया। उसी से वह सन्तुष्ट हो गये। इसलिये इस इष्टि की अन्तिम क्रिया यज्ञ-शेष इळा का भक्षण है।

इस इष्टि में प्रयाज आहुतियाँ दी जाती हैं, अनुयाज नहीं। प्रयाज और अनुयाज दोनों ही प्राण हैं। शिर के प्राण प्रयाज हैं। जो शरीर के निचले भाग के प्राण हैं वह अनुयाज हैं। जो अनुयाज आहुतियाँ देना वह ऐसा ही होगा मानों नीचे के प्राणों को काटकर शिर में रख दे। अर्थ यह है कि शिर के प्राण और निचले प्राण सब एक ही स्थान पर मिलें। इसलिये इस इष्टि में यदि अनुयाज न हों, केवल प्रयाज ही हों तो अनुयाज करनेवाले का अभिप्राय भी सिद्ध हो ही जाता है।

❀ पहली पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त ❀

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री कृत ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

—❀—

कृपया उत्तर अवश्य दें

प्रिय संरक्षक तथा सदस्यगण,

सादर नमस्ते ।

निवेदन है कि महगाई और आर्थिक सङ्कट के कारण आपकी वेदज्योतिका मूल्य आप सभी केलिए २०) किया गया है। कृपया स्वीकार करें व शीघ्र भेजें वर्ष इस अङ्क से माना जायेगा। यदि किसी कारण स्वीकार न हो तो भी कृपया आप उत्तर अवश्य दें

निवेदक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

वेदसंस्कृत की परीक्षाएँ

वेद-विश्व-विद्यालय की आगामी परीक्षाएँ श्रावणी के बाद ११ अगस्त १९८२ को होंगीं। परीक्षार्थी अपना नाम, पिता का नाम, पता की सूचना के साथ परीक्षा-शुल्क ५) शीघ्र भेजें। नियमावली—पाठविधि पूर्ववत् है। केवल 'संस्कृत-विशारद' की नई परीक्षा में शिक्षा, अष्टाध्यायी १ अध्याय, मूलरामायण, विदुरनीति योग-दर्शन,चाणक्यसूत्र, नीति-वैराग्यशतक, मनुस्मृति हैं। पौरोहित्य-विशारद में संस्कारविधि पाठ्य ग्रन्थ है।

पूर्ण शुद्ध हवन सामग्री

आर्य पर्व पद्धति के अनुसार ऋतुओं के अनुकूल बनी, सुगन्धित हवन सामग्री मँगाइये। मूल्य ४) किलो।

सुन्दर सस्ती छपाई

आदर्श प्रेस लखनऊ आपकी सेवाके लिए तैयार है

रोगोंकी अचूक चिकित्सा

सभी रोगों की, विशेषकर बच्चों और स्त्रियों की अचूक चिकित्साके लिए हमसे परामर्शकर लाभ उठायें।

—डा० अनिल कुमार, बी० एम० एस०

प्रबन्धक आदर्श प्रेस

वेद-सदन, सी ८१७ महानगर लखनऊ २२६००६

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वैदिकधर्म का झण्डा, घर घर में है लहराना।
"कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ,, का पाठ है पढ़ाना ॥
भूले हैं वेदों को जो, अज्ञानता के वश हों।
उनको दिखाके मार्ग, उस पर है फिर च
जितने विरोधी इसके उनको समझायें
पाखण्ड झुठ से फिर, सबको है अन्ध
विषयों में फंस के मूर्ख, हीरा जन्म गंवा
कुछ भी नहीं बनेगा जब विगड़ जाय ताना ॥
कितने हैं दुःख उठाये फिर भी न होश आया।
वेदों को पढ़-पढ़ाकर सुनना है और सुनाना ॥

—इन्द्रसेन विश्वप्रेमी गाजियाबाद

बनो बहादुर अरे वैदिकों, श्रम करने से नहीं डरो।
ध्येय सदा नजरों में रखकर सब आवश्यक काम करो।
समय आगया अरे आर्यो, संगठन प्रबल बनाना है।
वैदिक धर्म ओ३म् का झंडा घरघर में फहराना है ॥
जग में पूज्य वही हो जाते याद सभी को आते हैं।
वेद-धर्म की रक्षा में जो अपने शीश कटाते हैं ॥
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का नारा तुम्हें लगाना है।
विधर्मी बने जा अपने भाई उनको आर्य बनाना है ॥

—कविराज श्री बनवारीलाल शादाँ ,दिल्ली

—ओ३म्—

सदस्योंसे प्रार्थना

आपका वर्ष पूर्ण हो गया है कृपया आगे के लिए। २० रुपये शीघ्र भेजें, यदि न भेजें तो कृपया सूचित करें।

— ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व-वेद-परिषद्

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ [उ.प्र.]
मुद्रक— आदर्श प्रेस, लखनऊ ६ । दूरभाष ८४१०१

ग्रा० सं० ११५

सेवायाम् श्री
जगदीश प्रसाद विद्यालंकार
आफ़िसर अधिकारी
गुरुकुल विश्वविद्यालय
काँगड़ी
गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष ५ अङ्क ८
श्रावण २०३८
अगस्त १९८१
वेदसंवत्- १९६०८५३०८२

वेद-ज्योति

सम्पादक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री
ऐम. ए. काव्यतीर्थ
सी ८१७ महानगर, लखनऊ
दूरभाष ८४१०१

भूर्भुवः स्वः तुम प्यारे

❀ वेदमाता सावित्री गायत्री मन्त्र ❀

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर् वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
—यजु० ३६.३

[श्री रामनारायण माथुर 'ओ३म्प्रेमी' शाजापुर]

'ओ३म्' दयामय निर्विकार शिव, 'भूर्भुवः स्वः' तुम प्यारे।
अथवा हो सच्चिदानन्द-घन, कविजन बर्णन कर हारे॥

प्राणों से भी प्रियतर प्रभुवर! 'भूः' इसी से तुम्हें कहे।
'भुवः' अपान रूप में हरते सुजनों के संकट सारे॥१॥

'स्वः' तुम व्यापक सदा व्यान सम, सर्वनियन्ता, सौख्यस्वरूप।
सबके अधिष्ठान हो भगवन्! सबको रहते भी धारे॥२॥

'तत्' किंवा उस तुम को सेवें, कभी न पलभर विलग रहें।
तुम्हें रखें हम अगुआ अपना, फिर तो हों वारे न्यारे॥३॥

तुम 'सवितुः' वा जगत्-पिता वैभवदाता जगदीश्वर का—
गहें 'वरेण्यम् भर्गः' या वरणीय तेज श्रुति उच्चारे॥४॥

हम 'देवस्य' दिव्यतामय तुम परमदेव परमेश्वर का—
'धीमहि' अथवा नित्य उपासन करें कि जो सुख संचारे॥५॥

'धियो' उन्हें कहते कि धारणावती बुद्धियाँ जिनका नाम।
'यो' अथवा जो तुम परमात्मन्! हो आप्तों के दृग्तारे॥६॥

'नः' किंवा हम भक्तजनों की सब गतिमति पावनी रहें।
पुण्यमयी प्रेरणा तुम्हारी उनमें शुचिता विस्तारे॥७॥

है पर्याय 'प्रचोदयात्' का यही कि प्रेरित करे सदैव—
तव करुणा जो हमें ओ३म्प्रेमी नित रखकर स्वीकारे॥८॥

—❀—

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

सामान्य प्रकरण के यज्ञ के पश्चात् निम्नाङ्कित यजुर्वेद (१९.९) के मन्त्रों से आहुति देवें—

१- ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि स्वाहा।
२- ओ३म् वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि स्वाहा।
३- ओ३म् बलमसि बलं मयि धेहि स्वाहा।
४- ओ३म् ओजोऽस्योजो मयि धेहि स्वाहा।
५- ओ३म् मन्युरसि मन्युं मयि धेहि स्वाहा।
६- ओ३म् सहोऽसि सहो मयि धेहि स्वाहा।

रात्रि वा सायंकाल के समय श्रीकृष्ण जयन्ती की स्मारक सभा करके उसमें श्रीकृष्ण के गुणगान और उनके तत्त्वदर्शन श्रीमद्भगवद्गीता पर उत्तम भाषण हों और निबन्ध पाठ हों।

जो, कृष्ण प्यारे! सत्य का अवलम्ब तुम लेते नहीं,
तो सत्य ही संसार का इतिहास होता कुछ कहीं॥

विषय-सूची

अश्वि सूक्त व्याख्या

(गताङ्क से आगे)

वेद में विज्ञान— ऋग्वेद १.११६

—श्री अप्पा साहेब पन्त, ५८ नारायण पेठ, पूना

अर्थ—हे अतिशक्तिवान् अश्विनौ, यह है आपकी स्तुति। जिसमें पर्जन्य-बूँद का और ओलों का कक्ष-बन्ध दिया था ऐसे विभाग को आपने खंडित किया। ओला से बनी हुई हिमराशि से, घोड़े के नाल रूप होनेवाले पर्जन्य-चक्र से, और अतिशक्तियुक्त या व्यापक अश्व (पर्जन्य-बूँद) से सैकड़ों पर्जन्य-घड़े आपने खाली कर दिये और पर्जन्य-राशि को फुहार कर दिया ॥ ७ ॥

आठवीं ऋचा में, अत्रि का नाम आया है। अत्रि का स्पष्टीकरण करनेवाले निरुक्तकार कहते हैं (निरुक्त ३-१९)—'जो तीन रूपों में नहीं है।' वह घन, द्रव या वायु रूप में नहीं है; किन्तु विद्युत् रूप में या प्रकाश रूप में ही निवास करता है-यह हम मान लेंगे।

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां, मितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम्।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतम्, उन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥८॥

अर्थ—प्रकाशमान अग्नि पर्जन्य-बूँद का बाष्पीकरण करनेवाला था, उसे हिमतुषार से रोक दिया। इसके लिये आप दोनों ने बादल में चैतन्य देनेवाली ऊर्जा को धारण कर दिया। (जब यह ऊर्जाशक्ति बहुत बढ़ी, तब वृक्ष-वनस्पतियों से ऋबीस् नामक विद्युत् तेज बाहर आया)। हे अश्विनौ, नीचे (वृक्ष-वनस्पति में) छिपे हुए विद्युत् रूप अत्रि को आपने पृथिवी से बाहर निकाला और बादल की दिशा से खींच लिया। (इस विद्युत् प्रपात से भी) सब घटनाएँ कल्याणप्रद होने दें। (अन्यथा विद्युत् प्रपात से, वृक्ष-इमारतों को आग लग जायेगी ॥८॥

अगली ऋचा में गोतम, नाम आया है। गो का अर्थ भूमि होने के कारण, गोतम का अर्थ=अच्छी फसल देनेवाली भूमि, हम मान सकते हैं।

इस मन्त्र में, कुएँ को ऊपर चढ़ा दिया और तिरछा करके उसका पानी गोतम के सैकड़ों शिष्यों को दे दिया—ऐसी कथा आयी है। यह कुआँ, बादल के अन्दर बननेवाला निर्वात धब्बा होगा जो मरुत्-प्रवाहों से ऊँचे जाता रहता है और तिर्यक् भी होता रहता है। इस धब्बे के अन्दर बिजली से बना हुआ पानी भी रहता है। इन धब्बों से गिरनेवाला पानी सब भूमि खंड की (अच्छी फसलवाली भूमिरूपी शिष्य गणों की) प्यास बुझाता रहता है।

परावतं नासत्या नुदेथाम् उच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम्।
क्षरन्नापो न पायनाय राये, सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥९॥

अर्थ—हे विरुद्ध विद्युत्-भार के स्वामी दो नासत्यो, आपने दूर हुए और नीचे जलवाले एक निर्वात कुएँ को, ऊपर ढकेल दिया और उसका तल ऊँचा करके उसे तिरछा कर दिया। इससे आपने तृषार्त भूमि के हजारों खंडों को पानी दिया। इकट्ठे होनेवाले प्रवाह वर्षा देते रहते हैं, ऐसा मान लिया गया ॥ ९ ॥

१०वीं ऋचा में, च्यवान का नाम आया है। च्यवान शब्द में, च्यु=कम्पन करना, थरथराना धातु है।

बादल में कम-अधिक हवा की तेजी से जब कम्पन शुरू होता है, तब वहाँ, बूढ़े मनुष्य की झुर्रियों के समान तरंगें पड़ती हैं। ऐसे कम्पनवाले प्रवाहों में बूँद तैयार नहीं होती। लेकिन जब सब ओर से विद्युत् रोशनी शुरू होती है तो वे प्रवाह सीधे बहने लगते हैं, और उसमें पर्जन्यबूँद का भी निर्माण होता रहता है।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं, प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१०॥

अर्थ—और हे नासत्यो, किसी भाग में कम्पन के प्रभाव से बादल में वलियाँ (तरंगें) पड़ती रहती हैं। कवच के समान चिपट गयी वलियों को, आपने वस्त्रवत् सुलभता से हटा दिया। अत्यन्त कल्याणकारक बूँद बनानेवाले हे दस्रौ, निरुपयोगी होने से दुर्लक्षित बादल के प्रवाह को, आपने इसी तरह समृद्ध किया और पश्चात् पर्जन्यराशि में प्रमुख ही कर दिया ॥१०॥

[क्रमशः]

श्रावणी उपाकर्म पर्व की पद्धति

[आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम० ए०]

वर्षा के प्रारम्भ से प्रचलित होनेवाले वेद के स्वाध्याय के उपाकर्म (आरम्भ) का विशेष पर्व 'उपाकर्म' श्रावण की पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस वेदसत्र का उत्सर्जन पाँच मास पश्चात् पौषी पूर्णिमा अथवा माघ मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को अथवा मकर संक्रान्ति को किया जाता है। महर्षि मनु ने मनुस्मृति के अध्याय ४ के श्लोक ९५, ९६ में इस प्रकार विधान किया है—

"द्विज (शिक्षित) जन श्रावण अथवा भाद्रपद की पूर्णिमा के दिन विशेष रीति से वेदों का स्वाध्याय प्रारम्भ करके पौष अथवा माघ के शुक्ल पक्ष में विसर्जन करें।"

ऋग्वेद के मण्डल ७ के सूक्त १०३ के ९वें मन्त्र में उस विसर्जन का संकेत है—

संवत्सरे प्रावृषि आगतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥

अर्थात् वर्षा ऋतु में वैदिक जन विशेष स्वाध्याय करके वर्षा समाप्ति पर, घाम के तपने पर, स्वाध्याय का विसर्ग=विसर्जन (उत्सर्ग) करते हैं।

इस सम्पूर्ण सूक्त में परमेश्वर का उपदेश है कि वर्षा ऋतु में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी सभी वैदिक सनातनधर्मी व्रती बनकर, तपस्या करते हुए तथा वेदमन्त्रों का पाठ और अर्थ का चिन्तन करते हुए अपनी आत्मिक उन्नति किया करें।

स्वाध्यायेन अर्चयेद् ऋषीन्॥ [मनु० ३.८१]

ऋषियों की पूजा, ऋषियों के ऋण का चुकाना, वेद के स्वाध्याय से ही सम्भव है अतः इस पर्व का नाम 'ऋषि-तर्पण' भी है।

पर्व की विधि—सामान्य होम के पश्चात्—

❀ २६ विशेष आहुतियाँ ❀

प्रत्येक मन्त्र के प्रारम्भ में 'ओ३म्' का और अन्त में आहुति देते समय 'स्वाहा' का प्रयोग किया जाता है। स्वाहा शब्द के चार अर्थ हैं—

(१) सु आह=मधुर बोलना। मैं सदा मीठा बोलूंगा।

(२) स्व आह=सत्य बोलना। मैं सदा सत्य बोलूंगा।

(३) सु आह=अच्छी वस्तुओं को दान और यज्ञ में आहुति देना। मैं दान दूँगा।

(४) स्व आह=स्वार्थ का त्याग देना। मैं स्वार्थ त्याग दूँगा।

१. ओ३म् ब्रह्मणे स्वाहा। (अथर्व० १९.२२.२०)
२. छन्दोभ्यः स्वाहा। ३. सावित्र्यै स्वाहा।
४. ब्रह्मणे स्वाहा। (अथर्व० १९.२३.२९)
५. श्रद्धायै स्वाहा। ६. मेधायै स्वाहा।
७. प्रज्ञायै स्वाहा। ८. धारणायै स्वाहा।
९. सदसस्पतये स्वाहा। १०. अनुमतये स्वाहा।
११. छन्दोभ्यः स्वाहा। १२. ऋषिभ्यः स्वाहा।
(अथर्व० १९.२२.१४)

१. ईश्वर के लिये उत्तम वचन और आत्मसमर्पण हो।
२–३. वेदमन्त्रों और सावित्री (गायत्री) मन्त्र का पठन-पाठन हो।
४. वेद के लिये उत्तम प्रशंसा तथा उनका अध्ययन हो।
५–६. श्रद्धा और बुद्धि को उत्तम समझ कर हम धारण करें।
७–८. प्रज्ञा और सत्य की धारणा को उत्तम बताया है।
९–१०. सभापति और उनकी अनुमति उत्तम है।
११–१२. शरीर के ७ ऋषियों (५ ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि) को उत्तम बनाने के लिये और वेद के ७ छन्दों तथा मन्त्र-द्रष्टाओं की प्रशंसा के लिये ये आहुतियाँ हों।

इन बारह मन्त्रों के पश्चात् बृहस्पति सूक्त (ऋ० १०.७१) के नीचे लिखे ११ मन्त्रों से आहुतियाँ दी जायें—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं, यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्, प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥१॥

१—(बृहस्पते) हे भाषा और विज्ञान के स्वामिन् परमेश्वर, (प्रथमम्) मानव-सृष्टि आरम्भ होने पर (नामधेयम् दधानाः) नामों=नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात भेद से चार प्रकार के शब्द-परिवारों और उनके अर्थों के धारण-कर्ता ऋषि, (यत्) जो (वाचः) वाणी, भाषा, विद्या (अग्रम्) प्रथम बार (प्रैरत) प्रकर्ष के साथ प्रकट करते हैं (तत्) वह (एषाम्) इन नामधारी ऋषियों की (गुहा) हृदय में (प्रेणा) प्रेरणापूर्वक अथवा प्रेमपूर्वक (निहितम्) आपके द्वारा निहित=नियमपूर्वक आहित=सुरक्षित की गई थी और (यत् आविः) जिसका आविर्भाव हुआ है। (यत्) क्योंकि (एषाम्) इन ऋषियों का (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठत्व तथा (अरिप्रम्) निष्पापत्व (आसीत्) था। अतः उनको ही ज्ञान का माध्यम बनाया गया था ॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो, यत्र धीराः मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते,
भद्रैषां लक्ष्मीर् निहिताधि वाचि ॥२॥

२—(इव) जैसे (तितउना) चलनी से (सक्तुम्) सत्तू को=आटे को (पुनन्तः) शुद्ध करनेवाले होते हैं, वैसे ही (मनसा) बुद्धि रूपी चलनी से (यत्र धीराः) जहाँ धैर्यशील विद्वान् (वाचम् अक्रत) वाणी को शुद्धतापूर्वक प्रकाशित करते हैं (अत्र) यहाँ इस विषय में (सखायः) मित्रगण, साथी (सख्यानि) मित्रता के व्यवहारों को (आ-जानते) भली प्रकार जानते हैं। (एषाम्) इनकी (वाचा) वाणी में (भद्रा लक्ष्मीः) शुभ सम्पत्ति, उत्तम अर्थ (अधिनिहित) सुरक्षित रूप में निहित हैं ॥

यज्ञेन वाचः पदवीयम् आयन्, ताम् अन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्। ताम् आभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा, तां सप्तरेभा अभि सं नवन्ते ॥३॥

३—(यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा, दान, संगतिकरण और ईश्वरोपासना आदि शुभ कर्मों के द्वारा (वाचः) वाणी की, भाषा की (पदवीयम्) पदावली को ऋषियों ने (आयन्) प्राप्त किया। (ऋषिषु) ऋषियों के अन्तरात्मा में (अनुप्रविष्टाम्) अन्तर्निहित, सुरक्षित, ताम् अविन्दन्=उस वाणी को अन्यों ने प्राप्त किया। ताम् आभृत्य=उसको भली प्रकार सीख कर पुरुत्रा=मानवमात्र के बड़े व्यापक संतरण के लिए, कल्याण के लिए उन्होंने उसे व्यदधुः=धारण किया, प्रचारित किया। ताम्=उसको ही सप्त रेभा=गतिशील, विविध प्रकार के, सात नाद, स्वर, छन्द, सुर-ताल अभि संनवन्ते=भली प्रकार दर्शाते हैं। ७ छन्द निम्नलिखित हैं—

१-गायत्री, २-उष्णिक्, ३-अनुष्टुप्, ४-बृहती, ५-पंक्ति, ६-त्रिष्टुप्, ७-जगती।

आरम्भ में जो भाषा प्रकट हुई थी, वह पूर्ण समृद्ध और सुविकसित थी। आधुनिक मनीषियों के गाथा-विज्ञान, ध्वनि-विज्ञान और भाषा के क्रमिक विकास विषयक सभी सिद्धान्त नितान्त थोथे, भ्रान्त और दूषित हैं। उस सनातन वाणी में पूर्ण समरसता है। उसमें प्रवाह है, मधुरता है, गायत्री आदि छन्दों की योजना है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित हैं, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत मात्रायें हैं, षड्ज आदि सात संगीत के स्वर, ताल तथा लय आदि के सम्पूर्ण सूक्ष्म सिद्धान्त, उपमा आदि काव्य-शास्त्र के सभी अलंकार, शब्द ब्रह्म की उपासना में सहायक व्याकरण, गणित आदि लोक-व्यवहारों के संसाधक सभी विधान उस सनातन वाणी में सुरक्षित हैं। उसके पठन-पाठन से ही मानवता का कल्याण होता है।

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्
उत त्वः शृण्वन् न शृणोति एनाम्।
उतो तु अस्मै तन्वं विसस्रे,
जायेव पत्ये उशती सुवासाः ॥४॥

४—(त्वः) कोई तो (पश्यन् उत) देखते हुए भी (वाचम्) वाणी को (न ददर्श) नहीं देखता और (त्वः) कोई-कोई (शृण्वन् उत) सुनते हुए भी (एनाम्) इस वाणी को (न शृणोति) नहीं सुनता (उत) परन्तु (अस्मै तु) इस ज्ञानी के लिए तो यह सनातन

वाणी [तन्वम्] अपना शरीर, स्वरूप, रहस्य [विसस्रे] खोल देती है, [इव] जैसे [सुवासाः] उत्तम वस्त्रों वाली [जाया] धर्मपत्नी [पत्ये] अपने पति के लिये प्रेमपूर्वक आत्मसमर्पण कर देती है।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः, नैनं हिन्वन्ति अपि वाजिनेषु। अधेन्वा चरति माययैषः वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५

५—[उत त्वम्] किसी-किसी को [सख्ये] सभा में [स्थिर-पीतम् आहुः] सम्यक्-परिपक्व विद्वान् कहा जाता है। [एनम्-वाजिनेषु-अपि] इसको युद्धों और बल-ओज-तेज-प्रभाव प्रयुक्त करने के कठिन अवसरों पर भी [न हिन्वन्ति] नहीं छोड़ते, नहीं त्यागते हैं। [एषः] कोई [वाचम्] वाणी को [मायया-अधेन्वा चरति] छल-कपट से प्रभावित कर रस-रहित व्यवहार करता है। [शुश्रुवान्] उसकी लिखाई-पढ़ाई [अफलाम्] फलरहित और [अपुष्पाम्] पुष्प-रहित लता के समान होती है।

यस्तित्याज सचिविदं सखायम् न तस्य वाचि अपि भागो अस्ति। यदीं शृणोति अलकं शृणोति, न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६॥

६—यः जो [सचिविदम्] सच्चे [सखायम्] सखा को [तित्याज] त्याग देता है, [तस्य] उसका [वाचि-अपि] वार्तालाप में भी [भागः न अस्ति] अधिकार नहीं है। [ईम्] निस्सन्देह [यत् शृणोति] वह जो कुछ सुनता है [अलकम् शृणोति] व्यर्थ ही सुनता है। उसका पाठन-पठन और श्रवण बेकार ही हो जाता है। [हि] क्योंकि वह [सुकृतस्य] सुसभ्य, सुशिष्ट जन के [पन्थाम्] मार्ग को, सदाचार को [न प्रवेद] नहीं जानता।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेषु असमाः बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे,
ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७॥

७—यद्यपि सभी मनुष्य [अक्षण्वन्तः] आँखों वाले [कर्णवन्तः] श्रोत्रों वाले [सखायः] समान इन्द्रियों और समान उद्देश्यों वाले होते हैं, परन्तु [मनः जवेषु] मन के आवेगों में, संकल्प-शक्ति में वे [अ-समाः] समानता-शून्य [बभूवुः] होते हैं। [त्वे] कोई तो [आदघ्नासः] मध्य तक भरे हुए, मध्यम श्रेणी के होते हैं, कुछ [उपकक्षासः] थोड़े जल वाले [ह्रदा इव] तालाब जैसे हैं, कोई-कोई तो [स्नात्वाः] स्नान करने योग्य तालावों जैसे भी [ददृश्रे] दिखाई देते हैं।

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु, यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः। अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिः, ओह ब्रह्माणो विचरन्ति उ त्वे॥८

८—सखायः = एक ही जैसी इन्द्रियों वाले ब्राह्मणाः = ज्ञानी, यत् = जो कुछ, हृदा = हृदय से-हार्दिकता से, मनसः = मन से, संकल्पबल से, तष्टेषु = विभिन्न स्तरों, या सिद्धान्तों में, उनके जवेषु = आवेगों, प्रभावों व संघर्षों में, संयजन्ते = सम्यक् एकत्र होते हैं, अत्र त्वम् = तब किसी को, वि-जहुः = वे त्याग देते हैं, अह = और ओह ब्रह्माणः = उहा प्रतिभा वाले ज्ञानी, वेद्याभिः = जानने और संरक्षण करने योग्य विद्याओं के साथ, उ-वि-चरन्ति = विचरण करते हैं।

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति, न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः। ते एते वाचमभिपद्य पापया, सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः॥९

९—ये इमे = जो ये, न अर्वाक् = न इधर लौकिक व आधुनिक कर्मों में, न परः = न उधर पारलौकिक विषयों में, चरन्ति = विचरते हैं; न ब्राह्मणासः = न ब्राह्मणों, वेदज्ञों और ज्ञानियों के पदों को धारते हैं, न सुतेकरासः = और न ही दानियों, संगठन-कर्त्ताओं के मार्ग को स्वीकारते हैं। ते एते अप्रज-ज्ञयः, वाचम् अभिपद्य = वे ये महामूर्ख वेदवाणी, भाषा, विद्या को प्राप्त करके भी मानो, पापया = पापी मनोवृत्ति से, सिरीः तन्त्रम् तन्वते = हलवाहे के समान हैं, या जुलाहे के तुल्य हैं।

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्हि एषाम्
अरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥

१०—सभा साहेन = सभा में सहायक, यशसागतेन सख्या = यशस्वी मित्र से, सर्वे सखायः नन्दन्ति =

सभी मित्र आनन्दित होते हैं। हि किल्विषस्पृत् पितुसनिः=क्योंकि पापनिवारक, वह मित्र अन्न आदि देकर, एषाम् वाजिनाय अरम् हितः भवति= इन मित्रों के व्यवहार के लिए पर्याप्त समर्थ होता है।

२३–ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्, गायत्रं त्वो गायति
शक्वरीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां, यज्ञस्य
मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥११॥

११—त्वः पुपुष्वान्=कोई-कोई ऋग्वेदी होता विद्वान्, ऋचाम्-पोषम्-आस्ते=ऋचाओं को पुष्ट करता है, त्वः=कोई सामवेदी उद्गाता, शक्वरीषु गायत्रम् गायति=शक्वरी मन्त्रों में सामगान गाता है, त्वः ब्रह्मा=कोई अथर्ववेदी अथवा चतुर्वेदी ब्रह्मा ज्ञाता, जात-विद्याम् वदति=सुप्रसिद्ध वेद-विद्या को बताता, सिखाता, प्रचारता है, उ त्वः यज्ञस्य मात्राम् विमिमीत=और कोई यजुर्वेदी अध्वर्यु यज्ञ की (यज्ञ-स्वरूप प्रभु की उपासना-पद्धति को) विशेष रीति से सुनिश्चित करता है।

पाठकगण विचारिये कि आप चारों में से कौन हैं या क्या बनना चाहते हैं। एक वेद तो अवश्य ही पढ़ना है। आज ही निश्चय कर लीजिये कि कौन-सा वेद पढ़ेंगे। उसे खरीद कर निजी पाठ्य-पुस्तक के रूप में सदा अपने पास रख कर पढ़िये।

२४–सदसस् पतिमद्भुतम् प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम् स्वाहा॥
—ऋ० १.१८.६, यजु० ३२।१३, साम० १७१

२४—मैं ऐसी मेधाबुद्धिको प्राप्त करूँ जो सभाओं तथा इन्द्रियों की रक्षक हो, आश्चर्यजनक हो, परमात्मा और जीवात्मा को प्यारी हो, कामना के योग्य हो, सत्य-असत्य की पहचान करानेवाली हो, और श्रेष्ठ कर्मफल दिलानेवाली हो।

२५–फिर गायत्री मन्त्र ३ बार पढ़कर ३ समिधाओं से ३ आहुतियाँ दें।

२६–यदस्य कर्मणो अत्यरीरिचं यद् वा न्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु
मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां
कामानां समर्धयित्रे सर्वान् नः कामान् समर्धय स्वाहा॥
इदमग्नये स्विष्टकृते, इदं न मम॥
—शत. १४.९.४.२४, आ.गृ. १.१०.२२, पा० १.२.१०

२६—जो इस कर्म में मैंने अधिक या यहाँ पर कम किया है उसे अच्छा इष्ट करनेवाला परमात्मा जानता है। वह मेरे सब अच्छे कार्य को अच्छे प्रकार पूरा करे। सु इष्ट करनेवाले, सुहुत को ग्रहण करने वाले, सब प्रायश्चित्त आहुति वाली कामनाओं को पूरा करनेवाले अग्नि के लिए यह आहुति है। हे प्रभो, आप हमारी सब कामनाओं को समृद्ध करें।

मन्त्रपाठ और प्रातराश

१–ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥
—ऋ० १.९०.९, य० ३६.९, अ० १९.९.६

अर्थ—मित्र स्वरूप, वरणीय, दोष-निवारक, न्यायकारी, ऐश्वर्यवान् बड़े-बड़े लोकों का रक्षक स्वामी सर्वव्यापक, महान् पराक्रमी परमात्मा हमारा कल्याण करे॥

२–ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर् वरेण्यम् भर्गो
देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥
—यजु० ३६.३

अर्थ—परमेश्वर ओ३म् रक्षक, प्राणों का प्राण, दुःखहर्ता और सुखस्वरूप है। उस सविता रचयिता, सर्व सुखदाता के दुःख–निवारक वरणीय भर्ग तेज को हम धारण और ध्यान करते हैं, वह हमारी बुद्धियों को अच्छी प्रेरणा दे।

❀ चारों वेदों के प्रथम और अन्तिम मन्त्र ❀

३–ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ —ऋ० १.१.१

अर्थ—मैं परमेश्वर, भौतिक अग्नि तथा विद्वान् नेता के गुणों का वर्णन करता हूँ। जो सर्वहितकारी, यज्ञ का

देव, सब ऋतुओं में पूजनीय, सुख का देनेवाला और रमणीय पदार्थों का धारण करानेवाला है।

४–ओ३म् समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
—ऋ० १०.१९०.४

अर्थ—हे मनुष्यो, तुम्हारे संकल्प, हृदय और मन सभी समान हों जिससे तुम अच्छे बलशाली होकर रहो ॥

५–ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे, आप्यायध्वम्, अघ्न्या इन्द्राय भागम् प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः, मा वः स्तेन ईशत माघशंसो, ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात वह्वीर्, यजमानस्य पशून् पाहि ॥ —यजु० १.१

अर्थ—हे मनुष्यो, सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाला, सुखों को देनेवाला परमात्मा है। तुम्हारे प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियाँ हैं उनको वह अत्युत्तम कर्मों के लिये, अच्छी प्रकार संयुक्त करे। अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों और विज्ञान की प्राप्ति और पराक्रम के लिये, सेवा करने योग्य उसका सब प्रकार से हम आश्रय करें। हे मित्र लोगो! तुम भी उन्नति को प्राप्त हो। हे जगदीश्वर, परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, बहुत संतानवाली, व्याधिरहित, जिनमें राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं, उन गौ आदि पशु, इन्द्रियों वा पृथिवी आदि को नियत कीजिये। हममें कोई पापी वा चोर-डाकू मत उत्पन्न हो तथा आप इस धर्म के सेवन करनेवाले मनुष्य के पशु, लक्ष्मी और प्रजा की निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो, इस धार्मिक पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहनेवाले सज्जन मनुष्य के समीप बहुत से उक्त पदार्थ निश्चल सुख के हेतु हों ॥

६—ओ३म् हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ओ३म् खम् ब्रह्म ॥
—यजु० अ० ४० मन्त्र १७

अर्थ—सुवर्णमय प्रकाशमान परमात्मा से सत्य प्रकृति का मुख आच्छादित है। जो यह आदित्य में प्रकाशित पुरुष है वह यह मैं 'ओ३म्' आकाशवत् महान् और सर्वव्यापक हूँ ॥

७–ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ —साम० १

अर्थ—हे ईश्वर और विद्वान्, क्योंकि स्तुति किये जाते हुए आप दाता, उत्तम सभा में विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों की व्याप्ति के लिये और देने योग्य दान के लिये उत्तम प्रकार जानते हैं। इसलिये हमको सब प्रकार प्राप्त होइये।

८–ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ —साम० १८७५

अर्थ—सर्वज्ञ, पोषक, जगत्‌रूपी धन का स्वामी, वीर, सुख-प्रदाता, महान् स्वामी, रक्षक परमेश्वर हमारा कल्याण करे ॥

९–ओ३म् ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥
—अथर्व० १.१.१

अर्थ—जो 'त्रिषप्त' (३; ७; १०; २१) पदार्थ सब रूपों को धारण करते हुए सब ओर व्याप्त हैं; उनके बलों को; वाणी का रक्षक स्वामी = परमेश्वर; आचार्य तथा वैद्य मेरे शरीर में आज सर्वदा धारण करायें। तथा वाणी की रक्षक बला नामक चार प्रकार की औषधि मेरे शरीर के तीन दोषों और ७ धातुओं को ठीक रखे ॥

[पूरी व्याख्या 'यज्ञ सामान्य विधि' में देखिये]

१०–ओ३म् पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः। सहस्रशंसा ऊतये गविष्टौ सर्वामित् तामुपयाता पिबध्यै ॥ —अथर्व० २०.१४३.९

अर्थ—हे सभापति और सेनापति, आपका किया वह कर्म प्रशंसनीय है जो द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर सुखों का वर्षक है। पृथिवी के शासनरूपी यज्ञ में आप हजारों नर-नारियों की रक्षार्थ उन सबके सम्पर्क में आया कीजिये।

११–सह नो अस्तु सह नो अवतु, सह न इदं वीर्य्यवदस्तु।
ब्रह्मा इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामहे ॥

अर्थ—हम परस्पर रक्षा करें, यह वेदपाठ शक्तिशाली हो, ब्रह्मा और यजमान उस वेद को जानें जिससे परस्पर द्वेष न रहे।

वामदेव्य गान के मन्त्र पढ़ कर प्रातराश करें।

महा वामदेव्य गान

१ २उ ३क २र १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १
ओं भूर् भुवः स्वः । कया नश्चित्र आ भुवद् ऊती सदा
२ ३ १ २ २ ३ १ २ ३२
वृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

१ २उ ३क २र १ २ १ १र २र३ १२
ओं भूर् भुवः स्वः । कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मत्सदन्धसः । दृढा चिदा रुजे वसु ॥ २ ॥

१ २उ ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
ओं भूर् भुवः स्वः । अभी षु णः सखीनामविता जरि-
३ २ ३ १ २ ३ १ २
तॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥३॥

[साम ६८२–६८४, ऋ० म० ४. सू० ३१; मन्त्र १;२;३]

३ र ४ २ ४र ५ १ र २ १र २
काऽ५या । नश्चा३ इत्रा३ आभुवात् । ऊ । ती सदावृधः
१ २ र२ १ २ ३ र २
स । खा । औं३होहाइ । कया२३ शचाइ । ष्ठयौहो३ ।
१ ५- १ २
हुम्मा२ । वा२र्तो३ऽ५हाइ ॥१॥

३ र ४ २ ४ ५ १ २र १ २
काऽ५स्त्वा । सत्यो३मा३दानाम् । मा । हिष्ठो मात्सादन्ध ।
२ र २ १ २ ३ र २ १ ५-
सा । औ३होहाइ । दृढ़ा२३ चिदा । रुजौहो३ । हुम्मा२ ।
१ २
वाऽ३सो३ऽ५हायि ॥२॥

३ र ४ २ ४ ५ १ २र १ २र
आऽ५भी । षु णा३: सा३खीनाम् । आ । विता जरायितॄ ।
१ २ र २ १ २ ३ र २
णाम् । औ३ हो हा यि । शता२३म्भवा । सियौहो३ ।
१ ५- १ २
हुम्मा२ । ताऽ२यो३ऽ५हायि ॥३ ॥ [गो० गृ० १.९.२९]

अर्थ—१. विचित्र; पूज्य तथा सदा वृद्धि को प्राप्त परमेश्वर हमारी किसी रक्षा के सामर्थ्य से तथा किसी बुद्धि-बल-युक्त व्यवहार से मित्र हो जाता है।

२. हे जीव! सुखस्वरूप, सत्य, हर्षप्रदों में सबसे महान्; जीवन के धारक रस के रूप में वर्तमान; दृढ़ और वास-योग्य जीवन-धन परमात्मा आरोग्य प्राप्त कराने के लिए तुझे आनन्दित करे।

३. हे परमेश्वर, आप हमारे मित्रों की तथा अपने उपासकों की रक्षा के लिए सौ वर्ष तक रक्षक बने रहें।

—❀—

वेद सम्बन्धी गीतिका

वेद ही जग में हमारा; ज्योति जीवन-सार है।
वेद ही सर्वस्व प्यारा; पूज्य प्राणाधार है ॥१॥
सत्यविद्या का विधाता; ज्ञान का गुरु गेय है,
मानवों का मुक्तिदाता; धर्म धी का ध्येय है।
वेद ही परमेश प्रभु का; प्रेम - पारावार है ॥२॥
ब्रह्म-कुल का देवता है; राजकुल-रक्षक रहा,
वैश्य-वंश-विभूषिता है; शूद्रकुल-स्वामी महा।
वेद ही वर्णाश्रमों का; आदि है, आधार है ॥३॥
श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव; पुण्य पावन पर्व है,
वेद-व्रत स्वाध्याय वैभव; आज ही सुख सर्व है।
वेद-पाठी विप्रगण का; दिव्य दिन दातार है ॥४॥
वेद का पाठन-पठन हो; वेद-वाद-विवाद हो,
वेदहित जीवन-मरण हो; वेद-हित आह्लाद हो।
आर्यजन का सर्वदा व्रत; विश्व-वेद-प्रचार है ॥५॥
"विश्वभर को आर्य करना" वेद का संदेश है,
"मृत्यु से किञ्चित् न डरना" ईश का आदेश है।
सृष्टि-सागर में हमारा; वेद ही पतवार है ॥६॥
रोज-रोज सरोज सम श्रुति-सूर्य से खिलते रहें,
वेद-चन्द्र चकोर हम; द्युति मोद से मिलते रहें।
वेद ही स्वामी सखा सब; वेद ही परिवार है ॥७॥

—ॐ—

❀ वेद-प्रचार सप्ताह ❀

१५ से २३ अगस्त तक वेद-प्रचार सप्ताह प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी मनाया जायेगा। वेदों का प्रातःकाल मिलकर स्वाध्याय होना चाहिए। १५-८-८१ को श्रावणी और २३-८-८१ को कृष्णाष्टमी होगी।

१–ओ३म् की तथा पाखण्ड खण्डिनी पताका लगायी जाये। २–यज्ञोपवीत का सामूहिक रूप से प्रचार होना चाहिये।

वेद के लिए कर्तव्य

[स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, अध्यक्ष विश्ववेदपरिषद्]

महर्षि दयानन्द का कथन है—'नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।' आर्यसमाज का मूलाधार वेद है। वह स्वयं में साध्य न होकर वेद के प्रचार एवं प्रसार का साधनमात्र है। साध्य का सिद्धि-सहायक होना ही साधना की सफलता का द्योतक है। आर्य समाज की उन्नति का मापदण्ड उसके सदस्यों की संख्या, मन्दिरों की विशालता, चन्दे की राशि और संस्थाओं का विकास न होकर वेद के पढ़ने-पढ़ाने और तदनुकूल आचरण करनेवालों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होना माना जाना चाहिए। महर्षि ने वेद के तीसरे नियम में वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने को ही आर्यों का परमधर्म निर्धारित किया है। इसके अनुसार कौन कितना बड़ा आर्य समाज का नेता है इसका मापदण्ड भी किसी व्यक्ति का पद, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि न होकर उसका वेदविषयक ज्ञान व तदनुकूल आचरण हो।

वेद के पठन-पाठन की प्रेरणा देने के लिए ही श्रावणी पर्व और वेद-सप्ताह मनाया जाता है। वेद के पठन-पाठन की पहली आवश्यकता है घर में वेद की पुस्तक का होना। जिसके घर में वेद नहीं उसे आर्य समाज का नेता या अधिकारी तो क्या, साधारण सदस्य भी नहीं मानना चाहिए। सबको मिलकर इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि इस पर्व के पुनीत अवसर पर प्रत्येक आर्य के घर में भाष्यसहित चार, तीन, दो वेद, अथवा न्यूनातिन्यून महर्षि के भाष्यसहित यजुर्वेद अवश्य ही पहुंच जायें। एतदर्थ—

आर्य समाजों के अधिकारियों से निवेदन है कि वे इसकी समुचित व्यवस्था करें। जिस समाज के जितने सदस्य हों, वेद की कम से कम उतनी प्रतियाँ आर्यसमाज के कोष से अथवा इसी निमित्त धनी मानी सज्जनों के चन्दे द्वारा एकत्रित धन से एकसाथ खरीद लें। तदन्तर रियायती मूल्य लेकर उन्हें सदस्यों में वितरित करदें। यह कार्य इतना आवश्यक है कि शीघ्र किया जाना चाहिए।

—:⁂:—

धर्मवीरों को श्रद्धाञ्जलि

[ब्रह्मनिष्ठ स्वामी धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड, पूर्व अध्यक्ष, विश्ववेदपरिषद्]

श्रद्धांजलि अर्पण करते हम, करके उन वीरों का मान।
धार्मिक स्वतन्त्रता पानेको, किया जिन्होंने निज बलिदान॥
परिवारों के सुख को त्यागा, युवक अनेकों वीरों ने।
कष्ट अनेकों सहन किये पर, धर्म न छोड़ा धीरों ने॥
ऐसे सभी धर्मवीरों के, आगे शीश झुकाते हैं।
उनके उत्तम गुण-गण को हम, निज जीवन में लाते हैं॥
अमर रहेगा नाम जगत में, इन वीरों का निश्चय से।
उनका स्मरण बनायेगा फिर, वीर जाति को निश्चय से॥
करें कृपा प्रभु आर्य जाति में, कोटि-कोटि हों ऐसे वीर।
धर्म-देश-हित जो कि खुशीसे, प्राणोंकी आहुति दें धीर।
परमेश्वर को साक्षी करके, यही प्रतिज्ञा करते हैं।
हम वीरों के चरण चिह्न पर, चलने का व्रत धरते हैं॥

धर्मवीरों की नामावली

श्यामलाल जी, महादेव जी, रामा जी, श्री परमानन्द।
माधवराव, विष्णु भगवन्ता, श्री स्वामी कल्याणानन्द॥
स्वामी सत्यानन्द महाशय, मलखाना, श्री वेद प्रकाश।
धर्मप्रकाश, रामनाथ जी, पाण्डुरंग, श्री शान्तिप्रकाश॥
पुरुषोत्तम जी, ज्ञानी लक्ष्मण राव, सुनहरा वेंकट राव।
भक्त अरूड़ा, मातुराम जी, नन्हूंसिंह जी, गोबिन्द राव॥
बदनसिंह जी, रतीराम जी, मान्य सदाशिव, ताराचन्द।
श्रीयुत छोटे लाल, अशर्फी लाल, तथा श्री फकीर चन्द॥
माणिक राव, श्री भीमराव जी, महादेव जी, अर्जुनसिंह।
सत्यनारायण, बैजनाथ, ब्रह्मचारी दयानन्द, नरसिंह॥
राधाकृष्ण सरीखे निर्भय अमर हुये इन वीरों का।
स्मरण करें विजयोत्सव के दिन सब ही वीरों धीरों का॥

—⁂—

वेदार्थपारिजात-खण्डन

[श्री सन्तराम वेदरत्न, बलरामपुर]

(गतांक से आगे)

श्री करपात्री—"ब्राह्मण भाग मन्त्र भाग की व्याख्या करते हैं इससे भी ब्राह्मण भाग वेद नहीं हैं ऐसा नहीं कह सकते।" [वेदार्थपारि० पृ० ७०३]

समीक्षा—लेखक अपनी हठवादिता के कारण भिन्न-भिन्न युक्तियों की शरण में जाता है किन्तु उसे आश्रय नहीं मिलता। जैसे किसी डूबनेवाले व्यक्ति को तृण भी पकड़ने को न मिले। एक ही वाक्य को पुनः-पुनः वाक्यान्तर से कहता है।

ब्राह्मणग्रन्थ कभी भी वेद की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि इषे त्वा ऊर्जे त्वेति···इस प्रकार से ब्राह्मणों में मन्त्रांश रख के वेदों का व्याख्यान किया है। ब्राह्मणों के वाक्यांश को वेदों में रखके व्याख्या नहीं की गयी है अतः इन्हें वैदिक साहित्य ही कहा जा सकता है, वेद नहीं। यह सिद्धान्त निम्नांकित कारणों से स्पष्ट है—

(१) वेदमन्त्रों में स्वर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से प्रयुक्त होते हैं किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रकार तीनों स्वर नहीं।

(२) शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के अध्यायों के मन्त्रों का क्रमिक व्याख्यान और विनियोग प्राप्त होता है जैसे शतपथ में १।१।१।१। में अग्ने व्रतपते० १।१।४,८,६ में अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनम् इत्यादि। अन्य ब्राह्मणों में भी ये प्रक्रियायें पायी जाती हैं।

(३) वेदों की वाणी नित्य है किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों की नित्य नहीं।

❀ वेदों की उत्पत्ति ❀

वेदोत्पत्ति के विषय में करपात्री का विचार प्रामाणिक नहीं है। उनके छल से अन्वित वाक्यों पर दृष्टिपात कीजिए—

(१) "जिसका आदि अन्त नहीं है ऐसा शब्द राशि वेद के नाम से कहा जाता है, यह वेद इस भारतवर्ष में अनादि परम्परा से वेदज्ञ विद्वानों को प्राप्त है······ऐसी कोई यादगार नहीं जिसके आधार पर इसका कोई कर्त्ता माना जावे [वे० पा० पृ० १]

समीक्षा—यहाँ लेखक वेदोत्पत्ति का कारण ईश्वर है ऐसा नहीं मान रहा है। कारण के अभाव में कार्य नहीं होता इस वैशेषिक दर्शनके सिद्धान्त का खण्डन कर रहा है। अपने हठ के कारण करपात्री को कुछ भी सूझ नहीं रहा है।

(२) अभी तो वेद परमेश्वर द्वारा निर्मित है यही विवाद का विषय है, उक्त श्रुति के प्रमाणसे परमेश्वर में वेद की कारणता मान ली जायेगी यह भी सम्भव नहीं" [वे० पा० पृष्ठ ४४८]

समीक्षा—जिस करपात्री ने यह लिखा कि वेदों का कोई कर्त्ता नहीं, वही लिख रहे हैं कि विवाद का विषय है। विचारधारा की विपरीतता देखिये। कोई विज्ञ हँसे बिना नहीं रह सकता है।

(३) "वेद का प्रामाण्य सिद्ध हो जाने पर ही उस वचन का प्रामाण्य माना जायगा" [वे. पा. पृ. ४८८]

समीक्षा—वेद तो स्वतः प्रमाण है जिसका करपात्री जी खण्डन कर रहे हैं। और तो क्या, अभी तो वेद की मान्यताओं में ही करपात्री का विवेक सन्देहात्मक है। जो वेद की अवहेलना करके अपनी हठवादिता को वेदों से उत्तम मानता है ऐसे साधुओं को नास्तिक कहा जायगा—

नास्तिको वेद-निन्दकः। (महर्षि मनु)

(४) "वेद का कोई कर्त्ता नहीं है। जैसे सो करके उठा व्यक्ति पहले की सारी बातें स्मरण करता है, उसी तरह विशिष्ट प्रजापति आदि ऋषि देवगण पूर्वकल्प के व्यवहार का स्मरण कर इस कल्प में भी व्यवहार और उपदेश देकर अन्य जीवों को ज्ञानवान् बनाते हैं" [वे० पा० पृष्ठ ८४]

समीक्षा—चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की प्रलय के बाद नये शरीरधारी आत्माओं को पूर्व सृष्टि की बातें स्मरण नहीं रह सकतीं। सोकर उठने के बाद

(शेष पृष्ठ ११ पर)

वैदिक दाम्पत्य

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास-४]

(श्री रामस्वरूप 'रक्षक', गेंदालाल मार्ग, अजमेर)

[गतांक से आगे]

ऋषि दयानन्द आगे संकेत करते हैं कि पूजा शब्द का तात्पर्य सत्कार से है। यह परस्पर होता है परन्तु विशेषतः पत्नी सत्कार की पात्र है। सत्कार के अभाव में ही बलपूर्वक कार्य कराये जाते हैं, जिसके लिये वैदिक व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है। जब पत्नी का सत्कार ही होगा तो वह घर का कोई काम न बिगड़ने देगी (मनु० ५।१५०)। दम्पति हमेशा परस्पर प्रिय, सत्य एवं हितकारक वचन कहें, चाहे दूसरा बुरा भी माने परन्तु हितकारी बात अवश्य ही कहें (मनु० ४।१३८-१३९)।

महाभारत 'उद्योगपर्व ३७।१५' की व्याख्या में ऋषि ने बताया कि प्रत्यक्ष में दोष सुनना-सुनाना अनुचित है। पति-पत्नी जब एकान्त में हों अर्थात् तीसरा कोई न हो तब यदि कोई भूलचूक हुई हो तो उस पर चर्चा कर लिया करें व दोष-निरसन करलें। कुछ पति, कुटुम्बी जनों के समक्ष पत्नी को डाँट देते हैं। कुछ ऐसे नीच पति भी होते हैं जो पत्नी को पीटा करते हैं। वैदिक दाम्पत्य में इन कुकर्मों के लिये कोई स्थान नहीं है। अतः पत्नी व पति परस्पर सुखी बनायें इसके लिये यह सावधानी आवश्यक है। मिथ्या भाषण का नाम निन्दा है, सत्य भाषण (गुण को गुण व दोष को दोष ही कहना) स्तुति है। अतः निन्दारहित होकर दम्पति स्तुति-युक्त रहा करें। मनु० ४।१९ के अनुवाद में ऋषि ने कहा कि जो शीघ्र ही बुद्धि-धन-हित को बढ़ानेवाले शास्त्र व वेद हैं, उनका स्वाध्याय दम्पति नित्य करें। पढ़ें और पढ़ावें।

वैदिक दम्पति या गृहस्थी पंचमहायज्ञ किया करें मनु० ४:१९,२० के सन्दर्भ में ऋषि ने यह कहा। ब्रह्मयज्ञ व देवयज्ञ (अग्निहोत्र) तो ब्रह्मचारी (विद्यार्थी-छात्र) अवस्था में भी हों ही, ये दोनों यज्ञ तथा पितृ-यज्ञ, बलिवैश्वदेव और अतिथियज्ञ दाम्पत्य जीवन में अवश्य ही हों। अथर्ववेद १९।७।३,४ को उद्धृत करते हुये बताया कि जो हुत द्रव्य है वह पूरे दिन के लिये वायुशुद्धि द्वारा बल-बुद्धि-आरोग्यकारक होता है। सन्ध्या तीन समय नहीं होती। प्रकाश-अंधकार की संधि प्रातः-सायं दो ही वेला में होती है अतः सन्ध्या एक दिन में दो बार ही होनी चाहिये।

पितृयज्ञ १. देव (विद्वान), २. ऋषि (अध्यापक) ३. पितर (माता-पिता, वृद्ध ज्ञानी, परमयोगी) ४. सोमसद (परमात्मा व पदार्थ-विद्यानिपुण), ५. अग्निष्वात्त (विद्युत् आदि पदार्थों को जानने वाले), ६. बर्हिषद् (उत्तम विद्यावृद्धि-युक्त व्यवहार वाले), ७. सोमपा (रोगरहित ऐश्वर्यरक्षक, अन्यों को भी औषधि देकर नीरोग करनेवाले), ८. हविर्भुज् (मादक-हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़कर यज्ञशेष खानेवाले), ९. आज्यपा (जानने योग्य वस्तु के रक्षक) १०. सुकालिन् (जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो) ११. यम (दुष्टों को दण्ड, श्रेष्ठों का पालन करने वाले हों), १२. पिता (जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक हो, जनक हो), १३-१४. पितामह-प्रपितामह, माता (अन्न-सत्कारोंसे संन्तानों को बनाने वाली), १५-१६. पितामही, प्रपितामही आदि सबके श्राद्ध व तर्पण के लिये होता है। श्रद्धापूर्वक करने से श्राद्ध कहाता है (सत्यग्रहण करने की क्रिया का नाम श्रद्धा है।) विद्यमान माता-पितादि जिस कर्म से तृप्त हों वह तर्पण होता है। ये दोनों जीवितों के लिये ही होते हैं। (क्रमशः)

— — — — (पृष्ठ १० का शेष) — — — —

किसी भी व्यक्ति को सभी बातें स्मरण नहीं होतीं। यह दृष्टान्त ही गलत है।

यह करपात्री का अपना प्रलाप है जिसको यही नहीं पता कि एक स्थल पर मैंने क्या लिखा और अन्य स्थल पर मैं क्या लिख रहा हूँ। उपर्युक्त मान्यता सारहीन तथा प्रमाण से रहित है। इसके विपरीत महर्षि दयानन्द की धारणा तर्क और वेदों से प्रमाणित है। वेदोत्पत्ति ईश्वर की प्रेरणा से हुयी। अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा के अन्तःकरण में ज्ञान प्रथम प्रविष्ट हुआ पश्चात् इन ऋषियों के द्वारा विश्व को प्राप्त हुआ। प्रमाण—

तामन्वविन्दन् ऋषिसु प्रविष्टाम्।[ऋ० १०।७१।३]

वेदवाणी प्रथम परमेश्वर की प्रेरणा से ऋषियों के अन्तःकरण में प्रविष्ट हुयी। तर्क और वेदों से प्रतिपादित मान्यता को करपात्री जी स्वीकार नहीं करते प्रत्युत वैतण्डिक बन कर अपनी मान्यता को मनवाना चाहते हैं। (क्रमशः)

❀❀

मुस्लिमों का अत्याचार

तमिलनाडु स्थित तिनकाशी जिले के मीनाक्षीपुरम् के हरिजनों को बलात् मुसलमान बनाने के समाचार को पढ़कर आर्यसमाज की शिरोमणि सार्वदेशिक सभा का अध्ययन दल १७ मई को मीनाक्षीपुरम् पहुंचा। उसने असलियत जानने का प्रयत्न किया।

जिन पार्टियों के विधायकों एवं संसत्सदस्यों ने हरिजनों को मुसलमान बनाने में नेतृत्व दिया उनके विरुद्ध तमिलनाडु की सरकार तथा उससे सम्बन्धित राजनीतिक पार्टियों ने एक शब्द भी नहीं बोला।

पूर्ण अध्ययन के पश्चात् सार्वदेशिक सभा का अध्ययन दल नीचे लिखे परिणामों पर पहुंचा :—

१—मीनाक्षीपुरम् में बहुत से हरिजनों को उनकी इच्छा के विरुद्ध बलात् घर से बाहर लाया गया और मुसलमान बनाया गया।

२—मीनाक्षीपुरम् के धर्म-परिवर्तन की घटना अचानक नहीं हुई। अपितु पूर्व नियोजित षड्यन्त्र का एक अंग थी। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वहाँ केरल तक के ७ हजार मुसलमान बसों में भर-भर कर आये जिनमें, विदेशी मुस्लिम नागरिक भी थे।

३—यह भी ज्ञात हुआ है कि कुछ अरब देशों के मुस्लिम नेताओं ने भी इस सामूहिक धर्म-परिवर्तन के कराने में भाग लिया।

४—सात हजार मुसलमानों की दावत, जिस पर ३५ से ४० हजार रुपये तक का खर्च अनुमानित है, साथ ही धर्म-परिवर्तित (मुसलमान बने) व्यक्तियों को ५०० रुपये प्रति व्यक्ति के हिसाब से दिया गया।

यह धनराशि कहाँ से आयी, किसने दी, इसको कोई नहीं बता सका।

अध्ययन दल के कुछ सदस्यों ने प्रत्यक्ष देखा कि सैकड़ों की संख्या में नव-युवतियाँ हवाई जहाज में भर कर सीलोन के मार्ग से अरब देशों को भेजी जा रही थीं, वहाँ उन्हें ले जाकर बलात् मुसलमान बनाया जाता है और बेच दिया जाता है।

इससे वहाँ साम्प्रदायिक तनाव बनना स्वभाविक है।

समाचार

—२६-७-८१ को आ०स० द्वारा धर्मरक्षा महाभियान प्रारम्भ कर हरिजन-स्नेह-सम्मेलन किये गये।

—दि० १७-७-८१ आषाढ़ पूर्णिमा को वेदसदन, लखनऊ में पूर्णमासेष्टि और वेदसंगोष्ठी सम्पन्न हुई।

—१५-८-८१ को वेदसदन सी ८१७ महानगर में सायं ६ बजे से पूर्णमासेष्टि और वेदसंगोष्ठी होगी। कृपया लखनऊ वासी सज्जन सम्मिलित हों।

—निम्नलिखित महानुभावों के देहान्त पर शोक प्रकट किया जाता है और परमात्मा से वियुक्त आत्माओं की शान्ति के लिए प्रार्थना की जाती है—

१. श्री नारायणदास जुनेजा, प्रधान आ०स० सान्ताक्रूज, बम्बई ४-६-८१
२. पं० बहादुरदत्त शास्त्री, फीजी ८-६-८१
३. श्री जनार्दनप्रसाद आर्य, सैनफ्रांसिको २३-३-८१
४. श्रीमती दुलारी मरवाह, आर्यसमाज लन्दन।
५. श्री मदनमोहन, वेदप्रचारक, फीरोजपुर।
६. महाशय चन्द्रगुप्त, आर्यसेवक, आ.स. अलावलपुर।
७. श्री महादेवशरण, वैद्यनाथ धाम (बिहार)

—❀—

वेद की परीक्षाएँ

आगामी परीक्षाएँ—श्रावणी २०३८ वि० पर २५ अगस्त १९८१ को होंगी। परीक्षार्थी-सूची और शुल्क १५-८-८१ तक आ जाने चाहिए।

❀ सदस्यों से प्रार्थना ❀

आपका वर्ष पूर्ण हो गया है कृपया आगे के लिए १० रुपये शीघ्र भेजें, अन्यथा पत्रिका न भेजी जावेगी।

— ओ३मित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व-वेद-परिषद्

प्रेषक— प्रकाशक वेदज्योति,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ [उ. प्र.]
मुद्रक—आदर्श प्रेस लखनऊ दूरभाष ८४१०१

सेवायाम् श्री बलभद्रकुमार हू[illegible]
कुलपति— गुरुकुल कां[illegible]